UNIVERSAL
LIBRARY
OU_182764
UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. 891.M49B Accession No. G.H. 154

Author मीतल, प्रभुदयाल

Title ब्रज भाषा साहित्य का इतिहास

This book should be returned on or before the date last marked below.

ब्रज-साहित्य-माला सं० २

ब्रजभाषा साहित्य का नायिकाभेद

[परिवर्द्धित एवं परिष्कृत द्वितीय संस्करण]

★

लेखक :

प्रभुदयाल मीतल

★

भूमिका लेखक :

डा० रामप्रसाद त्रिपाठी

अध्यक्ष-इतिहास विभाग, प्रयाग विश्व-विद्यालय

★

प्रकाशक :

अग्रवाल प्रेस, मथुरा ।

द्वितीय संस्करण

वैशाख सं० २००५ वि०

मूल्य ६)

मुद्रक, प्रकाशक :

प्रभुदयाल मीतल, अग्रवाल प्रेस, अग्रवाल भवन, मथुरा।

ब्रजसाहित्य माला

प्रभुदयाल मीतल

प्राक्कथन

★

प्रायः साढ़े-तीन वर्ष पूर्व इस पुस्तक का प्रथम संस्करण 'ब्रजभाषा-साहित्य में नायिका-निरूपण' के नाम से प्रकाशित हुआ था। पुस्तक के विषय का विचार करते हुए मुझे इस बात की आशंका थी कि हिंदी के सुप्रसिद्ध साहित्यकारों द्वारा कदाचित उसे सन्मान प्राप्त न हो सके, किंतु मुझे यह देख कर परम हर्ष और आत्म-संतोष हुआ कि हिंदी के अनेक प्रतिष्ठित पत्रों एवं विख्यात विद्वानों ने उसकी मुक्त कंठ से सराहना की थी। ब्रजभाषा-काव्य के रसिकों तथा उच्च हिंदी साहित्य के विद्यार्थियों ने भी इस पुस्तक को प्रेम पूर्वक अपनाया, जिसके कारण इसका प्रथम संस्करण कुछ ही महीनों में समाप्त होगया। तब से अब तक इस पुस्तक की बड़ी माँग थी, किंतु काग़ज़-कंट्रोल की असुविधाओं के कारण अब कहीं इसका द्वितीय संस्करण प्रकाशित हो पाया है।

प्रथम संस्करण की रचना के समय ब्रजभाषा के रीति-साहित्य का तो अध्ययन हो गया था, किंतु उसके भक्ति-साहित्य पर उस समय भली भाँति विचार करने का अवसर प्राप्त नहीं हुआ। इस बीच में ब्रजभाषा के भक्ति-साहित्य का विशेष रूप से अवलोकन किया गया, जिसके फल स्वरूप 'अष्टछाप-परिचय' तथा कई अन्य पुस्तकों की सामग्री एकत्रित की गयी। ब्रजभाषा के भक्ति-साहित्य का अध्ययन करने पर नायिकाभेद संबंधी अपनी पूर्व मान्यताओं में परिवर्तन करने की आवश्यकता प्रतीत हुई। एक प्रकार से तत्संबंधी दृष्टिकोण ही बदल गया, जिसके कारण प्रस्तुत संस्करण आमूल परिवर्तन, परिवर्द्धन एवं परिष्कार के उपरांत प्रकाशित किया गया है। पुस्तक के क्रम, आकार-प्रकार और उसकी रचना-शैली में भी बहुत-कुछ परिवर्तन हुआ है। इन सब कारणों से यह एक नवीन पुस्तक सी बन गयी है, इसलिए इसके पूर्व नाम में भी किंचित परिवर्तन कर इसे वर्तमान नाम से प्रस्तुत किया गया है।

ब्रजभाषा का भक्ति एवं शृंगार विषयक साहित्य अखिल भारतीय साहित्य के लिए महान् दैन है। इसी साहित्य के कारण भारत की समस्त भाषाओं में हिंदी का सर्वोपरि महत्व है। ब्रजभाषा के भक्त कवियों ने भक्ति और शृंगार में भेद नहीं माना है, इसलिए उनकी अति-शृंगारिक रचनाएँ भी पवित्र एवं निर्दोष भाव-भूमि पर प्रतिष्ठित हैं। ब्रजभाषा का नायिकाभेद विषयक साहित्य

शास्त्रीय विधि से रीति-साहित्य का अंग होते हुए भी रस-प्रकरण के विचार से शृंगार रस के अन्तर्गत है। ब्रजभाषा के शृंगार साहित्य में,भक्त कवियों की अलौकिक दिव्य वाणियों के अतिरिक्त रीति-काल के कलाकारों की चमत्कार-पूर्ण सूक्तियाँ भी हैं। दोनों का अपनी-अपनी सीमाओं में महत्व है और दोनो मे ही काव्य-सौन्दर्य की पराकाष्ठा है। यद्यपि दोनों की रचनाओं में काव्य-कला के समस्त गुण विद्यमान हैं, तथापि उनके लक्ष्यों में एक मौलिक अंतर है। भक्त कवियों की श्रेष्ठतम रचनाओं का लक्ष्य भी भक्ति-भावना है, काव्य-कला का प्रदर्शन करना नहीं; जब कि रीति-कालीन कवियों की निकृष्टतम रचनाओं का लक्ष्य भी काव्य-कला का प्रदर्शन करना है! भक्त कवियों के नायिकाभेदोक्त कथनों का उद्देश्य भी उनकी विशिष्ट उपासना-पद्धति के अनुसार इष्ट देव के प्रति भक्ति-भाव प्रदर्शित करना है, किंतु रीति-काल के कवियों द्वारा नायिकाभेद का विविध भाँति से विस्तार किये जाने पर भी उनका मुख्य लक्ष्य अपने काव्य सौन्दर्य का प्रदर्शन करना रहा है। वास्तविक बात तो यह है कि ब्रजभाषा-साहित्य में शास्त्रीय पद्धति के अनुसार नायिकाभेद पर स्वतंत्र विषय की भाँति प्रायः विचार ही नही किया गया। भक्ति-कालीन कवियों ने उसे भक्ति-भावना के प्रदर्शन का साधन बनाया, तो रीति-कालीन कवियों ने उसे काव्य प्रतिभा के प्रदर्शन का माध्यम बनाया। भक्त कवियों ने नायिकाभेद की सभी नायिकाओं का उपयोग न कर कतिपय विशिष्ट नायिकाओं द्वारा ही अपने उद्देश्य की पूर्ति की है, किंतु रीति-कालीन कवियों ने नायिकाभेद की सभी नायिकाओं का उपयोग ही नही किया है प्रत्युत उनके भेदोपभेदों के कथनों द्वारा उनका विस्तार भी किया है। इसलिए प्रस्तुत पुस्तक के प्रथम खंड मे भक्त कवियों के नायिकाभेद की आलोचना करते हुए भी इसके द्वितीय खंड मे नायिकाओं के उदाहरणों मे रीति-कालीन कवियों के छंद ही संकलित किये गये हैं। भक्त कवियों द्वारा कथित कतिपय नायिकाओं के उदाहरण सम्मिलित कर देने से प्रस्तुत पुस्तक का गौरव तो अवश्य बढ़ जाता, किंतु इस बेमेल गठ-बंधन के कारण कदाचित उन महात्माओं के प्रति अन्याय भी हो जाता। इसलिए मैंने भक्त कवियों के नायिकाभेदोक्त उदाहरणों के संकलन का लोभ त्याग कर रीति-कालीन कवियों के उदाहरण देना ही अधिक उपयुक्त समझा है। ब्रजभाषा नायिकाभेद के मूल में धार्मिक अथवा आध्यात्मिक भावना होते हुए भी रीति-कालीन कवियों ने उसे शुद्ध शृंगारिक भाव से अपनाया है। शृंगार स्वयं इतना महान् है कि उसके प्रतिपादन के लिए किसी धार्मिक अथवा आध्यात्मिक आश्रय की अनिवार्य रूप मे आवश्यकता भी नहीं है।

हिंदी साहित्यिक इतिहास के तथाकथित रीति-काल में व्रजभाषा साहित्य का पूर्ण अभ्युदय और उसका अपूर्व शृंगार हुआ है। इस काल की रचनाओं में नायिकाभेद विषयक रचनाएँ सब से अधिक महत्वपूर्ण हैं। रीति-काल के सैकड़ो प्रतिभाशाली कवियों ने पूर्ण साधना के साथ अपने जीवन के अनेक अमूल्य वर्षों को इस विषय की रचना में लगाया है। हिंदू राजा-महाराजाओं के अतिरिक्त अनेक मुसलमान उमराव और बादशाहों ने भी इस विषय के प्रोत्साहन में गुण ग्राहकता पूर्वक लाखों ही नहीं, करोड़ों रुपयों का व्यय किया है।

जिस विषय की रचना में इतनी विपुल जन-शक्ति और धन-शक्ति लगी हो, उसके महत्वपूर्ण होने में संदेह ही क्या हो सकता है! किंतु आधुनिक काल के कतिपय विद्वान व्रजभाषा साहित्य के नायिकाभेद का यथार्थ महत्व स्वीकार करने में अपने को असमर्थ पाते हैं। उनसे मेरा विनम्र निवेदन है कि व्रजभाषा कवियों के नायिकाभेद-कथन पर काव्य-सौन्दर्य और विषय-प्रतिपादन दोनों दृष्टियों से विचार करना चाहिए, तभी उसके संबंध में कोई निश्चित धारणा बनायी जा सकती है। संभव है विषय-प्रतिपादन की दृष्टि से उनको इसका महत्व स्वीकार न हो, किंतु काव्य-सौन्दर्य की दृष्टि से तो उनको भी इसका महत्व स्वीकार करना होगा। मेरी दृष्टि में नायिकाभेद का महत्व विशेषतया उसके काव्य-सौन्दर्य के कारण है। इस दृष्टि से इस विषय पर विचार करने से ज्ञात होगा कि नायिकाभेद पर कवियों ने जिन टकसाली मुक्तक छंदों की रचना की है, उनमें काव्य-कला के समस्त गुण विद्यमान हैं। उनके सरस कवित्व और काव्य-सौष्ठव की समता अन्यत्र मिलना कठिन है। संस्कृत साहित्य के कवि भी इस विषय में व्रजभाषा कवियों से पीछे रह गये हैं। वास्तव में काव्यशास्त्र का यही एक ऐसा विषय है, जिसके कथन में व्रजभाषा के कलाकार अपने अग्रज संस्कृत कवियों को भी बहुत पीछे छोड़ गये हैं।

आधुनिक काल के जो प्रतिष्ठित आलोचक इस विषय का महत्व स्वीकार नहीं करते हैं, उनमें हिंदी साहित्य के गंभीर विचारक और चिंतनशील विद्वान श्री हजारीप्रसादजी द्विवेदी का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। आदरणीय

---

* "अत्यंत पुराने काल से नाट्यशास्त्र में जो कुछ इस विषय में कहा गया था और बाद में दशरूपक और साहित्यदर्पणादि ग्रंथों में उसी के अनुवाद के रूप में जो कुछ कहा गया था, उससे अधिक किसी ने नहीं लिखा। इस प्रकार समूचा नायिकाभेद का साहित्य नाट्यशास्त्र के सामान्य अंग पर लोकगम्य भाष्य के सिवा और कुछ नहीं है।" —"हिंदी साहित्य की भूमिका"

द्विवेदी जी नायिकाभेद को नाट्यशास्त्र के सामान्य अंग का भाष्य मात्र मानते हुए उसका विशेष महत्व स्वीकार नहीं करते है। विद्वद्वर द्विवेदी जी के मतानुसार यह विषय नाट्यशास्त्र के सामान्य अंग का भाष्य ही सही, किंतु यह भाष्य भी कितना विशद और विवेचनापूर्ण, साथ ही कितना सरस और काव्य-सौन्दर्ययुक्त हुआ है, इसकी क्या सहज ही उपेक्षा की जा सकती है? मैं तो श्री द्विवेदी जी के मत से आदरपूर्वक असहमति प्रकट करता हुआ इसे नाट्यशास्त्र के सामान्य अंग का केवल भाष्य ही नहीं, प्रत्युत इसे नाट्यशास्त्र, काव्यशास्त्र और कामशास्त्र जैसे तीन-तीन महत्वपूर्ण शास्त्रों का समन्वय मानता हूं। व्रजभाषा कवियों का नायिकाभेद नाट्यशास्त्र के चरित्र-चित्रण, काव्यशास्त्र की रस-निष्पत्ति और कामशास्त्र की केलि-क्रीड़ा से अनुप्राणित है, इसीलिए वह भरत-धनंजय, विश्वनाथ-भानुदत्त और वात्स्यायन की कृतियों की अपेक्षा कहीं अधिक आकर्षक और प्रभावशाली बन गया है—किंतु मैं फिर कहता हूँ कि उसका महत्व केवल इस पर आधारित नहीं है यह तो उसकी महत्ता का गौण अंग है, मुख्य अंग तो वही काव्य-सौन्दर्य है, जिस पर वर्तमान काल के आलोचक ध्यान देते दिखलाई नहीं देते और जिसके बिना उनकी धारणा एकांगमुखी हो जाती है।

विषय-प्रतिपादन की दृष्टि से भी उसका महत्व कुछ कम ज्ञात नहीं होता। इस दृष्टि से नायिकाभेद एक मनोवैज्ञानिक विवेचन कहा जा सकता है। मनोविज्ञान जैसे गूढ़ और जटिल विषय को व्रजभाषा कवियों ने किस प्रकार सरल और सरस पद्धति से लिखा है, यह देखने के लिए नायिकाभेद के ग्रंथों का अवलोकन करना चाहिए। पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों का स्वभाव कोमल और उनका मन दुर्बोध होता है। अपनी सुकुमार वृत्ति के कारण जहाँ स्त्री सहज ही दलित हो सकती है, वहाँ अपने मन की दुर्बोधता के कारण वह असाधारण रूप से कठोर भी ज्ञात होती है। पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों के मन पर तुच्छ से तुच्छ आघात का भी शीघ्र ही प्रभाव होता है और उनके मस्तिष्क में तदनुसार शीघ्र ही उत्तेजना होने लगती है, इसलिए मनोविज्ञान के अनुसार नारी-जाति के मन का अत्यंत महत्व है। व्रजभाषा कवियों ने नारी-जाति के मानसिक विकारों का विविध रूप से विश्लेषण करते हुए उनको अनेक प्रकार की नायिकाओं के रूप में व्यक्त किया है, जिसके कारण मनोविज्ञान जैसा दुर्बोध विषय भी जन साधारण के लिए बोधगम्य होगया है। इस कठिन कार्य के लिए उनको अपने समस्त जीवन के अनुभव और अध्ययन का पूरा-पूरा उपयोग करना पड़ा है।

कला की दृष्टि से विषय-प्रतिपादन की पूर्णता होते हुए भी लौकिक उपयोगिता के नाते उसकी क्या स्थिति है, इस पर भी विचार करना आवश्यक है। आलोचकों की दृष्टि में वस्तुतः यही नायिकाभेद का दुर्बलतम अंग है जिस पर उनके मर्मस्पर्शी बाणों का प्रहार होता रहता है!

गृहस्थ-जीवन की यात्रा को स्त्री-पुरुष दोनों मिलकर ही पूरी करते हैं। गार्हस्थिक कर्त्तव्य-पूर्ति में इन दोनों का समान सहयोग आवश्यक है। दाम्पत्य संबंध की उत्तमता और अनुत्तमता पर दम्पति का सुख-दुःख आधारित है। ऐसी दशा में स्त्री को पुरुष के और पुरुष को स्त्री के स्वभाव, आचार-व्यवहार और गुण-दोषों सहित उनके सभी मनोविकारों का भी ज्ञान रखना आवश्यक है। जहाँ इस प्रकार का ज्ञान दम्पति को अधिक से अधिक होगा, वहाँ दाम्पत्य प्रेम भी पर्याप्त परिमाण में प्राप्त हो सकेगा। नायिकाभेद के ग्रंथों से इस ज्ञान-प्राप्ति में विशेष रूप से सहायता मिल सकती है।

प्रायः देखा जाता है कि रूप, गुण, यौवन और धन-सम्पत्ति के रहते हुए भी पति-पत्नी में अनबन रहती है, जिसके कारण वे एक दूसरे के यथार्थ प्रेम और आदर को प्राप्त नहीं कर पाते। फलतः गृहस्थ में सदैव कलह और अशांति बनी रहती है। इसका मुख्य कारण यह है कि पुरुष की प्रकृति से स्त्री, और स्त्री की प्रकृति से पुरुष परिचित नहीं होते। नायिकाभेद के ग्रंथों में स्त्री-पुरुष की अनेक चेष्टाओं का ऐसा सर्वांगपूर्ण वर्णन हुआ है, जिसको पढ़कर स्त्री और पुरुष दोनों एक दूसरे की प्रकृति और स्वभाव से परिचित होकर पूर्ण दाम्पत्य सुख का उपभोग कर सकते हैं। क्या यह नायिकाभेद की लौकिक उपयोगिता का प्रमाण नहीं है?

नायिकाभेद की उपयोगिता में संदेह करने वाले सज्जन स्वकीया को तो उचित समझते हैं, किंतु वे परकीया के कथन पर आपत्ति करते हैं। नर और नारी इस मानव-जगत् की दो इकाइयाँ हैं। इन दोनों जातियों के प्राणियों में भले और बुरे सदा से रहे हैं, और सदैव रहेंगे। एक नर का दूसरे नर से, एक नारी का दूसरी नारी से तथा एक नर का दूसरी नारी से जो भी संबंध हो सकते हैं, उनकी मर्यादा निश्चित करना और तदनुसार उनकी व्यवस्था करना समाज-शास्त्रियों के लिए सदैव ही एक समस्या रही है। नायिकाभेद के ग्रंथों में इस समस्या को सरस एवं साहित्यिक ढंग से सुलझाने की चेष्टा की गयी है। समाज-शास्त्रियों की बाँधी हुई सामाजिक मर्यादा के अनुकूल चलने वाली स्त्री को नायिकाभेद में स्वकीया कहा जाता है, तथा इस मर्यादा को भंग कर समाज की व्यवस्था के विरुद्ध चलने वाली स्त्री को परकीया कहा जा

सकता है। समाज-व्यवस्था की रक्षा के लिए परकीया का आचरण निस्संदेह अवांछनीय है, किंतु समाज के एक अंग के नाते साहित्य में उसका उल्लेख तो करना ही होगा। मैंने इस पुस्तक के प्रथम खंड के अंतर्गत 'नायिकाभेद का सिंहावलोकन' शीर्षक के परिच्छेद में इस विषय पर पर्याप्त प्रकाश डालते हुए यह सिद्ध किया है कि ब्रजभाषा कवियों ने समाज के एक अंग के रूप में परकीया का उल्लेख अवश्य किया है, किंतु उन्होंने इस प्रकार के आचरण को कभी प्रोत्साहित नहीं किया। उन्होंने परकीया की दयनीय एवं संकटापन्न अवस्था का दिग्दर्शन कराते हुए इस मार्ग पर चलने वालों को सावधान कर दिया है। सामान्या नायिका में परकीयत्व की चरम सीमा ही नहीं, बल्कि उसका निकृष्टतम भयावह स्वरूप है। ब्रजभाषा कवियों ने सामान्या की अर्थ-लोलुपता और स्वार्थ-बुद्धि को धिक्कारा है। उन्होंने वेश्यागामी पुरुषों को अपने धन, धर्म और यौवन को व्यर्थ नष्ट न करने का भी उपदेश दिया है। ऐसी दशा में परकीया और सामान्या के कथन से भी नायिकाभेद की लौकिक उपयोगिता में किस प्रकार कमी आती है, यह समझ में नहीं आता। यदि साहित्य लोक-जीवन का दर्पण है, तो उसमें सभी प्रकार के भले-बुरे व्यक्तियों का प्रतिबिम्ब अवश्य होगा। आवश्यकता इस बात की है कि इस प्रकार के कथन वैज्ञानिक विश्लेषण और स्वस्थ विवेचन के साथ हों और उन्हें सुधार की भावना से उपस्थित किया जाय।

प्रथम संस्करण के प्राक्कथन में मैंने पुस्तक की रचना विषयक कथा बतलाते हुए लिखा था कि ब्रजभाषा साहित्य के काव्य-सौन्दर्य का परिचय देने के लिए समय-समय पर जिन कई सहस्र छंदों का संकलन किया गया, उनको विषयानुसार लगाने पर शृंगार रस के संग्रह में नायिकाभेद विषयक छंदों की अधिकता देख कर उनको नायिकाभेद की पुस्तक के रूप में उपस्थित करना पड़ा। इस प्रकार यह एक विचित्र बात हुई कि नायिकाभेद की रचना का विचार न होते हुए भी परिस्थिति के कारण वह पुस्तक नायिकाभेद के संग्रह रूप में प्रकाशित करनी पड़ी। किंतु प्रस्तुत संस्करण की रचना के समय यह बात नहीं थी। अब की बार पुस्तक को उक्त विषय की स्वतंत्र रचना के रूप में ही प्रस्तुत किया गया है, इसलिए रचना-शैली के संबंध में आवश्यक परिवर्तन अनिवार्य था। गत संस्करण में नायिकाभेद की आवश्यक बातों को एक विस्तृत भूमिका में स्पष्ट किया गया था, किंतु अब की बार उक्त भूमिका को आवश्यक परिवर्तन और परिष्कार के अनंतर प्रथम खंड के रूप में पुस्तक का ही अंग बना लिया गया है।

प्रस्तुत पुस्तक में तीन खंड हैं—१. प्रवेश-खंड, २. प्रतिपादन-खंड और ३. परिशिष्ट-खंड। प्रथम प्रवेश-खंड में दस परिच्छेद हैं। आरंभिक दो परिच्छेदों में नायिकाभेद के स्वरूप-ज्ञान के लिए संक्षिप्त रूप से 'रस-निरूपण' और 'शृंगार रस-विवेचन' किया गया है। तृतीय परिच्छेद में 'ब्रजभाषा-शृंगार-साहित्य की पृष्ठ-भूमि' बतलायी गयी है। यह परिच्छेद अब की बार बिलकुल नया है, जिससे नायिकाभेद की पृष्ठ-भूमि समझने में सुविधा होगी। चतुर्थ एवं पंचम परिच्छेदों में क्रमशः ब्रजभाषा के शृंगार-साहित्य एवं रीति-साहित्य का विवेचन किया गया है। षष्टम और सप्तम परिच्छेदों में नायिकाभेद की परंपरा, उसके आधार और विकास का ऐतिहासिक विवरण दिया गया है। अष्टम परिच्छेद में 'नायिकाभेद का सिंहावलोकन' करते हुए इस विषय को स्पष्ट और सुबोध रीति से समझाया गया है। नवम परिच्छेद में नायिकाभेद का वैज्ञानिक क्रम बतलाते हुए इस विषय का प्रथम एवं मौलिक प्रयास किया गया है। यह क्रम नायिकाओं की विकसित मनोदशा के अनुसार है। दशम परिच्छेद में नायिकाभेद के काव्य-सौन्दर्य का परिचय दिया गया है। प्रस्तुत संस्करण में यह परिच्छेद भी नया जोड़ा गया है। इस प्रकार प्रवेश-खंड के दस परिच्छेदों में नायिकाभेद संबंधी सभी आवश्यक बातों के विवेचन की चेष्टा की गयी है।

द्वितीय प्रतिपादन-खंड में नायिकाभेद का सर्वमान्य स्वरूप उपस्थित किया गया है। प्राचीन ढंग की पुस्तकों में नायिकाओं की परिभाषा और उनका विवेचन पद्यबद्ध होने के कारण उसे समझने में असुविधा होती है, किंतु इस खंड में नायिकाओं की परिभाषा और तत्संबंधी ज्ञातव्य बातें सरल गद्य में लिखी गयी हैं। परिभाषा की पुष्टि के लिए पाद-टिप्पणियों में प्रमुख आचार्यों के प्रमाण भी लिखे गये हैं। इसके साथ ही उस नायिका के संबंध में भिन्न-भिन्न आचार्यों के मतों का भी उल्लेख कर दिया गया है, जिसके कारण पाठक को इस एक ही पुस्तक के पढ़ने से नायिकाभेद के प्रमुख आचार्यों के मतों का ज्ञान हो सकता है। नायिकाओं के उदाहरण स्वरूप जो छंद दिये गये हैं, वे ब्रजभाषा काव्य के चुने हुए छंद हैं। नायिकाभेद की पचासों पुस्तकों से और नायिकाभेद के छंदों को कंठस्थ करने वाले बीसों सज्जनों की कृपा से, कई वर्षों में जो हजारों छंद संगृहीत हो पाये थे, उनमें से प्रायः ६० कवियों के छाँटे-छाँटाये ७८१ टकसाली छंदों का संकलन इस पुस्तक में किया गया है। साथ ही इस बात का भी पूरा ध्यान रखा गया है कि कोई अश्लील छंद न आने पावे। ब्रजभाषा कवियों का ऐसा चुना हुआ काव्य-संग्रह अन्यत्र मिलना कठिन है।

तृतीय परिशिष्ट-खंड में तीन परिशिष्ट हैं । प्रथम परिशिष्ट में रहीम और देव की विभिन्न प्रदेशों और जातियों की नायिकाओं के साथ हरिऔधजी की आधुनिक नायिकाओं का संकलन किया गया है । यह संकलन पाठकों को विशेष रूप से रोचक ज्ञात हो सकता है । द्वितीय परिशिष्ट में संस्कृत साहित्य के और तृतीय परिशिष्ट मे ब्रजभाषा साहित्य के प्रमुख आचार्यों का नायिका-भेदोक्त क्रम दिया गया है, जो इस विषय के विकास का तुलनात्मक अध्ययन करने के लिए बड़ा उपयोगी सिद्ध होगा । पुस्तक के अंत मे प्रथम खड की व्यक्ति-नामानुक्रमणिका एव ग्रथ-नामानुक्रमणिका तथा द्वितीय खड की पद्य संख्या सहित कवि–नामानुक्रमणिका दी गई है ।

इस प्रकार अपनी अल्प योग्यता और शक्ति के अनुसार पुस्तक को अधिकाधिक उपयोगी और पूर्ण बनाने की चेष्टा की गयी है । हिंदी साहित्य मे नवीन शैली से लिखी हुई नायिकाभेद की कोई रचना न होने के कारण यह अपने विषय की प्रथम पुस्तक है । यदि इससे ब्रजभाषा के काव्य-प्रेमियों और उच्च हिंदी साहित्य के विद्यार्थियो को कुछ भी लाभ हुआ, तो मै अपने परिश्रम को सफल समझूँगा ।

इस पुस्तक की रचना में मुझे जिन अनेक कवियों और लेखकों के ग्रथों का उपयोग करना पड़ा है, उनका कृतज्ञता पूर्वक हार्दिक आभार मानना मेरा परम कर्त्तव्य है । मैंने इस पुस्तक के साथ प्रमुख सहायक ग्रथों की सूची देकर उनका नामोल्लेख भी कर दिया है, किंतु इनके अतिरिक्त और भी कितने ही ग्रंथों और लेखो से सहायता ली गयी है, जिनके कर्त्ताओं का नामोल्लेख करना सभव नहीं है । यदि इस पुस्तक मे कोई महत्व की बात है, तो इसका श्रेय उन विभिन्न कवियों और लेखकों को ही है, क्यों कि मैंने तो उनके मत को प्रकट कर देने भर का कार्य किया है । यदि इसमें कोई त्रुटि है, तो इसका उत्तरदायित्व मुझ पर है, क्यों कि मैंने उन विद्वान कवियों और लेखकों के अभिप्राय को समझने में भूल की है ।

अंत मे मैं अपने परम आदरणीय विद्वद्वर डा० रामप्रसाद जी त्रिपाठी महोदय का हार्दिक आभार मानता हूँ, जिन्होंने अपने अमूल्य समय में से कुछ समय निकाल कर इस पुस्तक की विद्वत्तापूर्ण भूमिका लिखने की कृपा की है । भूमिका-लेखक ने अपने गंभीर अध्ययन के फल स्वरूप जिन सारगर्भित विचारों को व्यक्त किया है, उनके कारण इस पुस्तक का महत्व निस्संदेह बढ़ गया है ।

अग्रवाल भवन, मथुरा
वैशाख शु० ६, सं० २००५

—प्रभुदयाल मीतल

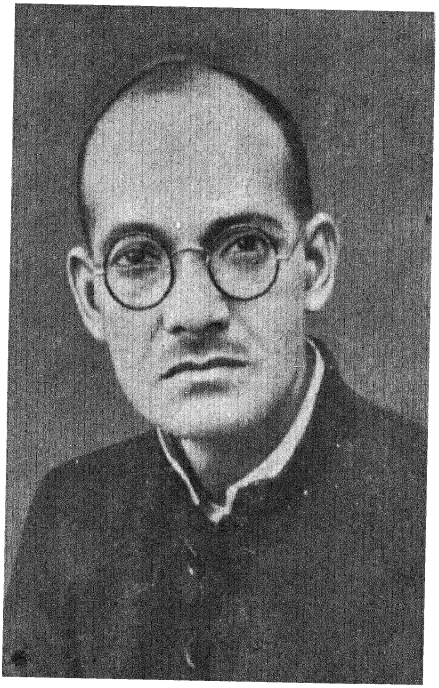

प्रभुदयाल मीतल

जन्म सं० १९५९, ज्येष्ठ कृ० १२, मंगलवार

★

भूमिका

सृष्टि का सूत्र-पात होते ही जब एकता बिखरने अथवा निखरने लगी, तब सबसे प्रथम द्वित्व का प्रादुर्भाव हुआ। इन दो प्रसूतियों में पारस्परिक प्रत्याकर्षण होने एवं एकत्व को पुनः प्राप्त करने की अभिलाषा के कारण प्रकृति का ही नहीं, अपितु संसार का सारा व्यापार और व्यवहार चल रहा है। इनके नाम विद्वानों ने अपनी-अपनी धारणा, कल्पना और अपने ध्येय के अनुसार भिन्न-भिन्न रख लिये। प्रधानतया उन्हें जीव और प्रकृति अथवा स्पिरिट और मैटर नाम से अभिहित किया गया। जब उक्त कल्पना को मानुषी रूपक दे दिया गया, तब वे पुरुष और स्त्री कहे जाने लगे। जीव और प्रकृति अपने प्रणेता के क्रोड में खेलते-कूदते रहे। वे सृष्टि-काल से लेकर लगातार आकर्षण-विकर्षण अथवा संयोग-वियोग की धूप-छाँह में, सुख-दुःख की लहरों में उठते और गिरते हुए ज्ञात अथवा अज्ञात प्रेरणा द्वारा एकत्व की ओर बहते अथवा बढ़ते चले आये हैं। दार्शनिक दुर्बोध शब्दों और क्लिष्ट पदावली को छोड़ कर यदि सरल ढंग से सोचा और लिखा जाय तो यह कहा जा सकता है कि सृष्टि के दो रूप हैं—एक चेतनामय और दूसरा पार्थिव। दोनों का उद्गम एक ही है और दोनों में यह प्रबल इच्छा है कि वे एक दूसरे से मिल कर एक हो जायँ अर्थात् फिर उसी स्थिति को प्राप्त करलें, जिसमें कि वे एकत्व की दशा में थे। उस अंतिम और लोकोत्तर एकता को प्राप्त करने के अनेक और विविध स्तर है। उन्हीं स्तरों में से एक है साधारण स्त्री-पुरुष का प्रेम, ससर्ग और संयोग, तथा दूसरा स्तर है पुरुष-प्रकृति की तद्वत् अनादि और अनंत क्रीडा। दोनों स्तरों में द्वैध को भूलने और एक रसत्व अथवा अनन्यता को प्राप्त करने की उत्कट प्रेरणा और अभिलाषा विद्यमान है। इन दोनों में केवल स्तर मात्र का ही भेद है। सूक्ष्म दृष्टि से उनमें कोई तात्त्विक विभिन्नता नहीं, तथापि स्तर का भेद ही इतना भारी है जितना कि आकाश और पाताल का। आकाश का रहस्य उतना ही गभीर, आश्चर्यजनक, कुतूहलवर्द्धक और ज्ञानवर्द्धक है, जितना कि पाताल का। जीव का रहस्य भी वैसा ही है, जैसा कि शरीर का। प्रकृति का रहस्य भी वैसा ही विमुग्धकारी है, जैसा कि पुरुष का। अपनी अपनी विलक्षणताओं से वे दोनों शोभा और गौरव पा रहे हैं।

तत्ववेत्ताओं का बहुमत इसी ओर है कि वे एक ही तत्व के दो पार्श्व अथवा पहलू हैं. वस्तुतः वे दोनों एक ही हैं। जो इस रहस्य को समझते हैं, वे कहते हैं कि जो द्वैधात्मक व्यापार दिखाई देता है वह या तो एक आनंदमय अनिर्वचनीय नाटक है अथवा केवल विडंबना है। पहले मत वाले अनुरागी और दूसरे मत वाले विरागी कहे जा सकते हैं।

वैदिक काल से आज तक आर्य धर्मानुयायी लोग देवता और देवी की कल्पना करते आये हैं। किंतु उसी के साथ वे यह भी मानते आये हैं कि एक ही देव सर्व भूतों में निहित है। वस्तुत सभी रूपों एवं रूपांतरों मे उसी एक की माया, उसी का चमत्कार और उसी का व्यक्तित्व व्यक्त अथवा प्रतिबिम्बित है। पुराणों मे तो प्राय स्पष्ट रूप से देवताओं की स्त्रियों का वर्णन विशद रूप से मिलता है; जैसे विष्णु की लक्ष्मी, शिव की शक्ति और इन्द्र की इन्द्राणी आदि का। आर्य विचार-धारा मे दंपति की कल्पना और संयोग के बिना सृष्टि के अस्तित्व की पूर्णता असंभव सी प्रतीत होती है। स्त्री-पुरुष का सारी सृष्टि मे आधार और आधेय का अनिवार्य संबंध है। बिना दोनों के संयोग के विश्व-चक्र का चलना अचिन्त्य है। व्यक्त का तो कहना ही क्या, अव्यक्त के भी अंतस्तल मे उनकी विद्यमानता स्वयंसिद्ध सी मान ली गयी है। जड जगत् मे उनका व्यापार उतना स्पष्ट नहीं जान पड़ता, किंतु चेतन जगत् में तो सारा खेल प्रत्यक्ष रूप से उन पर ही अवलम्बित है। उसमें वे दोनों ओत-प्रोत से हैं। नाम-रूप मय जगत उन्हीं की सत्ता का साक्षी और प्रमाण है। वनस्पति, जीव-जंतु, पशु-पक्षी और मानव ससार मे उनका ही विस्तार एवं तारतम्य है।

उपर्युक्त सिद्धांत को आधुनिक मनोवैज्ञानिक एवं वैज्ञानिक गवेषणाओं से आश्चर्यजनक पुष्टि प्राप्त हुई है। मनोवैज्ञानिक विश्लेषण द्वारा यह सिद्ध हो रहा है कि मनुष्य के जितने विचार और व्यापार हैं, उनके मूल मे अहंत्व एवं लिंगत्व प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से विद्यमान हैं। कुछ तो यहाँ तक कहने लगे हैं कि लिंगत्व ही एक मात्र प्रेरक शक्ति है, जिसके प्रस्फुरण से हमारे भाव, विचार और आचार नियंत्रित होते हैं। हमारी वासनाएँ, इच्छाएँ, भावनाएँ, कल्पनाएँ आदि उसी से प्रसूत होती हैं। उसके ही प्रवाह, उपरम और प्रतिबंध से नाना प्रकार के आचार-विचार, आमर्श-विमर्श, कर्तव्या-कर्तव्य, यम, नियम और संयम के विधान बनते और बिगड़ते रहते हैं। सारांश यह कि बाल्य काल से अंत काल तक मनुष्य उसी विलक्षण तत्व से

नियुक्त और सचालित रहता है । मनोवेगों की अपार धारा का संचार सजननात्मक तत्त्व से ही हुआ है। शरीर-विज्ञानवादी उपर्युक्त सिद्धांत को उस रूप में नहीं मानते और कहते हैं कि हमारे भाव और अनुभूतियाँ हमारी स्नायविक और मास्तिष्किक रचनाओं पर अवलंबित हैं । किंतु उनके ये साधन तो उपादान कारण हैं, न कि निमित्त कारण । स्नायु अथवा मस्तिष्क-जाल तो बिजली के तारों का सा पेचीदा समूह है, जिस पर चेतना अथवा उत्तेजना प्रवाहित होती है । किंतु चेतना अथवा उत्तेजनाओं की उत्पत्ति का मूल कारण तथा उनका अंतिम लक्ष्य व्यक्ति की अहंता और प्रजनन-शक्ति मान सकते हैं । उक्त दोनों मतों में वैषम्य रहते हुए भी उनमें सामंजस्य स्थापित किया जा सकता है । यदि दोनों को अन्योन्याश्रित मान लिया जाय तो इसमें औचित्य की कोई विशेष हानि नहीं प्रतीत होती । जिस प्रकार जीव को शरीर की आवश्यकता है, उसी प्रकार शरीर की सक्रियता जीव पर निर्भर है। एक दूसरे की अपेक्षा दोनों करते हैं । बिना एक के दूसरे का अस्तित्व ही नहीं रहता ।

पाश्चात्य लोगों में, विशेषतः रोमन केथोलिक संप्रदाय के अंतर्गत, कुछ ऐसे व्यक्ति और आन्दोलन हुए हैं, जो ईश्वर और जीव अथवा प्रकृति का तत्त्वतः वैसा ही संबंध मानते हैं, जैसा कि प्रायः आदर्श पति और पत्नी अथवा प्रेमी और प्रेमिका में पाया जाता है । यद्यपि साधारणतः पूर्वोक्त में मैथुन की स्थूल व्यंजना नहीं, तथापि मिथुनत्व के भाव से वह परिप्लुत है । इस संबंध में सेन्ट टेरीजा और जॉन आव द क्रास की अनुभूतियाँ और धारणाएँ विचारणीय हैं । यही नहीं, उनसे पूर्व भी यूनान, रोम, मिस्र और पश्चिमी एशिया में किसी न किसी रूप में इस प्रकार के विचारों का प्रचार था । प्रोटेस्टएट मत एवं आधुनिक विज्ञान के प्रचार के पश्चात् ये भावनाएँ कुछ-कुछ बदलने लगीं, किंतु फिर भी उन्नीसवीं शती से पुरुष और स्त्री की प्रेम-प्रेरित अभिलाषाओं की सांत्विक कल्पना साहित्य और कलाओं में तीव्र रूप में पायी जाती है । यद्यपि कुछ लोगों ने उसका विरोध भी किया और उसकी तथाकथित सांत्विकता की उपहासात्मक निंदा भी की तथापि कल्पना का वह अस्तित्व बना ही रहा । बीसवीं शती के मनोविज्ञान ने तो यहाँ तक निर्णय कर दिया कि मिथुनत्व की नींव पर ही मानव समाज की सभ्यता का प्रासाद स्थित है, और रहेगा । जब टालस्टाय ने उसका विरोध किया तो उसके जीवन की घटनाओं और अनुभूतियों का विश्लेषण कर उसकी धारणाओं के मूल में भी निहित उपर्युक्त तत्त्व का प्रदर्शन करने की बहुत-कुछ

सफल चेष्टा की गयी ! पाश्चात्य देशों के स्त्री-पुरुष प्रायः प्रेमी और प्रेमिका के संबंध को वांछनीय मानते हैं। उस संबंध से उन्हें शारीरिक और मानसिक तृप्ति प्राप्त होती है। संतान-प्राप्ति का उनका जो ध्येय है, उसमें वे आध्यात्मिकता की कल्पना नहीं करते और न उसे युक्तिसंगत ही मानते हैं।

ऊपर हम संकेत कर चुके हैं कि भारतीय आर्य विचार-धारा में जगत् अथवा संसार के समस्त व्यापार दो प्रकार के माने गये हैं— एक सूक्ष्म और दूसरे स्थूल। मोटे तौर से जो वस्तु पार्थिव है उसे भारतीय विचारक स्थूल और जो तात्त्विक है, उसे सूक्ष्म मानते हैं। यद्यपि भौतिक अथवा लौकिक और अभौतिक अथवा अलौकिक का भेद वे भी करते रहे हैं, तथापि दोनों प्रकार के व्यापारों को वे व्यापक आध्यात्मिकता के ही अंतर्गत गिनते रहे हैं। मूर्तमान अथवा प्रत्यक्ष के पीछे अमूर्तमान अप्रत्यक्ष आध्यात्मिक तत्त्व का वे अस्तित्व मानते आये हैं। उनके सिद्धांत के अनुसार जड़-जगम की जितनी लीला है, वह आध्यात्मिक रूप रखती है। सारा खेल, चाहे वह किसी भी प्रसंग का क्यों न हो, अंततोगत्वा आत्मा या यों कहिए कि परमात्मा या विश्वात्मा की ही कला है। शिष्ट और अशिष्ट, उच्च और नीच, कर्तव्य और अकर्तव्य की कल्पनाएँ तथा परिभाषाएँ देश, काल एवं पात्र के अनुसार मानुषिक और काल्पनिक हैं। इन भेदों और विभेदों का कुछ भी महत्व क्यों न माना जाय, किंतु सूक्ष्म और तात्त्विक दृष्टि से देखने पर परम सत्य की कौन कहे, वे शाश्वत और सत्य भी नहीं सिद्ध हो सकते।

अथर्ववेद का तो कहना ही क्या, यजुर्वेद में भी ऐसे मंत्र आये हैं— "युनक्त सीराविथुगा तनध्व कृते योनौ विपते ह वीजम्।' बृहदारण्यक उपनिषद् में लिखा है— 'सवै नैव रेमे···द्वितीयमैच्छत··· पतिः पत्नीचाभवताम्।' छांदोग्य उपनिषद् में आया है—"···आत्मैवेदं सर्वमिति। स एव एष एव पश्यन्नेवं मन्वान एवं विजानन्नात्मरतिरात्मक्रीडा आत्ममिथुन आत्मानदः स स्वराड्भवति तस्य सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति।" श्रीस्वामी शंकराचार्य इसकी व्याख्या करते हुए लिखते हैं कि—"देहमात्र साधना रतिः बाह्य साधना क्रीडा मिथुन द्वंद्वजनितंसुखं तदपि द्वंद्वरिनपेक्ष यस्य विदुषः।" इसी प्रकार श्रीस्वामीजी श्वेताश्वतर उपनिषद् की व्याख्या में कहते हैं—"क्रीडन्नपि न लिप्येत पापैर्नानाविधैरपि।" भगवद्गीता में भी ऐसे श्लोक आये हैं— "ममयोनिर्महद् ब्रह्मतस्मिन्गर्भं दधाम्यहं॥ सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः संभवति याः। तासां ब्रह्म महद्यो निरहं वीजप्रदः पिता।" पुराणों से तो अनेकानेक उद्धरण दिये जा सकते हैं। ये उद्धरण केवल भागवत और

अन्य वैष्णव पुराणों से ही नहीं, वरन शैव और शाक्त पुराणों से भी प्राप्त हो सकते हैं।

उपर्युक्त विवेचना केवल सैद्धांतिक एवं भारतीय आर्य धर्म के दृष्टिकोण से की गयी है। साहित्यिक परंपरा पर भी विचार करना आवश्यक और प्रासंगिक है। यह तो सब ही जानते हैं कि साहित्य में शृंगार और करुण रस दो ही प्रधान माने गये हैं। इन दोनों में प्रायः निन्नानवे प्रति शत साहित्यिक शृंगार को ही प्रथम स्थान देते और उसे 'रसराज' कहते हैं। यही मत काव्यशास्त्र के आचार्यों का भी है। ऐसी दशा में हमारे साहित्य में, चाहे वह संस्कृत का हो अथवा देशी भाषाओं का, शृंगार रस की चर्चा का आधिक्य अनिवार्य था। इसमें आश्चर्य का क्या विषय है? कवि चाहे दरबारी हों या अदरबारी, महाकवि हों अथवा साधारण कवि, उनका शृंगार रस में कवितां करना स्वाभाविक था। उसमें उन्हें चमत्कार और अनुरंजन के लिए प्रशस्त क्षेत्र मिलता था। भारतीय साहित्य में ही नहीं, फारसी, ग्रीक, लैटिन एवं आधुनिक योरुपीय भाषाओं में भी शृंगार रस की बहुत कविता हुई है। किंतु उस रस को जितना महत्व फारसी और भारतीय भाषाओं में मिला है, उतना कहीं नहीं मिला। इसका विशेष कारण यही है कि शृंगार रस में आध्यात्मिकता की जैसी कल्पना इन साहित्यों में की गयी है, वैसी अन्यत्र नहीं हुई। यह कल्पना भारत की दार्शनिकता एवं आध्यात्मिकता से प्रक्षालित होने के कारण विशेष रूप से मान्य और आदृत हुई है। शैवों और शाक्तों ने तथा विशेषतः वैष्णवों ने तो उसको पूर्णतया अपना लिया। फलतः यह धारणा होने लगी कि शृंगार रस ही एक रस है, जिससे अन्य सब रसों की निष्पत्ति होती है। अतएव यदि रसों के मूल का ही सिंचन और सेवन किया जाय तो काव्य विटप हरा-भरा रहेगा और अन्यान्य रसों के फूल-फल अनायास ही प्रकट हो जाँयगे। इस विचार को परिपुष्ट करने और उसे प्रचारित करने में श्रीचैतन्य महाप्रभु और उनके सुयोग्य शिष्यों ने विशेष भाग लिया। कालान्तर में वल्लभसंप्रदाय ने भी उसे अपनाया। फिर क्या था, कृष्णोपासकों अथवा राधाकृष्णोपासकों में उसका ज़ोर के साथ प्रचार होने लगा।

संयोगवश उसी काल में मुगल साम्राज्य का उदय हुआ। उसकी सहिष्णु एवं सहानुभूतिमय नीति से राधा-कृष्ण के प्रेम-मार्ग के प्रचार को प्रोत्साहन मिला। इस्लाम धर्म में साधारणतः किंतु सूफी मार्ग में विशेषतः भक्ति और प्रेम के पोषक अनेक अंश हैं। उनमें भी विश्वास, मनोवेग,

भावादेश एवं आत्म-निवेदन के भाव प्रचुर रूप से विद्यमान थे। अतः वे राधा–कृष्ण की प्रेम और भक्तिमय साधना से अनायास सहानुभूति रख सकते थे। यदि उनमें मत-भेद था तो दो बातों में। एक तो मूर्ति अथवा प्रतीक-पूजा उन्हें ग्राह्य न थी, दूसरे वे अवतारवाद को मानने में असमर्थ थे। किंतु मुगल सम्राटों की सहिष्णुता से ये भेद अधिक व्याघात उत्पन्न न कर सके। भावुकता, प्रेम, भक्ति तथा आंतरिक अनुभूति की प्रधानता आदि में दोनों का दृष्टिकोण बहुत कुछ मेल खाता था। फारसी साहित्य की प्रगति कुछ शतियों से, विशेषत: हाफिज और जामी के समय से, उसी ओर चल रही थी, जिस ओर कि कृष्णोपासकों का साहित्य प्रगतिशील हो रहा था। दोनों के मेल से व्रज-माधुरी शीघ्रता से फैलने लगी। उसके साहित्य की सृष्टि में भक्त लोग तो लगे ही हुए थे, अब सारे साहित्य–सेवी और साहित्यानुरागी, चाहे वे हिंदू हों अथवा मुसलमान, चाहे वे फारसी में लिखते हों या व्रजभाषा में, सभी उस ओर झुक पड़े, जिससे व्रजभाषा-साहित्य अत्यंत समृद्ध और देशव्यापी होगया। हम अन्यत्र लिख चुके हैं कि व्रज-साहित्य की विशेषताओं को जो लोग मुसलमान-काल की कल्पित चरित्रहीनता और भोग-विलासिता का प्रतिबिम्ब समझते हैं, वे भारी भ्रम और भूल में फँसे हैं। ऐसी धारणा इतिहास और संस्कृति के अध्ययन से सारहीन एवं असत्य सिद्ध होती है।

उपर्युक्त विवेचन की पृष्ठभूमि पर अब नायक और नायिका के रहस्य को समझना चाहिए। स्नेह, रति, प्रेमादि के द्वारा इष्ट के प्राप्त करने का सिद्धांत बहुव्यापक होगया था। दाम्पत्य भाव की प्रधानता वैष्णवों में तो थी ही, साथ ही अन्य मत वाले भी उसका सम्मान करते थे। जिस समय साहित्यकारों ने इस ओर अपना ध्यान दिया तो वे साहित्य के तत्कालीन शास्त्र–सम्मत गुणावगुणों की दृष्टि से उसका संस्कार करने लगे। प्रेम, दाम्पत्य अथवा मिथुन भाव से प्रेरित होकर मानसिक संसार में जो संकल्प-विकल्प और अनुभूतियाँ अथवा विकार उत्पन्न और विलीन होते रहते हैं, उनका निरूपण और उनकी व्याख्या सूक्ष्म एवं स्थूल रूप से होने लगी। रस, भाव, अनुभाव, विभाव आदि का अध्ययन देश-काल और पात्र के अनुसार होने लगा। अवस्था और व्यवस्था से जो परिवर्तन होते रहते हैं, उनका मनोवैज्ञानिक और साहित्यिक विश्लेषण किया जाने लगा।

मनोविज्ञान के अध्ययन करने वाले यह तो जानते ही हैं कि भावों की उत्पत्ति के विषय में दो मत प्रचलित हैं। एक तो यह कि भावों की सृष्टि मानसिक चेतना से उद्भूत होती है, जिसका प्रभाव शरीर के अंग-प्रत्यंग

पर होता है। दूसरा यह कि स्नायु-जाल और अवयवों में संचालन होने से मस्तिष्क मे भावावेश हो जाता है। भाव चेतना के पर्यायवाची नहीं हैं; वे मस्तिष्क के एक विशेष क्षेत्र की कृति हैं। मानसिक अथवा स्नायविक प्रस्फुरण आलंबन और उद्दीपन के प्रभाव से होता है। अस्तु, यह तो स्पष्ट है कि चेतना, मस्तिष्क, स्नायु-जाल, अवयवादि का संबंध भावावेश और रसावेश के साथ है। वे एक दूसरे मे जुड़े हुए हैं। किंतु संभवतः चेतना को छोड़ कर अन्य सभी चीजों का विकास शनैः-शनैः प्रकृति, अवस्था, देश एवं काल के अनुकूल होता है। आवेशों और भावों में तदनुसार रंग-बिरंगे परिवर्तन होते रहते हैं। भावुक साहित्यकार के लिये भाव के सागर मे मोहक तरंगें और अनुभूति-रत्न प्राप्त होते हैं। उनकी तथ्यता, सात्विकता, मादकता और मोहकता अत्यन्त आकर्षक होती है।

उपर्युक्त विचारों को ध्यान में रख कर यदि पुरुष और प्रकृति, नर और नारी के भावों और विकारों के तरल चित्रों को शब्दों में प्रतिबिंबित करने का प्रयत्न किया जाय तो उससे साहित्य एवं विज्ञान दोनों का संवर्धन होता है। इसी का प्रयत्न व्रजभाषा के साहित्यकारों ने किया है, जो केवल अपनी सीमित विशेषता ही नहीं रखता, वरन् भाव और भाषा की दृष्टि से व्यापक महत्व रखता है। साहित्यकार की दृष्टि में जो सत्य है, वही सुंदर और शिव है। वह तीनों को एक ही का रूप मानता है। यह कहना कि भक्त की भावना शुद्ध और पवित्र है और साहित्यकार की कलात्मक भावना अशुद्ध, अपवित्र एवं नीरस है, सर्वथा अमान्य और भ्रममूलक है। सूरदास और नददास की कृति को पवित्र और सत्याश्रित, किंतु देव और बिहारी की रचना को अपवित्र और मिथ्या कहना पक्षपात और दृष्टि-दोष के कारण है। भावुक और विदग्ध साहित्य-सेवी ऐसे भ्रमात्मक मत में नहीं फँस सकते।

प्रस्तुत पुस्तक मे श्री मीतलजी ने जो सामग्री उपस्थित की है, वह विचारने और मनन करने योग्य है। इस पुस्तक के प्रथम खंड मे उनके अध्ययन का निष्कर्ष है। द्वितीय खंड मे संकलित नायिकाभेद की कविताओं से उनकी सावधानी, सहानुभूति और मार्मिकता प्रकट होती है। यह संग्रह ऊँची श्रेणी का और अत्यंत मनोहर है। प्रस्तुत पुस्तक हिंदी साहित्य में अपने विषय की अनोखी है। श्री मीतलजी ने इसकी रचना द्वारा व्रजभाषा संबंधी साहित्य के लिये बड़ी सुंदर श्रद्धांजलि दी है। आशा है भारतीय साहित्य के प्रेमी इसका पूरा आदर करेंगे।

प्रयाग विश्वविद्यालय,
९-१०-४७

—रामप्रसाद त्रिपाठी

विषय-सूची

★

१. प्रवेश खंड

★

प्रथम परिच्छेद

नायिकाभेद और रस-निरूपण

पृष्ठ सं०

१. नायिकाभेद का रसशास्त्रोक्त स्थान ... ३
२. रस और उसका स्वरूप ४
३. रस की कल्पना ४
४ 'रस' शब्द का काव्यशास्त्रोक्त अर्थ ४
५. रस-प्रकरण की परंपरा ५
६. रस का सूक्ष्म विवेचन ५
७. 'रस' और 'भाव' का पारस्परिक संबंध ६
८. 'भाव' किसे कहते हैं ? ६
९. रस और भाव ७
१०. भाव-भेद ७
११. काव्यशास्त्रानुसार रसोत्पत्ति १०
१२ रसों की संख्या ११
१३. नव रसों के अतिरिक्त अन्य रसों की आवश्यकता ११
१४. रस प्रकरण की गहनता १२

★

द्वितीय परिच्छेद

नायिकाभेद और शृंगार-विवेचन

१ शृंगार रस का महत्व १३
२ शृंगार ही आदि रस है १४
३. 'शृंगार' शब्द का अर्थ १४
४ शृंगार रस का स्थायी भाव १४
५. शृंगार रस के विभाव १५
६ शृंगार रस के अनुभाव ... १५
७. शृंगार रस के संचारी भाव ... १६

पृष्ठ सं०

८. शृंगार रस का पूर्ण परिचय १७
९. शृंगार रस के भेद १७
१०. शृंगार रस का परिपाक १८
११. शृंगार रसराज है १९
१२. शृंगार रस की व्यापकता ... २१

★

तृतीय परिच्छेद

व्रजभाषा-शृंगार-साहित्य की पृष्ठभूमि

१. शृंगार साहित्य के उभय रूप २३
२. राम-कृष्ण की भक्ति-भावना २३
३. राधा-कृष्णोपासना का विकास २५
४, राधा-कृष्ण की ऐतिहासिक परंपरा २६
५. आभीर और राधा-कृष्ण २८
६. राधा-कृष्ण की भक्ति-भावना .. २८
७. भक्ति-मार्ग और वैष्णव आचार्य २९
८ श्री निंबार्काचार्य ३०
९. बंगीय भक्ति .. ३१
१०. भक्तिपूर्ण शृंगार साहित्य और जयदेव ३२
११. प्रांतीय भाषाओं का शृंगार-भक्तिपूर्ण साहित्य .. ३३
१२. चंडीदास और विद्यापति ३३
१३. श्री चैतन्य महाप्रभु . . ३५
१४. भक्ति रहित शृंगार-साहित्य की परंपरा ३६
१५. गाथा-सप्तसई . ३७
१७. संस्कृत का शृंगार-साहित्य ३८

चतुर्थ परिच्छेद

व्रजभाषा का शृंगार-साहित्य

१. हिंदी के शृंगार-साहित्य का आरंभिक रूप .. ४१
२. वैष्णव धर्माचार्य और शृंगार-साहित्य ४३
३. व्रजभाषा-शृंगार-साहित्य और श्री वल्लभाचार्य .. ४४
४. सूरदास और सूरसागर . ४४
सूरदास का शृंगार वर्णन ४६

	पृष्ठ सं०
६. वल्लभ संप्रदाय और राधा	४८
७ अष्टछाप	४९
८ विभिन्न संप्रदायों का शृंगार-भक्तिपूर्ण साहित्य .	४९
९. कृष्ण-भक्ति की लहर ...	५१
१०. भक्ति रहित शृंगार वर्णन	५३
११. रीति-काल का शृंगार साहित्य	५२
१२. रीति-काल का प्रभाव ..	५५
१३. शृंगारिक कवियों का प्रेम-भाव	५६
१४ दिव्य शृंगार के लौकिक शृंगार में परिवर्तन का कारण	५६
१५ शृंगारिक काव्य का चरित्र पर प्रभाव	५९
१६ क्या इस प्रकार के कवि निंदा के पात्र हैं ?	५९
१७ व्रजभाषा शृंगार साहित्य का सर्वश्रेष्ठ काल	६०

★

पंचम परिच्छेद

व्रजभाषा का रीति-साहित्य

१ रीति-साहित्य की परिभाषा .	६१
२ व्रजभाषा शृंगार-साहित्य की दो धाराएँ	६१
३. रीति-साहित्य का आधार	६२
४. संस्कृत-काव्यशास्त्र का विकास	६२
५. व्रजभाषा रीति साहित्य का आदर्श ..	६६
६ व्रजभाषा रीति-साहित्य का आरंभ	६७
७ व्रजभाषा-काव्यशास्त्र के प्रवर्त्तक केशवदास .	७१
८ केशवदास के अनंतर	७१
९ रीतिकालीन आचार्यों का परिवर्तित दृष्टिकोण ..	७२
१०. रीतकालीन कवि और आचार्य ...	७३
११. रीतिकालीन कवियों की रचना-प्रणाली और उनका लक्ष्य	७६
१२ रीति-साहित्य के कवि और आचार्य	७७
१३. रीतिकालीन कवियों की कविता के विषय	७८
१४. रीति-काल में अलंकारों का प्रभाव	७९
१५. नख-शिख वर्णन	८०
१६. षट् ऋतु वर्णन	८०
१७. नायिकाभेद-कथन	८१

षष्ठम परिच्छेद

नायिकाभेद की परंपरा और उसका आधार

पृष्ठ सं०

१. नायिकाभेद का महत्व और आधार . . ८३
२. नायिकाभेद का उद्गम-स्थान . ८३
३ संस्कृत साहित्य में नायिकाभेद . ८५
४ साहित्यदर्पण और रसमंजरी के नायिकाभेद की तुलना .. ८७
५ भानुदत्त और विश्वनाथ का काल-निर्णय ८८

★

सप्तम परिच्छेद

ब्रजभाषा—नायिकाभेद का विकास

१. ब्रजभाषा-नायिकाभेद का आरंभ ९१
२. भक्त कवि और नायिकाभेद ९३
३. कृपाराम कृत 'हिततरंगिनी' ९८
४ सूरदास और 'साहित्यलहरी' १००
५. नंददास और 'रसमंजरी' १०४
६. रहीम और 'बरवा नायिकाभेद' .. १०६
७. केशवदास और 'रसिकप्रिया' ... १०९
८ रीतिकालीन परिवर्त्तित दृष्टिकोण का प्रभाव ... ११२
९. चिंतामणि कृत 'कविकुलकल्पतरु' .. ११२
१०. रस-रीति का प्रमुख अंग नायिकाभेद ... ११३
११. नायिकाभेद का सर्वमान्य आचार्य मतिराम ११४
१२. देव द्वारा नायिकाभेद का विस्तार ११५
१३. रीति-साहित्य का सर्वश्रेष्ठ काल और नायिकाभेद के प्रमुख कवि १२०
१४. सोमनाथ और 'रसपीयूषनिधि' १२१
१५. रसलीन और 'रसप्रबोध' १२१
१६. दास और 'शृंगारनिर्णय' १२५
१७. रीति-काल के अंतिम वर्ष ... १२७
१८. नायिकाभेद के कतिपय प्रमुख कवि .. १२८
१९. आधुनिक गद्य ग्रंथों में नायिकाभेद १३३
२०. नायिकाओं की संख्या-वृद्धि का आग्रह ... १३४

अष्टम परिच्छेद

नायिकाभेद का सिंहावलोकन

पृष्ठ सं०

१. कामशास्त्र और तंत्रों का प्रभाव १३७
२. स्त्री-जीवन की विविध झाँकियाँ १३८
३. नायिका की परिभाषा और उसका वर्गीकरण १३९
४. स्वकीया नायिका १३९
५. मुग्धा नायिका १४१
६. मध्या नायिका १४१
७. प्रौढ़ा नायिका १४२
८. धीरादिभेद और ज्येष्ठा-कनिष्ठा . .. १४२
९. धीरादि और खंडिता में अंतर .. १४३
१०. स्वकीया का उच्चादर्श और गौरव १४४
११. परकीया नायिका १४५
१२. साहित्य में परकीयापन का प्राचीन आदर्श ... १४६
१३. व्रजभाषा साहित्य का अलौकिक और लौकिक परकीया प्रेम १४७
१४. परकीयापन से शिक्षा १४८
१५. परकीया के भेद १५०
१६. सामान्या नायिका . १५१
१७. साहित्य में सामान्या ... १५३
१८. रसलीन द्वारा सामान्या का विस्तार १५४
१९. दशा-अनुसार नायिकाएँ ... १५५
२०. गर्विता नायिका १५६
२१. अन्यसंभोगदुःखिता १५६
२२. मानवती नायिका ... १५६
२३. अवस्था-अनुसार नायिकाएँ १५७
२४. गुण-अनुसार नायिकाएँ . १५७
२५. उत्तमा नायिका . . १५७
२६. मध्यमा नायिका .. १५७
२७. अधमा नायिका १५८
२८ व्रजभाषा नायिकाभेद के आचार्य और कवि १५८

नवम परिच्छेद

नायिकाभेद का वैज्ञानिक क्रम

	पृष्ठ सं०
१. नायिकाओं के नाम और उनकी संख्या	१५६
२. निश्चित क्रम का अभाव	१६०
३. रसलीन का क्रम	१६१
४. दास का क्रम	१६२
५ बिहारीलाल भट्ट का क्रम	१६३
६. नायिकाओं का क्रम बद्ध कथन	१६४
७. इस क्रम का विवेचन	१६५
८. अन्य नायिकाओं का क्रम	१६६

दशम परिच्छेद

व्रजभाषा-नायिकाभेद का काव्य-सौन्दर्य

१. नायिकाभेद के काव्य-कौशल की परख	१७३
२. नायिका का नख-शिख	१७६
३. स्वकीया नायिका	१७७
४ मुग्धा का कवित्वपूर्ण कथन	१७६
५. मध्या ,, ,, ...	१८२
६. प्रौढ़ा ,, ,, ...	१८३
७. धीरादिभेद	१८३
८. परकीया	१८५
६. गर्विता	१८८
१०. अन्यसंभोगदुःखिता	१६०
११. स्वधीनपतिका	१६१
१२ वासकसज्जा	१६२
१३. उत्कंठिता	१६४
१४. अभिसारिका ...	१६५
१५. विप्रलब्धा ...	१६६
१६. खंडिता	१६७
१७. कलहांतरिता . ..	१६८
१८. गच्छत्पतिका	१६६
१६. प्रोषितपतिका	२००
२०. आगतपतिका	२०५

२. प्रतिपादन-खंड

*

प्रथम परिच्छेद

नायिका और उसका वर्गीकरण

पृष्ठ सं०

१. नायिका २०६
२. नायिकाओं का वर्गीकरण २१८

*

द्वितीय परिच्छेद

जाति-अनुसार नायिकाएँ

१. पद्मिनी २१६
२. चित्रिनी २२०
३. शंखिनी २२१
४. हस्तिनी २२२

*

तृतीय परिच्छेद

धर्मानुसार नायिकाएँ

१. स्वकीया नायिका २२४
२. स्वकीया नायिका के भेद २२७
३. मुग्धा नायिका २२८
४. मुग्धा नायिका के भेद २३३
५. अज्ञात यौवना २३४
६. ज्ञात यौवना २३७
७. ज्ञात यौवना के भेद २३६
८. नवोढ़ा २३६
९. विश्रब्ध नवोढ़ा २४०
१०. मध्या नायिका २४१
११. प्रौढ़ा नायिका २४४
१२. प्रौढ़ा के भेद २४५
१३ रतिप्रीता २४५
१४. आनंद संमोहिता २४७
१५. मध्या-प्रौढ़ा के धीरादि भेद २४८

पृष्ठ सं०

१६. मध्या धीरा २४६
१७. मध्या अधीरा २५२
१८. मध्या धीराधीरा २५४
१९. प्रौढ़ा धीरा २५५
२०. प्रौढ़ा अधीरा . २५७
२१. प्रौढ़ा धीराधीरा २५८
२२. स्वकीया के अन्य भेद २५९
२३. ज्येष्ठा-कनिष्ठा २५९
२४. परकीया नायिका २६१
२५. परकीया नायिका के भेद २६९
२६. अनूढ़ा २७०
२७. ऊढ़ा २७१
२८. मुदिता २७४
२९. विदग्धा २७६
३०. वचन विदग्धा २७६
३१. क्रिया विदग्धा .. . २७९
३२. अनुशयना २८१
३३. प्रथम अनुशयना २८१
३४. द्वितीय अनुशयना २८३
३५. तृतीय अनुशयना २८४
३६. गुप्ता २८५
३७. भूत गुप्ता २८५
३८. भविष्यत् गुप्ता २८६
३९. वर्तमान गुप्ता २८७
४०. लक्षिता २८८
४१. कुलटा २९०
४२. सामान्या नायिका २९१

★

चतुर्थ परिच्छेद

दशानुसार नायिकाएँ

१. गर्विता नायिका २९३
२. प्रेमगर्विता २९९

पृष्ठ सं०

३. रूपगर्विता २९५
४. अन्यसंभोगदुःखिता २९८
५. मानवती ३००

★

पंचम परिच्छेद

अवस्थानुसार नायिकाएँ

१. स्वाधीनपतिका ३०५
२ वासकसज्जा ३१०
३. उत्कंठिता ३१४
४. अभिसारिका ३१८
५. विप्रलब्धा ३२६
६. खंडिता ३३१
७ कलहांतरिता ३३५
८. प्रवत्स्यत्प्रेयसी ३३८
९ प्रोषितपतिका ३४३
१०. आगतपतिका ३५८

★

षष्ठम परिच्छेद

गुणानुसार नायिकाएँ

१. उत्तमा नायिका ३६३
२. मध्या नायिका ३६५
३. अधमा नायिका ३६६

★

३. परिशिष्ट-खंड

★

पारिशिष्ट (१)

१. अनेक जातियों की नायिकाएँ (रहीम) ... ३९१
२. विविध जातीय नायिकाएँ (देव) ३८०
३. अनेक प्रदेशों की नायिकाएँ (देव) ३८९
४ आधुनिक नायिकाएँ (हरिऔध) ३९३

परिशिष्ट (२)

संस्कृत साहित्य में नायिकाभेद का क्रम

पृष्ठ सं०

१. भरतमुनि ('नाट्यशास्त्र' के अनुसार) ३९५

२. धनंजय ('दशरूपक' के अनुसार) ३९६

३. विश्वनाथ ('साहित्यदर्पण' के अनुसार) ३९७

४. भानुदत्त ('रसमंजरी' के अनुसार) ३९८

★

परिशिष्ट (३)

व्रजभाषा साहित्य में नायिकाभेद का क्रम

१. कृपाराम ('हिततरंगिनी' के अनुसार).. ... ३९९

२. केशवदास ('रसिकप्रिया' के अनुसार) ४०१

३. चिंतामणि ('कविकुलकल्पतरु' के अनुसार) ४०२

४. मतिराम ('रसराज' के अनुसार) ४०३

५. देव ('रसविलास के अनुसार) ४०४

६. रसलीन ('रसप्रबोध' के अनुसार) ४०६

७. दास ('शृंगारनिर्णय' के अनुसार) ४०८

८. पद्माकर ('जगद्विनोद' के अनुसार) ४१०

९. अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ('रसकलस' के अनुसार) ४११

★

अनुक्रमणिका

१. व्यक्ति-नामानुक्रमणिका ४१३

२. ग्रंथ-नामानुक्रमणिका ४१७

३. कवि-नामानुक्रमणिका ४२०

सहायक ग्रंथों की सूची

★

सं०	ग्रंथ	रचयिता
१	नाट्यशास्त्र	भरतमुनि
२.	दशरूपक	धनंजय
३.	साहित्यदर्पण	विश्वनाथ
४.	रसमंजरी	भानुदत्त
५.	हिततरंगिनी	कृपाराम
६.	साहित्यलहरी	सूरदास
७.	रसमंजरी	नंददास
८	रूपमंजरी	,,
९	बरवा नायिकाभेद	रहीम
१०.	नगरशोभा	,,
११.	रसिकप्रिया	केशवदास
१२.	कविप्रिया	,,
१३.	कविकुलकल्पतरु	चिंतामणि
१४.	सुंदरशृंगार	सुंदरदास
१५.	बिहारी सतसई	बिहारीलाल
१६.	भाषाभूषण	जसवंतसिंह
१७.	रसराज	मतिराम
१८.	मतिराम सतसई	,,
१९.	भाव-विलास	देव
२०.	भवानी-विलास	,,
२१.	रस-विलास	,,
२२.	सुखसागरतरंग	,,
२३.	रसपीयूषनिधि	सोमनाथ
२४.	रसप्रबोध	रसलीन
२५.	काव्यनिर्णय	दास
२६.	शृंगारनिर्णय	,,
२७.	जगद्विनोद	पद्माकर
२८.	नवरस तरंग	बेनी प्रवीन
२९.	व्यंग्यार्थ कौमुदी	प्रतापसाहि
३०.	व्यंग्यार्थ चंद्रिका	गुलाब
३१.	रसरंग	ग्वाल
३२.	शृंगार सप्तिका	द्विजदेव

सं०	ग्रंथ	रचयिता
३३.	महेश्वर विलास	लछिराम
३४.	शृंगार दर्पण	नंदराम
३५.	रसिक विनोद	चंद्रशेखर
३६.	साहित्य सागर	बिहारीलाल भट्ट
३७.	रस कलस	अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'
३८.	काव्य प्रभाकर	जगन्नाथ प्रसाद 'भानु'
३९.	सुंदरी तिलक ...	हरिश्चंद्र भारतेन्द
४०.	शृंगार सुधाकर ...	मन्नालाल त्रिवेदी 'द्विज'
४१.	अष्टछाप-परिचय	प्रभुदयाल मीतल
४२.	सूरसौरभ (भाग १, २)	मुंशीराम शर्मा
४३.	सूर साहित्य की भूमिका ..	रामरतन भटनागर, वाच०त्रिपाठी
४४.	नंददास : एक अध्ययन	रामरतन भटनागर
४५.	रहीम रत्नावली . .	मयाशंकर याज्ञिक
४६.	रसखान और उनका काव्य	चंद्रशेखर पांडे
४७.	सतसई संजीवन भाष्य (भाग १,२) .	पद्मसिंह शर्मा
४८.	सेनापति कृत कवित्त रत्नाकर ..	उमाशंकर शुक्ल
४९.	मतिराम ग्रंथावली .. .	कृष्णबिहारी मिश्र
५०.	घनआनंद	शंभुप्रसाद बहुगुना
५१.	पद्माकर पंचामृत . ..	विश्वनाथप्रसाद मिश्र
५२.	ठाकुर शतक .. .	काशाप्रसाद
५३.	संस्कृत साहित्य का इतिहास .	बलदेव उपाध्याय
५४.	सस्कृत साहित्य का इतिहास(भाग १,२)	कन्हैयालाल पोद्दार
५५.	काव्य कल्पद्रुम (रसमंजरी) . .	,,
५६.	हिंदी काव्य में नवरस... ...	बाबूराम विन्थरिया
५७.	नवरस	गुलाबराय
५८.	रस रत्नाकर	हरिशंकर शर्मा
५९.	हिंदी साहित्य की भूमिका ...	हजारीप्रसाद द्विवेदी
६०.	मिश्रबंधु विनोद (भाग १,२,३) ..	मिश्रबंधु
६१.	हिंदी साहित्य	श्यामसुंदरदास
६२.	हिंदी साहित्य का इतिहास ...	रामचंद्र शुक्ल
६३.	हिंदी भाषा का इतिहास ...	धीरेन्द्र वर्मा
६४.	हिंदी भाषा और साहित्य का विकास ...	अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'
६५.	ब्र०सा० मंडल के सभापति का भाषण ...	रामप्रसाद त्रिपाठी
६६.	हिंदी साहित्य संमेलन की लेखमालाएँ, संमेलन पत्रिका, ब्रजभारती तथा अन्य सामयिक पत्र-पत्रिकाएँ ।	

प्रथम

प्रवेश-खंड

★

"नायिकाभेद की रचनाओं में स्त्री-पुरुषों के अनेक स्वकीय विचारों एवं भावों का बड़ा सुंदर चित्रण है। उनमें ऐसे जीते-जागते चित्र हैं कि हृदयों पर अद्भुत प्रभाव डालते हैं। स्त्री-पुरुष की प्रकृतियों एवं व्यवहारों में धीरे-धीरे कैसे परिवर्तन होते हैं किस अवस्था में उनके कैसे विचार होते हैं उनके विचारों का परस्पर एक दूसरे पर क्या प्रभाव पड़ता है स्त्री-पुरुष के संबंधों में कैसे कटुता, कैसे मधुरता आती है जीवन-यात्रा के मार्ग में कैसे-कैसे रोड़े हैं, प्रेम-पथ कितना कंटकाकीर्ण और दुर्गम है, समाज के स्त्री पुरुषों की रहन-सहन प्रणाली साधारणतः क्या है, वह कैसी विचित्रतामयी है उसके चक्र में पड़ कर जीवन-यात्रा में क्या-क्या परिवर्तन हो जाते हैं स्त्री पुरुषों में क्या क्या चालबाजियां होती हैं आपस में वे एक-दूसरे के साथ कैसी-कैसी कुटिलताएँ करते हैं, वियोग-अवस्था में उनकी क्या दशा होती है, और सुख के दिन उनके कैसे सुंदर और आनंदमय होते हैं—इन सब बातों का व्यापक वर्णन आपको नायिकाभेद के ग्रंथों में मिलेगा।"

—"रस-कलस" पृ० १३०

★

"नायिकाभेद क्या है? इस प्रश्न का उत्तर यही हो सकता है कि प्रकृति, अवस्था और स्थिति के अनुसार स्त्रियों का वर्णन ही नायिकाभेद कहाता है। प्रेम की किस अवस्था में, किन स्त्रियों की कैसी दशा हो जाती है, विरह में वे क्या सोचती हैं, मिलन उनकी मानसिक अवस्था पर क्या प्रभाव डालता है, नायक के आने की प्रसन्नता या प्रतीक्षा में उनके मन पर कैसा असर पड़ता है, प्रेम की प्रतिकूलता में किस तरह व्याकुल हो जाती है, काम-वासना के जागृत होने पर उनके साथ लज्जा और संकोच का किस प्रकार द्वंद्व होता है। ऐसी अवस्था में धीरता और सहनशीलता किस प्रकार सहायक होती है, सपत्नी के प्रति ईर्ष्या भाव उठने पर मन की क्या दशा हो जाती है, प्रेम-प्राप्ति के लिए मानसिक भावों का किस तरह विकास होता रहता है, इत्यादि बातों का अति सूक्ष्म वर्णन नायिकाभेद में विशेष रूप से किया जाता है।"

—"रस-रत्नाकर" पृ० ११

प्रथम परिच्छेद

नायिकाभेद और रस-निरूपण

★

नायिकाभेद का रसशास्त्रोक्त स्थान—

भारतवर्ष मे काव्य, नाटक आदि कवि-कृतियाँ अत्यत प्राचीन काल से प्रचलित हैं। काव्य और नाटक के प्रधान पुरुष-पात्र को नायक और प्रधान स्त्री-पात्र को नायिका कहते हैं। काव्यशास्त्र के आचार्यों ने जब इन कवि-कृतियों की शास्त्रीय मर्यादा निश्चित की, तब नायक-नायिकाओं का भी काव्यशास्त्रोक्त स्थान नियत किया गया। उन आचार्यों ने नायक-नायिका को काव्यशास्त्र के रस-प्रकरण मे शृंगार रस के आलंबन विभाव के अतर्गत रखा है।

काव्य और नाटक में पात्रों के आचार-व्यवहार, रहन सहन, कथोपकथन एवं चरित्र-चित्रण सबंधी कोई अयुक्त अथवा बे ठिकाने की बात न कह दी जाय, इसलिए पात्रों के वर्गीकरण की आवश्यकता हुई। इस वर्गीकरण को काव्यशास्त्र मे नायकभेद अथवा नायिकाभेद कहा गया है। पुरुष-स्वभाव की अपेक्षा स्त्री-स्वभाव कहीं अधिक विचित्र और दुर्बोध होता है, इसलिए आचार्यों ने नायकभेद की अपेक्षा नायिकाभेद को अधिक विस्तार पूर्वक लिखा है। संस्कृत साहित्य के रस-शास्त्रियों ने शृंगार रस के एक उपांग के रूप मे नायिकाभेद का संक्षिप्त विवेचन किया है, किंतु व्रजभाषा-कवियों ने इसे स्वतंत्र विषय मान कर इसका इतना अधिक विस्तार किया है कि व्रजभाषा साहित्य का नायिकाभेद स्वयं एक शास्त्र बन गया है।

व्रजभाषा-साहित्य मे नायिकाभेद स्वतत्र विषय के रूप मे चाहे कितना ही विस्तार पूर्वक लिखा गया है, किंतु मूलतः वह शृंगार रस का एक अंग ही है, अतः नायिकाभेद का यथार्थ परिचय प्राप्त करने के लिए शृंगार रस का ज्ञान होना आवश्यक है। शृंगार रस स्वयं रस-प्रकरण का एक अंग है, अतः रसके विषय मे लिखने के पूर्व रसभेद का भी थोड़ा-बहुत विवेचन करना अनिवार्य है।

रस और उसका स्वरूप—

रस शब्द 'रस्' धातु से बना है, जिसका अभिप्राय 'स्वाद लेना' है। स्वाद आनंददायक वस्तु में ही आता है। नाटक के देखने में दर्शक को तथा काव्य के पढ़ने और सुनने में क्रमशः पाठक और श्रोता को जिस आनंद की प्राप्ति होती है, उसे 'रस' कहते है। रस का स्वरूप अलौकिक है, इसलिए वह अनिर्वचनीय है, किंतु सहृदय जनों द्वारा उसका आस्वादन या अनुभव किया जा सकता है।

रस की कल्पना—

भारतवर्ष में नाट्यकला का प्रचार सहस्त्रों वर्ष पूर्व से चला आता है। रंग मंच पर अभिनेताओं के कलापूर्ण अभिनय को देख कर दर्शकों के चित्त में जिन आनंददायक भावों की अनुभूति होती थी, उसी का मार्मिक विश्लेषण रस की कल्पना का कारण ज्ञात होता है। महामुनि भरत के मतानुसार महामना 'द्रुहिण' इस विषय के सर्व प्रथम आविष्कारक है†।

'रस' के मर्म को संसार मे सर्व प्रथम भारतवर्ष के ऋषि-मुनियों ने ही समझा था। उन्होंने रस और उससे संबंधित नाट्यकला, काव्य एवं संगीत का विवेचन करते हुए अनेक सूत्रों का निर्माण किया था। उन्ही सूत्रों के आधार पर बाद में महामुनि भरत ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रंथ "नाट्यशास्त्र" की रचना की थी। भरत ने जो बातें नाट्यकला और नाटक के संबध मे लिखी हैं, उनमे से अधिकांश बातें 'काव्य' के लिए भी उपयुक्त समझी गई और कालांतर मे 'दृश्य काव्य' के रूप में नाटक को भी काव्य का एक अंग ही बना लिया गया।

'रस' शब्द का काव्यशास्त्रोक्त अर्थ—

काव्यशास्त्र के आचार्यों ने काव्य की परिभाषा करते हुए 'रसात्मक शब्द-समूह को काव्य*' माना है। यद्यपि यह परिभाषा सर्व सम्मति से स्वीकृत नहीं हुई है, तथापि काव्य में 'रस' का महत्वपूर्ण स्थान है, यह स्वीकार

---

† 'एते त्वष्टौ रसा प्रोक्ता द्रुहिणेन महात्मना' —"नाट्यशास्त्र"

* १. "वाक्यं रसात्मकं काव्यम्" —विश्वनाथ

२. "बत कहाउ रस मे जु है, कवित कहावै सोइ।" —सोमनाथ

करने में किसी को आपत्ति नहीं है। इस प्रकार "काव्य के उस आस्वाद को 'रस' कहते हैं, जिसके अनुभव से चित्त पर काव्य-रचना के यथार्थ भाव का पूर्ण प्रभाव पड़े†।" आचार्य सोमनाथ कहते हैं—

मुनि कवित्त कों चित्त मधि, सुधि न रहै कछु और।
होइ मगन वहि मोद मे, सो 'रस' कहि सिरमौर§॥

रस-प्रकरण की परंपरा—

ससार मे रस-प्रकरण के सर्व प्रथम संकलयिता और विवेचक महामुनि भरत हैं। यद्यपि उनको इसका आविष्कारक नही कहा जा सकता, क्यों कि उनसे भी पूर्व 'द्रुहिण' आदि भारतीय ऋषि-मुनियों को इस विषय का ज्ञान था, तथापि शास्त्र के रूप में तत्सबंधी समस्त विषयों का विधिवत् वर्णन करने का श्रेय उन्हीं को प्राप्त है। इस प्रकार भरतमुनि कृत "नाट्यशास्त्र" इस विषय का प्राचीनतम ग्रंथ सिद्ध होता है। नाट्यशास्त्र आज कल जिस रूप में उपलब्ध है, वह भी विद्वानों की दृष्टि मे दो सहस्र वर्ष से कम का नहीं है, किंतु भरतमुनि ने इसे कब और किस रूप में संकलित किया था, इसका निश्चय अभी तक नहीं हो सका है।

भरतमुनि के पश्चात् भगवान् व्यासदेव ने अपने "अग्नि-पुराण" मे इस विषय का वर्णन किया है। इन उभय मुनिवरो के पश्चात् संस्कृत साहित्य के अनेक आचार्यों ने रस-प्रकरण का बडा ही पांडित्यपूर्ण एवं विशद विवेचन किया है। संस्कृत ग्रंथो के आधार पर ही व्रजभाषा साहित्य मे भिन्न-भिन्न आचार्यों द्वारा 'रस' की आलोचना की गई है।

रस का सूक्ष्म विवेचन—

रस का जैसा मार्मिक, विशद और पांडित्यपूर्ण विवेचन संस्कृत और व्रजभाषा के आचार्यों ने किया है, वैसा किसी अन्य भाषा के साहित्य मे मिलना कठिन है। अँगरेजी, अरबी, फारसी और उर्दू आदि भाषाओं मे रस का सूक्ष्म विवेचन तो क्या, उसका पर्यायवाची शब्द भी कदाचित नहीं है। इन भाषाओ मे "भाव" के पर्यायवाची शब्द मिलते है और उसी का थोड़ा-बहुत वर्णन किया गया है।

---

† संस्कृत-हिंदी-व्याकरण-शब्दरत्नाकर

§ रसपीयूषनिधि

संस्कृत और ब्रजभाषा के आचार्यों ने भाव, रस और ध्वनि का पृथक्-पृथक् वर्णन किया है। निस्संदेह सर्व प्रथम वस्तु भाव है। भाव के सूक्ष्म विवेचन के पश्चात् आचार्यों ने रस के महत्व को समझा था, अतः शताब्दियों तक काव्य-जगत् मे रस का एक छत्र साम्राज्य रहा और काव्य में मुख्य पदार्थ रस समझा जाता था। जब सूक्ष्मदर्शी आचार्यों ने 'रस' का भी सूक्ष्म विवेचन किया, तो 'ध्वनि' सिद्धांत का प्रचार हुआ। ध्वनि सिद्धांत के प्रतिपादकों ने भी रस के महत्व को स्वीकार किया, किंतु उसे ध्वनि के अंतर्गत रखते हुए 'रस' को सर्वोत्तम ध्वनि माना है।

'रस' और 'भाव' का पारस्परिक संबंध—

आचार्यों ने भाव से ही रस की उत्पत्ति मानी है‡, इसलिए रस प्रकरण में भाव-भेद का महत्वपूर्ण स्थान है।

'भाव' किसे कहते हैं ?

अमरकोश में मन के विकार को भाव† कहा गया है, अतः भाव के साथ 'विकार' को समझ लेना आवश्यक है। आचार्य सोमनाथ ने 'विकार' का लक्षण इस प्रकार लिखा है—

चित किहि हेतुहि पाय जब होय और न और।
ताकौ नाम 'विकार' कहि, बरनत कवि सिरमौर॥

काव्यशास्त्र के आचार्यों ने मानसिक विकार अथवा वासना को ही भाव माना है। आचार्य चिंतामणि का मत है—

मन-विकार कहि भाव सो, बरन बासना रूप।
विविध ग्रंथ-करता कहत, ताकौ रूप अनूप॥

---

‡ भावहि तें रस होत है, समझि लेउ मन माहि।
यातें पहिले भाव सब, बरनत सुकवि सराहि॥
—"रस प्रबोध"

† 'विकारो मानसो भाव'

† रसमंजरीनिधि
कविकुलकल्पतरु

रस और भाव—

जैसा पहले कहा जा चुका है, भाव से ही रस की उत्पत्ति होती है। 'रसपीयूषनिधि' में इसका इस प्रकार विवेचन किया गया है—

रस कौ मूल भाव पहिचानौ। ताकौ ये लक्षन उर आनौ॥
चित्त वृत्ति ही लौ ठहराय। भाव वासना-रूप बताय॥
रस अनुकूल विकार जु होत। तासों 'भाव' कहत कवि-गोत॥

महामुनि भरत ने रस और भाव की और भी घनिष्टता बतलाई है। उनके मत में भाव के बिना रस और रस के बिना भाव नहीं हो सकता*।

भाव-भेद—

भाव के चार भेद होते हैं—

१. स्थायी, २ विभाव, ३ अनुभाव और ४. संचारी।

इन चारों के अतिरिक्त दो प्रकार के भाव और भी होते हैं, जिनको 'सात्विक भाव' और 'हाव' कहते हैं। कुछ आचार्यों ने भाव के उपर्युक्त चार भेदों में 'सात्विक और 'हाव' को सम्मिलित कर उसके छः भेद कर दिए हैं, किंतु अधिकांश आचार्यों के मतानुसार भाव के चार भेद – स्थायी, विभाव, अनुभाव और संचारी–ही होते हैं। सात्विक भाव को पृथक् भाव न मान कर उसे 'अनुभाव' के ही अंतर्गत माना गया है†। 'हाव' का वर्णन भी शृंगार रस में 'अनुभाव' के ही अंतर्गत होता है। इस प्रकार भाव के मुख्य रूप से चार भेद ही हुए।

१. **स्थायी भाव**—जिस भाव विशेष की स्थिति सदा रहे, और जो विरुद्ध अथवा अविरुद्ध किसी प्रकार के भाव से कभी प्रभावित न हो, उसे 'स्थायी भाव' कहते हैं।

---

* "न भाव हीनोस्ति रसो न भावो रसवर्जित"

—"नाट्यशास्त्र'

† "सात्विक भाव जु है, सु वह, अनुभावनि में जानि।"

—"रसपीयूषनिधि"

स्थायी भाव बीज रूप से प्रत्येक व्यक्ति के अंतस्तल में सदैव वर्तमान रहते हैं, इसीलिए समस्त भावों मे इनको प्रमुख माना गया है‡।

स्थायी भाव के ९ भेद होते हैं—

१. रति, २. हास, ३. शोक, ४. क्रोध ५. उत्साह,
६. भय, ७. ग्लानि, ८. आश्चर्य, और ९. निर्वेद।

ये ही नव स्थायी भाव नव रसों के कारण होते हैं। जैसे रति से शृंगार, हास से हास्य, शोक से करुण, क्रोध से रौद्र, उत्साह से वीर, भय से भयानक, ग्लानि से वीभत्स, आश्चर्य से अद्भुत और निर्वेद से शांत रस।

२. **विभाव**—अंतस्तल की प्रसुप्त भावनाओं को जो विशेष रूप से प्रवर्तित करे, उसे 'विभाव' कहते हैं।

'विभाव' स्थायी भाव का कारण होता है और वह 'रस' की उत्पत्ति मे विशेष रूप से सहायक होता है। इसके दो भेद हैं—

१. आलंबन और २. उद्दीपन।

जिस पर स्थायी भाव अवलंबित है, उसे 'आलंबन' और जिसके द्वारा स्थायी भाव उद्दीप्त होकर आधिक्य को प्राप्त हो, उसे 'उद्दीपन' कहते हैं†।

३. **अनुभाव**—जब आंतरिक भाव कर्मेन्द्रियों द्वारा वाह्य रूप से प्रकट होते है, तब वे 'अनुभाव' कहलाते हैं।

'अनुभाव' को स्थायी भाव का कार्य कहा गया है। अनुभाव अगणित होते है, उनको तीन कोटियों में विभाजित किया गया है—

१. कायिक, २. मानसिक और ३. सात्विक।

---

‡ नायक सब ही भाव को, टारु टरै न रूप।
तासों थाई रूप कहि, बरनत हैं कविभूप॥
—"रसपीयूषनिधि"

रस उपजै आलंब जिहिं, सो 'आलंबन' होय।
रसहि जगावै दीप ज्यों, 'उद्दीपन' कहि सोय॥
—"भावविलास"

† जो पुनि थाइ भाव को, प्रकट करै अनयास।
ताहि कहत 'अनुभाव' है, सब कवि बुद्धि-विलास॥
—"कविकुलकल्पतरु"

१ कायिक—शारीरक गति सूचक क्रियाएँ कायिक अनुभाव होती हैं। चूँकि ये स्वाभाविक न होकर यत्न पूर्वक प्रदर्शित की जाती हैं, इसलिए इनको 'यत्नज' भी कहते हैं, जैसे कर-चालन आदि।

२. मानसिक--मन के उद्वेग आदि मानसिक अनुभाव कहलाते हैं, जैसे हर्ष आदि।

३. सात्विक--स्वाभाविक रूप से प्रकट होने वाले अनुभावों को 'सात्विक' कहते हैं। ये आठ प्रकार के होते हैं—

१. स्तंभ, २. स्वेद, ३. रोमांच, ४. स्वरभंग
५. कंप, ६. वैवर्ण्य, ७. अश्रु, ८. प्रलय (मूर्छा)

कुछ आचार्यों ने मानसिक और सात्विक दोनों को पृथक न कर उनको एक ही 'अयत्नज' कोटि में रखा है। चूंकि ये दोनों प्रकार की चेष्टाएँ बिना किसी यत्न के स्वाभाविक रूप से होती हैं, इसलिए उनको 'अयत्नज' कहा गया है।

४. संचारी—जो भाव जल की तरंग की भाँति उठते और विलीन होते रहते हैं, उनको 'संचारी' कहते हैं।

संचारी भाव ३३ होते हैं —

१. निर्वेद, २. ग्लानि, ३. शंका, ४. असूया, ५. श्रम, ६. मद, ७. क्षति, ८. आलस्य ९. विषाद, १०. मति, ११. चिंता, १२. मोह, १३. स्वप्न, १४. विबोध १५. स्मृति, १६. अमर्ष, १७. गर्व, १८. उत्सुकता, १९. अवहित्थ, २०. दीनता, २१. हर्ष, २२. व्रीडा, २३. उग्रता, २४. निद्रा २५. व्याधि, २६. मरण, २७. अपस्मार, २८. आवेग २९. त्रास, ३० उन्माद ३१. जडता, ३२. चपलता, ३३. वितर्क।

भावों का स्पष्टीकरण—मनोविकारों का होना मन का स्वाभाविक धर्म है। इन्हीं मनोविकारों को कविता में 'भाव' कहा जाता है, जिनकी संख्या चार है अर्थात स्थायी, विभाव, अनुभाव और संचारी। मनोविकारों के कारण को कविता में विभाव, कार्य को अनुभाव और सहकारी कारणों को संचारी भाव कहते हैं। रति, शोक, क्रोध, करुणा आदि मानसिक उद्वेग सूक्ष्म रूप से प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में सदैव विद्यमान रहते हैं। इन्हीं मानसिक उद्वेग पूर्ण भावों को कविता में स्थायी भाव या संचारी भाव कहा

गया है। स्वरूप से स्थायी और संचारी दोनों एक से ही होते हैं, किंतु उनमें एक महत्व का अंतर यह है कि स्थायी भाव चिर काल तक मानव हृदय में स्थिर रहते है, किंतु संचारी भाव एक के पश्चात् दूसरे बार-बार उत्पन्न और नष्ट होते हुए स्थायी भाव को सहायता पहुँचाते रहते हैं। चिर काल तक स्थिर रहने के कारण और विरुद्ध एवं अविरुद्ध भावों का उन पर प्रभाव न होने से वे स्थायी भाव कहलाते हैं, किंतु अनुकूल एवं प्रतिकूल भावों से बढ़ते-घटते और उदय-अस्त होते रहने से तथा रस में संचार करने से वे संचारी अथवा व्यभिचारी भाव कहलाते हैं। मानसिक भावों को 'विभावन' अर्थात् आस्वाद के योग्य बनाने वाले 'विभाव' कहलाते हैं। ये स्थायी भाव के कारण कहे जाते हैं। स्थायी भाव का अनुभव कराने वाले 'अनुभाव' कहलाते हैं, जिनको स्थायी भाव का कार्य कहा गया है। बार-बार उदय एवं अस्त होकर स्थायी भाव को सहायता पहुँचाने के कारण संचारी भावों को स्थायी भाव के सहकारी कारण कहा गया है।

काव्यशास्त्रानुसार रसोत्पत्ति --

काव्याशास्त्र के आचार्यों ने रसोत्पत्ति का कारण निम्न लिखित बतलाया है—

विभाव, अनुभाव और संचारी भावों से परिपूर्ण स्थायी भाव ही रस संज्ञा को प्राप्त होता है*।

इसको और भी स्पष्ट रूप से इस प्रकार कहा जा सकता है—

"स्थायी भाव जब विभाव, अनुभाव और संचारी भावों के सहित चमत्कृत होकर मनुष्यों के हृदय में अलौकिक और विलक्षण आनद का स्वरूप धारण करता है, तब वह 'रस' कहलाता है†।"

---

* गनि विभाव, अनुभाव अरु संचारीन मिलाय।
जित थाई है भाव जो, सो रस रूप गनाय॥
—"कविकुलकल्पतरु"

† "रस-कलस"

रसों की संख्या —

काव्य में नव रस माने गये हैं—

१. शृंगार, २. हास्य, ३. वीर, ४. अद्भुत, ५. रौद्र,
६. करुण, ७. भयानक, ८. वीभत्स, और ९. शांत

भरत मुनि के मतानुसार मूल रस चार हैं—शृंगार, रौद्र, वीर और वीभत्स । इन्हीं चारों रसों से शेष रसों की उत्पत्ति हुई; जैसे शृंगार से हास्य, रौद्र से करुण, वीर से अद्भुत और वीभत्स से भयानक । यही मत अग्निपुराण-कर्त्ता व्यास मुनि को भी मान्य है ।

भरतमुनि ने आठ रसों का उल्लेख किया है, इसलिए नाटक में आठ रस ही माने गये हैं । कालांतर में आचार्यों ने नवें 'शांत' रस की भी कल्पना की । इस प्रकार रसों की संख्या ९ निश्चित हुई । संसार की अनित्यता का अनुभव होने पर तथा विषयों से विरक्ति हो जाने पर निर्वेद होता है । यही 'निर्वेद' शांत रस का स्थायी भाव है । आचार्यों के मतानुसार उच्च श्रेणी का निर्वेद ही स्थायी भाव माना जा सकता है । साधारण कारणों से क्षणिक विरक्ति–जन्य निर्वेद को संचारी भाव कहा जा सकता है, स्थायी नहीं । कुछ आचार्यों ने 'शम्' को शांत रस का स्थायी भाव लिखा है ।

नव रसों के अतिरिक्त अन्य रसों की आवश्यकता—

यद्यपि शताब्दियों से काव्यशास्त्र में नव रस ही माने जाते हैं, तथापि समय-समय पर कई आचार्यों ने कुछ अन्य रसों की आवश्यकता का भी अनुभव किया है । कतिपय आचार्यों ने वात्सल्य और भक्ति आदि कई अन्य रसों की भी कल्पना की है । पूर्ववर्ती आचार्यों के मतानुसार भक्ति, वात्सल्य आदि पृथक् रस नहीं, बल्कि 'भाव' हैं, जो 'रति' के विभिन्न रूप होने के कारण शृंगार रस के अंतर्गत हैं । रसों की नव संख्या तो निर्विवाद है, किंतु अन्य रसों के संबंध में सर्व सम्मत निर्णय नहीं हो सका है ।

कुछ प्राचीन रसशास्त्री भी रसों की संख्या नौ तक ही सीमित रखने के पक्ष में नहीं हैं । विश्वनाथ और भोजदेव जैसे उद्भट आचार्यों ने 'वत्सल' को दसवाँ रस बतलाया है । वास्तव में वात्सल्य के प्रभाव और चमत्कार को देखते हुए उसे केवल भाव मात्र मानना उचित नहीं है, बल्कि उसे रस ही मानना चाहिए । इसी प्रकार 'भक्ति' को भी ' देव विषयक रति ' कह कर उसे शृंगार रस के अतर्गत मानना उचित नहीं है । भरतादि के समय भक्ति

का अलौकिक महत्व अज्ञात था, इसलिए उन्होंने उसे पृथक् रस मानने की आवश्यकता नहीं समझी, किंतु कालांतर मे धार्मिक जगत् में भक्ति का इतना व्यापक महत्व बढ़ा कि कई आचार्यों ने उसे रस ही नहीं, बल्कि श्रेष्ठतम रस स्वीकार किया है। आचार्य मधुसूदन सरस्वती ने अपने 'भक्ति रसायन' ग्रंथ मे लिखा है कि देव विषयक रति विविध-देवताओं तक ही सीमित रखने से भाव कही जा सकती है, क्यों कि इन देवताओं की रति अलौकिक आनंद प्रदान करने मे असमर्थ है. किंतु देवादिदेव परमानंद-स्वरूप परमात्मा के संबंध मे यह बात कैसे कही जा सकती है! इसलिए भगवद्भक्ति को रस ही मानना चाहिए।

वैष्णव संप्रदायों मे भक्ति का सर्वोपरि महत्व स्वीकार किया गया है, इसलिए वैष्णव रस-शास्त्रियों ने 'भक्ति' को स्वतंत्र रस मानने पर बड़ा ज़ोर दिया है। चैतन्य महाप्रभु द्वारा प्रचारित गौडीय वैष्णव सप्रदाय के ग्रंथों मे भक्ति रस का विस्तार पूर्वक वर्णन है। इस सप्रदाय के सुप्रसिद्ध रसशास्त्री रूप गोस्वामी ने 'भक्तिरसामृतसिंधु' मे भक्ति रस का सांगोपांग कथन किया है।

सस्कृत साहित्य के अंतिम आचार्य पंडितराज जगन्नाथ ने भक्ति के महत्व को मानते हुए भी उसे इसलिए रस नहीं माना कि इससे भरतादि पूर्वाचार्यों की बाँधी हुई मर्यादा भंग होती है। वास्तव मे इसी संकोच के कारण शताब्दियों से आचार्यों द्वारा रसों की संख्या नौ से अधिक नहीं मानी गई, यद्यपि उनमे से कई इसकी नितांत आवश्यकता समझते थे। अब रस-प्रकरण के वैज्ञानिक वर्गीकरण द्वारा रसों की संख्या मे वृद्धि होनी चाहिए। कम से कम भक्ति और वात्सल्य को नव रसों के अतिरिक्त स्वतंत्र रस मानने की अत्यंत आवश्यकता है।

रस-प्रकरण की गहनता —

रस-प्रकरण मे उपर्युक्त विषयों के अतिरिक्त रस-विरोध, रस मैत्री, रस-दोष, रसाभास, रसों के देवता और उनके स्वरूप आदि का भी विस्तार पूर्वक वर्णन किया जाता है। भारतीय काव्यशास्त्र का रस-प्रकरण वस्तुतः एक गहन विषय है। उसके मर्म का यथार्थ ज्ञान रस-ग्रंथों के अवलोकन से ही हो सकता है। यहाँ पर नायिकाभेद-विवेचन के लिए जितना विषय आवश्यक समझा गया, उसी का संक्षिप्त परिचय दिया गया है।

द्वितीय परिच्छेद

नायिकाभेद और शृंगार-विवेचन

★

शृंगार रस का महत्व —

शृंगार रस के आलंबन विभाग में नायिकाभेद का कथन किया जाता है, अतः हमारे विषय का शृंगार रस से प्रत्यक्ष संबंध है। नायिकाभेद के व्यापक महत्व का कारण भी वस्तुतः शृंगार रस का ही महत्व है। यद्यपि रसों की संख्या ९ मानी गई है, तथापि शृंगार रस उन सबमें प्रमुख है। प्रभाव और महत्व के विचार से शृंगार का दर्जा अन्य रसों से बहुत ऊँचा है। विभिन्न कवियों ने एक स्वर से शृंगार रस की महत्ता का गुण-गान किया है[†]।

रस-प्रकरण के प्रथम आचार्य महामुनि भरत ने शृंगार रस के महत्व को चरम सीमा पर पहुँचा दिया है। उनके मतानुसार संसार में जो कुछ पवित्र, उत्तम, उज्ज्वल और दर्शनीय है, वही शृंगार रस है*।

---

† नव हू रस को भाव बहु, तिनके भिन्न विचार।
सबको 'केशवदास' कहि, नायक है सिंगार॥
—केशव

भूलि कहत नव रस सुकवि, सकल मूल सिंगार।
जो संपति दंपतिन की, जाको जग विस्तार॥
विमल सुद्ध सिंगार रस, 'देव' अकास अनंत।
उडि-उडि खग ज्यों और रस, विरम न पावत अंत॥
—देव

नव रस को पति, सरस अति, रस सिंगार पहचानि॥
—सोमनाथ

नव रस मे सिंगार रस, सिरे कहत सब कोइ॥
—पद्माकर

* "यत्किंचिल्लोके शुचिमेध्यमुज्ज्वलं दर्शनीयं वा तल्लक्षारेणोपमीयते।"
—"नाट्यशास्त्र"

शृंगार रस का वर्णन इससे अधिक सुंदर शब्दों में होना असंभव है। भरतमुनि ने शृंगार की बड़ी विशद व्याख्या की है और संसार की समस्त उत्तमताओं को उसी के अंतर्गत माना है। भरत के पश्चात् व्यासदेव, भोजराज प्रभृति अनेक आचार्यों ने शृंगार रस का गुण-गान किया है।

शृंगार ही आदि रस है—

अग्निपुराण में लिखा है कि परमब्रह्म परमात्मा के 'अहंकार' से 'ममता' और ममता के रूपांतर से 'शृंगार रस' की उत्पत्ति हुई है, अतः शृंगार ही आदि रस है। अन्य रसों की सृष्टि उसके बाद की है। शृंगार ही सृष्टि-सृजन का कारणीभूत और विश्व-प्रपंच का आधार है, अतः उसका आदि रस होना स्वयंसिद्ध है।

'शृंगार' शब्द का अर्थ—

"शृंगार यौगिक शब्द है, जो 'शृंग' और 'आर' दो शब्दों के योग से बना है, जिसका अर्थ है—'काम वृद्धि की प्राप्ति'। चूँकि स्थायी भाव 'रति' विभाव, अनुभाव और संचारी भावों के एकीकरण से रस संज्ञा को प्राप्त होकर कामीजनों के चित्त में काम की वृद्धि करता है, इसीलिए वह 'शृंगार' कहलाता है।" साहित्य-दर्पणकार के मतानुसार काम के उद्भेद (अंकुरित) होने को 'शृंग' कहते हैं। यहाँ पर 'काम' और 'कामीजन' अपने व्यापक अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं। उनका संकुचित अर्थ करने से 'शृंगार' शब्द का वास्तविक अर्थ ज्ञात नहीं हो सकता।

शृंगार रस का स्थायी भाव—

रस-प्रकरण में बतलाया जा चुका है कि समस्त भावों में 'स्थायी भाव' प्रमुख है। यही विभाव, अनुभाव और संचारी भावों से परिपुष्ट होकर रस संज्ञा को प्राप्त होता है। शृंगार रस का स्थायी भाव 'रति' (प्रेम) है। प्रेम का विश्व-व्यापी प्रभाव है। मनुष्य ही नहीं, प्राणी मात्र प्रेम से प्रभावित है। प्रातःकालीन उषा को देखते ही पक्षी गण चहकने लगते हैं। खिले हुए कमलों को देख कर मधुप गुंजारने लगते हैं। बसंत के आते ही कोयल

---

* रस-मंजरी

कूकने लगती है। बादलों के घुमड़ते ही मोर शोर मचाने लगते हैं। वीणा की मधुर ध्वनि पर चंचल मृग और विषधर सर्प भी मोहित हो जाते हैं। यह सब उसी रति अर्थात् प्रेम का चमत्कार है, जो शृंगार रस का कारण है। ऐसे प्रभावशाली स्थायी भाव के कारण ही शृंगार रस का अनुपम महत्त्व है।

आचार्य सोमनाथ ने शृंगार रस के स्थायी भाव 'रति' की परिभाषा करते हुए बतलाया है कि दर्शन, श्रवण अथवा स्मरण द्वारा इष्ट-मिलन की उत्कट इच्छा को 'रति' कहते हैं*।

शृंगार रस के विभाव—

रस की उत्पत्ति में विशेष रूप से सहायक होने वाले उक्त रस के विभाव कहलाते हैं। शृंगार रस के विभावों के दो भेद होते हैं—आलंबन और उद्दीपन। इनका विवरण इस प्रकार है—

१. शृंगार रस के आलंबन विभाव नायक-नायिका हैं, जिनके अनेक भेदों का विस्तृत वर्णन ब्रजभाषा के सैकड़ों कवियों ने नायिकाभेद के ग्रंथों में किया है। शृंगार रस के इस अंग ने ब्रजभाषा साहित्य को अत्यधिक प्रभावित किया है; यहाँ तक कि शताब्दियों तक परमोच्च श्रेणी के कवियों की प्रतिभा इसी विषय के वर्णन में लगी रही है।

२. शृंगार रस के उद्दीपन मानुषी और दैवी दोनों प्रकार के होते हैं, यथा सखा, सखी, दूती, ऋतु, बन, उपबन, केलि-कुंज, तड़ाग, एकांत स्थान, पवन, चंद्र, चाँदनी, चंदन, भ्रमर, कोकिल, गान-वाद्य आदि।

शृंगार रस के अनुभाव—

आलंबन और उद्दीपन आदि कारणों से हृदय में जागृत रति भाव को प्रकट करने वाले हाव-भाव, मुसकान, कटाक्ष, भ्रू-भंग आदि कार्य शृंगार रस के अनुभाव कहलाते हैं। ये अनुभाव अगणित होते है। इनको तीन भागों में विभाजित किया गया है, यथा—

१. कायिक, २. मानसिक और ३. आहार्य।

---

* इष्ट-मिलन की चाह जो, 'रति' समुझौ सो मित्त।
दरसन ते, कै स्रवन ते, कै सुमिरन ते नित्त॥
—रसपीयूषनिधि

सात्विक अनुभाव - "आत्मा में अंतर्भूत रस को प्रकाशित करने वाला अंतःकरण का धर्म विशेष 'सत्व' कहाता है। इसी सत्व गुण से उत्पन्न शरीर के स्वाभाविक अंग-विकार को सात्विक अनुभाव कहते हैं। काव्य-प्रकाश और साहित्य-दर्पण मे सात्विक भावों की गणना अनुभाव के अंतर्गत ही की गई है‡।" ये सात्विक अनुभाव आठ होते है—

१. स्तंभ, २. स्वेद, ३. रोमांच, ४. स्वरभंग,
५. कंप, ६. वैवर्ण्य, ७. अश्रु और ८. प्रलय।

हाव—"संयोग समय मे नायिकाओं मे जो स्वाभाविक चेष्टाएँ अथवा भौंह-नेत्रादि के विलास-व्यापार मनोविकारों के आधार से होते है, वे ही 'हाव' कहलाते है§।" संयोग शृंगार मे हावों का वर्णन अनुभाव के ही अंतर्गत होता है—

होइ सिंगार संजोग मे, दंपति के तन आइ।
चेष्टा जे बहु भाँति की, ते गनियत दस 'हाइ'† ॥

रसलीन ने लिखा है कि पुरुषों मे 'हाव' कारण विशेष से ही होते है, किंतु स्त्रियों में ये स्वाभाविक रूप से होते है। हाव दस प्रकार से होते है—

१. लीला, २. विलास, ३. विच्छित, ४. विब्बोक, ५. किलकिंचित,
६. विभ्रम, ७. ललित, ८. मोट्टायत, ९. विहृत, १० कुट्टमित।

कुछ आचार्यों ने 'हेला' और 'बोधन' नामक दो अन्य हावों का उल्लेख कर हावों की कुल सख्या १२ लिखी है, किंतु अधिकांश आचार्यों के मतानुसार हावों की संख्या १० ही है।

शृंगार रस के संचारी भाव—

जल-तरंग की भाँति कभी उठते हुए और कभी विलीन होते हुए भी स्थायी भाव 'रति' को सहायता पहुँचाने वाले भावों को शृंगार रस के संचारी भाव कहते है। कुल संचारी भावों की संख्या ३३ होती है। इनमें से

---

‡ रस-रत्नाकर

§ रस-कलस

† भाषाभूषण

उग्रता, मरण, आलस्य और जुगुप्सा—इन चारों के अतिरिक्त शेष २६ संचारी भाव शृंगार रस में होते हैं। इतने अधिक संचारी भाव अन्य किसी रस में नहीं होते।

शृंगार रस का पूर्ण परिचय—

शृंगार रस का स्थायी भाव रति, देवता श्रीकृष्ण, वर्ण श्याम, मित्र हास्य रस और शत्रु करुण, वीभत्स, रौद्र एवं भयानक रसों को बतलाया गया है।

शृंगार रस के भेद—

शृंगार रस के दो भेद होते हैं—संयोग एवं विप्रलंभ (वियोग)

१. संयोग शृंगार—पारस्परिक प्रेम के वशीभूत होकर जब नायक-नायिका एक दूसरे के दर्शन, मिलन, स्पर्श और आलाप आदि में संलग्न होते हैं, उस अवस्था को संयोग शृंगार कहते हैं।

संयोग शृंगार में एकांत स्थान, बन-उपबन, सखी-सदन, नदी-तालाब पर स्नान आदि के मिलन का उल्लेख होता है। संयोग शृंगार में ही दस हावों की उत्पत्ति होती है। इन 'हावों' को 'अनुभाव' के साथ लिखा जा चुका है।

२. विप्रलंभ शृंगार—जब प्रेम की प्रबलता और प्रिय-समागम का अभाव हो, उस अवस्था को विप्रलंभ अथवा वियोग शृंगार कहते हैं। आचार्य सोमनाथ ने विप्रलंभ का इस प्रकार उल्लेख किया है—

> प्रीतम के बिछुरनि बिषै, जो रस उपजतु आय।
> विप्रलंभ सिंगार सो, कहत सकल कविराय॥ †

विप्रलंभ शृंगार के चार भेद होते हैं—१. पूर्वानुराग, २. मान, ३ प्रवास और ४. करुण।

पूर्वानुराग चार प्रकार का होता है—प्रत्यक्ष-दर्शन, चित्र-दर्शन, श्रवण और स्वप्न-दर्शन।

मान तीन प्रकार का होता है—लघु, मध्यम और गुरु।

---

† रसपीयूषनिधि

विप्रलंभ शृंगार (पूर्वानुराग) में वियोग की निम्न लिखित दशाओं का वर्णन होता है—

१. अभिलाषा, २. चिंता, ३ स्मरण, ४. गुण-कथन, ५. उद्वेग, ६. प्रलाप, ७. उन्माद, ८ व्याधि, ९ जड़ता, १० मरण[1]

शृंगार रस का परिपाक—

नायक-नायिका मे रति अर्थात् प्रेम भाव बीज रूप मे सदैव विद्यमान रहता है। साधारण अवस्था मे वह प्रसुप्त रहता है, किंतु कारण विशेष से वह जागृत, उद्दीप्त और परिपुष्ट होकर शृंगार रस संज्ञा को प्राप्त होता है। चूँकि नायक-नायिका के हृदयों मे प्रसुप्त अथवा जागृत रति का स्थायी निवास है, इसीलिए 'रति' को शृंगार रस का स्थायी भाव कहा जाता है।

यह रति भाव नायक-नायिका और सखी-सखा, बन-उपबन आदि के आश्रय से स्पष्ट होकर शृंगार रस का स्वरूप ग्रहण करता है, इसलिए इनको शृंगार रस के विभाव कहते है। चूँकि नायिका का रति भाव नायक पर और नायक का रति भाव नायिका पर अवलंबित है, इसलिए नायक-नायिका शृंगार रस के 'आलंबन विभाव' कहे जाते है। यह रति भाव ऋतु, कुंज, बन, वाटिका, चद्र, चाँदनी, सखी, सखा, दूती आदि से उद्दीप्त होता है, अतः इन सब उपादानों को शृंगार रस के 'उद्दीपन विभाव' कहते हैं। नायक के हृदय का प्रसुप्त रति भाव नायिका के दर्शन, श्रवण अथवा स्मरण के कारण जागृत और ऋतु, बन-बाग आदि के कारण उद्दीप्त होता है, इसलिए नायक-नायिका और ऋतु आदि 'रति' के कारण होने से 'विभाव' को रस का कारण माना गया है।

नायक अथवा नायिका में रति के जागृत एवं उद्दीप्त हो जाने पर प्रिय-मिलन की उत्कट-इच्छा होती है, जिसके फल स्वरूप चिंता, शंका हर्ष, मोह आदि मानसिक भावों का उदय और अस्त होता रहता है। काव्यशास्त्र के आचार्यों ने इस प्रकार के मानसिक भावों की संख्या ३३ मानी है, जिनको 'संचारी भाव' कहा गया है। ये रस के सहकारी कारण होते है। शृंगार रस के संयोग और वियोगात्मक दो पक्ष होने से इस रस मे सबसे अधिक

---

[1] प्राय. 'मरण' के स्थान पर मूर्च्छा का उल्लेख किया जाता है। किसी-किसी आचार्य ने मूर्च्छा को ११ वीं दशा लिखा है।

संचारी भाव होते हैं। आचार्यों ने शृंगार रस में २६ संचारी भाव माने है, जो 'रति' के सहकारी कारण हैं। ये संचारी भाव नायक अथवा नायिका के चित्त की अनेक विरुद्ध-अविरुद्ध, प्रतिकूल-अनुकूल वृत्तियों के कारण जल की तरंगों की भाँति घटते-बढ़ते, उठते एवं विलीन होते हुए स्थायी भाव 'रति' को सहायता पहुँचाते रहते हैं।

नायक नायिका के इन घटते-बढ़ते, उठते एवं विलीन होते हुए मानसिक भावों की क्रिया जब मन से बाहर होकर कर्मेन्द्रियों द्वारा प्रकट हो जाती है, तभी निकटस्थ व्यक्तियों अथवा नायक नायिका को भी परस्पर के 'रति' भाव का अनुभव होता है इसलिए कर्मेन्द्रियों द्वारा प्रकट हुई इन चेष्टाओं को आचार्यों ने शृंगार रस के 'अनुभाव' कहा है, जो कि रति के कार्य हैं। इनके द्वारा रति को पूर्ण सहायता प्राप्त होती है। शृंगार रस के अनुभाव, अंग-संचालन की विविध क्रियाएँ, कटाक्ष, भ्रू-निक्षेप आदि, अगणित हो सकते हैं। स्वेद, रोमांच आदि 'सात्विक भावों' को भी अनुभाव के अंतर्गत मानने का यही कारण है।

इस प्रकार 'रति' भाव आरंभ से ही नायक-नायिका में रहता हुआ विभाव, संचारी भाव और अनुभाव से परिपुष्ट होकर 'शृंगार रस' के पूर्ण परिपाक का कारण होता है।

शृंगार रसराज है—

काव्यशास्त्रोक्त नव रसों में शृंगार सर्वश्रेष्ठ रस है। उसके महत्व और प्रभाव के कारण आचार्यों ने उसे रसराज की प्रतिष्ठा प्रदान की है, जो कि सर्वथा उचित है। रसों का महत्व उनके स्थायी, विभाव, अनुभाव और संचारी भावों पर अवलंबित है। इस दृष्टि से अन्य रसों की अपेक्षा शृंगार का महत्व बहुत बढ़ा हुआ है और यही कारण उसके 'रसराज' होने का भी है। यहाँ पर इसी विषय को कुछ और स्पष्ट रूप से बतलाया जाता है।

शृंगार रस का स्थायी भाव 'रति' अर्थात् प्रेम है। ऐसा सर्वव्यापी और प्रभावशाली 'स्थायी' किसी अन्य रस का नहीं होता है। प्रेम चिरंतन, शाश्वत और सत्य है। वह सर्वव्यापी और सर्वोपयोगी है। वह शुद्ध, पवित्र, स्वार्थ रहित और आत्मत्याग पूर्ण है। उसमें तन्मयता की चरम सीमा है। ऐसे स्थायी भाव के कारण शृंगार के रसराज होने में क्या संदेह है!

विभावों की दृष्टि से भी शृंगार सर्वश्रेष्ठ है। इस रस के आलंबन विभाव नायक-नायिका हैं, जो परस्पर इस प्रकार अनुरक्त होते है कि उनका द्वैत भाव ही लुप्त हो जाता है। तन्मयता की पराकाष्ठा पर पहुँच कर वे एक दूसरे के लिए प्राणों तक का उत्सर्ग कर देते हैं। इस रस का आलंबन ही स्थायी भाव की अनुभूति कर सकता है और इसके आलंबन और आश्रय मे कोई वास्तविक भेद भी नही होता है। उद्दीपन विभाव की दृष्टि मे भी कोई अन्य रस शृंगार रस की समता नहीं कर सकता। अन्य रसों के उद्दीपन तो केवल मानुषी होते हैं, किंतु इसके उद्दीपन दैवी और मानुषी, प्राकृत्तिक और अप्राकृत्तिक, जड़ और जंगम सभी प्रकार के होते हैं। ये उद्दीपन सभी ऋतुओं, कालो और देशों मे सदैव सुगम है। ऐसे सुंदर आलंबन और इतने प्रचुर उद्दीपनों के कारण भी शृंगार की रसराजता स्वयंसिद्ध है।

अनुभावों की दृष्टि से भी शृंगार रस सर्वश्रेष्ठ है। जितने अधिक अनुभाव शृंगार के होते हैं, उतने किसी अन्य रस के नहीं होते। हावों का उल्लेख केवल इसी रस में अनुभाव के अंतर्गत होता है और सात्विक भाव भी जैसे इस रस मे बन पाते है, वैसे अन्य रसों मे नहीं।

संचारी भावों के कारण तो शृंगार रस अनुपमेय है। आचार्यों ने कुल ३३ संचारी भावों का उल्लेख किया है, जिनमे से २९ शृंगार रस मे हो सकते हैं। इतने अधिक संचारी और किसी रस के नहीं होते।

सभी रसों के शत्रु और मित्र रस होते हैं। आचार्यों ने शृंगार के भी शत्रु और मित्र रसों का उल्लेख किया है, किंतु इस रस की यह विशेषता है कि इसके शत्रु रसों का भी मित्रवत् कथन किया जा सकता है और अन्य रस शृंगार के अंगी रूप में लिखे जा सकते है। शृंगार रस के देवता स्वयं रसराज श्री कृष्ण है; फिर शृंगार रस के रसराज होने मे संदेह ही क्या हो सकता है! वास्तविक बात तो यह है कि शृंगार के सन्मुख अन्य रसों का कोई महत्व नहीं, इसीलिए रस-संसार में शृंगार का एक छत्र राज्य है। कई आचार्यों ने शृंगार की प्रतियोगिता में अन्य रसों को प्रस्तुत करने की चेष्टा की। उन्होंने अपनी संपूर्ण विद्या-बुद्धि से अपने प्रिय रस को सर्वश्रेष्ठ रस सिद्ध करना चाहा, किंतु उनको सफलता नहीं मिली। जब से संसार में रस-निरूपण का आरंभ हुआ है, तब से लेकर आज तक विद्वानों की दृष्टि में शृंगार रसराज है, और रहेगा।

शृंगार रस की व्यापकता—

शृंगार रस के इस महत्व के कारण ही आचार्यों ने उसका बड़ा व्यापक वर्णन किया है। शृंगार रस की व्यापकता का मुख्य कारण उसका स्थायी भाव 'रति' अर्थात् प्रेम है। विषय-वासना पूर्ण काम-प्रवृत्ति और प्रेम में आकाश-पाताल का अंतर है। "प्रेम एक दैवी विभूति है। यह संग्राहक है और संयोजक भी। मनुष्य के हृदय में जो मृदुल से मृदुल भाव उठ सकते हैं, प्रेम उन सबसे बढ़कर है। उच्च से उच्च भाव प्रेम के पीछे-पीछे अनुधावन करते हुए पाये जाते हैं। सृष्टि की रक्षा का श्रेय प्रेम को है। धर्म का बंधन भी इसी के द्वारा परिपुष्ट है। चाहे उत्साह के बिना संसार का काम चल जाय, चाहे यह संभव हो कि संसार का कोई भी प्राणी शोक से संतप्त न हो, परंतु प्रेम के बिना संसार-चक्र एक क्षण को भी नहीं घूम सकता है। प्रणय-सूत्र में बँधकर स्त्री-पुरुष की संसार-यात्रा सृष्टि की विजय है। स्त्री-पुरुष की प्रीति में उच्छृंखलता हो सकती है। प्रीति बिगड़ कर काम-वासना-परितृप्ति के रूप में एक पापाचरण हो सकती है, इसलिए समाज में उसका नियंत्रण किया गया है। विवाह इस नियंत्रण का फल है। शृंगार-रस का स्थायी भाव प्रेम इसी वैवाहिक प्रेम का पोषक है‡।"

महाकवि देव ने पाँच प्रकार का प्रेम लिखा है, यथा—सानुराग, सौहार्द, भक्ति, वात्सल्य और कार्पण्य*। साधारण शृंगार को सानुराग प्रेम, कुटुंब-परिवार और इष्ट-मित्र विषयक प्रेम को सौहार्द, छोटों द्वारा बड़ों के प्रेम को भक्ति और बड़ों द्वारा छोटों के प्रेम को वात्सल्य तथा दुःख से आर्द्र होकर किये गये प्रेम को कार्पण्य कहते हैं।

साधारणतः स्त्री-पुरुष विषयक प्रेम (रति) को ही शृंगार रस समझ लिया जाता है। देव जैसे महाकवि ने भी इसी प्रकार का कथन किया है—

> आपुस में तिय-पुरुष के, पूरन रति जो होय।
> ताही सों सिंगार रस, कहत सुकवि सब कोय॥ ‖

---

‡ 'सतसई-ग्रंथावली' की भूमिका पृ० ३७

* सानुराग, सौहार्द अरु भक्ति और वात्सल्य।
प्रेम पाँच विधि कहत है, कार्पण्य वैकल्य॥
—"प्रेमचंद्रिका"

‖ भावविलास

नायिकाभेद का विषय अधिकतर सानुराग प्रेम अथवा कांता रति से संबंधित है। इसमें स्त्री-पुरुष के प्रेम की ही प्रधानता है। भक्तिकाल के महात्माओं ने अपनी उपासना-पद्धति के अनुसार देव विषयक रति द्वारा भी नायिकाभेद का कथन किया है, जो स्वरूप में कांता रति विषयक नायिकाभेद के समान होते हुए भी भावना की दृष्टि से उससे सर्वथा भिन्न है। ब्रजभाषा साहित्य के नायिकाभेद में दोनों का पृथक् महत्व है। इस संबंध में आगामी पृष्ठों में विस्तार पूर्वक लिखा गया है।

तृतीय परिच्छेद

ब्रजभाषा-शृंगार-साहित्य की पृष्ठभूमि

★

शृंगार-साहित्य के उभय रूप —

ब्रजभाषा साहित्य में शृंगार रस पूर्ण रचनाओं का महत्वपूर्ण स्थान है। वैष्णव धर्मांतर्गत कई संप्रदायों के महात्माओं ने अपनी उपासना-पद्धति के अनुसार भक्तिपूर्ण शृंगार-रस की अलौकिक दिव्य वाणियों द्वारा और मुकवियों ने काव्यशास्त्र के अनुकूल शृंगार रस की चमत्कारपूर्ण सूक्तियों द्वारा ब्रजभाषा में जिस गौरवशाली साहित्य का निर्माण किया है, वह अपने सौष्ठव और महत्व के कारण संसार की समस्त भाषाओं के साहित्य में अनुपम है।

ब्रजभाषा के शृंगार-साहित्य की पृष्ठ भूमि वह भक्ति-भावना है, जो अपने रूप में समकालीन होते हुए भी मूलतः एक प्राचीन परंपरा का विकसित स्वरूप है। यही शृंगार-साहित्य की मूल प्रेरणा है, अतः उसके विकास पर विचार करना आवश्यक है।

राम-कृष्ण की भक्ति-भावना—

हिंदू धर्म में राम और कृष्ण दोनों महान् आत्माओं को अवतार रूप में ग्रहण किया गया है। राम-कथा का सर्व प्राचीन आधार वाल्मीकीय रामायण है और कृष्ण-कथा का महाभारत; किंतु इन दोनों ही ग्रंथों में उक्त महान् आत्माओं के अवतार होने का स्पष्ट कथन नहीं है।

रामचंद्र पर काव्य एवं नाटक के रूप में अति प्राचीन काल से ही बहुत कुछ लिखा गया है। कितने ही महा काव्य, खंड काव्य, नाटक, चंपू एवं गद्य-काव्यों में राम कथा का उल्लेख है, किंतु उनमें राम का कथन एक महापुरुष एवं नायक के रूप में ही हुआ है। उन ग्रंथों में परवर्ती काल की भक्ति-भावना दृष्टिगोचर नहीं होती। कृष्ण-कथा का उल्लेख महाभारत और भास कृत नाटक के अतिरिक्त केवल पौराणिक साहित्य में ही मिलता है। राम की तरह कृष्ण पर प्राचीन समय में काव्य आदि नहीं रचे गये।

अवतारों के प्रति जिस भक्ति-भावना ने मध्य-काल के अनंतर अपना व्यापक प्रभाव जमाया है, उसकी नींव श्रीमद्भागवत, शांडिल्य एवं नारद के भक्तिसूत्र, आध्यात्म रामायण, रामतापनी और गोपालतापनी उपनिषद् जैसे परवर्ती काल के ग्रंथों पर आधारित है। इस प्रकार की भक्ति-भावना दसवीं शताब्दी के पश्चात विशेष रूप से प्रचलित हुई, जब दक्षिण देशीय आचार्यों ने अपनी विचार-धारा को उत्तर की ओर भी प्रभावित किया। इस समय से पूर्व जनता की अवतारों के प्रति अधिक श्रद्धा नहीं थी।

कृष्ण-कथा का उल्लेख महाभारत और भास कृत नाटक के अतिरिक्त हरिवंश, विष्णुपुराण, भागवत, ब्रह्मपुराण, वायुपुराण जैसे पौराणिक साहित्य में हुआ है। कृष्णभक्ति का सर्वोत्तम ग्रंथ भागवत पुराण है, जिसमें श्रीकृष्ण को विष्णु का अवतार माना गया है और गोपियों के साथ उनकी अनेक लीलाओं का शृंगार पूर्ण वर्णन हुआ है।

इस प्रकार की भावना का आधार शायद सांख्य दर्शन है, जिसमें पुरुष-प्रकृत्ति के सिद्धांत का प्रतिपादन किया गया है। श्रीमद्भागवत इसी भावना का विकसित रूप हो सकता है, क्यों कि उसमें भी श्री कृष्ण के रूप में परमात्मा और गोपियों के रूप में अनेक जीवात्माओं की व्यंजना की गई है।

मर्यादा पुरुषोत्तम राम के चरित्र का आरंभ से ही जिस प्रकार कथन किया गया है, उसमें शृंगार रस के प्रतिपादन के लिए अधिक स्थान नहीं है, किंतु ब्रजवल्लभ श्रीकृष्ण की समस्त लीलाओं में शृंगार रस का अधिक परिपाक हुआ है, इसलिए कृष्ण शाखा वाले कवियों की कृतियाँ ही विशेष रूप से शृंगार पूर्ण हैं। रामभक्ति का जीवन भर प्रचार करने वाले हिंदी-साहित्य के अमर महाकवि गो० तुलसीदासजी, यद्यपि मर्यादा मार्ग के उपासक थे, तथापि कृष्ण-काव्य की शृंगार भक्ति से प्रभावित होकर उन्होंने भी भगवान् राम का यत्र-तत्र कुछ शृंगार लिखा है। इस प्रकार का वर्णन 'रामगीतावली' के उत्तर कांड में सरयू तट पर राम-सीता के विहार का कथन है। कृष्ण-काव्य की शैली में उनकी 'कृष्ण-गीतावली' तो प्रसिद्ध रचना है ही।

काव्य और नाटकों में चाहें राम-कथा का कृष्ण-कथा की अपेक्षा अधिक प्रचार रहा है, किंतु उपासना के क्षेत्र में राम की अपेक्षा कृष्ण-भक्ति का प्राधान्य है। कृष्णभक्ति के अनुकरण पर रामोपासक संप्रदायों में भी इस

प्रकार की राम-भक्ति का प्रचार हुआ। मर्यादा पुरुषोत्तम-भगवान् राम की शृंगार-भक्ति तो परवर्ती काल में श्रीकृष्ण की शृंगार-भक्ति के अनुकरण पर ही प्रचलित हुई।

कई विद्वानों की यह धारणा है कि मुसलमानों द्वारा पराजित होने पर यहाँ के निवासियों में विवशता के कारण भगवान् के प्रति भक्ति-भावना उमड़ पड़ी। यह बात भक्ति-मार्ग की परंपरा और उसके क्रमशः विकास का अध्ययन करने पर यथार्थ ज्ञात नहीं होती। मध्य काल की वैष्णव भक्ति शताब्दियों पूर्व की भक्ति-भावना का विकसित रूप है।

भारत में मुसलमान हिंदुओं के धर्म और उनकी संस्कृति को नष्ट करने आये थे, किंतु यहाँ की भक्ति-भावना का कुछ ऐसा आकर्षण हुआ कि उनमें से कितने ही रहीम और रसखान स्वयं इसके रंग में रँग गये।

हिंदी के भक्ति साहित्य की राम और कृष्ण दो शाखाओं में कृष्ण-शाखा वाले कवियों ने शृंगार-भक्ति की अधिकतर रचनाएँ की हैं। इस प्रकार की रचनाओं में कृष्ण और राधा का एक-छत्र साम्राज्य है। काव्यशास्त्र के आचार्यों ने श्री कृष्ण को शृंगार रस का देवता भी माना है।

व्रजभाषा के शृंगार-साहित्य में कृष्ण और राधा को किसी न किसी रूप में कविताओं का आधार माना गया है, इसलिए राधा-कृष्ण की उपासना और उनकी शृंगार-भक्ति पर कुछ अधिक प्रकाश डालने की आवश्यकता है।

राधा-कृष्णोपासना का विकास—

जब भारत में भिन्न-भिन्न देवताओं की उपासना आरंभ हुई, तो उनके साथ उनकी शक्तियों की भी कल्पना की गई। उन देवताओं में त्रिदेव प्रमुख थे, और त्रिदेव में भी विष्णु और शिव। विक्रम की प्रथम शती तक उत्तर भारत में विष्णु-भक्ति का प्रचार था। इसके पश्चात उसका प्रभाव उत्तर की अपेक्षा दक्षिण में बढ़ गया और उत्तर में शिव-भक्ति का प्राधान्य हो गया।

तांत्रिक साधना के प्रभाव से विक्रम की पाँचवीं शती में शिव और उनकी शक्ति पार्वती में मानवीय इच्छाओं की कल्पना की गई, जिसके फल स्वरूप धर्म के साथ शृंगार का मिश्रण आरंभ हुआ। इसी समय काव्य और नाटकों में शृंगार के नायक-नायिका के रूप में भी शिव-पार्वती ग्रहण

किये गये। महाकवि कालिदास ने 'कुमार संभव' में अपने उपास्य शिव-पार्वती को नायक-नायिका मान कर निःसंकोच भाव से उनका खुला शृंगार लिखा है। इसके बाद धर्म और साहित्य दोनों के क्षेत्र में शिव-पार्वती का व्यापक प्रभुत्व हो गया। कालांतर में राज्याश्रय भी इसी के पक्ष में होने लगा।

उस समय भारत में राजपूत राजाओं की प्रमुखता थी। ये राजा लोग अधिकतर शैव और शाक्त थे और शिव तथा भवानी के पूजक थे। मध्य और पश्चिम भारत में राजपूतों के बड़े-बड़े राज्य थे, जहाँ पर शिव और शक्ति की उपासना होती थी। बंग देश में शाक्त मत का और भी अधिक प्रचार था। वहाँ पर बौद्धों की महायान शाखा के भग्नावशेष रूप में भी विविध देवियों की पूजा प्रचलित थी।

दसवीं शती के लगभग विष्णु-भक्ति का प्रवाह दक्षिण की ओर से फिर उत्तर की ओर बढ़ने लगा। वैष्णव धर्म के विभिन्न धर्माचार्यों ने दक्षिण से आकर समस्त उत्तर भारत में विष्णु-भक्ति का प्रचार कर दिया। अब की बार विष्णु राम और कृष्ण के रूप में उपस्थित किये गये।

विष्णु-भक्ति के इस पुनरुत्थान में शिव-शक्ति की उपासना के क्षेत्र में कृष्णोपासना के लिए स्थान बनने लगा। अब कृष्ण के साथ उनकी शक्ति की भी आवश्यकता हुई। पहिले यह स्थान रुक्मिणी-सत्यभामा को दिया गया, किंतु कृष्णोपासना को सरस बनाने के अभिप्राय से बाद में कृष्ण के साथ राधा सम्मिलित की गई। धर्म और साहित्य के क्षेत्र में तो कृष्ण पहले से ही परिचित थे, किंतु राधा की उद्भावना बाद की चीज़ है। यहाँ पर कृष्ण के साथ राधा की ऐतिहासिक परंपरा जानना आवश्यक है।

राधा-कृष्ण की ऐतिहासिक परंपरा—

पहले लिखा जा चुका है कि भगवान् श्रीकृष्ण का सर्व प्रथम परिचय महाभारत से प्राप्त होता है, किंतु वहाँ पर गोपियों अथवा राधा का कोई उल्लेख नहीं है। महाभारत के पश्चात् हरिवंश, विष्णु पुराण, ब्रह्म पुराण आदि में कृष्ण-लीलाओं का वर्णन है, किंतु उनमें भी राधा का उल्लेख नहीं है। पौराणिक साहित्य में श्रीकृष्ण की लीलाओं का सबसे अधिक वर्णन भागवत पुराण में हुआ है। भागवत में श्रीकृष्ण के साथ गोपियाँ

तो दिखलाई देती हैं, किंतु उसमें भी राधा नहीं है; यहाँ तक कि 'राधा' शब्द का भी कदाचित भागवत में प्रयोग नहीं हुआ है। श्रीकृष्ण के साथ रास-विलास करने वाली अनेक गोपियों में राधा का होना भी संभव है, किंतु उनकी चिर सहचरी और एक मात्र प्रेमिका के रूप में राधा का स्पष्ट उल्लेख नहीं हुआ है। एक स्थान पर इतना संकेत अवश्य मिलता है कि श्रीकृष्ण को एक गोपी अत्यंत प्रिय थी, जिसने पूर्व जन्म में श्रीकृष्ण की आराधना की थी। राधा शब्द भी 'राध्' धातु से बना है जिसका अभिप्राय सेवा करना अथवा प्रसन्न करना होता है। इससे संभव है कि श्रीकृष्ण की आराधना करने वाली अथवा उनको विशेष रूप से प्रसन्न करने वाली इस विशिष्ट गोपी को ही आगे चल कर राधा मान लिया गया हो।

धार्मिक ग्रंथों में 'ब्रह्मवैवर्त पुराण' ही ऐसा ग्रंथ है, जिसमें सर्व प्रथम राधा की साधारण चर्चा हुई है। इस पुराण की रचना दसवीं शताब्दी के लगभग मानी गई है। इसके पश्चात् 'गोपालतापनी उपनिषद्' में कृष्ण की प्रेयसी रूप से राधा का उल्लेख हुआ है। इसी काल के लगभग निंबार्काचार्य और जयदेव का समय आता है। श्री निंबार्काचार्य ने धार्मिक क्षेत्र में और गीतगोविंदकार जयदेव ने काव्य-जगत् में राधा की प्रतिष्ठा का श्रेय प्राप्त किया है।

उपर्युक्त विवरण से यह ज्ञात हो गया कि संस्कृत के धार्मिक ग्रंथों में राधा का उल्लेख दसवीं शताब्दी से पहले नहीं मिलता, किंतु इसका यह अभिप्राय नहीं है कि राधा को इससे पूर्व कोई जानता ही नहीं था। कृष्ण के साथ राधा का ऐसा अन्योन्य संबंध है कि एक के बिना दूसरे की कल्पना भी नहीं की जा सकती। ऐसा ज्ञात होता है कि व्रज के निकटवर्ती जन-समाज में लोक-गीतों द्वारा राधा-कृष्ण का उल्लेख अति प्राचीन समय से होता आ रहा है। विक्रम संवत के आरंभ की प्राकृत-गाथाओं में 'राधा' का उल्लेख हुआ है, किंतु संस्कृत साहित्य में उसका प्रवेश शताब्दियों पश्चात् हुआ। प्राकृत-गाथाओं के अनुकरण पर सर्व प्रथम कृष्ण की प्रेयसी रूप से राधा का उल्लेख काव्यों में हुआ, तदनंतर उनको शक्ति रूप से धार्मिक ग्रंथों में और फिर उपास्य रूप में। इसके पश्चात इसकी फिर प्रतिक्रिया हुई और उपास्य क्षेत्र के सर्वोच्च शिखर से उतार कर कवियों ने लौकिक शृंगार द्वारा उनको नायक-नायिका के निम्न धरातल पर ला खड़ा किया!

आभीर और राधा-कृष्ण—

कुछ विद्वानों का मत है कि कृष्ण और राधा की कथा पहले आभीर (अहीर) जाति में प्रचलित थी। उनका कहना है कि आभीर भी हूणों की तरह भारतवर्ष में बाहर से आये थे, किंतु उन दोनों जातियों की प्रकृति में भारी अंतर था। हूण लुटेरे और क्रूर प्रकृति के थे, किंतु आभीरों की प्रकृति सरल और वीरोचित थी। अपनी इसी प्रकृति के कारण आभीर जाति आर्यों के साथ घुल-मिल गई और आभीरों के आचार-विचार, धर्म और उनकी भाषा ने आर्यों के आचार-विचार, धर्म और उनकी भाषा को अत्यधिक प्रभावित किया। विक्रम संवत् के आरंभ में आभीर गण पश्चिमीय पंजाब से आगे बढ़ते हुए समस्त पंजाब और मथुरा के आस-पास फैल गये। यहाँ पर उन्होंने बड़े-बड़े राज्यों की स्थापना की। कई विद्वान आभीरों का बाहर से आया हुआ न मान कर यहीं के मूल निवासी मानते हैं। वर्तमान अहीर जाति आभीरों से ही बनी हुई कही जाती है।

आभीरों के उपास्य देवता का नाम गोपाल कृष्ण और उनकी देवी का नाम राधा था। आभीर जाति बड़ी संख्या में गो-पालन भी करती थी। उन लोगों में अपने देवता के गो-पालन की तथा राधा के साथ केलि-क्रीडा की अनेक कथाएँ प्रचलित थीं। कहते हैं कि उन आभीरों के उपास्य राधा-कृष्ण की केलि-क्रीडा और गो-पालन की कथाएँ आर्यों के प्राचीन वासुदेव कृष्ण से मिल कर साहित्य और धर्म में गृहीत कर ली गईं। यह मत कहाँ तक मान्य है, इस पर विद्वानों को विचार करना है। हमारा प्रभिप्राय केवल यह बतलाना है कि संस्कृत साहित्य में राधा की मान्यता अधिक प्राचीन नहीं है।

राधा-कृष्ण की भक्ति-भावना —

राधा-कृष्ण की भक्ति-भावना निस्संदिग्ध रूप से ब्रह्मवैवर्त्त पुराण की देन होने के कारण अधिक प्राचीन नहीं कही जा सकती, किंतु सांख्य के प्रकृति-पुरुष और तंत्र-मत के शक्ति-शिव से संबंधित होने के कारण इस भावना का मूल सूत्र प्राचीन काल तक पहुँचता है। ब्रह्मवैवर्त्त की रचना के पूर्व स्त्री-पुरुष के रूप में प्रकृति और पुरुष अथवा जीव और ब्रह्म की भावना का प्रचार हो चुका था। श्री मद्भागवत में कृष्ण के मधुर रूप और गोपी-कृष्ण की शृंगार लीलाओं की सरस व्याख्या हो चुकी थी। ब्रज के

लोक-वाङ्मय में राधा-कृष्ण की प्रेम-लीलाओं का शताब्दियों से गायन हो रहा था। अब धर्म और उच्च साहित्य में राधा को सम्मिलित कर देने की आवश्यकता थी। यह कार्य ब्रह्मवैवर्तकार, निंबार्काचार्य और जयदेव द्वारा सम्पन्न हो गया। फिर तो राधा-कृष्ण की मधुर लीलाओं से समस्त उत्तर भारत का वायु-मंडल गुंजायमान हो गया।

भक्ति-मार्ग और वैष्णव आचार्य —

ब्रजभाषा की आरंभिक शृंगारिक कविताएँ भक्ति प्रधान हैं, अतः भक्ति-मार्ग का कुछ और विस्तार पूर्वक वर्णन करना आवश्यक है। श्रीमद् जगद्गुरु शंकराचार्य के अद्वैत मत से साधारण जनता की कुछ अधिक संतुष्ट नहीं हुई। अद्वैतवाद और निर्गुण ब्रह्म उच्च कोटि के ज्ञानी और वीतरागी महात्माओं को ही विशेष रूप से आकर्षित कर सकते हैं, साधारण जनता तो अपने जैसा शरीरधारी ईश्वर को ही पसंद करती है, जो उसके आर्त्तनाद को सुन कर उसका उद्धार कर सके, जो दुर्जनों के विनाश और सज्जनों के कल्याण के लिए सदैव प्रस्तुत रहे और जिसमें रूप गुण, शील और शक्ति का पूर्ण समन्वय हो। इसी भावना ने धार्मिक क्षेत्र में ईश्वर की सगुण भक्ति का बीजारोपण किया है।

श्री रामानुजाचार्य वैष्णव धर्म में भक्ति-मार्ग के प्रवर्त्तक थे। उन्होंने दक्षिण में विक्रम की बारहवीं शताब्दी के आरंभ में ही श्रीमन्नारायण की सगुणोपासना का प्रचार किया था। उनसे पहिले दक्षिण देशीय मंदिरों की अलवार आदि देव-दासियों से, विक्रम की आठवीं शती से ही, भक्ति-मार्ग का आरंभिक रूप दिखलाई देता है। रामानुजाचार्य के कुछ समय पश्चात् उसी शताब्दी में श्री निंबार्काचार्य ने कृष्ण और राधा की सम्मिलित उपासना का उपदेश किया। चौदहवीं शताब्दी के लगभग श्री मध्वाचार्य ने द्वैतवाद की स्थापना कर नवधा भक्ति का प्रचार किया। उन्होंने राम एवं कृष्ण को विष्णु के अवतार मान कर कृष्ण की भक्ति पर अधिक ज़ोर दिया। श्री रामानुजाचार्य की शिष्य-परंपरा में पंद्रहवीं शताब्दी के लगभग श्री रामानंद हुए, जिन्होंने रामभक्ति का प्रबल प्रचार किया। इसी समय के लगभग श्री चैतन्य महाप्रभु और श्री बल्लभाचार्य ने माधुर्य और वात्सल्य भाव से कृष्ण-भक्ति का प्रचार कर समस्त उत्तरी भारत को भगवान् श्री कृष्ण के प्रेम में रंग दिया। श्री रामानंद और श्री बल्लभाचार्य के उपदेशों द्वारा

हिंदी में राम और कृष्ण की भक्ति विषयक साहित्य प्रस्तुत हुआ, जिसके कारण हिंदी में एक नवीन युग निर्माण होगया।

ब्रजभाषा के शृंगार साहित्य पर निंबार्काचार्य की भक्ति-भावना का गहरा प्रभाव पड़ा है। निंबार्क संप्रदाय के अनेक कवियों ने ब्रजभाषा के शृंगार-साहित्य का भी सृजन किया है, अतः निंबार्काचार्य का संक्षिप्त परिचय दिया जाता है।

श्री निंबार्काचार्य—

धार्मिक क्षेत्र में राधा-कृष्ण की उपासना का प्रचार करने वाले श्री निंबार्काचार्य वैष्णव धर्म की एक विशिष्ट शाखा के प्रवर्त्तक थे। दर्शन के क्षेत्र में उनका मत 'द्वैताद्वैत' के नाम से प्रसिद्ध है। उनका निश्चित समय विवाद का विषय है। निंबार्क संप्रदाय के अनुयायी उनको विक्रम संवत् के आस-पास उत्पन्न हुआ बतलाते हैं, किंतु अधिकांश विद्वानों के मतानुसार वे विक्रम की बारहवीं शताब्दी के लगभग हुए थे।

वैष्णव धर्म के विभिन्न संप्रदायों के प्रवर्त्तक दक्षिण देशीय आचार्य थे, केवल निंबार्काचार्य के विषय में यह कहा जाता है कि वे ब्रज-मंडल के अंतर्गत निंबग्राम में उत्पन्न हुए थे। अनेक विद्वान इस मत को अस्वीकार कर निंबार्काचार्य को भी दाक्षिणात्य मानते हैं। उनका कहना है कि वे आधुनिक विलारी जिले के निंबापुर ग्राम में उत्पन्न हुए थे।

निंबार्काचार्य तैलंग ब्राह्मण थे। वे कृष्ण को विष्णु का अवतार मान कर राधा-कृष्ण की सम्मिलित उपासना का प्रचार करते थे। उन्होंने कृष्णलीला की पुरातन भूमि मथुरा और वृंदावन में अपने संप्रदाय के प्रधान केन्द्र स्थापित किये। ब्रज में अपने धार्मिक केन्द्र स्थापित करने वाले शायद वे पहले वैष्णव आचार्य थे।

निंबार्काचार्य और उनके आरंभिक शिष्यों ने अपने समस्त ग्रंथों की रचना संस्कृत भाषा में की थी। जब श्री वल्लभाचार्य के शिष्यों द्वारा ब्रजभाषा में साहित्य प्रस्तुत होने लगा, तब निंबार्क संप्रदाय के कवियों ने भी ब्रजभाषा में रचनाएँ कीं।

निंबार्क संप्रदाय की भक्ति-भावना के अतिरिक्त बंग देश की मधुरा भक्ति से भी ब्रज का साहित्य प्रभावित हुआ है, अतः बंगीय भक्ति के विषय में भी यहाँ पर लिखना आवश्यक है।

बंगीय भक्ति—

प्राचीन काल से ही बंग भूमि में तांत्रिक मत और शाक्त संप्रदाय का अधिक प्रभाव रहा है। जब भारत के अन्य प्रांतों में बौद्ध धर्म का प्रभाव कम हो गया था, तब भी महायान के विकृत रूप में उसका कुछ प्रभाव बंग भूमि में शेष था। प्रेम मूलक साधना और परकीया प्रेम के प्रचारक सहजिया पंथ और बंगाल के आउल-बाउल उसी बौद्ध धर्म के ध्वसावशेष थे। बंग देश के आउल-बाउल प्रेममार्गीय संत थे। बाउल का अर्थ है बावला अर्थात विक्षिप्त। ये बाउल मत मस्त साधक थे और उनमें सभी जातियों के व्यक्ति सम्मिलित थे। 'प्रेमान्तिकता उनका पारभाषिक शब्द है, जिसका अभिप्राय है कि प्रेम का अंतिम लक्ष प्रेम ही है, अर्थात प्रेम किसी इष्ट विशेष की प्राप्ति के लिए नहीं, बल्कि केवल प्रेम के लिए ही करना चाहिए।

जब भारत में वैष्णव धर्म के पुनरुत्थान का आंदोलन उठा तो उसका प्रवाह बे रोक टोक दक्षिण से उत्तर तक गया, किंतु पूर्व में उसे तांत्रिकवाद से कठिन मोर्चा लेना पड़ा। वैष्णव धर्म के बढ़ते हुए प्रभाव को बंगीय भूमि रोक तो न सकी, किंतु जिस प्रकार के वातावरण में बंगीय समाज अब तक रह रहा था, उसके कारण वह वैष्णव धर्म को शुद्ध रूप में भी स्वीकार न कर सका। वहाँ पर वैष्णव और तांत्रिक मतों की सम्मिलित उपासना-पद्धति प्रचलित हुई, जिसका स्वरूप 'ब्रह्मवैवर्त पुराण' में दिखलाई देता है। शिव-शक्ति के अनुकरण पर कृष्ण के साथ राधा की उपासना का विधान सर्व प्रथम इसी पुराण में किया गया है। कहते हैं वैष्णव धर्म में तांत्रिक मत का समावेश करने के अभिप्राय से किसी बंगीय पंडित ने इस पुराण की रचना की थी। श्री ग्राउस ने इस बात की संभावना प्रकट की है कि ब्रह्मवैवर्त पुराण की रचना चैतन्य महाप्रभु के शिष्य रूप-सनातन गोस्वामियों द्वारा हो सकती है। श्री ग्राउस का यह मत तथ्यहीन ज्ञात होता है।

बंग देश की वैष्णव भक्ति का आधार यही 'ब्रह्मवैवर्त पुराण' है, जिसके द्वारा तंत्र मत के शक्तिवाद में भागवत धर्म के ईश्वरवाद का मिश्रण कर एक नवीन संप्रदाय की नींव डाली गई है, जिसके कारण मधुर भाव

श्री ग्राउस कृत 'मथुरा-ए डिस्ट्रिक्ट मेमोग्रफ'

की भक्ति का प्रभाव बढ़ा और वह कालांतर में साहित्य और धर्म में गृहीत कर ली गई। प्रियतम अथवा प्रियतमा के रूप में अपने इष्टदेव की उपासना को माधुर्यभाव और उसके प्रति प्रेमानुभूति को मधुर रस कहते है। प्राणी मात्र में दाम्पत्य संबंध सबसे मधुर और निकट का संबंध है। दम्पति में प्रेम की जितनी अनन्यता होती है, उससे भी अधिक अनन्य भाव से भक्त को भगवान् की भक्ति करनी चाहिए, यही मधुर भाव की भक्ति का मूल आधार है।

भक्तिपूर्ण शृंगार-साहित्य और जयदेव—

अभी तक शृंगार-साहित्य का भक्ति से प्रत्यक्ष संबंध नहीं था। सं० १००० वि० के लगभग धार्मिक क्षेत्र में भक्ति-भावना का प्रभाव बढ़ने लगा, जिसका परिणाम तत्कालीन साहित्य पर भी पड़ा। इसके फल-स्वरूप भक्तिपूर्ण शृंगार-साहित्य की रचना होने लगी। संस्कृत साहित्य में इस प्रकार की रचना करने वाले कवियों में जयदेव सबसे अधिक प्रसिद्ध है।

जयदेव के समय (१२ वीं शती) तक शिव-पार्वती शृंगार के नायक-नायिका थे, किंतु इस परिवर्तित दृष्टिकोण के कारण जयदेव ने कृष्ण और राधा के रूप में काव्य-जगत को नवीन नायक-नायिका प्रदान किये। इस प्रकार उन्होंने भगवान् की भक्ति करने के लिए काव्य-रचना की विलास पूर्ण शैली का प्रचार किया। उन्होंने स्वयं कहा है—

यदि हरिस्मरणे सरसं मनो यदि विलास कलासु कुतूहलम्।
मधुरकोमलकांत पदावली शृणु तदा जयदेव सरस्वतीम्॥

अर्थात्—यदि विलास कला द्वारा हरि-स्मरण करना है, तो जयदेव की कोमल कांत पदावली को सुनिये।

जयदेव की इस मधुर कोमल-कांत पदावली का ऐसा आकर्षण हुआ कि भक्तों ने अपने इष्टदेव की उपासना में और कवियों ने अपने काव्य की रचना में उसका उपयोग किया है। चैतन्य महाप्रभु ने जयदेव के पदों को अपनी भक्ति-भावना का साधन बनाया, जिसके कारण वे विलास कला-पूर्ण पद स्तोत्र की तरह वैष्णवों द्वारा इष्टदेव के समक्ष गाये जाने लगे। इस प्रकार शिव-पार्वती के स्थान पर राधा-कृष्ण की शृंगार-भक्ति का प्रचार होने लगा।

महाकवि जयदेव अपनी अपूर्व शृंगारमयी रचना 'गीत गोविंद' के कारण संस्कृत साहित्य में अमर हो गये हैं। उनकी मधुर कोमल-कांत पदावली रसिकों एवं भक्तों के हृदय का हार बनी हुई है। 'गीत गोविंद' संस्कृत गीति-काव्य की श्रेष्ठतम रचना है। इसमें १२ सर्ग हैं। समस्त ग्रंथ में श्री कृष्ण और राधिका की प्रेम-लीलाओं का बड़ा रसपूर्ण वर्णन हुआ है।

प्रांतीय भाषाओं का शृंगार-भक्ति पूर्ण साहित्य—

जयदेव के बाद प्रांतीय भाषाओं के उत्थान का समय आता है। भाषा-विकास की दृष्टि से ये प्रांतीय भाषाएँ प्राकृत-अपभ्रंश की शृंखला में आती हैं, किंतु साहित्य-विकास की दृष्टि से उनका संबंध संस्कृत से अधिक है। इसका कारण यह है कि जिस समय इन भाषाओं के उत्थान का आरंभ हुआ, उस समय देश में बड़े-बड़े धर्माचार्यों द्वारा वैष्णव भक्ति का प्रचार हो रहा था, जिसका प्रभाव उक्त भाषाओं के साहित्य पर भी हुआ। ये सभी धर्माचार्य संस्कृतज्ञ थे और संस्कृत के धार्मिक साहित्य द्वारा ही वे अपने मत का प्रचार करते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि प्रांतीय भाषाओं का आरंभिक साहित्य प्राकृत-अपभ्रंश की परंपरा का होते हुए भी उसके क्रमिक उत्थान में संस्कृत साहित्य से अधिक प्रेरणा मिली है। यही कारण है कि प्रांतीय भाषाओं में संस्कृत शब्दावली और विचार-धारा का प्राधान्य है।

इन प्रांतीय भाषाओं में बंग, मैथिली एवं ब्रजभाषा में भक्तिपूर्ण शृंगार रस की कविता करने वाले कविगण जयदेव से अत्यंत प्रभावित है। मैथिल कवि विद्यापति और ब्रज के कवियों की रचनाओं में जयदेव का स्पष्ट प्रभाव ज्ञात होता है।

चंडीदास और विद्यापति—

चंडीदास बंग भाषा के पहिले कवि हैं, जिन्होंने राधा-कृष्ण की शृंगार लीलाओं पर काव्य-रचना की है। उनका समय संभवतः विक्रम की १५ वीं शती का अंतिम भाग है। वे बंग भाषा के आदि-काल के कवियों में हैं, और अपनी काव्य-माधुरी के कारण उक्त भाषा के साहित्य में आदर की दृष्टि से देखे जाते हैं। उन्होंने राधा का जैसा उज्ज्वल और सजीव चित्रण

किया है, वैसा बग भाषा के अन्य प्राचीन कवियों की कविता मे दृष्टिगोचर नहीं होता है।

विद्यापति मैथिल देश के सुप्रसिद्ध कवि हो गये हैं। वे सं० १४६० मे विद्यमान थे। वे धार्मिक विचारों से संभवतः शैव थे, किंतु उन्होंने राधा-कृष्ण की शृंगार-लीलाओं का बडी तन्मयता पूर्वक गायन किया है। विद्यापति ने मैथिली, संस्कृत और अपभ्रंश तीनों भाषाओं मे रचनाएँ की है। अपभ्रंश के एक रूप 'अवहट्ठ' मे उनकी दो पुस्तकें 'कीर्तिलता' और 'कीर्ति पताका' हैं। उन्होंने संस्कृत और प्राकृत भाषाओं से भी अधिक 'अवहट्ठ' भाषा के माधुर्य की सराहना की है, और इस माधुर्य गुण पर मुग्ध होकर ही उन्होंने उक्त भाषा मे रचना भी की है। उन्होंने 'कीर्तिलता' मे स्वयं लिखा है—

सक्कै बानी बुअ अन भावै। पाओ रस को मम्म न पावै॥
देसिल बैना सब जन मिट्ठा। ते तइसन जम्पौ अवहट्ठा॥

अर्थात्—संस्कृत वाणी बुद्धिमानों को भाती है, प्राकृत रस के मर्म को नही पा सकती, देशी बोली सब लोगों को मीठी लगती है, इसलिए मैं अवहट्ठ भाषा मे रचना करता हूँ।

विद्यापति का महत्व उनकी संस्कृत और अवहट्ठ की रचनाओं पर नहीं है, बल्कि हिंदी भाषा के प्रांतीय रूप मैथिली मे रचे हुए उनके पदों के कारण है। विद्यापति की पदावली मे राधा-कृष्ण की शृंगार-लीलाओं का बड़ा मार्मिक एवं सरस वर्णन हुआ है। उनके काव्य मे ब्रजभाषा के नायिकाभेद का भी आरंभिक रूप दिखलाई देता है। उन्होंने वयसंधि, दूती, मान, मान-भंग, अभिसार, मिलन, विरह, नखसिख आदि नायिकाभेद और शृंगार की विभिन्न अवस्थाओं का मधुर वर्णन किया है।

हिंदी की गीति काव्य शैली और पद-साहित्य मे भक्तिपूर्ण शृंगारिक रचना आरंभ करने का श्रेय विद्यापति को है। इसी शैली मे ब्रज के कवियों ने बाद मे अपार साहित्य प्रस्तुत किया था, जिसका प्रभाव समस्त उत्तर भारत पर पड़ा है।

विद्यापति के शृंगारिक काव्य की मूल प्रेरणा साहित्यिक है, किंतु जयदेव की रचना के कारण इस प्रकार के शृंगारिक कथन धर्म और भक्ति

में गृहीत कर लिये गये थे। विद्यापति के सबसे बड़े प्रचारक महाप्रभु चैतन्य थे, जिन्होंने जयदेव, लीलाशुक, चंडीदास और विद्यापति—इन चारों कवियों की शृंगार पूर्ण रचनाओं के गायन को अपनी भक्ति-भावना का अंग बना लिया था। इन कवियों ने शृंगार-रस की मादकतापूर्ण कविता की है, किंतु चैतन्य संप्रदाय के भक्तगण इनका गायन करते हुए आनंद-विभोर और भक्ति-भाव में तल्लीन हो जाते हैं।

श्री चैतन्य महाप्रभु—

श्री चैतन्य महाप्रभु बंग देश में वैष्णव भक्ति के सबसे बड़े प्रचारक हो गये हैं। उनका जन्म सं० १५४२ के लगभग हुआ और ४८ वर्ष की आयु में ही वे परम धाम को प्राप्त हुए; किंतु इस अल्प समय में ही उनके उपदेशों के कारण बंगाल में एक प्रकार की धार्मिक क्रांति होगई। जो बंग भूमि सदियों से शैव, शाक्त और तांत्रिक विचार-धारा की अनुगामिनी थी, वह चैतन्य महाप्रभु के सात्विक जीवन और भक्तिपूर्ण उपदेशों के कारण राधा-कृष्ण की भक्ति के रंग में रँग गई। उन्होंने मधुर भाव की रागानुगा भक्ति का प्रचार किया, जिसके कारण वे राधा के अवतार माने जाते हैं।

उन्होंने वैष्णव धर्म के जिस विशिष्ट संप्रदाय की नींव डाली, वह गौड़ीय संप्रदाय के नाम से प्रसिद्ध है। दर्शन के क्षेत्र में इस संप्रदाय का सिद्धांत अचिंत्यभेदाभेद कहलाता है और उपासना के क्षेत्र में इस संप्रदाय द्वारा राधा-कृष्ण की रागानुगा भक्ति का प्रचार किया जाता है। इस प्रकार चैतन्य संप्रदाय दर्शन के क्षेत्र में मध्वाचार्य से और उपासना के क्षेत्र में निंबार्काचार्य से प्रभावित ज्ञात होता है।

श्री चैतन्य महाप्रभु ने स्वयं किसी सिद्धांत ग्रंथ की रचना नहीं की, किंतु उनके शिष्य-प्रशिष्यों की रचनाओं के कारण इस संप्रदाय का विशाल धार्मिक साहित्य है, जो संस्कृत और बंगभाषा में है।

चैतन्य महाप्रभु के विद्वान शिष्यों में सनातन, रूप और उनके आत्मीय जीव विशेष प्रसिद्ध हैं। सनातन गोस्वामी धुरंधर पंडित और सात्विक प्रकृत्ति के विद्वान महात्मा थे। उन्होंने 'वृहद् भागवतामृत' 'वैष्णवतोषिणी' और 'हरिभक्तिविलास' जैसे उच्च कोटि के सांप्रदायिक ग्रंथों की रचना

की है। रूप गोस्वामी विद्वान, कवि और वैष्णव रस-शास्त्र के महान् व्याख्याता थे। उन्होंने 'लघु भागवतामृत' तथा अन्य ग्रंथों के अतिरिक्त 'उज्ज्वल नीलमणि' तथा 'भक्ति रसामृत सिंधु' जैसे विख्यात रस-ग्रंथों की रचना की है। पिछली दोनों रचनाएँ वैष्णव रस-शास्त्र की सर्वमान्य कृतियाँ हैं। जीव गोस्वामी भी उच्च श्रेणी के विद्वान थे। उन्होंने चैतन्य संप्रदाय के सिद्धांत ग्रंथों की रचना की है। चैतन्य संप्रदाय के मतानुसार श्री मद्भागवत का भाष्य 'षट् संदर्भ' इन्हीं जीव गोस्वामी का रचा हुआ है, जो संप्रदाय का प्रमुख सिद्धांत ग्रंथ कहलाता है। ये सभी रचनाएँ संस्कृत भाषा में है। बाद में बंगभाषा में भी इस संप्रदाय का अपार साहित्य निर्मित हुआ है। इस संप्रदाय के कवियों ने ब्रजभाषा साहित्य में बहुत कम रचना की है, किंतु ब्रज का शृंगार साहित्य इस संप्रदाय की विचार-धारा से भी प्रभावित हुआ है।

भक्ति रहित शृंगार-साहित्य की परंपरा—

ब्रजभाषा के शृंगार-साहित्य में भक्तिपूर्ण रचनाओं के अतिरिक्त ऐसी कविताओं की भी प्रचुरता है, जिनमें काव्य-चमत्कार द्वारा रस-संचार किया गया है। इन कविताओं का न तो धर्म से संबंध है, और न इनमें भक्ति का आग्रह है, किंतु ये काव्यशास्त्रोक्त शृंगार रस से लबालब भरी हुई हैं। इस प्रकार की रचनाओं की परंपरा भी प्राचीन काल से चली आ रही है।

आर्यों के प्राचीन साहित्य में दो प्रकार की रचनाएँ विशेष रूप से मिलती है—एक आध्यात्मिकता संबंधी, दूसरी कर्मकांड संबंधी। आध्यात्मिक रचनाओं में उपनिषद्, दर्शन तथा बौद्धों और जैनों के धर्म ग्रंथ उल्लेखनीय हैं। कर्मकांड संबंधी रचनाओं में ब्राह्मण ग्रंथ, श्रौत और गृह्य सूत्र, प्राचीन स्मृतियाँ एवं पौराणिक साहित्य का नाम लिया जा सकता है। विक्रम संवत के आस-पास एक तीसरे प्रकार की रचना-शैली का आरंभ हुआ था। उसका संबंध न तो आध्यात्मिकता से था और न कर्मकांड से, उसमें ऐहिकतापूर्ण सरस कवित्व का प्राधान्य था। वे सरस रचनाएँ धारा वाहिक रूप में न होकर स्फुट रूप से छोटे-छोटे पद्यों में अपने आप में पूर्ण होती थीं। इस प्रकार की रचनाओं को काव्यशास्त्र में मुक्तक काव्य कहा गया है।

जिस प्रकार की दो रचना-शैलियों का ऊपर उल्लेख हो चुका है, उनका उद्देश्य एक प्रकार से धार्मिक था, किंतु इस तीसरी रचना शैली का धर्म से कोई संबंध नहीं था। इस नवीन शैली की रचनाओं का स्पष्ट उद्देश्य रस-संचार द्वारा मनोरंजन करना था। इस शैली की रचनाएँ सर्व प्रथम प्राकृत भाषा में आरंभ हुईं, और बाद में संस्कृत भाषा में भी उनका अनुकरण किया गया।

जिस समय भारतीय समाज का उच्च अर्थात् पंडित वर्ग आध्यात्मिकता एवं कर्मकांड की गंभीर रचनाओं में व्यस्त था, उस समय जन-साधारण के मनोरंजन के लिए जन-कवि सरस कवित्व पूर्ण छोटे-छोटे छंदों द्वारा ऐहिक अर्थात लौकिक काव्य की रचना कर रहे थे। पंडित वर्ग की रचना का माध्यम संस्कृत भाषा थी, तो जन-साधारण प्राकृत भाषा में रुचि रखता था। जन साधारण की प्राकृत भाषा में ऐसे सरस कवित्वपूर्ण छोटे छंदों की इतनी बहुतायत होगई कि पंडितों एवं उच्च स्तर के व्यक्तियों का भी उनकी ओर ध्यान गया, जिससे फल स्वरूप संस्कृत भाषा में भी उसी प्रकार की रचनाएँ होने लगीं।

'गाथा-सप्तसई'—

इस प्रकार की सरस रचनाओं का सर्व प्राचीन संग्रह प्राकृत भाषा की 'गाथा सप्तसई' है। इसका संकलन विक्रम के प्रथम शतक में सातवाहन वंशीय राजा हाल द्वारा हुआ था। संकलन कर्ता ने लिखा है कि उस समय की प्रचलित प्रायः एक करोड़ गाथाओं में से चुनी हुई सात सौ गाथाएँ इस संग्रह में दी गई हैं। संभव है यह कथन अतिशयोक्ति पूर्ण हो, फिर भी इससे यह तो ज्ञात होता है कि उस समय प्राकृत भाषा में इस प्रकार की रचनाएँ बड़ी प्रचुरता से हो रही थीं। उनका महत्व इसी से प्रकट है कि एक नरेश का ध्यान उनके संकलन करने की ओर गया, जिसने अत्यंत परिश्रम और प्रचुर धन-व्यय के उपरांत ही इस प्रकार का संग्रह किया होगा। 'गाथा सप्तसई' की रचना उस भाषा में है, जिसको वैयाकरणों ने महाराष्ट्रीय प्राकृत कहा है।

'गाथा सप्तसई' मुक्तक गीति-काव्य की मनोहर कृति है, जो शृंगार रस से लबालब भरी हुई है। कुछ विद्वानों का अनुमान है कि इसकी रचना विक्रम संवत के आरंभ में हुई थी। कुछ लोग इसे विक्रम की चौथी अथवा पाँचवीं शती की रचना मानते हैं। अधिकांश विद्वानों

की तरह विद्वद्वर पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी का मत है कि उसकी रचना तो प्रथम शतक में हुई थी, किंतु उसमें बहुत सी गाथाएँ बाद में सम्मिलित हो गईं, जिनके कारण वह उतनी प्राचीन कृति ज्ञात नहीं होती* ।

संस्कृत का शृंगार-साहित्य—

संस्कृत साहित्य में रस-संचार के लिए नाटक एवं काव्यों की रचनाओं का आरंभ भी प्रायः इसी समय हुआ था। भास और शूद्रक जैसे प्राचीन नाटककारों की रचनाएँ संस्कृत साहित्य में रस-सृष्टि के लिए प्रसिद्ध है, किंतु इस क्षेत्र में महाकवि कलिदास की रचनाएँ सबसे अधिक विख्यात हैं।

कालिदास के बाद संस्कृत साहित्य में नाटक एवं काव्यों की विशेष रूप से रचना हुई है। भारवि, माघ, भवभूति, श्रीहर्ष आदि कवियों ने अपनी सरस रचनाओं द्वारा संस्कृत साहित्य में अपूर्व रस-सृष्टि की है। संस्कृत के काव्य और नाटकों में वीर और करुण रसों के अतिरिक्त शृंगार रस की ही प्रमुखता है। कालिदास और श्रीहर्ष की रचनाएँ शृंगार-वर्णन के लिए विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं।

'गाथा सत्तसई' के अनुकरण पर संस्कृत में जो काव्य-रचना की गई, उसका सर्व प्राचीन उदाहरण अमरुक कवि की रचना में दिखलाई देता है। संभवतः इससे पूर्व की रचनाएँ भी हों, किंतु वे आजकल अप्राप्य हैं। अमरुक कवि का समय भी निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है, किंतु विक्रम की नवम शताब्दी से पूर्व किसी समय में उनका होना निश्चित है, क्योंकि संस्कृत के महान् काव्यशास्त्री आनंदवर्धन ने अपने 'ध्वन्यालोक' में अमरुक के सरस मुक्तक काव्य की बड़ी प्रशंसा की है आनंदवर्धन ने लिखा है। अमरुक का एक-एक मुक्तक छंद अन्य कवियों के प्रबंध काव्यों के समान महत्व रखता है, क्योंकि जितना भाव एक कवि किसी प्रबंध काव्य में भर सकता है, उतना अमरुक ने एक छोटे पद्य में ही भर दिया है।

---

*"हाल की सतसई (सत्तसई) में बहुत से प्रक्षिप्त पद्य हैं, जिनके कारण वह रचना अर्वाचीन-सी लगती है। जैसे अंगारवार (मंगलवार), हारा और राधिका शब्द से संबद्ध आर्याएँ। परंतु अंततः साढ़े चार सौ आर्याएँ काफी प्राचीन जान पड़ती हैं। उनका सन् ईसवी के पूर्व की या पर की प्रथम शताब्दी में रचित या संकलित होना असंभव नहीं है।" —"हिंदी साहित्य की भूमिका" पृ० ११२

ध्वन्यालोक के एक उदाहरण में गोपी-राधा के प्रेम का भी वर्णन हुआ है। विद्वानों का मत है कि इस प्रकार का कवित्व इससे पूर्व के संस्कृत साहित्य में नहीं मिलता है। संस्कृत साहित्य में इसके बाद की सरस शृंगारपूर्ण रचना लीलाशुक कृत "कृष्णकर्णामृत" है। यह स्तोत्र चैतन्य महाप्रभु को अत्यंत प्रिय था। कहते हैं इस स्तोत्र को महाप्रभु जी दक्षिण से लाये थे।

प्राकृत गाथा सत्तसई और अमरुक की संस्कृत रचना के समान गोवर्धनाचार्य की 'आर्या सप्तशती' भी प्रसिद्ध रचना है। गोवर्धनाचार्य बंग देश के अंतिम राजा लक्ष्मणसेन (सं० ११७३ वि०) के राजकवि और गीतगोविंदकार सुप्रसिद्ध जयदेव के समकालीन थे। गोवर्धन और जयदेव दोनों ही महान् कवि राजा लक्ष्मणसेन के आश्रित थे। जिस राजा ने गोवर्धन और जयदेव जैसे कवि पुंगवों को आश्रय दिया था, उसकी रसिकता और गुणग्राहकता के विषय में क्या कहा जाय! गोवर्धनाचार्य ने हाल की 'गाथा सत्तसई' की शैली पर अपनी सुप्रसिद्ध कृति 'आर्या सप्तशती' की रचना की थी। गोवर्धन ने आर्या जैसे छोटे छंद में विपुल भाव भर दिये हैं। संस्कृत साहित्य में उनसे पहिले इस छंद में ऐसा कौशल किसी कवि ने नहीं दिखलाया था। 'आर्या सप्तशती' में शृंगार रस के दोनों पक्ष संयोग एवं वियोग संबंधी बड़ा अद्भुत काव्य कौशल दिखलाया गया है।[1] उन्होंने नायिकाओं की नाना प्रकार की चेष्टाओं का बड़ा मार्मिक एवं स्वाभाविक वर्णन किया है। इसीलिए जयदेव जैसे शृंगार-रस के सिद्ध कवि ने भी गोवर्धन को शृंगार रस का आचार्य कहा है।

अमरुक ने अपनी रचना शार्दूलविक्रीडित जैसे बड़े छंद में की है किंतु गोवर्धन ने हाल की तरह छोटे छंद आर्या को अपनाया है। इस प्रकार विषय, शैली, छंद, नाम आदि हर प्रकार से 'आर्या सप्तशती' में 'गाथा सत्तसई' का अनुकरण किया गया है, किंतु इस पर भी विद्वानों का मत है कि सरस कवित्व की जो छटा अब से प्रायः दो सहस्र वर्ष पूर्व संगृहीत प्राकृत भाषा की उस 'सत्तसई' में दिखलाई देती है, वह उसके एक सहस्र वर्ष पश्चात तथा उसी के आधार पर बनी हुई इस 'आर्या सप्तशती' में नहीं है, यद्यपि हाल, अमरुक और गोवर्धन तीनों ही इस विषय के माने हुए कवि हैं।

---

1. "शृंगारोत्तर सत्प्रमेयरचनैराचार्य गोवर्धन स्पर्धी कोऽपि न विश्रुतः"

हाल, अमरुक और गोवर्धन तीनों की रचनाएं शृंगार रस प्रधान हैं और उनमें नायिकाओं की विभिन्न दशाओं का बड़ा मनोहारी वर्णन हुआ है। ब्रजभाषा में 'बिहारी सतसई' इसी प्रकार की रचना है। बिहारी ने उन तीनों कवियों की रचनाओं का उपयोग किया है। उनके अनेक दोहों में इन कवियों के भाव आ गये हैं, यद्यपि बिहारी ने अपनी अपूर्व काव्य-प्रतिभा के कारण उन भावों मे और भी अधिक चमत्कार पैदा कर दिया है। बिहारी के अतिरिक्त पद्माकर आदि कवियों ने भी उन प्राचीन कवियों की सूक्तियों से लाभ उठाया है।

इस प्रकार ब्रजभाषा के महान् शृंगार-साहित्य का निर्माण भक्तिपूर्ण और भक्तिरहित प्राचीन शृंगार साहित्य की पृष्ठभूमि पर हुआ है। संस्कृत और प्राकृत-अपभ्रंश में इस प्रकार की दो धाराएँ होते हुए भी ब्रजभाषा का शृंगार साहित्य प्रायः भक्ति प्रधान है। उसका आरंभिक रूप तो शुद्ध भक्ति अथवा शृंगार-भक्ति को लेकर ही खड़ा किया गया है, जिसके कारण हिंदी साहित्य के इतिहास का वह परिच्छेद 'भक्तिकाल' के नाम से प्रसिद्ध है। इसके बाद के कवियों ने भक्ति अथवा शृंगार-भक्ति की अपेक्षा शृंगार रस पर अधिक जोर दिया है, किंतु उन्होंने भी प्रकारांतर से भक्ति का सहारा पकड़ा है। शुद्ध शृंगार वादी कवियों ने भी, चाहें बहाने के लिए ही सही, भक्ति भावना का एक दम परित्याग नहीं किया है।

ब्रजभाषा का शृंगार साहित्य इतना प्रचुर और महत्वपूर्ण है कि उसकी समता अन्यत्र मिलनी कठिन है। इस पुस्तक का विषय नायिकाभेद इसी शृंगार साहित्य का एक प्रमुख अंग है, अतः आगामी परिच्छेद मे उसके संबंध मे कुछ विस्तार पूर्वक वर्णन किया जावेगा।

चतुर्थ परिच्छेद

ब्रजभाषा का शृंगार-साहित्य

★

हिंदी के शृंगार-साहित्य का आरंभिक रूप—

संसार की समस्त भाषाओं के साहित्य में शृंगार-रसपूर्ण रचनाओं की अधिकता है। शृंगार-वर्णन एक ऐसा अनिवार्य और आवश्यक विषय है, जिसे उच्च साहित्य और लोक-वाङ्मय दोनों में आदर पूर्वक स्थान दिया गया है। संसार की किसी भाषा के इतिहास को देख लीजिए, उसमें आदि काल से ही शृंगारिक रचनाएँ दिखलाई देंगी। इसी नियम के अनुसार हिंदी साहित्य के आरंभ की वीर-गाथाओं में वीर के साथ शृंगार रस की रचनाएँ भी यथेष्ट परिमाण में मिलती है। विक्रम की बारहवीं शताब्दी में हिंदी भाषा के सर्व प्रथम वास्तविक कवि चंद के 'रासो' में अन्य विषयों के साथ शृंगार-वर्णन भी बड़े सुंदर लिखे गये है। रासो के रचना-काल और उसकी भाषा की प्रामाणिकता के संबंध में बड़ा मत-भेद है, किंतु उसमें चंद की मूल रचनाएँ और ब्रजभाषा के आरंभिक रूप के सूत्र निस्संदेह उपलब्ध हो सकते है। विक्रम की चौदहवीं शताब्दी में अमीर खुसरो एक प्रसिद्ध मुसलमान विद्वान हो गये है। उनका जन्म सं० १३१२ में और उनकी मृत्यु सं० १३८० में हुई थी। खुसरो अरबी, फारसी, तुर्की, संस्कृत और हिंदी के विद्वान और कई भाषाओं के कवि थे। हिंदी भाषा में उन्होंने पहेली, मुकरनी और गीतों द्वारा जन-साधारण के मनोरंजन की कविता की है। पहेली और मुकरियों की भाषा ब्रज मिश्रित खड़ी बोली है, किंतु गीत और दोहाओं की भाषा प्राचीन काव्य-भाषा है, जो खुसरो के समय तक घिस-घिसा कर ब्रजभाषा के निकट आ चुकी थी। खुसरो की कविता में शृंगार रस और नायिकाओं की उक्तियों का भी सजीव वर्णन है*।

---

* खुसरो रैन सोहाग की, जागी पी के संग। तन मेरो, मन पीउ को, दोऊ भये एक रंग॥
गोरी सोवै सेज पर, मुख पर डारे केस। चल खुसरो घर आपने रैन भई चहु देस॥
सखी पिया को जो मैं न देखूँ, तो कैसे काटूँ अँधेरी रतियाँ।
न नींद नैना, न अंग चैना, न आप आवै, न भेजै पतिया। —खुसरो

सं० १५९८ वि० में रची हुई कृपाराम कवि की 'हिततरंगिनी' नामक एक रचना उपलब्ध हुई है। यह ब्रजभाषा के आरंभिक शृंगार साहित्य और नायिकाभेद की महत्वपूर्ण कृति है। इससे ज्ञात होता है कि कृपाराम के समय में शृंगार रस की रचना बड़े विस्तार पूर्वक हो रही थी†, किंतु उस समय के रचे हुए ग्रंथ आजकल अप्राप्य है। ब्रज के लोक-वाङ्मय और गायकों के गीतों मे भी उस समय के शृंगार-साहित्य का आभास मिल सकता है, किंतु दुर्भाग्य से वे भी उपलब्ध नहीं है। सूरदास के पूर्ववर्ती बैजू बावरा के कुछ शृंगार-गीत प्राप्त हुए हैं, जिनसे यह स्पष्ट रूप से ज्ञात हो जाता है कि इस प्रकार की रचना पहिले से ही होती आ रही थी। बैजू बावरा एक प्रसिद्ध गायक हो गये है, जिनकी संगीत कला की प्रसिद्धि इस देश में तानसेन से पूर्व फैली हुई थी। बैजू के गीतों में ब्रजभाषा के आरंभिक शृंगार-साहित्य की झलक दिखलाई देती है‡।

ब्रजभाषा शृंगार साहित्य के सर्व प्रथम महाकवि सूरदास माने जाते है। उन्होने विनय और वात्सल्य के अतिरिक्त भक्तिपूर्ण शृंगार की भी सर्वोत्कृष्ट रचना की है। सूरदास के कवित्व की प्रौढ़ता और उनके कथन की साहित्यिक पूर्णता ही यह सिद्ध करती है कि उनसे पहिले भी इस प्रकार रचनाएँ हो रही थी, जिनका विकास सूरदास के काव्य मे हुआ है। ब्रजभाषा के शृंगार-साहित्य का जो निखरा हुआ रूप सूरदास की रचना मे दिखलाई देता है, वह एक दम नहीं बन गया था।

---

† बरनत कवि सिंगार रस, छंद बडे विस्तारि।
मै बरन्यो दोहान बिच, यातें सुघर विचारि॥

—"हित तरंगिनी"

‡ मुरली बजाय रिझाय लई मुख मोहन ते।
गोपी रीझि रही रस-तानन सों, सुध-बुध सब बिसराई।
सुनि सुनि मन मोहे, मगन भई देखत हरि-आनन॥
जीव-जंतु, पसु-पंछी, सुर-नर-मुनि मोहे, हरे सबके प्रानन।
'बैजू' बनवारी बंसी अधर धरि वृंदाबन-चंद बस किए सुनत ही कानन॥

—'बैजू बावरा"

वैष्णव धर्माचार्य और शृंगार साहित्य—

ब्रजभाषा का आरंभिक शृंगार-साहित्य भक्ति प्रधान है, जो वैष्णव धर्म विभिन्न आचार्यों के सिद्धांतों से प्रभावित है। वैष्णव धर्म के जिन आचार्यों ने ब्रज में अपने धार्मिक केन्द्र स्थापित किये थे, उनमें निंबार्काचार्य, चैतन्य महाप्रभु, वल्लभाचार्य, हित हरिवंश और हरिदास स्वामी प्रमुख थे। उन सभी आचार्यों के सम्प्रदायों द्वारा ब्रजभाषा के शृंगार-साहित्य का निर्माण हुआ है।

श्री निंबार्काचार्य धार्मिक क्षेत्र में राधा-कृष्णोपासना के प्रवर्त्तक थे और ब्रज में संभवतः उन्होंने ही सर्व प्रथम अपना केन्द्र स्थापित किया था। श्री निंबार्काचार्य और उनके आरंभिक शिष्यों की रचनाएँ संस्कृत भाषा में हैं, किंतु उनकी शिष्य-परंपरा में १६ वीं शती के अनंतर श्रीभट्ट के समय से शृंगार-साहित्य की रचना हुई है। इस संप्रदाय के महात्माओं ने जो भक्तिपूर्ण शृंगार की रचना की है, वह ब्रजभाषा साहित्य की बहुमूल्य निधि है।

श्री चैतन्य महाप्रभु ने १६ वीं शताब्दी के मध्य में राधा-कृष्ण की मधुरा भक्ति का प्रचार बंग देश में आरंभ किया। चैतन्य महाप्रभु स्वयं स्थायी रूप से ब्रज में नहीं रहे और न उनके संप्रदाय के कवियों ने ब्रजभाषा में अधिक रचनाएँ ही की हैं, किंतु चैतन्य महाप्रभु के प्रमुख शिष्यों ने ब्रज में स्थायी निवास बनाकर ब्रज-भूमि की अपूर्व गौरव-वृद्धि की है। इसके साथ ही इस संप्रदाय की धार्मिक विचार-धारा से भी ब्रज का शृंगार-साहित्य अत्यधिक प्रभावित हुआ है।

महाप्रभु वल्लभाचार्य ने स्वयं तो ब्रजभाषा में कोई महत्वपूर्ण रचना नहीं की, किंतु सूरदास प्रभृति उनके शिष्यों ने आरंभ से ही ब्रजभाषा को अपने काव्य का माध्यम बनाया था। वल्लभाचार्य जी के सुयोग्य पुत्र विट्ठलनाथ जी ने तो ब्रजभाषा काव्य को वह बल प्रदान किया, जिसके कारण वह शीघ्र ही उत्तर भारत में व्याप्त हो गया। उन्होंने 'अष्टछाप' की स्थापना द्वारा ब्रजभाषा काव्य को व्यवस्थित रूप से प्रश्रय दिया था। श्री वल्लभाचार्य और उनके संप्रदाय के कवियों का ब्रजभाषा के शृंगार-साहित्य की उन्नति से घनिष्टतम संबंध है, अतः उनके विषय में कुछ विस्तार पूर्वक आगे लिखा जायगा।

श्री हित हरिवंश और स्वामी हरिदास ने स्वयं ब्रजभाषा के शृंगार-साहित्य की रचना की और अपने अनुगामियों को भी इसके लिए उत्साहित किया। यही कारण है कि उनके द्वारा स्थापित राधावल्लभीय संप्रदाय और टट्टी संप्रदाय के कवियों ने ब्रजभाषा के अत्यंत गौरवशाली भक्तिपूर्ण शृंगार-साहित्य की रचना की है।

ब्रजभाषा शृंगार-साहित्य और श्री वल्लभाचार्य—

ब्रजभाषा के शृंगार-साहित्य की उन्नति में पुष्टि संप्रदाय के प्रवर्त्तक महाप्रभु वल्लभाचार्य और उनके अनुयाइयों का महत्वपूर्ण सहयोग रहा है। श्री वल्लभाचार्य का जन्म सं० १५३५ में हुआ था और उनका देहावसान सं० १५८७ वि० में हुआ था। श्री रामानुजाचार्य की तरह उन्होंने ने भी देश के अनेक भागों में भ्रमण कर अपने सिद्धांतों का प्रचार किया। इसके अनंतर उन्होंने अपने आराध्य श्री कृष्ण की लीला-भूमि ब्रज के अंतर्गत गोवर्धन को अपने संप्रदाय का प्रमुख स्थान नियत किया। वहाँ पर उन्होंने श्रीनाथजी का एक मंदिर बनवा कर अपने धार्मिक कृत्यों को व्यवहारिक रूप देने की व्यवस्था की।

ब्रजभाषा साहित्य के सर्वश्रेष्ठ महाकवि सूरदास को प्रकाश में लाने का श्रेय वल्लभाचार्य जी को है और अपनी सरस कविता द्वारा वल्लभ-संप्रदाय के धार्मिक सिद्धांतों के विशद प्रचार में योग देने का श्रेय सूरदास को है। इस प्रकार इन दोनों महात्माओं के सहयोग से पुष्टि मार्ग की ही उन्नति नहीं हुई, बल्कि ब्रजभाषा के लिए जो स्थायी साहित्य प्राप्त हुआ, वह अभूतपूर्व और अनुपम है।

गोवर्धन के अतिरिक्त ब्रज के अंतर्गत दूसरा स्थान गोकुल भी इस संप्रदाय का प्रधान केन्द्र नियत किया गया। इस प्रकार आरंभ से ही वल्लभ संप्रदाय का ब्रज से संबंध होने के कारण उसका धार्मिक साहित्य ब्रजभाषा में बनने लगा। इस संप्रदाय के आचार्यों और अनुयाइयों ने जिस गौरवपूर्ण शृंगार-साहित्य का निर्माण किया है, उसके कारण ब्रजभाषा साहित्य का अत्यंत महत्व है।

सूरदास और सूरसागर—

सूरदास जी का कविताकाल सं० १५६० वि० के पश्चात् माना जाता है। वे आगरा व मथुरा के मध्यवर्ती गऊघाट नामक स्थान पर रहते थे और

विनय के पद गाकर लोगों की धार्मिक भावना को जागृत किया करते थे। उनकी शास्त्रोक्त संगीत-लहरी और आल्हादकारिणी कवित्व शक्ति का उस प्रांत में विशेष आदर था। आस-पास के लोग उनको श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे, और उनमें से कितने ही उनके शिष्य हो गये थे।

एक बार श्री वल्लभाचार्य ने उस मार्ग से जाते हुए गऊघाट पर विश्राम किया। उस समय उन्होंने सूरदास से मिलने की भी इच्छा प्रकट की। सूरदास वल्लभाचार्य के दर्शनार्थ गए और अपने पदों के गायन द्वारा उनको अत्यंत प्रसन्न किया। श्री वल्लभाचार्य को अपनी धर्म-स्थापना के मार्ग को प्रशस्त करने के लिए सूरदास जैसे गुणी व्यक्ति की अत्यन्त आवश्यकता थी और सूरदास भी वल्लभाचार्य जैसे गुरु की खोज में थे, अतः सं० १५६६ के लगभग वे महाप्रभु वल्लभाचार्य के शिष्य होकर पुष्टि संप्रदाय में सम्मिलित हो गए। उनके लिए गोवर्धन स्थित श्रीनाथ जी के मंदिर की कीर्तन-सेवा का भार सौंपा गया। वल्लभाचार्य जी के शिष्य होने के पूर्व सूरदास जी अत्यंत करुण भाव से विनय के पदों का गायन किया करते थे। वल्लभाचार्यजी ने सूरदास से कहा—

"जो सूर ह्वैके ऐसो काहे को घिघियात है, कछु भगवत लीला वर्णन करि...."।

इस आज्ञा के उपरांत सूरदास ने भागवत के आधार पर श्री कृष्ण-लीला के पदों का निर्माण करना आरंभ किया। सूरसागर में जो विनय आदि के स्फुट पद हैं, वे पुष्टि संप्रदाय की दीक्षा लेने के पूर्व के हो सकते हैं और राधा-कृष्ण की लीला विषयक पद इस घटना के पश्चात के हो सकते हैं। यह तो निश्चित है कि सूरसागर कोई क्रमबद्ध रचना नहीं है, बल्कि सूरदास जी के समय-समय पर रचे हुए पदों का संग्रह मात्र है। इसके कितने छंद सूरदास जी वल्लभ संप्रदाय में दीक्षित होने से पूर्व बना चुके थे, यह जानने का इस समय कोई साधन नहीं है, किंतु साधारणतया यह समझना चाहिए कि लीला विषयक अधिकांश पदों की रचना वल्लभ संप्रदाय में सम्मिलित होने के पश्चात् की है।

सूरदास का सूरसागर ब्रजभाषा साहित्य का शृंगार है। उसमें विशिष्ट साहित्यिक गुण इतने प्रचुर परिमाण में मिलते हैं कि उक्त साहित्य की प्रथम वास्तविक कृति होने पर भी उसकी साहित्यिक पूर्णता बड़े-बड़े साहित्य-

महारथियों को आश्चर्य और उलझन में डाल रही हैं†। सूरसागर में भागवत की कथा है, किंतु वह उसका अनुवाद नहीं है। भागवत के अन्य स्कंधों की कथा संक्षिप्त रूप में लिख कर दशम स्कंध को विस्तार पूर्वक लिखा गया है। इसमें भी लीलाओं का कथानक मात्र भागवत् से लिया गया है, किंतु रचना-शैली सूरदास की अपनी है।

सूरसागर एक भारी ग्रंथ है, जिसमें भगवान् श्री कृष्ण की बाललीला और गोपियों के प्रति उनकी अनेक चेष्टाओं का ऐसा सर्वांगपूर्ण साहित्यिक कथन हुआ है कि यह ग्रंथ वात्सल्य, शृंगार, भक्ति और विनय की अपूर्व उक्तियों के लिए आज भी अपनी तुलना नहीं रखता। सूरदास ने जिन विषयों को लिया है, उन पर ऐसा अधिकार पूर्ण और विस्तार के साथ लिखा है कि उनके परवर्ती कवियों के लिए उन विषयों पर लिखने के लिए मानो कुछ रहा ही नहीं! जिन्होंने लिखा है, वे सूरदास की सूक्तियों के प्रभाव से अपने को कठिनता से बचा सके हैं। अधिकाँश कवियों की तत्संबंधी अनूठी उक्तियाँ भी 'सूरदास की जूठी' ज्ञात होती हैं।

कहते हैं सूरदास ने एक लाख पदों की रचना की थी! इतना भारी काम एक कवि अपने जीवन में कर सकता है या नहीं, यह विचारणीय है। सूरसागर की अब तक की प्राप्त प्रतियों में दस सहस्र पद भी नहीं मिलते हैं, किंतु जितने अब तक उपलब्ध हुए हैं, वही सूरदास जी को ब्रजभाषा-कवियों का शिरमौर बनाने के लिए पर्याप्त हैं।

सूरदास का शृंगार वर्णन—

सूरदास के शृंगार वर्णन का आधार श्री वल्लभाचार्य के धार्मिक सिद्धांत और भागवत के कथानक कहे जा सकते हैं, किंतु राधा के संबंध में उन्होंने

---

† "ध्यान देने की सबसे पहिली बात यह है कि चलती हुई ब्रजभाषा में सब से पहिली साहित्यिक कृति इन्हीं की मिलती है, जो अपनी पूर्णता के कारण आश्चर्य में डाल देती है। पहिली साहित्यिक रचना और इतनी प्रचुर, प्रगल्भ और काव्यांग-पूर्ण कि अगले कवियों की शृंगार और वात्सल्य उक्तियाँ इनकी जूठी जान पड़ती हैं, यह बात हिंदी-साहित्य का इतिहास लिखने वालों को उलझन में डालने वाली होगी। सरसागर किसी पहले से चली आती हुई परंपरा का—चाहे वह मौखिक ही रही हो—पूर्ण विकास सा जान पड़ता है, चलने वाली परंपरा का मूल रूप नहीं।"

—श्री रामचंद्र शुक्ल

अपना मार्ग स्वयं बनाया था। श्री वल्लभाचार्य के दार्शनिक सिद्धांतों में राधा के लिए निश्चित व्यवस्था नहीं थी और भागवत के कृष्णलीला प्रसंग में भी राधा का उल्लेख नहीं है, किंतु सूरदास ने कृष्ण के साथ राधा को जोड़कर अपने वर्णन को सरस और मार्मिक बना दिया है। इस संबंध में उनको जयदेव और विद्यापति से प्रेरणा मिली होगी। इन कवियों ने राधा-कृष्ण का वर्णन अधिकतर कवि की दृष्टि से किया है, इसलिए मर्यादा के विचार से उनका आदर्श धार्मिक क्षेत्र में नहीं लिया जा सकता था, जहाँ कि राधा-कृष्ण केवल नायिका-नायक ही नहीं हैं, बल्कि उपास्य देव हैं। विद्यापति की राधा कृष्ण की प्रेयसी है और चंडीदास की राधा में परकीया भाव का प्राधान्य है, किंतु सूरदास की राधा न प्रेयसी है और न परकीया, बल्कि कृष्ण की पत्नी है, इसलिए स्वकीया है। राधा ही क्यों, गोपियों और कुब्जा तक में सूरदास ने स्वकीया भाव का ही आरोपण किया है, अतः उनका शृंगार-वर्णन शुद्ध, शिष्ट और मर्यादित है, इसलिए वह परकीयत्व की अमर्यादा से मुक्त है।

सूरदास ने कृष्ण-लीला का वर्णन भागवत के आधार पर किया है, इसलिए उनके कृष्ण भागवत के ही कृष्ण हैं। भागवत के प्रमाणानुसार श्री कृष्ण व्रज में ग्यारह वर्ष* की अवस्था तक रहे थे, अतः यह सिद्ध हुआ कि भगवान् कृष्ण की समस्त लीलाएँ व्रज में उनकी बाल्यावस्था की लीलाएँ ही थीं। राधा और गोपियों के साथ उनकी अनेक चेष्टाओं को बाल-स्वभाव जनित क्रीडा-कौतुक और आमोद-प्रमोद ही समझना चाहिए। उनको वयस्क युवक-युवतियों के सदृश कामासक्ति और रसिकता के रूपक समझना अनुचित है।

सूरदास के कृष्ण भी बाल कृष्ण हैं और उनका कथानक भी भागवत के अनुकूल है, अतः उनका शृंगार वर्णन भी निर्दोष हुआ है, किंतु कुछ स्थलों पर उन्होंने ऐसे वासनापूर्ण सरस शृंगारिक वर्णन भी लिखे हैं, जो बाल-क्रीड़ा-कौतुक की परिधि को लाँघ जाते हैं, और जिनसे स्पष्ट ही ज्ञात होता है कि सूरदास वयस्क युवक-युवतियों की शृंगारिक केलि-कथाओं को लिख रहे हैं! उस समय वे श्रीकृष्ण के वयक्रम और शारीरक विकास को भी भूल

* ततो नन्द व्रजमितः पित्रा कमाद्धि विन्यता।
एकादश समास्तत्र गूढार्चि. सकलोऽवसत् ॥

से जाते हैं ! पर यहाँ पर यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि भागवत अथवा सूरसागर के कृष्ण लौकिक बालक नहीं हैं। वे अलौकिक ही नहीं, बल्कि परब्रह्म की षोड़श कला के अवतार हैं, जिन्होंने बाल्यावस्था मे ही ऐसे अलौकिक कृत्य किए थे, जिनको कोई लौकिक बालक कदापि नहीं कर सकता था। ऐसी दशा मे वयक्रम और शारीरिक विकास का प्रश्न ही नहीं उठता।

सूरदास ने शृंगार के संयोग और वियोग (विप्रलंभ) दोनों पक्षों का बडा ही मार्मिक और हृदयग्राही वर्णन किया है। गोकुल और वृंदावन की समस्त लीलाएँ संयोग शृंगार की हैं और श्री कृष्ण के मथुरा-गमन के पश्चात् गोपियों की विरह-दशा का वर्णन विप्रलंभ शृंगार के अंतर्गत है।

वल्लभ-संप्रदाय और राधा—

श्री वल्लभाचार्य ने वात्सल्य भक्ति द्वारा भगवान् श्री कृष्ण की सगुणोपासना का प्रचार किया था। उनके मत में व्रत-उपवास, योग-साधन और तपस्या आदि कष्ट साध्य कर्मों का विशेष महत्व नहीं था, बल्कि वर्णाश्रम धर्म का पालन करते हुए प्रेम लक्षणा भक्ति द्वारा ईश्वराधना की सीधी-सच्ची विधि बतलाई गई थी। बल्लभाचार्य जी की भक्ति बाल-भाव की थी, किंतु उनके पीछे सूरदास आदि कवियों के काव्यों में और विट्ठलनाथ जी के धार्मिक सिद्धांतों में राधा के समावेश के कारण इस संप्रदाय में मधुरा भक्ति का भी प्रचार हो गया। बल्लभ-संप्रदाय जिस वात्सल्य भक्ति को लेकर चला है, उसमें इस मधुर भाव की भक्ति का समावेश देख कर बहुत से विद्वान भी इसका कारण नहीं समझ पाते। असल बात यह है कि गोवर्धन में बल्लभ संप्रदाय की जड जमने से भी पहिले वृंदावन में श्री चैतन्य महाप्रभु के शिष्यों का स्थायी निवास बन चुका था। चैतन्य संप्रदाय की मधुरा भक्ति का प्रभाव ब्रज के वैष्णव संप्रदायों और उनके कवियों पर भी पडना स्वाभाविक था। इस संप्रदाय के आधुनिक ग्रंथों मे चैतन्य संप्रदाय के प्रभाव को स्वीकार किया गया है ‡।

‡ " संप्रदाय मे इस प्रकार का भी वाद प्रचलित है कि प्रारंभिक अवस्था मे इन (विट्ठलनाथ जी) पर श्री कृष्णचैतन्य महाप्रभु के सिद्धांत की कुछ छाप पडी, जिसके कारण संप्रदाय में भी राधिकाजी किंवा स्वामिनी जी की उपासना का भाव प्रचलित होगया, और इसी से एतद् विषयक स्तोत्रों का भी निर्माण हुआ। शृंगार रस मंडन ' नामक ग्रंथ की शैली इसी प्रकार की है। तात्पर्य यह कि इस संप्रदाय मे जो कुछ भी स्वामिनी-भाव की उपासना है, वह इसी कारण है।

—"कांकरोली का इतिहास" पृष्ठ ६७

श्री बल्लभाचार्य जी के उपास्य बाल कृष्ण थे और 'नवनीतप्रिय' कहलाते थे। जब चैतन्य संप्रदाय के प्रभाव और जयदेव-विद्यापति की काव्य-परंपरा के कारण बल्लभ संप्रदाय के कवियों में मधुर भाव की भक्ति का प्रवेश हुआ, तब सूरदास आदि ने कृष्ण के साथ उनकी चिर सहचरी राधा का भी गुण-गान करना आरंभ कर दिया। फलतः गोस्वामी विट्ठलनाथ को अपने धार्मिक सिद्धांतों में राधा की प्रतिष्ठा करनी पड़ी और नवनीतप्रिय श्री कृष्ण के साथ राधाजी नवनीतप्रिया' हो गईं। इसके बाद बल्लभ संप्रदाय की सेवा पद्धति में भी नाना प्रकार के भोग-राग, वस्त्राभूषण और रास-विलास की प्रचुर सामग्री का विधान होगया, जिसके कारण इस संप्रदाय के कवियों की रचनाओं मे भी शृंगार-भावना का प्राधान्य होने लगा।

अष्टछाप—

महाप्रभु बल्लभाचार्य के अनंतर उनके सुयोग्य पुत्र गोस्वामी विट्ठलनाथ ने पुष्टि सप्रदाय की बड़ी उन्नति की। उनके समय तक कितने ही सुकवि इस संप्रदाय में दीक्षित होकर भगवान् श्री कृष्ण की लीला का वर्णन करने लगे। गो० विट्ठलनाथ जी ने उनमें से आठ प्रमुख कवियों की एक 'अष्टछाप' स्थापित की। अष्टछाप के आठों कवियों के नाम ये है—

१. सूरदास, २. कुंभनदास, ३. परमानंददास, ४. कृष्णदास
५. गोविंदस्वामी ६. नंददास ७. छीतस्वामी, ८. चतुर्भुजदास

उपर्युक्त कवियों में से प्रथम चार श्री बल्लभाचार्य जी के और अंतिम चार स्वयं श्री विट्ठलनाथ जी के शिष्य थे। वैसे तो उन आठों महात्माओं ने ब्रजभाषा मे प्रशसनीय भक्तिपूर्ण शृंगार साहित्य की रचना की है, किंतु उनमें सूरदास की रचना सर्वश्रेष्ठ है। उनके बाद नददास, परमानंददास और कृष्णदास के नाम लिये जा सकते हैं। अष्टछाप के कवियो के अतिरिक्त बल्लभ संप्रदाय के अन्य कवियो ने भी ब्रजभाषा के भक्तिपूर्ण शृंगार साहित्य की रचना की है।

विभिन्न संप्रदायों का शृंगार-भक्तिपूर्ण साहित्य—

बल्लभ संप्रदाय के अतिरिक्त अन्य संप्रदायों के भक्त कवियों ने भी ब्रज-भाषा के शृंगार साहित्य की रचना की है। उस समय भक्तिपूर्ण शृंगार की ऐसी अलौकिक धारा बह रही थी कि बड़े-बड़े सिद्ध महात्माओं ने भी उसमें मज्जन करने में अपना अहोभाग्य समझा। ऐसे महात्माओं में श्री हितहरिवंश

का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उनके द्वारा स्थापित राधावल्लभीय संप्रदाय में ब्रजेश्वरी राधिका जी का विशेष महत्व माना गया है, अतः इस संप्रदाय के कवियों ने नित्य विहार की अलौकिक लीलाओं के रूप में ब्रजभाषा के अपूर्व शृंगार-साहित्य का सृजन किया है।

श्री हितहरिवंश स्वयं ब्रजभाषा शृंगार-साहित्य के सर्वोत्कृष्ट कवियों में माने जाते हैं। उनकी रचित 'श्री हित-चौरासी' अपने अनुपम माधुर्य के कारण ब्रज शृंगार-साहित्य की महत्वपूर्ण रचना है। इस संप्रदाय का दार्शनिक मत 'सिद्धाद्वैत' कहलाता है। इस संप्रदाय में राधिका जी का महत्व श्री कृष्ण से भी अधिक माना गया है। इस संप्रदाय की मान्यता है कि अखिल विश्व की आत्मा श्रीकृष्ण हैं, किंतु उनकी भी आत्मा राधिका जी है। श्री हित महाप्रभु की वंश-परंपरा और उनके संप्रदाय में ब्रज-शृंगार-साहित्य के अनेक उत्कृष्ट कवि हुए हैं, जिनमें बनचंद्र, कृष्णचंद्र, राधावल्लभदास, सेवक, चाचा वृंदाबनदास एवं ध्रुवदास प्रमुख है।

निंबार्क संप्रदाय में ब्रजभाषा के शृंगार-साहित्य की रचना का आरंभ श्रीभट्ट जी से हुआ है। श्रीभट्ट जी रचित 'जुगल सत' और उनके उत्तराधिकारी श्रीहरिव्यास जी रचित 'महावाणी' निंबार्क संप्रदाय के सर्वमान्य धार्मिक ग्रंथ हैं और साथ ही वे ब्रजभाषा के प्राचीन शृंगार-साहित्य की महत्वपूर्ण कृतियाँ है। इन दोनों ग्रंथों में राधा-कृष्ण के नित्य विहार का बड़ा सरस वर्णन हुआ है। निंबार्क संप्रदाय मे परशुराम जी, रूपरसिक जी, वृंदावन जी, रसिकगोविंद जी आदि भी प्रसिद्ध कवि हो गये हैं, जिन्होंने भक्ति-पूर्ण शृंगार-साहित्य की उत्तम रचनाएँ की हैं।

गायकाचार्य और भक्त-शिरोमणि स्वामी हरिदास जी ब्रज के एक प्रमुख महात्मा होगये है। वे निंबार्क संप्रदाय की पृथक् शाखा-टट्टी संप्रदाय के प्रवर्त्तक थे। स्वामी हरिदास सिद्ध महात्मा और संगीतशास्त्र के प्रकांड पंडित थे। सुप्रसिद्ध गायकाचार्य तानसेन उनको अपना गुरु मानते थे। स्वामी हरिदास ने शृंगार-भक्ति पूर्ण जो पद-रचना की है, वह भावपूर्ण और संगीतशास्त्र के अनुकूल है। उनकी शिष्य परंपरा में अनेक सुकवि हो गये हैं। विट्ठलविपुल जी, सरसदास जी, नरहरिदास जी, रसिकविहारी जी, ललितकिशोरी जी, ललितमोहिनी जी, सहचरिशरण जी, भगवतरसिक जी, शीतलदास जी, नागरीदास जी आदि अनेक कवियों ने ब्रजभाषा के भक्तिपूर्ण शृंगार-साहित्य की अनुपम रचना की है।

श्री चैतन्य महाप्रभु के गौड़ीय संप्रदाय में जिन कवियों ने ब्रजभाषा के शृंगार-साहित्य की रचना की है, उनमें श्री गदाधर भट्ट, सूरदास मदनमोहन, माधुरीदास, ललितकिशोरी और ललितमाधुरी मुख्य हैं।

उपर्युक्त संप्रदायों के कवियों के अतिरिक्त अनेक ऐसे भक्त कवि हुए हैं, जिन्होंने अपनी उपासना-पद्धति के अनुसार ब्रजभाषा के शृंगार-साहित्य की रचना की है। श्री हित महाप्रभु और स्वामी हरिदास के सहयोगी श्री व्यास जी और अनन्य प्रेमी श्री रसखान और घनानंद की शृंगार-भक्ति-पूर्ण रचनाएँ ब्रजभाषा साहित्य की शृंगार हैं। हिंदी के सर्वश्रेष्ठ महाकवि और मर्यादा-मार्ग के उपासक गो० तुलसीदास जी ने भी 'रामगीतावली' और 'कृष्णगीतावली' द्वारा ब्रजभाषा में भक्तिपूर्ण शृंगार-साहित्य का अपूर्व कथन किया है।

राजस्थान की सुप्रसिद्ध साधिका और गिरिधर गोपाल की मतवाली मीराबाई के काव्य में जो मोहक माधुर्य है, वह शृंगार-साहित्य के महत्व को और भी बढ़ा देता है। मीराबाई की अधिकांश रचना राजस्थानी मिश्रित ब्रजभाषा में है और कुछ पद शुद्ध ब्रजभाषा मे भी हैं, जिनमे भक्ति-पूर्ण शृंगार रस का अपूर्व परिपाक हुआ है।

नागरीदास नाम के कई महात्मा हो गये हैं, जिन्होंने भक्तिपूर्ण शृंगार-साहित्य की रचना की है। उनमें सबसे अधिक प्रसिद्ध किशनगढ़ नरेश महाराजा यशवंत सिंह हैं। उन महाराजा की माता, बहिन और दासियों तक ने ब्रजभाषा के शृंगार-साहित्य की रचना की है। सारा परिवार लीला-रस का प्रेमी था। उनकी दासी बनी-ठनी जी ने भी सुंदर कविता की है। श्री हठी जी ने 'राधा-सुधा-शतक' के सौ छंदों मे भक्तिपूर्ण शृंगार के अपूर्व कवित्व का परिचय दिया है।

उपर्युक्त महानुभावों के अतिरिक्त जिन अनेक महात्माओं एवं सुकवियों ने भक्तिपूर्ण शृंगार-साहित्य की रचना की है, उनका विवरण तो क्या, उनका नामोल्लेख करने के लिए भी यहाँ पर पर्याप्त स्थान नहीं है। इन भक्त कवियों के कारण भी ब्रजभाषा के शृंगार-साहित्य का अनुपम महत्व है।

कृष्ण-भक्ति की लहर

निंबार्काचार्य और मध्वाचार्य आदि आचार्यों ने धार्मिक क्षेत्र में कृष्ण-भक्ति का प्रचार अपने-अपने सांप्रदायिक सिद्धांतों के अनुसार किया था और

जयदेव ने काव्य-क्षेत्र में उनके सरस शृंगार का वर्णन किया था। इस प्रकार श्री बल्लभाचार्य के समय तक भक्ति-भावना और मधुर रस की यथेष्ट उन्नति हो चुकी थी। श्री बल्लभाचार्य ने पुष्टि संप्रदाय की स्थापना द्वारा भक्तिपूर्ण शृंगार की शास्त्रोक्त व्यवस्था देकर इसका मार्ग और भी प्रशस्त कर दिया, जिसके फलस्वरूप समस्त उत्तरी भारत में शृंगार-रस पूर्ण कृष्ण-भक्ति की एक लहर सी दौड़ गई।

इन महात्माओं के प्रचार से भिन्न-भिन्न भाषाओं के कवियों ने अपने-अपने क्षेत्रों में राधाकृष्ण की शृंगार-भक्ति पूर्ण कविताओं की रचना की। हिंदी कवियों में सर्व प्रथम मैथिल कोकिल विद्यापति ने तत्पश्चात् सूरदास आदि महात्माओं ने, बंगदेश में चंडीदास ने, गुजरात में नरसी मेहता ने और राजस्थान में मीराबाई ने एक ही स्वर से वह राग अलापा, जिसकी गूँज ने कोटि-कोटि जनता को मंत्रमुग्ध सा कर दिया। यद्यपि इन कविताओं की भाषा एक दूसरी से पृथक् थी, किंतु उनकी आत्मा एक थी, विचार-धारा एक थी और भाव भी प्रायः एक से थे।

भक्ति रहित शृंगार वर्णन—

अब तक भक्त कवियों द्वारा रचित ब्रजभाषा के भक्तिपूर्ण शृंगार-साहित्य की चर्चा की गई है। इस प्रकार के साहित्य का निर्माण उन वैष्णव धर्माचार्यों अथवा उनके अनुगामियों द्वारा हुआ है, जिन्होंने अपनी उपासना-प्रणाली के अंग रूप से इस प्रकार की रचना की है। इन रचनाओं द्वारा न तो उनको किसी से यश-प्राप्ति की वांछा थी और न धन-प्राप्ति की। अपने अंतःकरण के परमानंद के लिए अथवा लोकोपकार के लिए इस प्रकार के अलौकिक काव्य की रचना की गई थी।

ऐसे महात्माओं के अतिरिक्त शृंगार रस पूर्ण कविता करने वाले अन्य कवियों ने दूसरे मार्ग को ग्रहण किया। इन कवियों के काव्य में भक्ति-भावना अथवा धार्मिकता का विशेष आग्रह नहीं है। इन कवियों का लक्ष केवल कविता करना था, चाहें वह अपने अथवा दूसरों के मनोरंजन के लिए की गई हों, अथवा यश एवं धन-प्राप्ति के लिए।

ब्रजभाषा-साहित्य में आरंभ से ही भक्ति पूर्ण शृंगार के साथ ही साथ इस प्रकार के शृंगार की भी धारा चल रही थी। सं० १२९८ वि० में रचित

'हिततरंगिनी' इसी प्रकार की रचना है, जिसके रचयिता कृपाराम भक्त कवियों से भी पूर्व विद्यमान थे। कृपाराम के अतिरिक्त इसी प्रकार की कविता करने वाले कवियों मे मोहनलाल, मनोहर, गंगाप्रसाद, करनेश आदि कवियों की रचनाएँ खोज द्वारा प्राप्त हुई हैं।

मुगल सम्राट अकबर के दरबार में ब्रजभाषा के कितने ही कवियों को आश्रय मिला था*, जिनमे गंग, बीरबल और रहीम उत्कृष्ट श्रेणी के कवि थे। अकबर स्वयं ब्रजभाषा के कवि थे। बीरबल और रहीम उनके मंत्री और गंग उनके प्रसिद्ध दरबारी कवि थे। उन सब ने ब्रजभाषा के शृंगार साहित्य की रचना की है। अकबरी दरबार और उससे प्रभावित सभी कविगण भक्ति रहित शृंगारिक कवियों की कोटि मे रखे जा सकते है।

रीति-काल का शृंगार-साहित्य—

भक्ति रहित शृंगार रस की कविता करने वाले प्रसिद्ध कवियों मे बलभद्र, केशवदास, मुबारक, सुंदर, चिंतामणि बिहारीलाल आदि के भी नाम गिनाये जा सकते है। उनमे केशवदास और बिहारीलाल तो ब्रजभाषा शृंगार साहित्य के सुदृढ़ स्तम्भ ही है। इस प्रकार की शृंगारिक कविता करने वाले कवियों पर ब्रजभाषा काव्य की उस रीति-धारा का प्रभाव है, जिसके कारण इतिहासकारों ने उस काल का नाम ही 'रीति-काल' रख दिया है।

हिंदी साहित्य के इतिहास का यह तथाकथित रीति-काल ब्रजभाषा शृंगार साहित्य के लिए बड़ा महत्वपूर्ण है। इस काल में ब्रजभाषा के अनेक धुरंधर कवियों ने अपनी चत्मकारपूर्ण रचना द्वारा शृंगार साहित्य की गौरव-वृद्धि की है। भक्ति रहित शृंगार की रचना करने वाले अधिकाँश कवि रीति-धारा के ही कवि हैं। यद्यपि सेनापति और बिहारीलाल जैसे तत्कालीन सुप्रसिद्ध

---

* अकबर के दरबारी कवियों के नाम—

पाय प्रसिद्ध पुरंदर 'ब्रह्म', सुधारस अमृत' अमृतबानी।
'गोकुल' 'गोप' 'गोपाल' 'गनेस' गुनी, गुनसागर 'गंग' सुज्ञानी॥
'जोध' 'जगन्न' 'जगे' 'जगदीस' 'जगा' मग 'जैन' जगत्त है जानी।
कोरे अकब्बर सों न कथौ, इतने मिलिकै कविता जु बखानी॥

महाकवियों ने रीति-ग्रंथों की रचना नहीं की है, किंतु उनके काव्य पर भी रीति-धारा का स्पष्ट प्रभाव है।

इस प्रकार के कवियों का मार्ग-प्रदर्शन ब्रजभाषा के सुप्रसिद्ध काव्यशास्त्री केशवदास ने किया। केशवदास के आदर्श पर चलने वाले कवि स्वच्छंद रूप से कविता करने की अपेक्षा काव्य-रीति के सीमित क्षेत्र में ही अपनी प्रतिभा का विकास करने लगे। तब भी इस प्रकार के कवियों ने मुक्तक रचना द्वारा ब्रजभाषा में शृंगार रस के ऐसे सरस और हृदयग्राही छंदों का निर्माण किया है, जैसे अन्य भाषाओं में मिलने कठिन हैं। खेद है हमारे कुछ प्रतिष्ठित आलोचकों को वे पसंद नहीं हैं*।

इस प्रकार की आलोचना करने वाले महानुभाव कदाचित यह भूल जाते हैं कि काव्य-सौंदर्य की दृष्टि से 'रीतिकाल' ही ब्रजभाषा साहित्य का सर्वश्रेष्ठ काल है। उस काल के कवियों ने काव्य-शास्त्रानुसार काव्यांगों का भी विधिवत वर्णन करने की चेष्टा की है, किंतु उनका मुख्य उद्देश्य कविता करना था, और उसकी पूर्ति के लिए उन्होंने जिन सरस छंदों की रचना की है, वे चाहे कुछ महानुभावों को पसंद न आवें, किंतु उनकी सराहना श्री रामचंद्र शुक्ल जैसे सर्वमान्य समालोचक को भी करनी पड़ी है†।

---

* "केशवदास ने शृंगार रस की चर्चा भक्ति से अलग भी की और काव्य-विज्ञान के ग्रंथों का बीज सा डाल दिया, जिससे साहित्य के खेत में जड़ की ओर से सरस और ऊपर की ओर से सूखा सा एक अजीब पेड़ खड़ा हो गया, जिसमें पीछे से अनगिनती देखने में सुंदर, किंतु नीरस फल लगे, जो आज भी देखे जा सकते हैं।"..... "दूध को पानी से अलग रखने की जो विधि केशवदास ने निकाली थी, उसी विधि से उस समय के कवि दूध की परवा न करके शब्दालंकारों की खांड मिला कर पानी ही पानी लोगों को पिला रहे थे और लोग भी इस शर्बत के नये स्वाद से प्रसन्न होकर दूध की याद भूल चले थे।"

—"हिंदी भाषा का इतिहास"

† "इन रीति-ग्रंथों के कर्ता भावुक, सहृदय और निपुण कवि थे।....उनके द्वारा बड़ा भारी कार्य यह हुआ कि रसों (विशेषतः शृंगार रस) और अलंकारों के बहुत ही सरस और हृदयग्राही उदाहरण अत्यंत प्रचुर परिमाण में प्रस्तुत हुए। ऐसे सरस और मनोहर उदाहरण संस्कृत के सारे लक्षण-ग्रंथों में चुन कर इकट्ठे करें तो भी उनकी इतनी अधिक संख्या न होगी।"

—"हिंदी साहित्य का इतिहास"

रीति-काल का प्रभाव—

केशवदास और उनकी परिपाटी पर चलने वाले कवियों के काव्य से भक्ति के धारावाही प्रवाह पर मानो बाँध सा बाँध दिया गया, जिसके कारण उसकी बढ़ती हुई गति रुक गई। यद्यपि उन कवियों ने लौकिक शृंगार का कथन किया है, तब भी उनके समय में कृष्ण और राधा बिलकुल लौकिक नायक और नायिका नहीं बन पाये थे। केशवदास ने कृष्ण को 'परम पुरुष' और राधा को 'माया देवी' लिखा है। उनके काव्य में राधा-कृष्ण की भक्ति की अपेक्षा उनकी स्तुति की भावना अधिक है। सूरदास आदि महात्माओं ने अपने काव्य में राधा-कृष्ण के जिस भक्तिपूर्ण शृंगार का वर्णन किया था, वह अब शिथिल सा हो रहा था।

केशवदास के परवर्ती शृंगारवादी कवियों में बिहारी और देव महाकवि हुए हैं। उन्होंने भक्ति-भाव की भी आड़ ली है। उनके समय में राधा-कृष्ण लौकिक नायिका-नायक के रूप में आने लगे थे। देव ने नायिका और नायक को प्रकृति और पुरुष के रूप में भी लिखा है†, किंतु उनका अधिकांश शृंगार-वर्णन लौकिक रूप का है, जिसमें उन्होंने अपूर्व काव्य-कौशल का परिचय दिया है।

इनके पश्चात् के कवियों ने राधा-कृष्ण के नाम पर लौकिक नायिका-नायकों का वर्णन किया है। यदि उनके प्रति कुछ भक्ति-भाव प्रदर्शित भी किया है, तो वह केवल बहाने के लिए। वास्तव में उनका उद्देश्य कवियों अथवा रसिकों को रिझाने* के लिए शृंगार रस पूर्ण कविता करना था।

---

† माया देवी नायिका नायक पूरुष आप।
सर्व दंपतिन में प्रकट, 'देव' करै तिहि जाप॥
—'प्रेमचंद्रिका'

* आगे के सुकवि रीझि है तौ कबिताई,
न तौ राधिका-कन्हाई सुमिरन कौ बहानौ है।
—दास

रसिक रीझि है जानि, तौ ह्वै है कबितौ सफल।
न तरु सदा सुखदानि, श्री राधा हरि कौ सुजस॥
—द्विजदेव

इस प्रकार के कवियों की शृंगार पूर्ण कविता में चाहें भक्ति-भावना नहीं थी, किंतु उनका शृंगार-वर्णन भी मर्यादा से बाहर नहीं हुआ है। उन्होंने काव्यशास्त्रोक्त रस-प्रकरण के अनुकूल शृंगार रस के अपूर्व छंदों का निर्माण किया है। शृंगार रस के कुछ कवि ऐसे भी हुए हैं, जिन्होंने राधा-कृष्ण के नाम पर कुरुचिपूर्ण और कामुकता को प्रश्रय देने वाली कविताओं का निर्माण किया है। उनके इस कृत्य की प्रशंसा नहीं की जा सकती। काव्य-क्षेत्र में उनकी इस प्रकार की कविताओं का भी कुछ मूल्य हो सकता है, किंतु मर्यादा की दृष्टि से ऐसे कवि निंदा के ही पात्र माने गये हैं।

उपर्युक्त कथन का यह अभिप्राय नहीं समझना चाहिए कि रीति-काल में भक्ति-भावना और धार्मिकता बिलकुल ही लुप्त होगई थी। जिस प्रकार भक्तिकाल में भी रीतिकालीन कवियों की सी कविता करने वाले कुछ कवि विद्यमान थे, उसी प्रकार रीतिकाल में भी शुद्ध भक्तिभाव से शृंगार रस की कविता करने वाले महात्मा भी समय-समय पर होते रहे हैं। अवश्य ही उनकी संख्या अत्यंत अल्प थी और वे अपने सीमित क्षेत्र में ही 'स्वान्तः सुखाय' काव्य की रचना कर रहे थे। अधिकांश कविगण दूसरे ही पथ के पथिक हो रहे थे।

शृंगारिक कवियों का प्रेम-भाव

वैसे तो कविगण स्वभाव से ही प्रेमी होते हैं, किंतु ब्रजभाषा के शृंगारिक कवियों में प्रेम-भाव की प्रचुरता थी। सूरदास जैसे महात्माओं और मीराबाई जैसी देवियों में भी प्रेम-वाहुल्य था किंतु उनका प्रेम-भाव उनके इष्ट देवों के प्रति होने के कारण अलौकिक, शुद्ध और निर्दोष था। जब तक कविता में भक्तिपूर्ण शृंगार की प्रचुरता रही, तब तक यह प्रेम-भाव भी अलौकिक रहा, किंतु जैसे ही इस शृंगार ने लौकिक रूप धारण किया, तो कवियों का प्रेम-भाव भी लौकिक हो गया। अथवा यों कहिए कि लौकिक प्रेम के उपासक कवियों ने ही भक्तिपूर्ण शृंगार को लौकिक शृंगार में परिवर्तित कर दिया!

दिव्य शृंगार के लौकिक शृंगार में परिवर्तन का कारण—

भक्त कवियों ने अपनी उपासना पद्धति के अनुसार जिस दिव्य शृंगार का वर्णन किया गया था, वह किस प्रकार लौकिक शृंगार में परिवर्तित होगया, इस पर विचार करना आवश्यक है।

ब्रजभाषा के कृष्णोपासक भक्त कवियों को अपने काव्य की प्रेरणा अधिकतर वैष्णव धर्म के विभिन्न संप्रदायों अथवा श्रीमद्भागवत के दशम स्कंध से मिली है। वैष्णव संप्रदायों मे भक्ति-भावना का सर्वोपरि महत्व है। पुष्टि संप्रदाय की प्रेम-लक्षणा भक्ति और चैतन्य एवं राधावल्लभीय संप्रदायों की रागानुगा भक्ति ने ब्रजभाषा के भक्त कवियों को सब से अधिक प्रभावित किया है। श्रीमद्भागवत मे भी श्री कृष्ण के मधुर रूप और गोपियों द्वारा माधुर्य भाव से उनकी भक्ति करने का वर्णन है। ब्रजभाषा के भक्त कवियो ने भी इसी आदर्श को अपनाया और अपने काव्य द्वारा गोपियों की सी मधुरा भक्ति का प्रचार किया।

ब्रजभाषा के ये शृंगारवादी भक्त कवि परमोच्च श्रेणी के महात्मा थे। उनका शृंगार वर्णन राधा-कृष्ण का दिव्य शृंगार है, जो उनके सांप्रदायिक सिद्धांत एवं उपासना-पद्धति के अनुकूल है। उन्होंने स्वप्न मे भी यह नहीं सोचा था कि उनके दिव्य शृंगार के कारण परवर्ती कवियो का झुकाव लौकिक शृंगार–वर्णन की ओर भी हो सकता है। लेकिन हुआ यही, और कुछ कवियो ने तो उसका दुरुपयोग भी किया।

असल बात यह है कि इस प्रकार की भावना का आधार आलबनगत है। भक्त कवियों की कविता के आलंबन राधा-कृष्ण है, इसलिए उनका शृंगार-वर्णन भी दिव्य और अलौकिक है। जब कवियों की दृष्टि राधा-कृष्ण से हट कर लौकिक आलंबन अर्थात् नायिका-नायको पर जाने लगी, तब उनके द्वारा लौकिक शृंगार की कविता होने लगी और कालांतर में उसका रूप भी विकृत होने लगा।

यह बात हिंदुओं तक ही सीमित नहीं रही। मुसलमान कवियों में भी इसी प्रकार की प्रतिक्रिया हुई। इस्लाम धर्म के अंतर्गत सूफी संतो की उपासना भी प्रेम-पंथ की है। वे स्त्री-पुरुष के रूप में परमात्मा की भक्ति का उपदेश देते है। सूफी कवियों द्वारा रचे हुए प्रेमाख्यानो में इसी उपासना-पद्धति का प्रतिपादन किया गया है। जहाँ हिंदू और मुसलमान दोनों के सहयोग से भक्ति-भावना का प्रचार हुआ, वहाँ उपर्युक्त कारण से दोनों पर उसकी प्रतिक्रिया भी हुई। जिस प्रकार आलबन-भेद से हिंदुओं द्वारा लौकिक नायक-नायिकाओं का कथन होने लगा, उसी प्रकार मुसलमानों द्वारा आशिक-माशूकों की शायरी होने लगी!

ब्रजभाषा-साहित्य का उदय और उत्थान मुसलमानी शासन मे हुआ है। हिंदुओ के अतिरिक्त मुसलमान कवियों ने भी ब्रजभाषा साहित्य की उन्नति में योग दिया है। इसके साथ ही मुसलमान बादशाहों और सरदारों ने आरंभ से ही ब्रजभाषा-काव्य को प्रश्रय दिया है। इन सब कारणो ने भी ब्रजभाषा के शृंगार साहित्य पर अत्यधिक प्रभाव डाला है।

रीति-काल में इस देश के शासक जहाँगीर और शाहजहाँ जैसे विलास प्रिय मुगल सम्राट थे जो अपने महान् ऐश्वर्य और शृंगारिक जीवन के लिए प्रसिद्ध हैं। उनके ठाठ-बाट और ऐशो-आराम का चस्का उनके संपर्क मे आने वाले हिंदू राजाओं और सरदारों को भी लग गया। इसका प्रभाव उन मुसलमान बादशाहों एवं हिंदू नरेशों के आश्रय में रहने वाले कवियों के काव्य पर भी पड़ा, जिसकी शैली भक्ति-कालीन कवियों से भिन्न होना स्वाभाविक थी।

कवि गण सदा से ही राज-दरबारों की शोभा माने गये हैं। प्रत्येक राजा के दरबार में कवि का होना आवश्यक था। यह नियम अति प्राचीन काल से चला आता है। बडे-बडे हिंदू राजाओं द्वारा अपने दरबार में सुप्रसिद्ध कवियों को आश्रय देकर उनको सन्मानित करने के अनेक उदाहरण! मिलते हैं। मुसलमान बादशाहों और नवाबों ने भी इस पृथा को प्रचलित रखा। यही कारण है कि अकबर और उनके परवर्ती बादशाह, उमराव, नवाब और हिंदू राजाओं द्वारा भी ब्रजभाषा के कवियो को प्रश्रय दोनों का उल्लेख मिलता है।

दरबारी कवि को अपने आश्रयदाता की रुचि का ध्यान रख कर ही कविता करनी पड़ती है, तभी उसकी वहाँ गुज़र हो सकती है। मुसलमानी शासन में उच्च धार्मिक जीवन का महत्व अवश्य कम हो गया था। जो महात्मा धार्मिक रीति से जीवन-यापन कर रहे थे, वे राज-दरबार की मान-प्रतिष्ठा से कोसों दूर थे। ऐसे त्यागी महात्मा, जो अपनी काव्य-रचना द्वारा किसी से मान-प्रतिष्ठा अथवा धन-संपत्ति प्राप्त करने की इच्छा नहीं रखते थे, संख्या में बहुत थोड़े थे। अधिकांश कवियों को अपने भरण-पोषण के लिए राज्याश्रय की आवश्यकता होती थी और अपने आश्रयदाता का गुणानुवाद अथवा उसकी रुचि के अनुसार काव्य-रचना करना भी उनके लिए आवश्यक था।

इस प्रकार उस समय की धार्मिक भावना और राजकीय परिस्थिति के कारण ब्रजभाषा का दिव्य एवं अलौकिक शृंगार लौकिक-शृंगार में परिवर्तित होगया।

शृंगारिक काव्य का चरित्र पर प्रभाव —

शृंगार रस के काव्य पर कभी-कभी यह आक्षेप किया जाता है कि इसके द्वारा विषयासक्ति और कामुकता को उत्तेजना मिलती है, जिसके कारण मानव-चरित्र को अवनत होने का अवसर प्राप्त होता है । यह बात सिद्धांत रूप से नहीं कही जा सकती । चरित्र को उन्नत व अवनत बनाने का दायित्व कवि की अभिरुचि और तत्कालीन स्थिति पर ही निर्भर है । इसके लिए शृंगारिक कविता को उत्तरदायी नहीं बनाया जा सकता । ब्रजभाषा शृंगार रस के कवियों मे दोनों ही प्रकार के व्यक्ति मिलते है, जो इस प्रकार की कविता द्वारा अपने चरित्र को उन्नत भी बना सके थे और अवनत भी ।

रसखान और घनानंद ऐसे कवि थे, जो आरंभ में विषयी और कामुक थे। गंदे और बाजारू प्रेम के वशीभूत होते हुए भी उन्होंने अपने जीवन को उन्नत किया और अपने हृदयगत प्रेम-भाव को पूरी लगन के साथ भगवान् के चरणों में लगा दिया, जिसके फल स्वरूप उनका काव्य लौकिक शृंगार की सीमा को पार कर अलौकिक हो गया । उन दोनों महानुभावों ने प्रेम-रस पूर्ण अत्यंत उच्च श्रेणी की कविता की है । इसके विपरीत परवर्ती काल मे कुछ ऐसे भी उदाहरण मिलते है, जिनमे विलासिता और कामुकता के प्रभाव से कतिपय कविगण लौकिक शृंगार के निम्नतम धरातल पर जा पहुँचे थे। आलम और बोधा के नाम इस संबध मे लिये जा सकते थे । यद्यपि उनकी कविता भी प्रेम-रस पूर्ण है, तथापि उनका आदर्श निम्न कोटि का है ।

क्या इस प्रकार के कवि निंदा के पात्र है ?

जिस काल का वर्णन ऊपर किया गया है, उस समय समाज मे कुछ ऐसी धारा प्रवाहित हो रही थी, जिसके कारण विषय रस से शराबोर कविता का ही आदर होने लगा था ! प्रचलित परिपाटी के विरुद्ध जाना हर एक व्यक्ति का कार्य भी नहीं है । केवल भूषण जैसे कवि ही प्रचलित पद्धति के विरुद्ध काव्य-निर्माण कर सकते थे, क्यों कि उनको शिवाजी और छत्रशाल जैसे वीर-पुंगव नरेशो का आश्रय मिला था । अधिकांश कविगण देश, काल, पात्र की विवशता के कारण कामुकता के प्रवाह मे बह रहे थे !

यदि कविगण उस प्रचलित प्रवाह के विरुद्ध जाने की चेष्टा करते तो उस समय के विषय-लोलुप नरेशों द्वारा उनको कदापि प्रश्रय नहीं मिलता, जिसके फल स्वरूप ब्रजभाषा-काव्य का जो विस्तार उस विकृत युग में हुआ

था, वह कदापि नहीं हो पाता। इन बातों पर विचार करने से उस समय के कविगण विषय-रसपूर्ण काव्य-रचना के लिए भी निंदा अथवा अनादर के पात्र नहीं हैं। उनकी विवशता जन्य काव्य-रचना पर सहानुभूति पूर्वक ही विचार करना चाहिए†।

ब्रजभाषा-शृंगार-साहित्य का सर्वश्रेष्ठ काल—

सं० १७००वि० के पश्चात् साहित्य का वह समय आता है, जिसे इतिहास-कारों ने 'रीति काल' कहा है। यद्यपि भक्ति-काल में ब्रजभाषा के शृंगार-साहित्य की यथेष्ट उन्नति हो चुकी थी, तथापि रीति-काल में वह अपने अभ्युदय की चरम सीमा पर पहुँच गया।

इस स्वर्ण काल में जिन सैकड़ों कवियों ने अपनी कृतियों से ब्रजभाषा के शृंगार-साहित्य को अलंकृत किया है, उनमें मतिराम, बिहारी, सेनापति, देव, दास, घनानंद और पद्माकर मुख्य हैं। सूरदासादि भक्त कवियों के अतिरिक्त इन साहित्य-शिल्पियों के उद्योग से भी ब्रजभाषा शृंगार-साहित्य के उस सुंदर भवन का निर्माण हुआ है, जो दो शताब्दियों के पश्चात भी काल के क्रूर कुठाराघात को सहन करता हुआ अक्षुण्ण रूप से विद्यमान है।

'रीति-काल' ब्रजभाषा साहित्य का सर्वश्रेष्ठ काल है। प्रस्तुत पुस्तक का विषय भी इसी काल की रचना-प्रणाली से संबंध रखता है, अतः आगामी परिच्छेद में ब्रजभाषा के रीति-साहित्य का विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है।

---

† "विषय-रस में शराबोर कविता में भी रमणीयता है, इसलिए चाहे वह उपयोगिनी न हो और चाहे उसके द्वारा समाज में किसी प्रकार के कुरुचि के भावों को आश्रय मिला हो, परंतु वह कविता अवश्य है, कविता-क्षेत्र से उसका बहिष्कार नहीं किया जा सकता। इन्हीं कवियों ने यदि प्रेम-भक्ति का दिव्य चित्र खींचा होता, तो क्या बात थी! वे ऐसा न कर सके, इसका खेद है, पर उन्होंने जो कुछ किया, उसके लिए उनको शाप देने की आवश्यकता नहीं है। उन्होंने प्रतिकूल समय में कविता के दीपक को बुझने से तो बचाया; क्या हुआ, जो बुरे तेल के कारण दीपक से कुछ मलिन धुआ भी निकला!"

—"मतिराम ग्रंथावली"

पंचम परिच्छेद

ब्रजभाषा का रीति-साहित्य

★

रीति-साहित्य की परिभाषा —

"रीति" शब्द का अर्थ है—प्रकार, ढंग अथवा मार्ग, किंतु काव्य के साथ संबंधित होने पर 'काव्य-रीति' अथवा केवल 'रीति' का अभिप्राय काव्य-शास्त्र के विभिन्न अंगों से होता है। सुप्रसिद्ध साहित्य-महारथी सेठ कन्हैयालाल जी पोद्दार ने रीति-ग्रंथों का अभिप्राय इस प्रकार लिखा है—

"जिनके अध्ययन से काव्य का स्वरूप एवं रहस्य तथा काव्य के रस, ध्वनि, अलंकार आदि भेदों का ज्ञान एवं दोष गुण के विवेचन की शक्ति उत्पन्न हो, उन ग्रंथों को रीति-ग्रंथ कहते हैं।"†

इस प्रकार काव्य-लक्षण, भाव-भेद, रस-भेद, नायक-नायिका-भेद, नख-शिख, षट्ऋतु, ध्वनि, अलंकार, पिंगल और काव्य के गुण-दोष आदि संपूर्ण काव्यांगों का विवेचन करने वाले ग्रंथ समूह को 'रीति-साहित्य' कहते हैं।

ब्रजभाषा-शृंगार-साहित्य की दो धाराएँ—

रीति साहित्य की उपर्युक्त परिभाषा को देखते हुए यह स्पष्ट रूप से ज्ञात हो जाता है कि ब्रजभाषा के शृंगार-साहित्य की दो प्रमुख धाराएँ हैं, जिनको 'रीतिमुक्त' और 'रीतिबद्ध' कहा जा सकता है। इन दोनों धाराओं में भी प्रत्येक के धार्मिक और लौकिक दो दो रूप है। रीतिमुक्त लौकिक शृंगार को प्राकृत-अपभ्रंश की परंपरा के कारण हिंदी के आरंभिक कवियों ने ही अपना लिया था। हिंदी साहित्य के आदि युग की वीर गाथाओं में इसी प्रकार का शृंगार वर्णन दिखलाई देता है। प्राकृत-अपभ्रंश की चमत्कारपूर्ण मुक्तक काव्य-शैली सीधी ब्रजभाषा में न आकर प्राकृत से संस्कृत में होती हुई ब्रजभाषा-साहित्य में आई है। बिहारीलाल और उनके जैसे अन्य कवियों ने इस प्रकार की रचना द्वारा ब्रजभाषा के शृंगार-साहित्य की अभिवृद्धि की है। यह चमत्कारपूर्ण शैली भी ब्रजभाषा-काव्य में आने पर रीति से अधिक प्रभावित हो गई। बिहारी सतसई पर रीति-धारा का स्पष्ट प्रभाव है, यद्यपि वह स्वयं कोई रीति-बद्ध रचना नहीं है।

---

† संस्कृत साहित्य का इतिहास।

ब्रजभाषा साहित्य की रीतिबद्ध धारा आरंभ से ही संस्कृत-साहित्य की ओर झुकी और वहीं से उसने आवश्यक जीवन-तत्व प्राप्त किया। रीतिबद्ध धारा में लौकिक शृंगार-साहित्य का प्राधान्य है। इस धारा का धार्मिक रूप नगण्य है। सूरदास आदि भक्त कवियों के काव्य में रीति-धारा का भी कुछ आभास मिलता है, किंतु वह नाम मात्र को है।

रीति-साहित्य का आधार—

ब्रजभाषा की उत्पत्ति शौरसेनी नागर अपभ्रंश से होने पर भी उसके साहित्य पर जितना प्रभाव संस्कृत साहित्य का पड़ा है, उतना प्राकृत एवं अपभ्रंश भाषाओं के साहित्य का नहीं। ब्रजभाषा का रीति-साहित्य तो एक प्रकार से संस्कृत की ही देन है। इस साहित्य के मूल तत्व—रस, अलंकार, गुण, रीति, ध्वनि आदि काव्यांगों का मूल आधार संस्कृत साहित्य ही है। यह दूसरी बात है कि ब्रजभाषा के काव्याचार्यों ने इन विषयों का अपनी पद्धति के अनुसार घटा-बढ़ा कर वर्णन किया है। ब्रजभाषा का छंदशास्त्र भी मूल रूप मे संस्कृत से ही लिया गया है, किंतु छंदों के व्यवहार मे विशेष सादृश्य नहीं है। संस्कृत में प्रायः वर्ण-छंदों में अतुकांत कविता होती है, किंतु ब्रजभाषा कवियों ने विशेष रूप से मात्रिक छंदों मे तुकांत कविता की है। इस प्रकार पद्धति और व्यवहार मे कुछ भेद होने पर भी ब्रजभाषा के समूचे रीति-साहित्य का आधार संस्कृत साहित्य है, अतः संक्षिप्त रूप से उसके विकास का विवेचन किया जाता है।

संस्कृत काव्यशास्त्र का विकास—

संस्कृत साहित्य मे भरतमुनि कृत 'नाट्यशास्त्र' एक प्राचीन ग्रंथ है, जो अभिनय से संबंधित होने पर भी काव्यशास्त्र का भी सर्व प्राचीन ग्रंथ माना जाता है। इसमें नाटक, काव्य एवं संगीत आदि विषयों का सांगोपांग वर्णन हुआ है। इसी ग्रंथ के आधार पर संस्कृत के काव्याचार्यों ने अपनी काव्य-समीक्षा का आरंभ किया है। नाट्यशास्त्र अभिनय संबंधी ग्रंथ है, और उसका प्रधान विवेच्य विषय 'रस' है। नाट्यशास्त्र की परिपाटी पर जिन नाटक ग्रंथों की रचना हुई, उनमें 'रस' को प्रश्रय दिया गया, इसलिए भरतमुनि के शताब्दियों पश्चात् तक काव्य और नाटकों में रस का ही साम्राज्य रहा।

विक्रम की छठी शताब्दी के पश्चात् संस्कृत साहित्य में काव्य-रचना की दूसरी पद्धति आरंभ हुई । उस समय के कविगण नाटक एवं काव्यों की धारावाहिक रचना की अपेक्षा स्फुट पद्यों मे उक्ति-चमत्कार पर विशेष ध्यान देने लगे । उनकी दृष्टि में रस की अपेक्षा अलंकारों का विशेष महत्व था । प्राचीनता की दृष्टि से अलंकार विषय भी रस का ही समकालीन है, क्यों कि उसका आरंभ भी भरतमुनि प्रणीत नाट्यशास्त्र से हुआ था । भरत ने नाम मात्र को चार अलंकार लिखे थे और उन्होंने उन पर ध्यान न देकर रस का ही विशेष रूप से विवेचन किया था, किंतु इस काल का प्रधान विषय अलंकार था ।

अलंकार विषय का वास्तविक प्रथम आचार्य 'भामह' है, जिसका प्रसिद्ध ग्रंथ "काव्यालंकार" इस विषय की प्रामाणिक रचना है । उसका समय छठी शताब्दी के लगभग है । भामह के पश्चात् काव्यशास्त्र का प्रसिद्ध आचार्य 'दंडी' हुआ, जिसने अलंकारों के साथ काव्य के अन्य अंग-रीति, गुण आदि का भी विवेचन किया है । दंडी ने अलंकारों का जो रूप खडा किया था, वह परवर्ती आचार्यों को मान्य नहीं हुआ । दंडी के पश्चात् आठवीं शताब्दी के लगभग 'उद्भट' और 'वामन' नामक दो प्रसिद्ध आचार्य हुए । उद्भट का मत प्रायः भामह के अनुकूल है । वामन ने अलंकार और अन्य काव्यांगों के अतिरिक्त 'रीति' का विशद विवेचन किया है । उसके मतानुसार काव्य की आत्मा वैदर्भी, गौडी और पांचाली रीतियाँ है । यह मत भी परवर्ती आचार्यों को मान्य नहीं हुआ । इसके पश्चात् 'रुद्रट' नामक एक महान् आचार्य हुआ, जिसने भी अलंकारों का विशद विवेचन किया है ।

अब तक रस, अलंकार और रीति विषयों का महत्व मानते हुए आचार्यों ने अपने-अपने मतानुसार काव्यांगों का विवेचन किया था, किंतु उस काल मे प्रधानता अलंकार विषय की थी । अलंकार अपने व्यापक अर्थ मे प्रयुक्त होता था । इसके पश्चात् नवमीं शताब्दी के लगभग एक विचित्र परिवर्तन हुआ और काव्य के मुख्यांग रस, अलकार और रीति के स्थान पर 'ध्वनि' नामक नवीन मत का प्रतिपादन हुआ । 'ध्वनि' सिद्धांत के प्रवर्त्तक एक अज्ञातनामा धुरंधर विद्वान् थे, जिनकी मूल कारिकाओं पर श्री आनंदवर्धनाचार्य ने विवेचना पूर्ण वृत्ति लिखकर अपने सुप्रसिद्ध ग्रंथ "ध्वन्यालोक" की रचना की है । इसी मत का प्रतिपादन बाद मे अभिनवगुप्त जैसे धुरंधर विद्वान ने भी किया था ।

भामह, उद्भट और दंडी का अलंकार सिद्धांत और वामन का रीति सिद्धांत इस नवीन 'ध्वनि' मत के सन्मुख महत्वशून्य हो गया और जिस 'रस' का महत्व महामुनि भरत के समय से चला आ रहा था, वह भी ध्वनि के सामने दब सा गया। ध्वनिकारों ने रस को ध्वनि-प्रकरण के अंतर्गत मान कर उसे 'सर्वोत्तम ध्वनि' लिखा है। इस प्रकार पिछले आचार्यों के मतों को दबाकर ध्वनिकारों ने अपना अक्षय प्रभाव स्थापित कर दिया। उनके मतानुसार काव्य का सौन्दर्य व्यंग्यार्थ पर निर्भर है और व्यंग्यार्थ को ही 'ध्वनि' कहते है, इसलिए काव्य की आत्मा 'ध्वनि' है।

इसके पश्चात दसवीं शताब्दी के लगभग 'राजशेखर' और 'धनंजय' नामक दो प्रसिद्ध आचार्य हुए। राजशेखर ने "काव्य मीमांसा" में काव्य के सभी अंगों का आलोचनात्मक रीति से विशद विवेचन किया है और धनजय ने महामुनि भरत के मतानुसार अपने सुप्रसिद्ध ग्रंथ "दशरूपक" में नाट्य विषय का प्रतिपादन किया है। ब्रजभाषा काव्य के आचार्यों मे केशवदास ने दंडी के अतिरिक्त राजशेखर के मत का भी उपयोग किया है। ब्रजभाषा नायिका-भेद के कथन मे भरत के नाट्यशास्त्र और धनंजय के दशरूपक से सहायता ली गई है।

ग्यारहवीं शताब्दी के लगभग 'कुंतल' नामक आचार्य ने "वक्रोतिजीवित" ग्रंथ लिख कर एक नवीन सिद्धांत 'वक्रोक्ति' को चलाने की चेष्टा की। यह मत ध्वनि सिद्धांत के विरुद्ध था, इसलिए भामह, दंडी और वामन के समान कुंतल का मत भी मान्य न हो सका। इसी समय के लगभग संस्कृत साहित्य का महान् आचार्य 'मम्मट' हुआ, जिसने पिछले सभी आचार्यों के मतों का सामंजस्य करते हुए नाना सिद्धांतों की गहन व्याख्या द्वारा काव्यशास्त्र का अपूर्व विवेचन किया है। मम्मट का सुप्रसिद्ध ग्रंथ "काव्य प्रकाश" है, जिसका उपयोग ब्रजभाषा आचार्यों ने विशेष रूप से किया है।

ध्वनि-सिद्धांत के सन्मुख अन्य काव्यांगों के सदृश अलंकार विषय भी महत्वशून्य हो गया था, किंतु बारहवीं शताब्दी के लगभग 'रुय्यक' ने अपने "अलंकार सर्वस्व" द्वारा उसके महत्व को पुनः स्थापित करने का उद्योग किया। इसी समय के लगभग जयदेव नामक महान् आचार्य ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रंथ "चंद्रालोक" की रचना की। 'अप्पय दीक्षित' ने सोलहवीं शताब्दी मे चद्रालोक के पंचम मयूख में वर्णित अलंकार प्रकरण की विशद व्याख्या अपने ग्रंथ 'कुवलयानंद" में की है। ब्रजभाषा आचार्यों ने जयदेव और अप्पय दोनों के ग्रंथों से सहायता ली है। यह जयदेव गीतगोविंदकार जयदेव से भिन्न है।

चौदहवीं शताब्दी के लगभग आचार्य 'विश्वनाथ' ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रंथ "साहित्य-दर्पण" की रचना की थी, जिसमें काव्य के समस्त अंगों का विस्तृत विवेचन हुआ है। इस ग्रंथ की यह विशेषता है कि श्रव्य और दृश्य दोनों प्रकार के काव्यांगों का एक ही स्थान पर विशद् वर्णन है। ब्रजभाषा के आचार्यों ने इस ग्रंथ का भी पूर्ण उपयोग किया है।

भानुदत्त संस्कृत-साहित्य में 'नायिकाभेद' का एक मात्र आचार्य है। यद्यपि काव्यशास्त्र के आरंभिक ग्रंथ नाट्यशास्त्र और तत्पश्चात् अग्नि-पुराण में इस विषय का कुछ उल्लेख हुआ है; तदनंतर रुद्रट, धनंजय, भोज, मम्मट और रुय्यक ने भी इस विषय का थोड़ा-बहुत विवेचन किया है, तथापि भानुदत्त ने अपनी "रसमंजरी" में इसका अपेक्षाकृत अधिक वर्णन किया है। भानुदत्त की अन्य रचना "रसतरंगिणी" है। ब्रजभाषा के आचार्यों ने नायिका-भेद एवं रस-भेद के कथन में इन दोनों ग्रंथों का विशेष रूप से उपयोग किया है। भानुदत्त का समय चौदहवीं या सोलहवीं शताब्दी माना जाता है।

पंडितराज 'जगन्नाथ' का "रसगंगाधर" संस्कृत काव्यशास्त्र का अंतिम सर्वमान्य ग्रंथ है, जिसकी रचना मुगल सम्राट शाहजहाँ के काल में हुई थी। इसका समय विक्रम की सत्तरहवीं शताब्दी है, जब कि ब्रजभाषा रीति-साहित्य की यथेष्ट उन्नति हो चुकी थी। यह ग्रंथ अपने विषय का ऐसा महत्वपूर्ण है कि ब्रजभाषा के आचार्यों ने इसके मत का भी उपयोग किया है।

संस्कृत साहित्य में विषय-प्रतिपादन के लिए शास्त्रार्थ और खंडन-मंडन की प्रणाली अति प्राचीन काल से प्रचलित है। प्रत्येक आचार्य ने अन्य आचार्यों के मतों की आलोचनात्मक समीक्षा द्वारा अपने मत को श्रेष्ठ प्रतिपादित किया है, इसलिए वहाँ पर रस, अलंकार, रीति, वक्रोक्ति और ध्वनि नामक पाँच वर्ग अथवा संप्रदाय बन गये हैं। प्रत्येक आचार्य इन वर्गों में से किसी एक को मुख्य मानता हुआ दूसरों को उसके अंतर्गत मानता है, इसलिए काव्य के मुख्य उद्देश्य के संबंध में उनमें मतभेद है। किंतु शताब्दियों के शास्त्रार्थ के पश्चात् काव्य का मुख्य हेतु व्यंग्यार्थ निश्चित होकर ध्वनि-संप्रदाय का एक-छत्र राज्य स्थापित हो गया है। गुणीभूत व्यंग्य और अलंकारों का महत्व ध्वनि से न्यून समझा गया है। इस प्रकार काव्य में ध्वनि का स्थान सर्वश्रेष्ठ, इसके पश्चात् गुणीभूत व्यंग्य और तत्पश्चात् अलंकारों का स्थान निश्चित हुआ है।

ब्रजभाषा साहित्य में खंडन-मंडन की प्रणाली विशेष रूप से प्रचलित नहीं हुई। इसके आचार्यों को संस्कृत साहित्य के क्रमिक विकास के कारण अपने मत के प्रतिपादन करने में कोई कठिनाई नहीं हुई।

ब्रजभाषा रीति-साहित्य का आदर्श—

संस्कृत रीति-साहित्य के विवरण से स्पष्ट है कि ब्रजभाषा की उत्पत्ति से पूर्व ही वह अत्यत उन्नत अवस्था को प्राप्त हो चुका था। जब ब्रजभाषा मे काव्य ग्रंथों का निर्माण प्रचुर परिमाण मे होने लगा, तब विद्वानों का ध्यान काव्यशास्त्र के ग्रथ-निर्माण की ओर भी गया। ब्रजभाषा कवियों के लिए शताब्दियों से प्रस्तुत अपार संस्कृत रीति-साहित्य सहज ही सुलभ था, इसलिए उन्होंने ब्रजभाषा रीति-ग्रंथों की रचना मे संस्कृत ग्रंथों का अनुपम साहित्य-सामग्री का पूरा-पूरा उपयोग किया है।

ब्रजभाषा रीति-साहित्य के ग्रथो मे काव्य के दसों अंगो का विवेचन करने की चेष्टा की गई है, किंतु उनमे अलंकार, रस और नायिकाभेद विषयों का प्राधान्य है। काव्यशास्त्र का अलंकार प्रकरण अत्यंत विस्तृत और जटिल है। संस्कृत साहित्य मे इस विषय पर बड़ी विवेचना पूर्वक विचार किया गया है। ब्रजभाषा साहित्य मे यह विषय संस्कृत ग्रंथों के आधार पर ही लिखा गया है। संस्कृत के आचार्यों ने यह विषय जहाँ तक बढ़ाया था, उससे आगे ब्रजभाषा के आचार्य नहीं जा सके; बल्कि यह कहना चाहिए कि वे वहाँ तक भी नहीं पहुँच सके। कुछ आचार्यों ने नये अलंकारों की उद्भावना करने की भी चेष्टा की, किंतु उनका विवेचन संस्कृत आचार्यों के समान मौलिक, स्पष्ट और पांडित्यपूर्ण नहीं हुआ। कहीं-कहीं तो उनका कथन भ्रांतिपूर्ण भी हो गया है। ब्रजभाषा रीति-साहित्य का अलंकार प्रकरण संस्कृत साहित्य पर आधारित होने पर भी उसकी कोटि का नहीं हो सका।

ब्रजभाषा साहित्य का अलंकार विषय अधिकतर अप्पय दीक्षित के 'कुवलयानंद' ग्रथ पर आधारित है। केशवदास आदि ने दंडी कृत 'काव्यादर्श' जैसे संस्कृत साहित्य के पुराने ढर्रे के ग्रंथो का भी उपयोग किया है, किंतु अधिकांश व्यक्तियों ने जयदेव के 'चंद्रालोक' और अप्पय दीक्षित के 'कुवलयानंद' जैसे नवीन परिपाटी के ग्रंथों का सहारा लिया है।

रस-प्रकरण के विवेचन लिए संस्कृत साहित्य के काव्यप्रकाश, साहित्य-दर्पण, चंद्रालोक, शृंगारप्रकाश आदि ग्रंथों से सहायता ली गई है। रस विषय पर लिखते हुए उन्होंने नव रसों का विस्तृत विवेचन नहीं किया है, बल्कि अन्य रसों का संक्षिप्त वर्णन कर शृंगार रस पर अधिक ध्यान दिया है। शृंगार रस में भी उन्होंने नायिकाभेद के वर्णन में ही अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझ ली है। नव रस का थोड़ा सा वर्णन कर रस-प्रकरण में नायिकाभेद का अधिक विस्तार करने में ब्रजभाषा कवियों को अधिक सुविधा ज्ञात हुई है। इस प्रकार का कथन उन्होंने भानुदत्त कृत 'रसतरंगिणी' के आधार पर किया है। इसी ग्रंथ के आधार पर ब्रजभाषा रीति-साहित्य में अनेक रस-ग्रंथों की रचना हुई है। दृश्यांग काव्य पर लिखने वालों ने काव्यप्रकाश और साहित्यदर्पण का आधार लिया है।

ब्रजभाषा रीति साहित्य में सबसे अधिक विचार नायिकाभेद पर किया गया है। इस विषय के वर्णन के लिए भरतमुनि कृत 'नाट्यशास्त्र', धनंजय कृत 'दशरूपक', विश्वनाथ कृत 'साहित्यदर्पण' और भानुदत्त कृत 'रसमंजरी' का आधार लिया गया है। भानुदत्त के दोनों ग्रंथ 'रसतरंगिणी' और 'रसमंजरी' ब्रजभाषा कवियों के विशेष रूप से मार्ग-प्रदर्शक रहे हैं। ब्रजभाषा रीति-साहित्य का नायिकाभेद ही एक ऐसा विषय है, जो मूलतः संस्कृत साहित्य पर आधारित होते हुए भी ब्रजभाषा के कवियों एवं आचार्यों द्वारा बहुत आगे बढ़ाया गया है। इस विषय में वे लोग अपने अग्रज संस्कृत साहित्यकारों को बहुत पीछे छोड़ गये हैं।

ब्रजभाषा रीति-साहित्य का आरंभ—

ब्रजभाषा रीति-साहित्य का कब से आरंभ हुआ, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता, किंतु विक्रम की १६ वीं शताब्दी में इस प्रकार के ग्रंथों की रचना निश्चित रूप से होने लगी थी। ब्रजभाषा रीति-साहित्य के अब तक उपलब्ध ग्रंथों में कृपाराम कवि कृत 'हिततरंगिनी' सबसे प्राचीन है। इसकी रचना सं० १५९८ की माघ शु० ३ को हुई थी। 'हिततरंगिनी' की रचना में कृपाराम ने भरतमुनि के ग्रंथ का आधार लेने की बात लिखी है[1], किंतु इसकी रचना उन्होंने अधिकतर भानुदत्त के

[1] 'कृपाराम यों कहत है, भरत-ग्रंथ अनुमानि।'
—'हिततरंगिनी'

आधार पर की है। इस पुस्तक में नायिकाभेद का विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है। रीति-साहित्य की सर्व प्रथम उपलब्ध रचना में नायिकाभेद का ऐसा सर्वांगपूर्ण वर्णन होने से ब्रजभाषा-कवियों द्वारा इस विषय को इतना महत्व दिये जाने की बात समझ में आ सकती है।

कृपाराम के पश्चात् अष्टछाप के भक्त-कवियों द्वारा रची हुई रीति-रचनाएँ प्राप्त होती हैं। यदि 'साहित्य-लहरी' को सूरदास की रचना मान लिया जाय, तब तो कृपाराम के पश्चात् सूरदास ही रीति-ग्रंथ रचयिता के रूप में उपस्थित होते है। हिंदी साहित्य के इतिहासकारों एवं सूर-समीक्षकों ने अब तक 'साहित्य-लहरी' को सूरदास की रचना मान कर उसके एक पद के आधार पर उनका काल-निर्णय करने की चेष्टा की है। इस पद से ज्ञात होता है कि साहित्य-लहरी की रचना वैशाख की अक्षय तृतीया, रविवार, कृतिका नक्षत्र और सुकर्म योग में हुई थी। इस पद में प्रयुक्त 'रसन' शब्द का अर्थ लगाने में विद्वानों मे बड़ा मतभेद है। कुछ लोग इसका अर्थ शून्य (०), कुछ एक (१) और कुछ दो (२) लगाते है। इस प्रकार साहित्य-लहरी का रचना-संवत् भिन्न-भिन्न विद्वानों द्वारा १६०७, १६१७ और १६२७ बतलाया जाता है। प्रो० मुंशीराम शर्मा 'रसन' का अर्थ दो (२) लगाते हैं। इसकी पुष्टि में उनका कथन है कि पद में प्रयुक्त 'सुबल' का पर्यायवाची वृषभ संवत् १६२७ में पड़ा था*। इस मत का खंडन करते हुए श्री महावीरसिंह गहलोत गणित द्वारा साहित्य-लहरी का निर्माण संवत् १६१७ सिद्ध करते हैं†।

---

† मुनि पुनि रसन के रस लेख।
दसन गौरीनंद को लिखि, सुबल संवत पेख॥
नंदनंदन मास, छै तें हीन तृतिया, बार—
नंदनंदन-जनम तें है बान, सुख आगार॥
तृतिय रीछ, सुकर्म योग विचार सूर नवीन।
नंदनंदनदास हित साहित्य-लहरी कीन॥

—"साहित्य-लहरी"

* 'सूर सौरभ' प्रथम भाग पृ० ८

† 'सम्मेलन पत्रिका' पौष सं० २००२

साहित्य-लहरी की रचना चाहें सं० १६१७ में हुई और चाहें सं० १६२७ में, प्रश्न तो यह है कि यह सूरदास की रचना है या नहीं ? सूरदास की भक्तिपूर्ण रचना-शैली से इस पुस्तक की रीति-प्रधान शैली का सामंजस्य न होने के कारण अब कुछ विद्वानों की यह धारणा हो रही है कि साहित्य-लहरी सूरदास की रचना नहीं है। यदि इस पुस्तक को सूरदास की रचना नहीं मानते है, तब भी अपने रचना-काल के कारण वह ब्रजभाषा रीति-साहित्य की आरंभिक कृतियों में कृपाराम की 'हिततरंगिनी' के बाद मानी जावेगी। वैसे सूरदास ने सूरसागर के अनेक पदों द्वारा रीतिकालीन कवियों की सी रचना-प्रवृत्ति का भी परिचय दिया है, यद्यपि उनके काव्य की मूल प्रेरणा भक्ति है, रीति नहीं।

साहित्यलहरी के प्रत्येक पद में एक अलंकार और एक नायिका का उल्लेख किया गया है। अंत में रस-भेद और भाव-भेद का भी कथन है। इन काव्यशास्त्रोक्त विषयों के उसमें लक्षण नहीं दिये गये, केवल उदाहरण ही दिये गये है। इसलिए 'साहित्य लहरी' रीतिशास्त्र की पुस्तक न होकर रीति-रचना मात्र है।

साहित्यलहरी के पश्चात् नंददास कृत "रसमंजरी" भी ब्रजभाषा रीति-साहित्य की सुप्रसिद्ध आरंभिक कृति है। नंददास महात्मा सूरदास के अनंतर अष्टछाप के प्रधान कवि हैं। उनकी भक्तिपूर्ण सरस, मधुर और प्रौढ़ रचनाएँ ब्रजभाषा शृंगार-साहित्य की बहुमूल्य कृतियाँ है। उनकी रीति विषयक एक मात्र रचना 'रस-मंजरी" है, जिसमें भानुदत्त कृत संस्कृत रसमंजरी के अनुसार नायिकाभेद का सरस वर्णन हुआ है। नददास की अन्य रचना "रूप-मंजरी" में भी रीति-रचना शैली का प्रभाव है। इस ग्रंथ में उपपति रस की योजना की गई है। इसमें नायिका-भेद और रस-शास्त्र के अनुकूल अनेक सांगोपांग कथन किये गये है। इस कथा-काव्य में पुष्टि संप्रदाय की प्रेम-लक्षणा भक्ति का प्रतिपादन किया गया है, इसलिए इस पर रीति-शैली का प्रभाव होते हुए भी यह रीति-रचना नहीं है। फिर भी इन दोनों पुस्तकों के कारण नंददास रीति साहित्य के कवि माने जा सकते हैं। नंददास का जन्म सं० १५७० के लगभग हुआ था। उन्होंने अनुमानतः सं० १६२० के लगभग 'रस-मंजरी' और 'रूप-मंजरी' की रचना की थी।

नंददास के पश्चात् रहीम का नाम भी रीति-साहित्य के रचयिताओं में गिनाया जा सकता है। वे हिंदी साहित्य में अपने नीति विषयक दोहाओं के लिए प्रसिद्ध है, किंतु उनकी शृंगार विषयक रचनाएँ भी बड़ी सुंदर हैं। उनकी रीति विषयक रचना 'बरवा नायिका' है, जिसमें नायिकाभेद का बड़ा सुंदर वर्णन किया गया है। यह ग्रंथ ब्रजभाषा में न होकर अवधी बोली में है, किंतु उसके बरवा इतने सरस और सुंदर हैं और उनमें नायिकाओं के उदाहरण इतने स्पष्ट है कि हम इस पुस्तक में भी उनके उपयोग करने का लोभ नहीं छोड़ सके है। 'बरवा नायिका' की रचना अनुमानतः सं० १६४० के लगभग हुई होगी।

नंददास और रहीम के समकालीन मोहनलाल, मनोहर, गंग, गंगाप्रसाद और कर्णेश कवियों की भी रीति-रचनाओं का उल्लेख मिलता है। मोहनलाल और गंगाप्रसाद ने रस-रीति के ग्रंथो की रचना की थी। मोहनलाल की रचना का नाम 'शृंगार-सागर' है, किंतु गंगाप्रसाद की रचना के नाम का उल्लेख नहीं मिलता। मनोहर और गंग ने स्फुट छंदों में उत्कृष्ट रचना की है। कर्णेश कवि ने 'कर्णभरण', 'श्रुतिभूषण' और 'भूप भूषण' जैसे ब्रजभाषा के आरंभिक अलंकार-ग्रंथों की रचना की थी। ये सभी कविगण मुगल सम्राट अकबर के राज्य काल में हुए थे और उनमें से कई कवियों का अकबरी दरबार से भी संबंध था। उन सब कवियों का रचना-काल सं० १६२० से १६४० के लगभग है।

सं० १६४० के आसपास बलभद्र और मुनिलाल नामक दो रीति-कवियों का नामोल्लेख मिलता है। बलभद्र सुप्रसिद्ध केशवदास के बड़े भाई थे। उनकी रची हुई 'नखशिख' और 'दूषणविचार' सुंदर रीति-रचनाएँ है। बलभद्र रचित नख-शिख के छंद अपने विषय के अनुपम हैं। मुनिलाल ने सं० १६४२ में अपने रीति-ग्रंथ 'रामप्रकाश' की रचना की थी।

उपर्युक्त सभी व्यक्ति ब्रजभाषा रीति-साहित्य के आरंभिक कवि थे। उन्होंने अपने काव्य द्वारा इस प्रकार की रचना का आरंभ कर दिया था, किंतु उनमें संस्कृत रीति-ग्रंथकारों की सी विद्वता और विवेचना-शक्ति नहीं थी। इसीलिए उनको आचार्य न मान कर रीति-कवि माना जाता है।

ब्रजभाषा रीति-साहित्य के वास्तविक प्रथम आचार्य महाकवि केशवदास थे, जिन्होंने अपने विद्वतापूर्ण ग्रंथों द्वारा काव्य-विवेचन का सूत्रपात किया था।

ब्रजभाषा-काव्यशास्त्र के प्रवर्त्तक केशवदास—

महाकवि केशवदास ब्रजभाषा-काव्यशास्त्र के वास्तविक प्रथम आचार्य थे, जिन्होंने संस्कृत साहित्य के आधार पर अपने रीति-ग्रंथों का निर्माण किया था। उन्होंने सं० १६४८ में "रसिकप्रिया" और सं० १६५८ में "कविप्रिया" नामक प्रसिद्ध ग्रंथों की रचना की थी। इन दोनों ग्रंथों से उनका प्रकांड पांडित्य ज्ञात होता है।

केशवदास संस्कृत काव्यशास्त्र के भारी विद्वान और मर्मज्ञ थे, इसलिए वे संस्कृत ग्रंथों में वर्णित काव्यांगों जैसा विशद विवेचन करने में समर्थ हुए हैं। उन्होंने 'रसिकप्रिया' की रचना साहित्य-दर्पण और शृंगार-प्रकाश के आधार पर की है और 'कविप्रिया' की रचना में प्रसिद्ध अलंकार-वादी दंडी कृत "काव्यादर्श" राजशेखर कृत "काव्यमीमांसा" केशवमिश्र कृत "अलंकार-शेखर" के अतिरिक्त 'कविकल्पलतावृत्ति" से भी यथेष्ट सहायता ली है। केशवदास ने इन ग्रंथों पर ही आधारित न रह कर अपने अपूर्व पांडित्य और अद्भुत मेधा शक्ति से काव्यशास्त्र के कुछ नवीन नियमों का भी निर्माण किया है। उन्होंने कुछ नवीन अलंकारों की भी उद्भावना कर कुल ३७ अलंकारों का विवेचन किया है। उनके मतानुसार कविता का मुख्य आधार ही अलंकार है। अलंकार शब्द को उन्होंने उसके व्यापक अर्थ में प्रयुक्त किया है, जहाँ कि काव्य के सभी अंगों का अलंकार में ही समावेश हो जाता है। उनका सिद्धांत है—

'जदपि सुजाति, सुलच्छनी, सुवरन, सरस, सुवृत्त।
भूषन बिनु न बिराजई, कविता, बनिता मित्त॥"

केशवदास कृत 'रसिकप्रिया' रस-रीति की प्रसिद्ध रचना है, जिसमें रसभेद और नायिकाभेद का कथन हुआ है। 'कविप्रिया' में अलंकार-वर्णन की प्रधानता होते हुए भी काव्यशास्त्र की सभी प्रमुख बातें दी गई हैं। यह ग्रंथ बड़ा महत्वपूर्ण है।

केशवदास के अनंतर—

केशवदास ने काव्यशास्त्र पर इतना अधिकारपूर्ण लिखा और उनके पांडित्य की कुछ ऐसी धाक जमी कि उनके पश्चात् प्रायः पचास वर्ष तक किसी को इस विषय पर लिखने का साहस ही न हुआ। साहित्य के कुछ

अंगों पर स्फुट रचना अवश्य होती रही। सं १६५० के पश्चात् मोहनदास ने 'बारहमासा' और हरिराम एवं बालकृष्ण ने क्रमशः 'छंदरत्नावली' और 'रसचंद्रिका' जैसी पिंगल विषय की रचना कीं।

सं० १६६० में मुबारक ने और सं० १६७६ में लीलाधर ने नख शिख विषय की रचनाएँ कीं, जिनमें मुबारक कृत 'अलकशतक' और 'तिलशतक' प्रसिद्ध पुस्तकें हैं।

सं० १६८८ मे सुंदर कवि ने 'सुंदरशृंगार' में नायिकाभेद का कथन किया था। यह अपने विषय की उत्कृष्ट रचना है। सुंदर कवि मुगल सम्राट शहजहाँ के दरबारी कवि थे। उन्होंने 'बारहमासा' और 'सिंहासन बत्तीसी' नामक दो अन्य पुस्तकें भी रची थी।

सं० १७०६ मे सेनापति ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रंथ कवित्त रत्नाकर' की रचना की थी। यह ग्रंथ ब्रजभाषा साहित्य की प्रौढ़ रचना है। इसमें अन्य विषयों के अतिरिक्त षट् ऋतुओं पर बडे टकसाली छंद दिये गये हैं।

केशवदास ने रीति-ग्रंथों का आरंभ अवश्य किया था, किंतु जिसे साहित्य का 'रीति काल' कहा गया है, वह उनसे ५० वर्ष पश्चात् सं० १७०० वि० से आरंभ हुआ। सं० १७०० से १९०० वि० तक काव्यशास्त्र पर अनेक ग्रंथों का निर्माण हुआ और उसके विभिन्न अंग-रस, अलंकार, पिंगल, नायिकाभेद, ऋतु-वर्णन और नखशिख आदि पर भी सैकडों कवियों ने अगणित ग्रंथों की रचना की। इस दो सौ वर्ष के समय का उल्लेख इतिहासकारों ने "रीतिकाल" नाम से किया है।

रीतिकालीन आचार्यों का परिवर्त्तित दृष्टिकोण —

केशव ने भामह, उद्भट और दंडी आदि प्राचीन संस्कृत आचार्यों के मतानुसार अलंकारों को ही प्रमुख मानकर साहित्य की जो परिपाटी चलायी, उसका रीति काल मे मान नहीं हुआ। उन प्राचीन आचार्यों का प्रभाव परवर्ती आचार्यों के विवेचना-पूर्ण ग्रंथों द्वारा संस्कृत साहित्य मे ही नष्ट हो चुका था और मम्मट आदि दूसरे आचार्यों के मत का मान था। केशवदास के समय तक संस्कृत-साहित्य की इस परिवर्तित धारा ने यथेष्ट बल प्राप्त कर लिया था, फिर न मालूम उन्होंने इस पर ध्यान न देकर उसी पुराने राग को क्यों अलापा, जो अनेक मान्य विद्वानों द्वारा बेसुरा सिद्ध हो चुका था।

संस्कृत साहित्य के सुप्रसिद्ध अलंकाराचार्य अप्पय दीक्षित केशवदास के प्रायः समकालीन थे। संभव है अप्पय कृत 'कुवलयानंद' का निर्माण तब तक न हुआ हो अथवा वह प्रसिद्धि प्राप्त न कर सका हो; किंतु रुद्रट, भोज, मम्मट, रुय्यक, जयदेव और विश्वनाथ के ग्रंथ केशवदास को निस्संदेह सुलभ थे, क्यों कि ये सभी आचार्य उनके पूर्ववर्ती थे। केशवदास संस्कृत के प्रकांड पंडित थे और साहित्यशास्त्र का उन्होंने गंभीर अध्ययन किया था, अतः यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि उक्त आचार्यों के ग्रंथों का उन्होंने अवश्य अवलोकन किया होगा; फिर उनका अनुकरण न कर उन्होंने दंडी आदि प्राचीन आचार्यों की शैली को ही क्यों अपनाया, इसका कारण समझ में नहीं आता। रीतिकाल के अन्य आचार्यों ने केशव के मत पर न चलकर संस्कृत साहित्य के परवर्त्ती आचार्य आनंदवर्धनाचार्य, मम्मट और विश्वनाथ आदि का ही अनुकरण किया है। ब्रजभाषा साहित्य मे अलंकार ग्रंथ जयदेव के 'चद्रालोक' और अप्पय दीक्षित द्वारा उसके परिवर्द्धित रूप 'कुवलयानंद' के आधार पर लिखे गये हैं। अन्य काव्यांगों के लिये 'काव्यप्रकाश', 'साहित्यदर्पण' आदि से सहायता ली गयी है। इस प्रकार संस्कृत-साहित्य का जो क्रमिक विकास अनेक वर्षों मे अनेक आचार्यों की दीर्घ तपस्या के बाद हुआ, उसकी पुनरावृत्ति केशवदास के मत को अमान्य कर ब्रजभाषा के आचार्यों ने अनायास ही कर डाली!

रीति-कालीन कवि और आचार्य—

केशवदास के पश्चात् रीति-काल के प्रमुख आचार्य चिंतामणि त्रिपाठी थे। उन्होंने काव्यशास्त्र का विधि-पूर्वक विवेचन किया है। उनका कविता-काल वि० सं० १७०० के आस-पास है। उन्होंने 'छंदविचार', 'काव्यविवेक', 'कविकुलकल्पतरु', 'काव्यप्रकाश' और 'रसमंजरी' आदि कई रीति-ग्रंथों द्वारा दशांग काव्य का विवेचन किया है।

चिंतामणि त्रिपाठी के तीन भाई—भूषण, मतिराम और जटाशंकर भी सुकवि थे। भूषण ब्रजभाषा साहित्य मे वीर रस के सर्व प्रधान कवि हैं। उन्होंने महाराज शिवाजी और वीरवर छत्रशाल के आश्रय में अपने ओज-पूर्ण काव्य का निर्माण किया था। भूषण ने अपने सुप्रसिद्ध 'शिवराजभूषण' ग्रंथ की रचना स० १७३० वि० के लगभग की थी। यह ग्रंथ अलकार विषय का है, किंतु इसका महत्व अलंकार-ग्रंथ होने के कारण नहीं, बल्कि वीर रस के अपूर्व काव्य होने के कारण है।

मतिराम रीति-कालीन शृंगारी कवियों में प्रमुख थे। उनके समय में रीति के अंतर्गत 'रस-रीति' पर विशेष ज़ोर दिया जाने लगा और रस-वर्णन में शृंगार को रसराज मान कर उसी को विशेषता देते हुए अन्य रसों का वर्णन संक्षिप्त रूप से होने लगा। शृंगार रस के आलंबन नायिका-नायक और उद्दीपन षट् ऋतु आदि पर सुंदर से सुंदर कविताएँ होने लगीं। मतिराम ने 'रसराज', 'ललितललाम', 'छंदसार', 'साहित्यसार', 'सतसई' आदि कितने ही ग्रंथों का निर्माण किया था। उनका सब से अधिक प्रसिद्ध ग्रंथ 'रसराज' है, जिसमें उन्होंने नायिकाभेद का सुंदर विवेचन किया है।

जोधपुर नरेश महाराजा जसवंतसिंह ब्रजभाषा साहित्य में अलंकार विषय के सर्व प्रसिद्ध आचार्य थे। उनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'भाषाभूषण' संस्कृत साहित्य के प्रसिद्ध आचार्य जयदेव कृत 'चंद्रालोक' और अप्पय दीक्षित कृत 'कुवलयानंद' की पद्धति और उन्हीं के आधार पर बनाई गई है। इसमें एक ही दोहा में लक्षण और उदाहरण दोनों दिये गये हैं।

काव्य-सौन्दर्य, उक्ति-चमत्कार और भाव-व्यंजना की दृष्टि से बिहारीलाल ब्रजभाषा साहित्य में अपनी समता नहीं रखते। उन्होंने दोहा जैसे छोटे छंद में इतना अधिक भाव-गांभीर्य भर दिया है कि उनकी कारीगरी देखते ही बनती है। इस प्रकार की रचना-शैली का आरंभ अब से प्रायः दो हज़ार पूर्व प्राकृत भाषा में हुआ था। हाल द्वारा संगृहीत 'गाथा-सत्तसई' इसी शैली की रचना है। इस शैली का जन्म प्राकृत में और विकास संस्कृत में होने पर भी, उसका पूर्ण उत्कर्ष ब्रजभाषा साहित्य में हुआ। बिहारीलाल द्वारा रचित 'बिहारी सतसई' इसी शैली की सर्वोत्कृष्ट रचना है। बिहारीलाल ने न तो किसी रीति-ग्रंथ की रचना की और न दूसरे विषय का कोई बड़ा ग्रंथ लिखा, फिर भी एक मात्र सात सौ दोहाओं की इस अल्प रचना के बल पर ही वे समस्त कवि-समुदाय के शिरोमणि बने हुए हैं। 'बिहारी सतसई' रीति-धारा से प्रभावित ब्रजभाषा के साहित्य-कोष का दैदीप्यमान उज्ज्वल रत्न है।

सितारा नरेश 'नृप संभु' (कविताकाल सं० १७०७ वि०) सुकवि और कवियों के आश्रयदाता थे। उनका नखशिख-वर्णन बड़ा सुंदर है। कुलपति मिश्र एक प्रमुख आचार्य और सुकवि थे। उन्होंने सं० १७२७ में 'रसरहस्य' नामक प्रसिद्ध ग्रंथ में काव्यशास्त्र का विवेचन किया है। इस ग्रंथ की

रचना में संस्कृत ग्रंथ काव्यप्रकाश और साहित्यदर्पण से विशेष सहायता ली गई है। सुखदेव मिश्र भी इसी काल के प्रसिद्ध आचार्य थे। उन्होंने छंदशास्त्र पर अपनी प्रसिद्ध रचना 'छंदविचार' का निर्माण किया है। उन्होंने कई रीति-ग्रंथों की रचना की थी, जिनमें छंदविचार के अतिरिक्त 'वृत्तविचार', 'रसार्णव' और 'शृंगारलता' मुख्य हैं। उनका कविता काल वि० सं० १७२० से १७६० तक है।

महाकवि देव ब्रजभाषा साहित्य के सर्वश्रेष्ठ शृंगारी कवि और आचार्य थे। उन्होंने अनेक ग्रंथों की रचना द्वारा दशांग कविता का पूर्ण विवेचन किया है। काव्यशास्त्र का ऐसा कोई विषय नहीं, जिस पर देव ने प्रकाश न डाला हो। उनके ७२ ग्रंथ कहे जाते है, जिनमें ३० प्रसिद्ध हैं। इन ग्रंथों में 'काव्यरसायन' द्वारा समस्त काव्यांगों का और 'सुखसागरतरंग' द्वारा नायिकाभेद का बड़ा मनोहारी वर्णन हुआ है। उनके 'भावविलास', 'भवानीविलास', 'रसविलास' आदि भी प्रसिद्ध रीति-ग्रंथ हैं। देव ब्रजभाषा साहित्य के युगांतरकारी महाकवि हुए हैं। उनका कविता-काल विक्रम सं० १७४६ से १८०० तक है।

देव के समय तक ब्रजभाषा साहित्य अपनी उन्नति की चरम सीमा पर पहुँच चुका था। बड़े-बड़े आचार्य, महाकवि और काव्य मर्मज्ञों की जैसी बाढ़ उस समय आई थी, वह अभूतपूर्व थी। ब्रजभाषा साहित्य के स्तंभ सुरत मिश्र, घनानंद, श्रीपति, सोमनाथ, दास, तोष, रसलीन, रघुनाथ आदि अनेक सुकवि उसी काल मे हुए थे। उनके अनंतर दूलह, बेनीप्रवीन, पद्माकर, ग्वाल, प्रतापसाहि आदि सैकड़ों सुकवियों ने रीति-साहित्य का शृंगार किया है। दो-चार परम प्रसिद्ध कवियों के अतिरिक्त उन सब का संक्षिप्त वर्णन लिखना भी स्थानाभाव से संभव नहीं है, इसलिए उनके नामोल्लेख मात्र से ही संतोष करना पड़ता है।

सोमनाथ ब्रजभाषा के उत्कृष्ट कवि और आचार्य हुए हैं। उन्होंने सं० १७९४ मे 'रसपीयूषनिधि' नामक रीति विषयक प्रसिद्ध ग्रंथ की रचना की थी। रसपीयूषनिधि बड़ा ग्रंथ है। उसमें काव्य के समस्त अंगों का मार्मिक विवेचन हुआ है। भिखारीदास उपनाम 'दास' प्रशंसनीय कवि और प्रतिष्ठित आचार्य हुए हैं। उनके ग्रंथ 'काव्यनिर्णय' और 'शृंगारनिर्णय' रीति साहित्य के मान्य ग्रंथ हैं। रसलीन के 'अंगदर्पण' और 'रसप्रबोध' भी प्रसिद्ध रीति ग्रंथ है। दूलह ने 'कविकुलकंठाभरण के ८१ छंदों मे अलकार विषय को गागर मे सागर की तरह भर दिया है। पद्माकर और बेनीप्रवीन

ने रीति-साहित्य के सुंदर ग्रंथों की रचना की है और ग्वाल कवि एवं प्रतापसाहि भी रीति-काल के अंतिम समय में प्रशसनीय कवि हुए हैं।

चिंतामणि त्रिपाठी से आरंभ होकर रीति-धारा का अविरल प्रवाह प्रतापसाहि तक बड़े वेग से बहता रहा। इस २०० वर्ष के काल में रीति और विशेष कर रस-रीति पर इतना साहित्य लिखा गया कि ब्रजभाषा वाङ्मय में अन्य विषयों का अपार भंडार होते हुए भी लोगों को रस-रीति और विशेष कर शृंगार रस की रचनाएँ ही दृष्टिगोचर होती हैं। सं० १९०० वि० के पश्चात वह समय आता है, जब कि रीति विषयक रचनाओं की न्यूनता और अन्य विषयों की अधिकता होने लगी थी; किंतु प्राचीन परिपाटी ने सुकवियों हृदयों पर ऐसा अधिकार जमा रखा था कि जो कवि विशेष रूप से अपनी काव्य-प्रतिभा का प्रदर्शन करना चाहता था, वह रीति-कालीन शैली को ही अपनाता था।

रीति-कालीन कवियों की रचना-प्रणाली और उनका लक्ष—

ब्रजभाषा कवियों ने आरंभ से ही धारावाहक प्रबंध काव्यों की अपेक्षा स्फुट रूप से मुक्तक रचना पर अधिक ध्यान रखा है। भक्तिकाल के कवियों ने भी भक्तिपूर्ण प्रबंध काव्य की अपेक्षा मुक्तक रचना में ही अपने भक्ति-भाव को प्रकट किया था। यही कारण है कि सूरदास जैसे महाकवि का काव्य भी प्रबंध की अपेक्षा अधिकतर मुक्तक की ही श्रेणी में आता है।

रीति-कालीन कवियों ने तो एक मात्र इसी पद्धति पर काव्य-रचना की है। उन्होंने स्फुट छंदों में उक्ति-चमत्कारपूर्ण ऐसा अद्भुत काव्य-कौशल दिखलाया है, जैसा अन्य भाषाओं के साहित्य में कठिनता से मिल सकेगा। 'हाल' और 'गोवर्धन' ने क्रमशः प्राकृत और संस्कृत में जिन सतसईयों का निर्माण किया था, वे ब्रजभाषा की अमर कृति 'बिहारी सतसई' के काव्य-सौन्दर्य की समता नहीं कर पातीं। यही कारण है कि संस्कृत साहित्य का आधार लेकर भी ब्रजभाषा के रीति कालीन कवियों ने इस दिशा में जिस अनुपम साहित्य का निर्माण किया है, वह काव्य-सौन्दर्य और काव्य-परिमाण दोनों ही दृष्टियों से संस्कृत साहित्य की अपेक्षा अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

काव्य-सौन्दर्य के अतिरिक्त अन्य बातों का विचार किया जाय तो रीति-कालीन कवियों का महत्व कुछ कम हो जाता है। भक्त कवियों के समान उनका आदर्श उच्च धरातल पर नहीं था, इसलिये जहाँ भक्त कवियों का यह सिद्धांत था —

कीन्हेसि प्राकृत जन गुन-गाना। सिर धुनि गिरा लागि पछिताना॥

वहाँ रीति-कालीन कवियों ने अधिकतर 'प्राकृत जन' के गुण-गान में ही अपनी प्रतिभा का उपयोग किया है। किसी पौराणिक महापुरुष अथवा किसी ऐतिहासिक आदर्श व्यक्ति को नायक मान कर उनके गुण-गान मे काव्य-रचना करने की पृथा प्राचीन काल से चली आती है, किंतु रीति-कालीन कवियों ने अपने भले-बुरे सभी प्रकार के आश्रयदाताओं की गुणावली का कथन करना अपनी कविता का लक्ष बना लिया था। इन कवियों की विलक्षण प्रतिभा और उनके अपूर्व काव्य-सौन्दर्य के साथ जब उनके लक्ष पर विचार करते है, तो बड़ा खेद होता है। यदि उन कवियों ने अपनी प्रतिभा का उपयोग संस्कृत साहित्य के से महाकाव्य अथवा खंडकाव्यों की रचना मे किया होता, तो ये निश्चय पूर्वक व्रजभाषा साहित्य के इस अभाव को भी पूरा कर जाते!

रीति-साहित्य के कवि और आचार्य—

प्रायः प्रत्येक भाषा के कवि और आचार्य पृथक्-पृथक् व्यक्ति हुआ करते है। कविगण काव्य-रचना करते हैं और आचार्यगण काव्य-रचना के नियमों का निर्माण करते है। आचार्यगण स्वय कविता न कर दूसरे कवियो की रचनाओं को, अपने निश्चित किए हुए नियमा के अनुसार, उदाहरण स्वरूप उपस्थित करते हैं और उनके गुण-दोष दिखला कर अपना अभिमत प्रकट करते है।

व्रजभाषा रीति-साहित्य के प्रवर्त्तक केशवदास ने इस परिपाटी के विरुद्ध लक्षण और उदाहरण स्वरचित देने की जो पद्धति प्रचलित की, वह प्राय सभी व्रजभाषा आचार्यों ने स्वीकार कर ली। केशवदास द्वारा प्रचलित काव्य-रीति की परिपाटी तो उन्हीं के मतानुसार व्रजभाषा साहित्य मे न चल सकी, किंतु लक्षण के साथ उदाहरण भी स्वरचित देने की पृथा बराबर चलती रही। इसका परिणाम साहित्य के लिए अच्छा नहीं हुआ*, क्यों कि लक्षणकार

* "जब आचार्य लोग साहित्य के विश्लेषण मे नवीन नियमों का अन्वेषण कर उसके रहस्यों के उद्घाटन का कार्य छोड़ कर उदाहरण ही गढने मे अपना शक्ति का व्यय करने लगे, तब इससे साहित्य-शास्त्र और काव्य-साम्राज्य दोनो का अहित हुआ और उसके परिणाम स्वरूप साहित्य-शास्त्र की तो कोई उन्नति नहीं हुई, हां, कविता के भंडार मे असली के साथ-साथ नकली सिक्के खूब भर गये!"

—डा० पीतांबरदत्त बड़थ्वाल।

आचार्य जब स्वयं कवि बनने की चेष्टा करता है, तो उससे किसी विशेष साहित्यिक विवेचन की आशा नहीं रह जाती। इसके साथ ही यह आवश्यक भी नहीं है कि काव्य-मर्मज्ञ लक्षणकार सुकवि भी हो और वह सभी उदाहरण एक सी उत्तमता के साथ बना सके। इसका यह फल हुआ कि जो आचार्य केशवदास के समान सुकवि भी थे, वे तो सुंदर उदाहरण उपस्थित कर सके, किंतु निम्न कोटि के कवि काव्यशास्त्र के पूरे पंडित होते हुए भी लक्षणों के साथ उदाहरण गढ़ने की धुन में अपने उद्देश्य में पूरी तरह सफल न हो सके। यही कारण है कि संस्कृत साहित्य के समान ब्रजभाषा रीति-साहित्य में साहित्यिक विश्लेषण के लिए शास्त्रार्थ और खंडन मंडन की प्रणाली विशेष रूप से प्रचलित नहीं हो सकी। ब्रजभाषा साहित्य के रीति-ग्रंथ रचयिताओं में रीति-कवि ही अधिक हैं, आचार्यों की संख्या बहुत कम है।

रीति-कालीन कवियों की कविता के विषय—

जैसा पहले लिखा जा चुका है, रीति-काल में ब्रजभाषा-साहित्य की अभूतपूर्व उन्नति हुई थी। उस काल में शृंगार रस का अपूर्व काव्य-कौशल तो दिखलाया ही गया, किंतु अन्य विषयों पर भी यथेष्ट काव्य-रचना हुई। भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, नीति, कथा-वार्ता, ज्योतिष, वैद्यक आदि अनेक विषयों की रचना के कारण ब्रजभाषा साहित्य का भंडार भर गया।

विभिन्न विषयों का अपार साहित्य होते हुए भी उस काल की शृंगार पूर्ण रचनाओं की अधिकता के कारण कुछ लोग भ्रम वश यह आक्षेप करते हैं कि ब्रजभाषा साहित्य में शृंगार रस की रचनाओं के अतिरिक्त अन्य विषयों का सर्वथा अभाव है। जो लोग इस प्रकार का कथन करते हैं, वे उस काल के विशाल साहित्य से पूरी तरह परिचय नहीं रखते।

फिर भी यह तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि अन्य विषयों का अभाव न होते हुए भी रीति-काल में रस-रीति की रचना अपेक्षाकृत अधिक परिमाण में हुई है। रस-रीति में भी शृंगार रस पर अधिक ध्यान रखा गया है।

रीति-काल के कवियों ने अपने शृंगार वर्णन का आधार अधिकतर अलंकार, नखशिख, षट् ऋतु और नायिकाभेद आदि विषयों को बनाया है। इन विषयों पर उन्होंने इतना अधिक लिखा है कि उनके पृथक्-पृथक् विवेचन की आवश्यकता है।

रीति-काल में अलंकारों का प्रभाव —

रीतिकालीन आचार्यों ने संस्कृत अलंकार-साहित्य के आधार पर अलंकार ग्रंथों की रचना की है। इस विषय के विवेचनापूर्ण ग्रंथों की रचना में उनको अधिक सफलता नहीं मिली, किंतु रीति कालीन कवियों ने कविता के ऊपरी ढाँचे को सुंदर बनाने और शब्द-चमत्कार दिखाने के लिए अपनी कविता में अलंकारों के समावेश की विशेष चेष्टा की है। इसके कारण उनकी कविता रोचक और भावोत्पादक बनने के साथ कुछ अप्राकृतिक भी हो गई है। जिस प्रकार कतिपय आभूषणों द्वारा सुंदर स्त्री की सुंदरता और भी बढ़ जाती है, उसी प्रकार काव्य-सौन्दर्य के लिए भी कुछ अलंकार वाँछनीय हैं, किंतु रीति-काल के कवियों ने अलंकारों की इतनी भरमार की है कि उनकी कविता-कामिनी उनके बोझ में ही दब गई है! इस प्रकार की कविता प्रशंसनीय नहीं कही जा सकती, क्यों कि कविता का आधार रस है, अलंकार नहीं।

जिस प्रकार स्वाभाविक रूप से सुंदर स्त्री को दो-एक मामूली से आभूषण पहना देना ही पर्याप्त होता है, उसी प्रकार सुंदर कविता के लिए भी किंचित अलंकारों का समावेश ही यथेष्ट है, किंतु अत्यधिक अलंकारों के पचड़े में पड़ने से कविता का मुख्य प्रयोजन ही नष्ट हो जाता है। जब कवि की प्रतिभा अलंकारों द्वारा कविता का बाहरी रूप सजाने में लग जाती है, तो वह उसके आंतरिक रूप अर्थात् भाव की ओर ध्यान ही नहीं दे सकता, तभी उसकी कविता कुरूप स्त्री को भोंड़े आभूषण पहना देने जैसी हो जाती है!

अलंकार के दो भेद अर्थालंकार और शब्दालंकार में से अर्थालंकार कविता के लिए उपयोगी हो सकते हैं, किंतु शब्दालंकार ऐसे अधिक उपयोगी नहीं है। शब्दालंकार कविता का बाहरी रूप मात्र सुधारते हैं—उसकी आत्मा को जागृत नहीं करते; इसीलिए जिस काव्य में शब्द की रमणीयता मात्र होती है, वह अधम काव्य कहलाता है, जब कि केवल अर्थ की रमणीयता से मध्यम और शब्द और अर्थ दोनों की रमणीयता से उत्तम काव्य कहा जाता है।

वैसे तो कविता का बाहरी रूप भी उपेक्षणीय नहीं है, क्यों कि सबसे पहिले उसी पर दृष्टि जाती है—कविता की अंतरात्मा को तो काव्य-मर्मज्ञ ही पहचान पाते हैं, किंतु उसके बाहरी रूप से साधारण व्यक्ति भी आकर्षित हो सकते हैं और उससे प्रभावित होकर उसके अंतरंग रूप की परख करने के

लिए उत्साहित हो जाते हैं। किंतु यह बाहरी रूप आंतरिक रूप का सहायक और पोषक होना चाहिए, न कि कविता का आधार ही उसे बना लेना चाहिए।

रीति कालीन कतिपय कवियों ने इस शाश्वत सत्य पर ध्यान न देकर जिस प्रकार की कविता की है, उसमें कभी-कभी शब्दाडंबर के अतिरिक्त वास्तविक तथ्य का अभाव दिखलाई देता है।

नख-शिख वर्णन—

आरंभ में भक्त कवियों ने अपने उपास्य देव के अंग-प्रत्यंगों का भक्ति-भावना पूर्ण वर्णन किया था। उनके अनुकरण पर शृंगार रस के वर्णन में नखशिख-कथन की प्रणाली ही चल पड़ी, जो राधाकृष्ण के रूप-वर्णन से आरंभ होकर लौकिक नायिका-नायकों पर जाकर रुकी।

रीति-काल के कवियों ने नायिका के रूप-वर्णन को एक स्वतंत्र विषय ही बना लिया था। उन्होंने नख से शिखा तक समस्त अंग-प्रत्यंगों का ऐसी बारीकी से वर्णन किया है कि उनकी अद्भुत सूझ और कारीगरी की प्रशंसा करनी पड़ती है। एक-एक अंग के वर्णन पर पूरी-पूरी पुस्तकें लिख डाली हैं! इसके प्रमाण के लिए 'अलक-शतक' और 'तिल-शतक' का नामोल्लेख किया जा सकता है।

किसी-किसी कवि ने नायिका का नख-शिख वर्णन ऐसी कामुकता और विषयासक्ति के साथ किया है कि वह कुरुचि-उत्पादक हो गया है! ऐसा वर्णन कुछ लंपट कवियों द्वारा हुआ है, जिनकी यह प्रवृत्ति कदापि प्रशंसनीय नहीं कही जा सकती।

षट् ऋतु वर्णन—

रीति काल के कवियों ने षट् ऋतुओं का भी बड़ा हृदयग्राही वर्णन किया है। इस प्रकार के वर्णन में ऋतुओं के नैसर्गिक सौन्दर्य की अपेक्षा उनके उद्दीपक प्रभाव का अधिक कथन किया गया है। इसका यह कारण है कि ऋतुओं को उद्दीपन विभाव के अंतर्गत लिखने से उनके उद्दीपक प्रभाव का वर्णन करना आवश्यक हो जाता है। इस रहस्य को न जानने के कारण ही आज-कल के पाठक ऋतु-वर्णन में भी प्रकृति-चित्रण का अभाव देख कर ब्रजभाषा के रीति-कालीन कवियों से खीझ उठते हैं। षट् ऋतुओं के कथन में शृंगार रस के संयोग और विप्रलंभ दोनों पक्षों पर बड़े उत्कृष्ट छंद लिखे गये हैं।

नायिकाभेद—कथन—

रीति-काल का सर्वप्रिय और सर्वाधिक व्यापक विषय नायिकाभेद है। ब्रजभाषा-कवियों ने इस विषय की मूल सामग्री संस्कृत साहित्य से प्राप्त करने पर भी उसकी वास्तविक उन्नति स्वयं की है। रीति-काल के अन्य विषयों में ब्रजभाषा-कवि चाहे अपने पूर्ववर्ती संस्कृत कवियों की समता न कर सके, किंतु नायिकाभेद के कथन में उनको अत्यंत सफलता प्राप्त हुई है। इस विषय के वर्णन में वे संस्कृत-कवियों से भी बहुत आगे बढ़ गये हैं।

नायिकाभेद कोई ऐसा आवश्यक विषय नहीं है, जिसके बिना काव्य-साहित्य का काम ही न चल सके। काव्य-रीति में भी उसका महत्व विभाव के एक अंग के नाते नगण्य ही है, किंतु ब्रजभाषा-कविता ने इसको इतना महत्व क्यों दिया गया, यह बात बहुत से व्यक्तियों को आश्चर्यजनक ज्ञात होती है।

नायिकाभेद का संबंध काव्य से उतना नहीं है, जितना अभिनय से है, और इसी सिलसिले में उसकी उत्पत्ति भी हुई है। संस्कृत साहित्य में, जहाँ इस विषय का सूत्रपात हुआ है, इसका उल्लेख सर्वप्रथम नाट्यशास्त्र और दशरूपक जैसे अभिनय ग्रंथों में ही मिलता है। काव्य में इसका संबंध इतना ही हो सकता है कि उसके पात्रों के चरित्र-चित्रण संबंधी कोई अयुक्त, अमर्यादित और अस्वाभाविक बात न कहदी जावे, किंतु ब्रजभाषा साहित्य में कुछ ऐसी रीति चल पड़ी कि बड़े-बड़े प्रतिभाशाली कवि भी प्रबंध काव्यों की अपेक्षा मुक्तक छंदों द्वारा विभाव पक्ष का ही पोषण करते रहे! उनका ध्यान नायिकाओं के अगणित भेदोपभेदों द्वारा नारी-मन के सूक्ष्म से सूक्ष्म विकारों के प्रदर्शन की ओर तो गया, किंतु उन्हीं नायिकाओं को महा काव्य अथवा खंड-काव्यों की नायिकाएँ बनाकर कथा का विस्तार किया जाता, तो उन कवियों की प्रतिभा और भी अधिक चमत्कृत हो जाती।

जो नहीं हुआ, उसका खेद अवश्य है, किंतु जो कुछ है, वह भी इतना महान् और महत्वपूर्ण है कि उसकी अवहेलना नहीं की जा सकती। ब्रजभाषा कवियों द्वारा कथित नायिकाभेद के छंदों में सर्वोच्च श्रेणी की काव्य-प्रतिभा, अद्भुत कल्पना शक्ति, सराहनीय सहृदयता और सूक्ष्मदर्शिता के अतिरिक्त काव्य-कला के समस्त गुण विद्यमान हैं। इन छंदों को पढ़कर पाठक रस में तन्मय होकर असीम सुख का अनुभव करने लगता है और अनायास ही उनके रचयिताओं की मुक्त कंठ से प्रशंसा करने लगता है। यदि ब्रजभाषा-साहित्य

के सर्वोच्च काव्य-सौन्दर्य को को देखना है, तो वह नायिकाभेद के काव्य में ही मिलेगा, चाहें पाठक इस विषय की रचनाएँ पसंद करें या न करें।

नायिकाभेद की रचनाओं का काव्य-सौन्दर्य और उनके द्वारा साहित्य का उपकार मानते हुए भी उनकी लौकिक उपयोगिता के विषय में संदेह किया जाता है। हमारे कुछ प्रतिष्ठित विद्वान उनको 'कोकशास्त्र' समझ कर उनसे हिंदू-समाज का अपकार होना मानते हैं‡। नायिकाभेद की रचनाओं को कोकशास्त्र कहकर उनकी अवहेलना करना उचित नहीं है, यद्यपि कोकशास्त्र पढ़ाना भी दाम्पत्य जीवन को सुखमय बनाने के लिए आवश्यक है। इस प्रकार की रचनाओं में स्त्री-पुरुष के जीवन की समस्याओं को हल किया गया है। विद्वद्वर डा० रामप्रसाद त्रिपाठी ने ठीक कहा है—

"स्त्री-पुरुष की समस्या जीवन की सबसे बड़ी कड़ी पहेली है। धर्म, कर्म, काम और मोक्ष इसी धुरे पर चक्कर खा रहे हैं। पुरुष और प्रकृति की यह लीला नित्य और नूतन है। इसके रहस्य को समझ लेने से जीवन की और मनुष्य की सामाजिक समस्या हल हो जाती है। उस साहित्य से हमारे समाज को हानि पहुँचने की कल्पना मिथ्या और अपवादात्मक है।"†

नायिकाभेद की रचनाओं द्वारा मनोवैज्ञानिक शैली में नारियों की विभिन्न मनोदशाओं का ऐसा विदग्धतापूर्ण वर्णन हुआ है कि जिसके कारण पाठकों को गृहस्थ की अनेक उलझनों को सुलझाने में सुविधा होती है। उनके द्वारा वे नारियों की प्रकृति से परिचित हो जाने के कारण दाम्पत्य जीवन में कटुता उत्पन्न होने के अनेक अवसरों से अपने को बचा सकते हैं। इस प्रकार रीतिकालीन कवियों का नायिकाभेद साहित्यक दृष्टि से उपादेय होने पर भी सामाजिक दृष्टि से भी उपेक्षणीय नहीं है।

———

‡ गिरी हुई हिंदू जाति को कोकशास्त्र पढ़ाना ऐसा ही समझिए, जैसा किसी निमोनिया के पुराने बीमार को बिना काठी और लगाम के मस्त घोड़े पर चढ़ाकर घोड़े को चाबुक मार देना! इसलिए हमारे विचार में तो इस ढंग के कवियों से जहाँ हिंदी साहित्य का उपकार हुआ, वहां हिंदू-समाज का अपकार भी हुआ। — "हिंदी भाषा का इतिहास"

† ब्रज-साहित्य-मंडल के सभापति पद से दिया हुआ भाषण।

सप्तम परिच्छेद

नायिकाभेद की परंपरा और उसका आधार

★

नायिकाभेद का महत्व और आधार—

आरंभिक परिच्छेदों के रस-प्रकरण में बतलाया जा चुका है कि काव्य के प्राणस्वरूप नव रसों में शृंगार एक प्रमुख रस है। विभाव, अनुभाव और संचारीभावों के एकीकरण से स्थायी भाव 'रति' परिपुष्ट होकर 'शृंगार रस' संज्ञा को प्राप्त होता है। इस प्रकार विभाव शृंगार रस का एक अंग हुआ। विभाव के दो भेद होते हैं—आलंबन और उद्दीपन। शृंगार रस के आलंबन नायिका और नायक होते हैं, अतः शृंगार रस के आलंबन विभाव के अंतर्गत नायिकाभेद काव्यशास्त्र के विशाल परिवार का एक लघु अंग ही नहीं, प्रत्युत उपांग मात्र है।

किंतु इस छोटे से उपांग ने ही ब्रजभाषा कवियों पर कुछ ऐसा जादू किया था कि उनमें से बड़े-बड़े प्रतिभाशाली व्यक्तियों की संपूर्ण प्रतिभा और शक्ति इसी विषय के वर्णन में लग गई! कई सौ वर्षों तक अगणित सर्वोच्च श्रेणी के कलाकारों ने पूर्ण साधना के साथ अपने जीवन के अनेक अमूल्य वर्षों को इस विषय की रचना में लगाया है। हिंदू राजा-महाराजा और सामंत-सरदारों के अतिरिक्त मुसलमान बादशाह-नवाब और अमीरों ने भी इस विषय के प्रोत्साहन में गुण-ग्राहकता पूर्वक पुरकल धन-व्यय किया है। जिस विषय की रचना में इतनी विपुल जन-शक्ति और धन-शक्ति लगी है, उसका ब्रजभाषा-साहित्य में अनुपम महत्व होना ही चाहिए।

इस विषय पर विशेष प्रकाश डालने से पूर्व यह जानना आवश्यक है कि ब्रजभाषा—नायिकाभेद का परपरा और उसके वर्णन का आधार क्या है। इस संबंध में हमको संस्कृत साहित्य पर दृष्टि डालनी पड़ती है, क्यों कि ब्रजभाषा-कवियों ने इस विषय की मूल सामग्री वहीं से प्राप्त की है।

नायिकाभेद का उद्गम स्थान—

नायिकाभेद की परंपरा काव्यशास्त्र की परंपरा के साथ ही साथ आरंभ होती है। इसलिए, इस विषय का सर्वप्रथम वर्णन महामुनि भरत के

'नाट्यशास्त्र' में मिलता है। नाट्यशास्त्र जैसे संस्कृत रीति-साहित्य के प्राचीनतम ग्रंथ में इस विषय का विस्तार पूर्वक उल्लेख होने से नायिकाभेद का महत्व स्वयंसिद्ध है। अवश्य ही भरतमुनि ने नायिकाओं का वर्णन उस क्रम से नहीं किया है, जैसा इस विषय के व्रजभाषा-आचार्यों ने किया है। इसके दो कारण है। प्रथम तो नाट्यशास्त्र एक अत्यंत प्राचीन ग्रंथ है, अतः उसमें इस विषय की आदिम अवस्था का ही रूप दिखलाई देता हैं, जिसका क्रमशः विकास होते हुए वर्तमान-कालीन नायिकाभेद बना है। दूसरे नाट्यशास्त्र अभिनय संबंधी ग्रंथ है, अतः उसमें नायिकाओं का वर्णन अभिनय से संबंधित होने के कारण हुआ है। फिर भी भरतमुनि कृत नायिकाओं के अंतर्गत किसी न किसी रूप में वर्तमान नायिकाभेद की प्रायः सभी नायिकाएँ आ जाती है, अतः महामुनि भरत इस विषय के प्रवर्त्तक और नाट्यशास्त्र इसका सर्व प्रथम उद्गम स्थान है।

नाट्यशास्त्र में वर्णित उत्तमा, मध्यमा और अधमा एवं कुलजा, प्रेष्या और वेश्या—ये तीन-तीन प्रकार की नायिकाएँ तथा बासकसज्जा, विरहोत्कंठिता स्वाधीनभर्तृका, कलहांतरिता, खंडिता, विप्रलब्धा, प्रोषितपतिका एवं अभिसारिका—ये आठ प्रकार की नायिकाएँ वर्तमान नायिकाभेद के अनुकूल हैं। इनके अतिरिक्त महादेवी, देवी, स्वामिनी, स्थायिनी, भोगिनी, शिल्पकारिणी, नाटकी, नर्तकी, अनुचारिका, आयुक्ता, परिचारिका, संचारिणी, प्रेषण-कारिका, सुमहत्तरा, प्रतिहारी, कुमारी, स्थविरा, नवयौवना, धीर, ललित, उदात्त, निभृत, अनुरक्ता और विरक्ता आदि विभिन्न नायिकाओं में भी परवर्ती कवियों की अधिकाँश नायिकाओं का आदिम रूप दिखलाई देता है। महामुनि भरत ने प्रेष्या और वेश्या के नाम से वर्तमान नायिकाभेद की परकीया और सामान्या का भी उल्लेख किया है।

इसके साथ ही अभिलाषा, चिंतन, गुण-कथन आदि दश दशाएँ, हाव-भाव, सखा-सखी, दूती आदि सभी विषयों का उल्लेख होने से 'नाट्यशास्त्र' में वर्तमान नायिकाभेद की प्रायः सभी सामग्री मिल जाती है। यह ग्रंथ ३७ अध्यायों में समाप्त हुआ है। इसके २२ वें अध्याय में इस विषय का विस्तारपूर्व वर्णन हुआ है।

नाट्यशास्त्र के पश्चात् व्यासदेव कृत 'अग्निपुराण' में इस विषय का उल्लेख मिलता है। उक्त पुराण मे शृंगार रस को विशेष महत्व दिया गया है, इसलिए प्रसंगवश नायिकाभेद का भी कुछ वर्णन हुआ है।

संस्कृत साहित्य में नायिकाभेद—

भरत और व्यास का निश्चित समय निर्धारित नहीं हो सका है, किंतु वे अवश्य ही विक्रम संवत से पूर्व के है। उन प्राचीन मुनियों के ग्रंथों के अतिरिक्त फिर शताब्दियों तक नायिकाभेद का साहित्य उपलब्ध नहीं होता। संस्कृत साहित्य मे भरत और व्यास के अनंतर दसवीं शताब्दी के उपरांत होने वाले आचार्यों के ग्रथों मे ही नायिकाभेद का थोडा–बहुत उल्लेख मिलता है। यह वह समय है जब कि आचार्यों ने काव्य के समस्त अगों पर विस्तृत रूप से विवेचन करना आरभ कर दिया था; किंतु नायिकाभेद पर उन्होने बहुत ही सक्षिप्त रूप से लिखा है। सस्कृत साहित्य के प्राचीन आचार्यों ने अलंकार विषय का बडा गभीर विवेचन किया है। जिन आचार्यों ने अलंकार के अतिरिक्त काव्य के अन्य अगो की मार्मिक विवेचना की है, उन्होने रस प्रकरण के अंतर्गत नायिकाभेद का भी संक्षिप्त उल्लेख कर दिया है, किंतु व्रजभाषा कवियों की तरह उसको स्वतत्र विषय मान कर उसका विस्तृत विवेचन नही किया गया।

संस्कृत साहित्य के अनेक आचार्यों में से रुद्रट, धनंजय, भोज, मम्मट, रुय्यक, भानुदत्त, वाग्भट द्वितीय, विश्वनाथ, केशव मिश्र आदि ने नायिकाभेद का थोडा–बहुत उल्लेख किया है। उन आचार्यों के ग्रंथों में भी धनंजय कृत 'दशरूपक', विश्वनाथ कृत 'साहित्यदर्पण' और भानुदत्त कृत 'रसमंजरी' मुख्य है। इनमे नायिकाभेद का अपेक्षाकृत अधिक वर्णन है। इनमे भी 'साहित्यदर्पण' और रसमजरी' मे ही इस विषय की विशेष सामग्री मिलती है।

'दशरूपक' मे रसमंजरी और साहित्यदर्पण की तरह नायिकाभेद का विस्तार पूर्वक वर्णन नहीं होने पर भी उसका महत्व इसलिए अधिक है कि भरत के शताब्दियों पश्चात् सर्व प्रथम इसी मे इस विषय का विस्तार सहित उल्लेख मिलता है। भरतमुनि ने नायिकाओं का वर्णन अभिनय के सबंध मे किया था, यही आदर्श 'दशरूपक'–कार का भी है। वास्तव मे नायिकाभेद की उत्पत्ति का कारण अभिनय ही है, काव्य में उसका प्रवेश बाद में हुआ; जैसा इस पुस्तक के आरंभ में ही लिखा जा चुका है।

धनंजय का काल विक्रम की ग्यारहवीं शताब्दी है। उन्होंने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'दशरूपक' में भरतमुनि द्वारा उल्लिखित स्वाधीनपतिका आदि

अष्ट नायिकाओं के अतिरिक्त नायिका के मुग्धा, मध्या और प्रगल्भा—इन तीन भेदों का भी उल्लेख किया है। मुग्धा के वयोमुग्धा, काममुग्धा, रतिवामा और कोपमृदु—ये चार भेद; मध्या के यौवनवती और कामवती—ये दो भेद एवं प्रगल्भा के गाढ़यौवना, भावप्रगल्भा और रतप्रगल्भा—ये तीन भेद लिखे हैं। इनसे स्पष्ट है कि धनंजय कृत ये उपभेद वर्तमान नायिकाभेद के अनुकूल नहीं हैं। धीरादि भेद मध्या के मध्या के साथ और प्रगल्भा के प्रगल्भा के साथ होने से वर्तमान नायिकाभेद के अनुसार हैं। इसके अतिरिक्त परकीया और सामान्या का भी कथन हुआ है। इस प्रकार धनंजय कृत 'दशरूपक' नायिकाभेद-परंपरा का एक उल्लेखनीय ग्रंथ है।

भानुदत्त संस्कृत साहित्य में नायिकाभेद के सर्व प्रधान विवेचन-कर्त्ता हैं। उन्होंने अपने सुप्रसिद्ध ग्रंथ 'रसतरंगिणी' और 'रसमंजरी' द्वारा संस्कृत-साहित्य में नायिकाभेद का विस्तारपूर्वक कथन किया है। उनकी रसमंजरी इस विषय की बड़ी महत्वपूर्ण रचना है।

आचार्य विश्वनाथ ने अपने 'साहित्यदर्पण' में काव्य के अन्य अंगों के साथ नायिकाभेद का भी विस्तार पूर्वक उल्लेख किया है। ब्रजभाषा कवियों ने नायिकाभेद-कथन के लिए भानुदत्त और विश्वनाथ दोनों के ग्रंथों से सहायता ली है, किंतु वास्तव में रसमंजरी ही ऐसी रचना है, जिसके आधार पर ब्रजभाषा-नायिकाभेद की परिपाटी निश्चित की गई है। साहित्यदर्पण में समस्त काव्यांगों का एक ही स्थान पर विस्तृत वर्णन होने से ब्रजभाषा आचार्यों ने अपने ग्रंथों में उसका भी विशेष रूप से उपयोग किया है। रस-प्रकरण की अन्य बातों के लिए साहित्यदर्पण विशेष रूप से सहायक रहा है, किंतु केवल नायिकाभेद कथन में उसका इतना अधिक उपयोग नहीं हुआ, जितना 'रसमंजरी' का। रसमंजरी में वर्णित नायकाओं का क्रम ही ब्रजभाषा आचार्यों ने नहीं लिया, बल्कि उसके रस-कथन की प्रणाली भी उन्होंने स्वीकार कर ली। साहित्यदर्पण में वर्णित नायिकाओं के उपभेद ब्रजभाषा नायिकाभेद में ग्रहण नहीं किये गये, जब कि रसमंजरी के उपभेद तथा अन्य नायिकाओं को वहाँ पर उसी रूप में ले लिया गया है। इसलिए ब्रजभाषा नायिकाभेद के कथन में साहित्यदर्पण की अपेक्षा रसमंजरी को ही आधार मानना चाहिए। साहित्यदर्पण और रसमंजरी के नायिकाभेद की तुलना करने पर यह बात और भी अधिक स्पष्ट हो जाती है।

साहित्यदर्पण और रसमंजरी के नायिकाभेद की तुलना—

नायिका के आरंभिक तीन भेद स्वकीया, परकीया और सामान्या साहित्यदर्पण और रसमंजरी में समान है, जिनके विषय में कहा जा सकता है कि ये भेद दोनों में दशरूपक से लिये गये होंगे। दोनों में स्वकीया के मुग्धा, मध्या और प्रगल्भा भेद किये गये हैं, किंतु महत्व का अंतर इन तीनों के उपभेदों में आता है। साहित्यदर्पण में मुग्धा के १. प्रथमावतीर्ण यौवना, २. प्रथमावतीर्ण मदनविकारा, ३. रतिवामा, ४. मानमृदु और ५. समधिक लज्जावती किये गये हैं, जो दशरूपक के उपभेदों की भाँति वर्तमान नायिकाभेद में प्रचलित नहीं है। रसमंजरी में मुग्धा के १. अंकुरितयौवना, २. नवोढा और ३. विश्रब्ध नवोढा—ये तीन भेद किये गये हैं और अंकुरितयौवना के ज्ञातयौवना और अज्ञातयौवना—ये दो उपभेद किये गये हैं, जो वर्तमान नायिकाभेद में भी प्रचलित है।

इनके अनंतर साहित्यदर्पण में मध्या के भी ५ उपभेद—विचित्रसुरता, प्ररूढ़स्मरा, प्ररूढ़यौवना, ईषत्प्रगल्भवचना और मध्यमव्रीडिता किये गये हैं। ये भेद वर्तमान नायिकाभेद में प्रचलित नहीं है। रसमंजरी में मध्या का कोई उपभेद नहीं किया गया। यही मत व्रजभाषा के मान्य आचार्य मतिराम-पद्माकर आदि का भी है। साहित्यदर्पण में प्रगल्भा के भी ६ उपभेद जैसे स्मरान्धा, गाढतारुण्या, समस्तरतकोविदा, भावोन्नता, दरव्रीडा और आक्रान्ता किये गये हैं, जो प्रचलित नहीं है; किंतु रसमंजरी में प्रगल्भा के केवल दो उपभेद रतिप्रीता और आनंदान्धमोहा किये गये हैं, जो व्रजभाषा के प्राय सभी आचार्यों को मान्य है। इनके अनंतर धीरादि भेद और ज्येष्ठा-कनिष्ठा दोनों में समान है। साहित्यदर्पण में ज्येष्ठा-कनिष्ठा के उपभेद नहीं किये गये है, जब कि रसमंजरी में ज्येष्ठा-कनिष्ठा के भी धीरादि भेद कर उनको पतिप्रेमानुसार ६ भेदों में विभाजित कर दिया है। यहाँ तक स्वकीया का वर्णन हुआ।

अब परकीया को लीजिये। साहित्यदर्पण और रसमंजरी दोनों में परकीया के परोढ़ा और कन्यका—ये दो भेद किये गये है, जो वर्तमान नायिकाभेद में प्रचलित नहीं है। साहित्यदर्पण-कार ने अपने पूर्ववर्ती आचार्य भरत, धनंजय आदि की तरह परकीया के उपभेदों का विस्तार नहीं किया है, केवल परोढ़ा में एक उपभेद कुलटा की ओर इंगित करके छोड़ दिया है, किंतु रसमंजरी-कार

ने परोढ़ा के गुप्ता, विदग्धा, लक्षिता, कुलटा, अनुशायना और मुदिता–इन ६ भेदों को लिखा है, जो वर्तमान; नायिकाभेद के अनुकूल हैं। इनके अतिरिक्त गुप्ता के भूत, भविष्यत् और वर्तमान, विदग्धा के वाग्विदग्धा और क्रिया-विदग्धा एवं अनुशयना के वर्तमान स्थान विघट्टना, भावी स्थान अभाव, सकत स्थलनष्टा आदि उपभेदों के कारण रसमंजरी में ही वर्तमान नायिकाभेद की समस्त सामग्री मिल जाती है।

इसके अतिरिक्त सामान्या दोनों में समान है। स्वाधीनपतिका आदि अष्ट नायिकाएँ और उत्तमादि तीन नायिकाएँ भी दोनों में समान है जिनका वर्णन भरतमुनि के समय से चला आता है। रसमंजरी में दशानुसार तीन भेद–अन्यसंभोगदुःखिता, वक्रोक्तिगर्विता एवं मानवती और लिखे गये हैं। साथ ही वक्रोक्तिगर्विता में प्रेमगर्विता और सौन्दर्यगर्विता तथा मानवती में लघु, मध्यम और गुरु मान लिखकर उसमें यह विषय भी पूर्ण कर दिया है, जो साहित्यदर्पण में बिलकुल नहीं है। रसमंजरी में दिव्य, अदिव्य और दिव्यादिव्य-ये तीन भेद और भी किये है, जो वर्तमान नायिकाभेद में विशेष प्रचलित नहीं हैं और जिनका साहित्यदर्पण में भी उल्लेख नहीं है।

नायिकाभेद की इस तुलना से ज्ञात हो सकता है कि दोनों का क्रम एक दूसरे से भिन्न है और साहित्यदर्पण की अपेक्षा रसमंजरी का क्रम व्रजभाषा नायिकाभेद के आचार्यों ने विशेष रूप से स्वीकृत किया है। इस प्रकार निस्संकोच भाव से कहा जा सकता है कि वर्तमान नायिकाभेद का प्रमुख आधार-ग्रंथ 'रसमंजरी' है, जहाँ से व्रजभाषा–नायिकाभेद की प्राय संपूर्ण सामग्री ली गई है।

भानुदत्त और विश्वनाथ का काल-निर्णय—

सेठ कन्हैयालाल जी पोद्दार के शब्दों में "भानुदत्त का समय संभवतः ईसा की १३ वीं और १४ वीं शताब्दी का मध्य काल*" है। उन्होंने विश्वनाथ का समय १४ वीं शताब्दी लिखकर उसे भानुदत्त का परवर्ती निर्धारित किया है, किंतु पं० अयोध्यासिंह जी उपाध्याय 'हरिऔध' तथा हिंदी के कई अन्य विद्वानों ने भानुदत्त का समय १६ वीं शतब्दी लिख कर विश्वनाथ को उसका पूर्ववर्ती माना है।

---

* 'संस्कृत साहित्य का इतिहास'

श्री हरिऔध जी ने लिखा है—"मैं समझता हूँ आज कल जिस प्रणाली से नायिका-विभेद लिखा जाता है, उसके आदि प्रवर्त्तक साहित्यदर्पणकार ही हैं। रसमंजरी में साहित्यदर्पण की ही छाया दृष्टिगत होती है। यह ग्रंथ ईसवी सोलहवीं शताब्दी का है और केवल नायिकाभेद पर लिखा गया है। ग्रंथ अच्छा है और आधुनिक प्रणाली का आदर्श है। उसमें साहित्यदर्पण से कहीं-कहीं कुछ भिन्नता है, पर नाम मात्र को†।"

नायिकाभेद की प्रचलित प्रणाली के प्रवर्त्तक साहित्यदर्पण-कार हैं, अथवा रसमंजरी-कार, इसका उत्तर उक्त दोनों व्यक्तियों के नायिकाभेदोक्त क्रम और काल-निर्णय पर निर्भर है। दोनों के क्रम का विवेचन गत पृष्ठों में किया जा चुका है। अब उनके काल-निर्णय पर विचार किया जाता है। श्री हरिऔध जी आदि विद्वानों ने भानुदत्त का समय १६ वीं शताब्दी किस आधार पर लिखा है, यह हमको ज्ञात नहीं किंतु पोद्दार जी द्वारा निश्चित समय का एक पुष्ट प्रमाण प्राप्त है। श्री पी. वी. काणे महोदय ने साहित्य-दर्पण की अंगरेजी भूमिका में लिखा है कि 'गोपाल ने रसमंजरी की टीका सन् १४३७ ई० में की थी, इसलिए भानुदत्त का समय संभवतः १३ वीं शताब्दी का अंतिम अथवा १४ वीं शताब्दी का प्रारंभिक काल होना चाहिए‡।

जब रसमंजरी की टीका सन् १४३७ ई० में बन चुकी थी, तब उसके रचयिता को १६ वीं शताब्दी का किस प्रकार माना जा सकता है! अब विश्वनाथ के काल पर विचार कीजिए। विश्वनाथ कृत साहित्यदर्पण की एक प्रतिलिपि जंबू में है, जिस पर सं० १४४० वि० (सन् १३८४ ई०) लिखा हुआ है। इससे निश्चय पूर्वक कहा जा सकता है कि साहित्यदर्पण की रचना सन् १३८४ ई० से पूर्व हो चुकी थी, इसलिए विश्वनाथ सन् १३८४ ई० से पूर्व के अवश्य हैं।

† 'रस कलश'

‡ A commentary on the रसमंजरी by गोपाल was composed in 1437 A C. Therefore भानुदत्त flourished probably towards the end of the 13th and the beginning of the 14th century

—*Introduction of Sahitya Darpan" by P V Kane*

A ms of the Sahitya Darpan deposited at Jammu is dated in the Vikram year 1440, i e approximately 1384 A.C From this it may bs safely concluded that the Sahitya Darpan was composed at some time earlier than 1384 A C.

इन प्रमाणों से यह तो सिद्ध हो गया कि भानुदत्त १६ वीं शताब्दी मे नहीं हुए; वे सन् १४३७ ई० से पूर्व के हैं और विश्वनाथ भी सन् १३८४ ई० से पूर्व के हैं। अब इन दोनों का निश्चित समय क्या है और कौन पूर्ववर्ती और कौन परवर्ती हैं; यह निश्चय करने का हमारे पास कोई अन्य प्रमाण नहीं है। ऐसी दशा में पोद्दार जी का यह मत कि भानुदत्त विश्वनाथ का पूर्ववर्ती है, विरोधी पुष्ट प्रमाणों के अभाव मे माना जा सकता है, किंतु इसमे एक आपत्ति यह आ खड़ी होती है कि यदि रसमंजरी को साहित्यदर्पण से पूर्व की रचना मानते हैं, तो विश्वनाथ नायिकाभेद के कथन में रसमंजरी का अवश्य उपयोग करते; जैसा उन्होंने काव्य के दोनो भेद 'श्रव्य' और 'दृश्य' के समस्त अगो का एक ही स्थान पर एकीकरण करने के अभिप्राय से अपने सभी पूर्ववर्ती आचार्यों के मतों का उपयोग किया है। किंतु दोनों के नायिका-भेद के क्रम को देखने से यह स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि साहित्यदर्पण मे रसमंजरी का उपयोग नहीं हुआ है। फिर क्या हरिऔध जी के मतानुसार विश्वनाथ को भानुदत्त का पूर्ववर्ती मान कर "रसमंजरी में साहित्यदर्पण की ही छाया दृष्टिगत" होना सत्य मानना चाहिए? विश्वनाथ को चाहे भानुदत्त का पूर्ववर्ती मान लिया जावे, किंतु "रसमंजरी मे साहित्यदर्पण की छाया दृष्टिगत" नहीं होती—यह पहले ही बतलाया जा चुका है।

ऐसी दशा मे यह भी संभव हो सकता है कि ये दोनों ही आचार्य समकालीन हों, और दोनो ने स्वतंत्र रूप से बिना एक दूसरे की सहायता के लिखा हो, क्यो कि दोनो के क्रम में पर्याप्त अंतर है। जहाँ तक नायिकाभेद के वर्णन का संबंध है, साहित्यदर्पण की रचना रसमंजरी से पूर्व की होना अधिक संभव है, क्यों कि रसमंजरी में इस विषय का जो विस्तार किया है, वह इसकी क्रमशः विकासोन्मुखी अवस्था का सूचक है। नाट्यशास्त्र से अधिक दशरूपक में और दशरूपक से अधिक साहित्यदर्पण मे और सबसे अधिक रसमंजरी मे नायिकाभेद का विस्तार किया गया है। फिर भी भानुदत्त और विश्वनाथ के ठीक-ठीक काल निर्णय के संबंध में निश्चित रूप से कोई बात नहीं कही जा सकती। जो कुछ कहा जा सकता है, वह यही है कि भानुदत्त १६ वी शताब्दी से पूर्व के है और रसमंजरी के नायिकाभेद मे साहित्यदर्पण का उपयोग नहीं किया गया है। इस प्रकार संस्कृत-आचार्यों की परंपरा में उन्हीं के आधार पर ब्रजभाषा-कवियों ने नायिकाभेद का विकास किया है, जिसका विस्तार पूर्वक विवेचन आगामी परिच्छेद में किया जावेगा।

सप्तम परिच्छेद

ब्रजभाषा-नायिकाभेद का विकास

★

ब्रजभाषा-नायिकाभेद का आरंभ—

विगत पृष्ठों में लिखा जा चुका है कि ब्रजभाषा रीति-साहित्य की आरंभिक कृतियाँ हिततरंगिनी, साहित्यलहरी, रसमंजरी और बरवानायिका हैं, जो सब ही नायिकाभेद की रचनाएँ हैं। इससे ज्ञात होता है कि जिस रीति काल में ब्रजभाषा-साहित्य का परम उत्कर्ष हुआ, उसका आरंभ भी नायिकाभेद की रचनाओं से हुआ था।

ब्रजभाषा रीति-साहित्य अथवा नायिकाभेद के उपलब्ध ग्रंथों में 'हिततरंगिनी' सबसे प्राचीन है। इसकी रचना कृपाराम कवि ने सं० १५९८ वि० में की थी। यह ग्रंथ दोहा छंद में लिखा गया है, और पाँच तरंगों में समाप्त हुआ है। ग्रंथारंभ के दो दोहाओं में मंगलाचरण किया गया है। इसके अनंतर ग्रंथ की रचना का हेतु इस प्रकार बतलाया गया है—

"रचौ ग्रंथ कवि-मत धरे, धरे कृष्ण कौ ध्यान।
राखे सरस उदाहरन, लच्छन जुत सज्ञान॥ ३॥
बरनत कवि सिंगार रस, छंद बड़े विस्तारि।
मैं बरन्यौ दोहान बिच, यातें सुबर विचार॥ ४॥
अच्छर थोरे भेद बहु, पूरन रस कौ धाम।
हिततरंगिनी नाम कौ, रच्यौ ग्रंथ अभिराम॥ ५॥
ग्रंथ अनेक पढ़े प्रथम, पुनि विचार कै चित्त।
मै बरन्यौ सिंगार रस, सजन तिहारे हित्त॥ ६॥"

उपर्युक्त दोहाओं से ज्ञात होता है कि हिततरंगिनी में लक्षण युक्त सरस उदाहरण लिखे गये है, इसलिए यह निश्चित रूप से रीति-रचना है, जिसे कृपाराम कवि ने आचार्यत्व की दृष्टि से लिखा था। इनसे यह भी

ज्ञात होता है कि कृपाराम के समय में अथवा उनसे पहिले कविगण बड़े छंदों में विस्तार पूर्वक शृंगार रस का वर्णन करते थे, किंतु कृपाराम ने दोहा जैसे छोटे छंद के थोड़े अक्षरों में अधिक भाव रखते हुए शृंगार रस का वर्णन किया है।

कृपाराम कवि के उपर्युक्त कथन से सिद्ध है कि 'हिततरंगिनी' अपने समय में शृंगार रस की एक मात्र रचना नहीं थी। अन्य कवियों द्वारा भी शृंगार रस का बड़े विस्तार पूर्वक वर्णन हुआ था। यदि कृपाराम के कथन का अभिप्राय 'हिततरंगिनी' के समान लक्षण–उदाहरण सहित रीति–रचनाओं से है, तो उस समय की वे कृतियाँ आजकल उपलब्ध नहीं हैं। यदि उनका अभिप्राय भक्त कवियों की शृंगार–भक्तिपूर्ण रचनाओं से है, तो वे आज कल भी उपलब्ध हैं। अष्टछाप एवं ब्रज के अन्य भक्त कवियों की कृष्ण–लीला विषयक शृंगारिक रचनाएँ कृपाराम के समय में बड़े विस्तार पूर्वक हो रही थीं। अष्टछाप कवियों में से सूरदास, कुंभनदास, परमानंददास और कृष्णदास सं० १५७६ तक महाप्रभु वल्लभाचार्य के शिष्य होकर लीला विषयक पदों की रचना करने लगे थे। उनकी आरंभिक रचनाओं में श्रीकृष्ण की बाल–लीलाओं की प्रधानता थी, किंतु सं० १५८७ में श्री वल्लभाचार्य के देहावसान के अनंतर वृंदावन स्थित चैतन्य संप्रदाय के गोसाईयों के प्रभाव से जब पुष्टि संप्रदाय में राधा का महत्व बढ़ा, तब अष्टछाप के कवियों की रचनाओं में भी शृंगार–रस का विशेष वर्णन होने लगा†। इस प्रकार सं० १५९८ वि० में 'हिततरंगिनी' की रचना के समय तक अष्टछाप एवं वैष्णव संप्रदायों के कवियों द्वारा भी शृंगार–रस का वर्णन हो रहा था। इस तरह का वर्णन लक्षण–उदाहरण की रीति–शैली में न होकर उन भक्त कवियों की उपासना-पद्धति के अनुकूल कीर्तन-रचना में होता था, जिस पर शृंगार-रस और नायिकाभेदोक्त कथन का भी यथेष्ट प्रभाव था।

प्रासंगिक विचार से ऐसा ज्ञात होता है कि कृपाराम का अभिप्राय भक्त कवियों की शृंगार–भक्तिपूर्ण रचनाओं से नहीं है, बल्कि 'हिततरंगिनी' के समान लक्षण–उदाहरण सहित रस–रीति की रचनाओं से है। इस प्रकार की रचनाएँ अभी तक उपलब्ध नहीं हुईं। 'हिततरंगिनी' के बाद नायिकाभेद की उपलब्ध रचनाओं में 'साहित्य–लहरी' और 'रसमंजरी' का

† अष्टछाप–कवियों के आलोचनात्मक एवं प्रामाणिक जीवन–वृत्तांत के लिए लेखक कृत अन्य ग्रंथ 'अष्टछाप–परिचय' देखना चाहिए।

उल्लेख किया सकता है। इन दोनों रचनाओं में भी लक्षण-उदाहरण की शैली नहीं अपनाई गई है, किंतु फिर भी वे रीति-रचनाएँ हैं।

साहित्य-लहरी ब्रजभाषा के सर्वश्रेष्ठ भक्त कवि महात्मा सूरदास की रचना कही जाती है, यद्यपि अब कुछ विद्वानों की धारणा इसके विरुद्ध है। रसमंजरी निश्चित रूप से अष्टछाप के प्रसिद्ध भक्त कवि नंददास की रचना है। महात्मा सूरदास ने चाहे साहित्य-लहरी की रचना नहीं की हो, किंतु अन्य भक्त कवियों की तरह उनके अनेक पदों में भी नायिकाभेदोक्त कथन मिलते हैं।

भक्त कवियों की रचनाओं के नायिकाभेद संबंधी कथन पर आजकल के बहुत से पाठक आश्चर्य करते हुए उसका कारण नहीं समझ पाते। यद्यपि ब्रजभाषा-साहित्य का नायिकाभेद रीति-कालीन रचना है, तथापि उसका आरंभ भक्ति-काल के आरंभ में ही होगया था। कितने ही भक्त कवियों की रचनाओं में भी नायिकाभेद का यथेष्ट प्रभाव है, इसलिए ब्रजभाषा नायिकाभेद का विकास बतलाने के पूर्व भक्त कवियों के नायिकाभेदोक्त कथन पर विचार कर लेना चाहिये।

भक्त कवि और नायिकाभेद—

भक्त कवियों की रचनाओं में शृंगाररस और नायिकाभेद का जो प्रभाव दिखलाई देता है, वह उनकी उपासना-पद्धति और उनके सांप्रदायिक सिद्धांतों के कारण है। नंददास ने अपनी 'रसमंजरी' और 'रूपमंजरी' नामक रचनाओं में इस विषय को स्पष्ट कर दिया है। उन्होंने रसमंजरी के आरंभ में ही कहा है कि इस संसार में जो कुछ 'रस' है, उसका एक मात्र आधार परमात्मा है—जिस प्रकार जल अनेक नदियों में बहता हुआ अंतत सागर में जाकर समा जाता है। जब 'रस' का आधार ही परमात्मा है, तब रसपूर्ण कथन में संकोच क्यों होना चाहिये? बल्कि इस संसार में जो कुछ रूप, प्रेम और आनंद विषयक रस है, वह सब परमात्मा का है, इसलिये उसका वर्णन निःसंकोच होकर करना चाहिए[1]।

---

[1] है जु कछुक रस यह संसारा। ताको प्रभु तुमही आधारा॥
जथा अनेक सरिता जल बहै। आन सबै सागर में रहै॥

रूप, प्रेम, आनंद रस, जो कछु जग में आहि।
सो सब गिरिवर देव को, निरसंक वरनौं ताहि॥—"रसमंजरी"

नंददास ने लिखा है कि उन्होंने अपने एक मित्र को सुनाने के लिए नायिकाभेद की रचना की थी। उन्होंने इसका कारण बतलाते हुए कहा है कि नायिकाभेद को जाने बिना प्रेम-तत्व की भी पहिचान नहीं हो सकती। अपने इस कथन के समर्थन में उन्होंने फिर कहा है कि इस भेद को जाने बिना प्रेम का परिचय उसी प्रकार नहीं हो सकता, जिस प्रकार पंगु ऊँचे पर्वत पर नहीं चढ़ सकता[1]।

भक्त कवियों में प्रेम का महत्व सबसे अधिक माना गया है। लोक और वेद के ऊपर प्रेम की प्रतिष्ठा करना उन भक्त कवियों की प्रेम-लक्षणा भक्ति है। इस प्रेम के परिचय के लिए नायिकाभेद की अनिवार्यता मान कर उन भक्त कवियों ने 'बेधड़क' इस प्रकार के वर्णन लिखे है। भक्त कवियों द्वारा नायिकाभेद के कथन का औचित्य बतलाते हुए तत्संबंधी इतनी स्पष्ट स्वीकारोक्ति और क्या हो सकती है!

नंददास ने रसमंजरी में नायिकाभेद द्वारा प्रेम-तत्व को जानने की बात लिखी है। उन्होंने अपनी अन्य रचना 'रूपमंजरी' में इसी प्रेम की एक विशिष्ट पद्धति का प्रतिपादन किया है।

उन्होंने लिखा है—

"कवियों ने भगवत्प्राप्ति के अनेक मार्ग बतलाये हैं। उनमें यह अत्यंत सूक्ष्म मार्ग है। जो इस मार्ग से चलना चाहते है, मैं उनकी बलिहारी जाता हूँ।"

---

[1] एक मित्र हम सों अस गुन्यौ। मैं नायिकाभेद नहि सुन्यौ॥
जब लग इनके भेद न जानै। तब लग प्रेम-तत्व न पहिचानै॥
बिन जानै यह भेद सब, प्रेम न परचै होय।
चरन हीन ऊँचे अचल, चढत न देख्यौ कोय॥
—"रसमंजरी"

परम प्रेम पद्धति इक आही। नंद यथामति बरणूं ताही॥
पैवे को प्रभु के पंकज पग। कविन अनेक प्रकार कहे मग॥
तिनमें इहि इक सूक्ष्म रहै। हौं तिहि बलि, जो इहि चलि चहै॥
—"रूपमंजरी"

इस सूक्ष्म मार्ग की प्रेम-पद्धति से नंददास का अभिप्राय उपपति-रस से है। इसकी निष्पत्ति के लिए उन्होंने 'रूपमंजरी' में एक कथा की कल्पना की है। कथा इस प्रकार है—रूपमंजरी एक अत्यंत रूपवती कन्या है, जिसका विवाह एक अयोग्य वर से हो जाता है। इस बे मेल संबंध से रूपमंजरी की सखी इंदुमती अत्यंत दुखित है। वह सोचती है कि किस प्रकार उसकी सखी का अलौकिक रूप और दुर्लभ यौवन व्यर्थ नष्ट न होकर सार्थक हो सके। इसके लिए वह उपपति की योजना करती है। रूपमंजरी स्वयं उस उपपति को स्वप्न में देख कर उसके अपार रूप-लावण्य पर मुग्ध हो जाती है और उससे प्रेम करने लगती है। अंत में स्वप्न में ही उपपति को प्राप्त कर वह कृतकृत्य हो जाती है।

कथानक की दृष्टि से यह अत्यंत साधारण सी कथा है, जिसमें न तो कथा-वस्तु का विस्तार है और न पात्रों का चारित्रिक विकास। यह वास्तव में एक रूपक है, जिसकी रचना सांप्रदायिक सिद्धांत के प्रतिपादन के लिए की गई है। रूपक के अनुसार रूपमंजरी भक्त है, इंदुमती गुरु और उपपति परमात्मा है। गुरु रूपी इंदुमती भक्त रूपी रूपमंजरी का जीवन सार्थक करने के लिए उसे उपपति रूप परमात्मा की ओर आकर्षित करती है और अंत में उसे प्राप्त भी करा देती है।

आध्यात्मिक पक्ष में इस प्रकार के वर्णन महत्वपूर्ण होते हुए भी लौकिक व्यवहार में उनसे बड़ी सावधानी की आवश्यकता है, अन्यथा उनसे अनिष्टकारी परिणाम भी हो सकते हैं। विद्वद्वर डा० रामप्रसाद त्रिपाठी ने इसीलिए कहा है—

"सच पूछिये तो वह अत्यत गंभीर, सूक्ष्म और रहस्यपूर्ण वर्णन है, जिसकी मीमांसा बड़ी सावधानी और व्यापक दृष्टि से होने की आवश्यका है। यह लीला जितनी रसमयी है, उतनी ही रहस्यगर्भित है।"

भक्त कवियों ने स्वयं इसका अनुभव करते हुए अधिकारी व्यक्तियों के लिए ही इस प्रकार की रचनाओं का विधान किया है। नंददास का मत है—

जो अधिकारी होइ सो पावै। बिन अधिकारी भए न आवै॥

रूपमंजरी के कथा-काव्य में नंददास ने पुष्टि संप्रदाय के एक अत्यंत महत्वपूर्ण सिद्धांत का भी प्रतिपादन किया गया है। वह सिद्धांत यह है कि

"संसार का सब सौन्दर्य, प्रेम और ऐश्वर्य भगवान् के भोग के लिए है, मनुष्य के भोग के लिए नहीं। इस प्रकार इंद्रियों को लौकिक विषयों से हटा कर कृष्णान्मुख करने की चेष्टा की गई है। यहाँ पर 'परकीया' रति की भी व्यवस्था है। रूपमंजरी का प्रेम परकीया का प्रेम है, यद्यपि कृष्ण स्वप्न में ही मिलते हैं, साक्षात् में नहीं। इससे स्पष्ट है कि अति निंदित परकीया प्रेम को वैष्णव भक्तों ने केवल एक मानसिक आध्यात्मिक अवस्था माना है।[1]"

जायसी आदि प्रेम मार्गीय सूफी कवियों ने भी इसी प्रकार की लौकिक कथाओं द्वारा सिद्धांत पक्ष का प्रतिपादन किया है। ब्रजभाषा साहित्य के भक्ति मार्गीय वैष्णव कवियों ने नायिकाभेदोक्त कथनों द्वारा 'लौकिक रति' और 'देवरति' अथवा 'लौकिक शृंगार रस' और 'अलौकिक भक्ति रस' को एक सूत्र में बाँधने का अद्भुत प्रयास किया है।

रूपमंजरी की सी परकीया भक्ति पुष्टि संप्रदाय के कवियों को उतनी मान्य नहीं है, जितनी गौड़ीय संप्रदाय के कवियों को। इस प्रकार की भक्ति का समुन्नत रूप श्री चैतन्य महाप्रभु के गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय में ही दिखलाई देता है। ब्रज के कवियों ने राधा को स्वकीया माना है, किंतु चैतन्य संप्रदाय में राधा को परकीया अथवा प्रेयसी स्वीकार किया गया है। परकीया में आत्मत्याग और लगन की मात्रा अधिक होती है, इसलिए उनके सिद्धांतानुसार भगवान् की भक्ति परकीया भाव से ही करनी चाहिए।

गौड़ीय संप्रदाय में इस प्रकार की भक्ति को 'उज्ज्वल रस' कहा गया है। चैतन्य महाप्रभु के शिष्य और गौड़ीय सम्प्रदाय के विख्यात रस-शास्त्री रूप गोस्वामी ने इसी आदर्श पर अपने प्रसिद्ध ग्रंथ "उज्ज्वल नीलमणि" की रचना की है। उन्होंने रसराज श्री कृष्ण के साथ रास-विलास करने वाली भिन्न-भिन्न प्रकृति की अनेक गोपियों का नायिकाभेद के अनुसार वर्गीकरण किया है। इस वर्गीकरण का यह अभिप्राय है कि विभिन्न स्वभाव की गोपियों के साथ श्री कृष्ण की विभिन्न प्रेम लीलाओं का विविध रीति से वर्णन किया जा सके। इस ग्रंथ में ३६३ प्रकार की गोपियों की नाना प्रकार की चेष्टाएँ उनके भिन्न-भिन्न स्वभाव, रहन-सहन और विविध वस्त्राभूषणों का विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है। उसमें ३६३ प्रकार की नायिकाओं के उदाहरण के लिए गोपियों का ही नामोल्लेख किया गया है।

---

[1] 'नंददास–एक अध्ययन' पृ० १३२

गौड़ीय संप्रदाय के नायिकाभेद की यह शैली व्रजभाषा साहित्य में स्वीकार नहीं की गई। यहाँ पर भक्त कवि एवं रीति साहित्य के आचार्य—दोनों ने ही प्राचीन रस-शास्त्रियों की शैली पर नायिकाभेद का कथन किया है। उन्होंने नायिकाओं के रूप में गोपियों की संख्या बाँधना शायद आध्यात्मिक दृष्टि से भी उचित नहीं समझा। आध्यात्मिक पक्ष में श्री कृष्ण को परमब्रह्म और गोपियों को जीवात्मा माना गया है। जीवात्माएँ अगणित हैं, उनकी कोई निश्चित संख्या नहीं हो सकती। तब नायिकाओं के रूप में गोपियों की भी संख्या कैसे निश्चित की जा सकती थी! संभवतः इसीलिए धार्मिक दृष्टि से प्रचलित गौड़ीय संप्रदाय के नायिकाभेद की यह प्रणाली धार्मिक दृष्टि से ही स्वीकृत न हो सकी। कारण कुछ भी हो, व्रजभाषा कवियों का नायिकाभेद गौड़ीय भक्तों के नायिकाभेद से भिन्न है।

जयदेव और विद्यापति ने कृष्ण-लीलाओं के साथ शृंगार रस और नायिकाभेदोक्त कथन के गायन की जो प्रणाली प्रचलित की थी, उसका अनुसरण व्रजभाषा के भक्त कवियों ने भी किया। सूरदास, हरिवंश, हरिदास, श्रीभट्ट, व्यास, तानसेन आदि कवि और गायकों ने इसी प्रणाली को आगे बढ़ाया। इन भक्त कवियों की मधुरा भक्ति ने ही व्रजभाषा-गीति-साहित्य के मार्ग को प्रशस्त किया है। व्रजभाषा साहित्य का नायिकाभेद उन भक्त कवियों की भक्ति-भावना से भी अत्यधिक प्रभावित है।

"नायक और नायिका संबंधी उत्प्रेक्षाओं, प्रतीकों, भावों, अनुभावों और रसों के सहारे वैष्णव साहित्यकों ने मानव-हृदय की गूढ़ और गहन भावनाओं की अपूर्व अभिव्यक्ति की है। मनोविज्ञान के प्रेमियों के लिए उसमें विपुल सामग्री है। उसमें ईश्वर और जीव का भावात्मक और रसात्मक संबंध स्थापित किया है। लौकिक और पारलौकिक की दीवारों को तोड़ कर उन्होंने सीमित और असीमित का परिणय करा दिया है। फिर भी उत्तम, मध्यम, और अधम की विवेकात्मक रेखाओं को उन्होंने मिटाया नहीं*।"

इस प्रकार व्रजभाषा-नायिकाभेद के आरंभिक काल में भक्त कवियों ने भी उसके प्रसार में योग दिया है। भक्त कवियों की भक्ति-भावना कब तक नायिका-भेद के साथ रही और कब उसने उसका साथ छोड़ दिया, इसका विवेचन व्रजभाषा नायिकाभेद का विकास बतलाते हुए आगामी पृष्ठों में किया गया है।

---

* व्रज साहित्य मंडल के सभापति पद से डा० रामप्रसाद त्रिपाठी का भाषण.

कृपाराम कृत 'हिततरंगिनी'—

'हिततरंगिनी' ब्रजभाषा के रीति-साहित्य एवं नायिकाभेद की सबसे प्राचीन उपलब्ध रचना है। इसे कृपाराम कवि ने सं० १५९८ वि० में लिखा था, जैसा इसके अंतिम दोहा से सिद्ध है—

८ ९ ५ १
सिधि, निधि, सिवमुख, चंद्र लखि, माघ सुद्ध तृतियासु।
हिततरंगिनो हौं रची, कवि–हित परम प्रकासु॥

हिततरंगिनी में रचना–काल के अतिरिक्त उसके रचयिता के विषय में कुछ नहीं लिखा है, इसलिए कृपाराम का जीवन–वृतांत अज्ञात है। श्री जगन्नाथदास रत्नाकर ने कृपाराम नाम से ऐसा अनुमान किया है कि वे 'पश्चिमदेश के निवासी ब्राह्मण रहे होंगे', क्यों कि इस प्रकार के नाम उसी प्रांत के ब्राह्मणों के होते हैं। ब्रजभाषा साहित्य के आरंभिक काल में ही इतनी शुद्ध और परिमार्जित ब्रजभाषा लिखने के कारण उनका ब्रजभाषा क्षेत्र का निवासी होना भी सिद्ध होता है।

हिततरंगिनी अपने विषय की सर्व प्रथम कृति होने पर भी सर्वांगपूर्ण रचना है। इसका कारण यह है कि उसके रचयिता को इस विषय का संस्कृत-साहित्य सुलभ था, जिसका उसने पूर्णतया उपयोग किया है। जिस नायिका-भेद का आरंभ महामुनि भरत ने किया था, उसकी उन्नति क्रमशः धनंजय, विश्वनाथ और भानुदत्त द्वारा हुई थी। कृपाराम ने उन आचार्यों के ग्रंथों से, विशेष कर भानुदत्त की रचनाओं से, लाभ उठाकर 'हिततरंगिनी' की रचना की थी।

यह ग्रंथ दोहा छंद में लिखा गया है और पाँच तरंगों में समाप्त हुआ है। इसके दोहे बड़े सरस और भावपूर्ण हैं। इनमें से कई दोहे बिहारी के दोहों से मिलते हैं। इनके विषय में पं० रामचंद्र शुक्ल का अनुमान है कि या तो उन दोहों को बिहारी ने जान बूझ कर लिया अथवा वे पीछे से बिहारी की रचना में मिल गये।

कृपाराम द्वारा कथित नायिकाओं के वर्णन से ज्ञात होता है कि उन्होंने इस विषय का पूर्ण विकसित रूप उपस्थित किया है। यही क्रम कुछ लौट-फेर के साथ परवर्ती कवियों ने भी लिखा है। इस प्रकार वे ब्रजभाषा-नायिकाभेद के सर्व प्रथम आचार्य सिद्ध होते हैं।

कृपाराम ने नायिका के सर्व प्रथम तीन भेद—स्वीया, परकीया और सामान्या लिखे हैं। स्वीया के मुग्धा, मध्या और प्रौढ़ा भेद किये हैं। मुग्धा के चार उपभेद अज्ञातयौवना, ज्ञातयौवना, नवोढ़ा और विश्रब्ध नवोढ़ा कर नवोढ़ा के पुनः ललिता, वयःसंधि और उदितयौवना उपभेद किये हैं। मुग्धा के ये उपभेद परवर्ती कवियों के उपभेदों से कुछ भिन्न है। मध्या के दो उपभेद साधारण मध्या और अतिविश्रब्धनवोढ़ा मध्या भी बाद में प्रचलित नहीं हुए। प्रौढ़ा के दोनों उपभेद रतिप्रिया और आनंदमत्ता नामभेद के साथ परवर्ती कवियों की रचनाओं में भी मिलते हैं। इसके बाद ज्येष्ठा-कनिष्ठा लिख कर स्वीया प्रकरण को समाप्त किया गया है।

परकीया नायिका के सर्व प्रथम दो भेद अनूढ़ा और ऊढ़ा कर ऊढ़ा के अंतर्गत परप्रिया और परविवाहिता का उल्लेख किया है। इन नायिकाओं को भी इसी प्रकार परवर्ती कवियों ने स्वीकार नहीं किया। इसके बाद परकीया के सात भेद किये गये हैं, जिनमें ललिता, विदग्धा, कुलटा, मुदिता, अनुशयना और सुरतिगोपना परवर्ती काल में भी प्रचलित रहे, किंतु स्वयंदूति को परकीया का सातवाँ स्वतंत्र भेद परवर्ती काल में नहीं माना गया।

सामान्या नायिका में भी मुग्धा और उसके उपभेद, मध्या एवं प्रौढ़ा का कथन बाद के कवियों में विशेष रूप से प्रचलित नहीं हुआ। भक्त कवियों द्वारा तो सामान्या का कथन हुआ ही नहीं है, अन्य कवियों ने भी मर्यादा के विचार से उसका विस्तार नहीं किया है। कृपाराम द्वारा भक्तिकाल के आरंभ में ही सामान्या का भेदोपभेद सहित वर्णन उन्हें भक्त कवियों की विचार-धारा से पृथक् कर देता है। वास्तव में कृपाराम का दृष्टिकोण शुद्ध रसवादी और उनकी कृति शुद्ध रीति-रचना है।

सामान्या के पश्चात् उन्होंने उत्तमा, मध्यमा और अधमा का उल्लेख कर मान भेद और धीरादि भेद को लिखा है। इसके पश्चात् अन्यसंभोग-दुःखिता और गर्विता लिख कर प्रत्येक के स्वीया, परकीया और सामान्या उपभेद किये है। ये उपभेद परवर्ती कवियों में विशेष रूप से प्रचलित नहीं हुए। गर्विता के प्रथम वक्रोक्ति और सरलोक्ति दो भेद कर प्रत्येक के अंतर्गत रूपगर्विता, गुणगर्विता और प्रेमगर्विता का कथन किया है। इन नायिकाओं का भी इतना विस्तार बाद के अधिकांश कवियों को मान्य नहीं हुआ।

सब के अंत में नायकाओं के दस भेद स्वाधीनपतिका आदि किये गये है। इन भेदों को कृपाराम ने भरत के मतानुसार बलताया है, किंतु भरत ने केवल आठ भेद किये थे। वास्तव मे कृपाराम ने अपने ग्रंथ की रचना भानुदत्त के आधार पर की थी। यही कारण है कि उसमे नायिकाभेद का इतना विकसित और विस्तृत रूप दिखलाई देता है।

सूरदास और 'साहित्यलहरी'—

हिततरंगिनी के पश्चात 'साहित्यलहरी' ब्रजभाषा रीति–साहित्य और नायिकाभेद की प्राचीन रचना है। अब तक इसे महात्मा सूरदास की रचना माना जाता था, किंतु अब कुछ विद्वान इस मत के विरुद्ध है।

साहित्यलहरी की रचना दृष्टिकूट पदों में की गई है। श्लेष और यमक आदि अलंकार तथा अनेकार्थवाची कतिपय शब्दो के प्रयोग से ऐसी रचना करना, जिसका समझना साधारण पाठक के लिए कठिन हो, दृष्टिकूट काव्य कहलाता है। इस प्रकार की रचनाओं का लाभ अधिकारी व्यक्तियों को हो और अनधिकारी व्यक्ति उसका दुरुपयोग न कर सकें, इसलिए कविगण अपने सिद्धांत विषय को कभी-कभी दृष्टिकूट काव्य के कठिन आवरण से ढक देते थे। साहित्य में इस प्रकार की रचनाएँ प्राचीन काल से होती रही हैं।

इसके सभी दृष्टिकूट पद गेय हैं। उनमे नायिकाभेद, अलकार, रस–भेद और भाव-भेद का वर्णन हुआ है। इन विषयों के लक्षण न देकर केवल उदाहरण ही दिये गये है, इसलिए साहित्यलहरी को रीतिशास्त्र की रचना न मान कर रीति–रचना ही मानना चाहिये।

इसके प्रत्येक पद मे एक अलंकर, एक नायिका तथा काव्य के किसी एक अंग का वर्णन किया गया है। जिस पद में जो विषय लिखा गया है, उसे उसका उदाहरण भी समझना चाहिए। आरंभ में ३९ पदों तक नायिकाभेद का कथन है। इन ३९ पदों में से ६ पदों में केवल अलंकार लिखे गये है, और ५ पद प्रक्षिप्त ज्ञात होते हैं, शेष २८ पदों में नायिकाभेद का उल्लेख किया गया है। कहीं-कहीं नायिकाओं के नाम भी कूट में ही दिये गये है। नायिकाओं के बाद अलंकार, रस और भाव विषय का वर्णन किया गया है।

साहित्यलहरी के १०९ वें पद में रचना–काल और ११८ वें पद मे कवि–वंशावली का वर्णन है। इन दो पदो को सूरदास पर लिखने वाले सभी

विद्वानों ने उनके काल-निर्णय के संबंध में उद्धृत किया है। रचना-काल वाले पद की आरंभिक टेक इस प्रकार है—

मुनि पुनि रसन के रस लेख ।
दसन गौरीनंद को, लिखि सुबल संवत् पेख ॥

इसमें साहित्यलहरी का रचना-काल दिया गया है। पद में प्रयुक्त 'रसन' शब्द का अर्थ अब तक शून्य (०) लगाया जाता था, जिसके कारण साहित्य-लहरी का रचना-काल सं० १६०७ माना जाता था, किंतु अब 'रसन' का अर्थ एक (१) लगाने से रचना-काल सं० १६१७ होता है। यही संवत् गणित के अनुसार भी ठीक निकलता है, अतः साहित्यलहरी का रचना-काल सं० १६१७ मानना चाहिए।

कवि-वंशावली वाले पद से साहित्यलहरी के रचियता की जाति और उसके वंश पर विशेष प्रकाश पड़ता है। जो विद्वान साहित्यलहरी को सूरदास की रचना कहते हैं, वे भी कवि-वंशावली के विवरण के कारण इस पद को उसमें पीछे से सम्मिलित किया हुआ मानते हैं। प्रो० मुंशीराम शर्मा साहित्यलहरी को सूरदास की रचना स्वीकार करते हैं और उसके वंशावली वाले पद को भी प्रामाणिक मानते हैं*। इसके विरुद्ध डा० ब्रजेश्वर शर्मा इसे सूरदास की रचना स्वीकार नहीं करते। उनके मतानुसार "साहित्यलहरी का रचना-कार कोई सूरजचंद भाट जान पड़ता है, जो कदाचित चंद वरदाई और सूरदास—हिंदी के दो महान् कवियों से अपने व्यक्तित्व को संबंधित और मिश्रित करने के लोभ में साहित्यिक प्रवंचना का अपराध कर बैठा†।" इन परस्पर विरुद्ध मतों के कारण यह निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता कि साहित्यलहरी का रचयिता सूरदास है अथवा कोई सूरजचंद भाट।

रचना-काल वाले पद के अंत में उसकी रचना का उद्देश्य इस प्रकार बतलाया गया है—

"नंदनंदनदास हित साहित्यलहरी कीन।"

---

* सम्मेलन पत्रिका, पौष सं० २००२

† 'सूरसौरभ' प्रथम भाग, पृ० ३२

‡ सूरदास पृ० ६६

जिन 'नंदनंदनदास' के लिए साहित्यलहरी की रचना की गई थी, उनके विषय में भी विद्वानों में मतभेद है। पुष्टि सांप्रदायिक वार्ता साहित्य के विद्वान श्री द्वारिकादास परिख का मत है कि इस ग्रंथ की रचना अष्टछाप के प्रसिद्ध कवि और 'रसमंजरी' के रचयिता नंददास के लिए हुई थी†। इस मत के समर्थन कर्त्ताओं ने स्पष्ट रूप से लिखा है–– "रीति काव्य क्षेत्र में नंददास सूरदास के शिष्य है। सूरदास ने इनके लिए ही ६ मास में समस्त साहित्य-लहरी की रचना की थी। कदाचित रीति शास्त्र की शिक्षा भी ध्येय था, इसीसे उसमें नायिकाभेद आदि के दर्शन होते है*।"

श्री परिख के मत का खंडन करते हुए श्री महावीरसिंह गहलोत 'नंदनंदनदास' का अर्थ कृष्णदास कर इस बात पर ज़ोर देते है कि अष्टछाप वाले अधिकारी कृष्णदास को काव्य का ज्ञान कराने के लिए सूरदास ने साहित्यलहरी की रचना की थी‡।

हमारे मतानुसार साहित्यलहरी की रचना न तो नददास के लिए हुई और न अधिकारी कृष्णदास के लिए। 'नंदनंदनदास' का साधारण अर्थ कृष्ण के दास अर्थात् भगवद्भक्त होता है, इसलिए भक्तों की मधुरा भक्ति के अनुकूल मधुर रस का आस्वादन कराने के लिए इसकी रचना एक भक्त कवि द्वारा भगवद्भक्तों के लिए हुई थी। इस गोपनीय तत्व को अनधिकारी व्यक्तियों से बचाने के लिए उसे दृष्टिकूट के आवरण से भी ढक दिया गया है। यदि इसकी रचना परम भक्त महात्मा सूरदास द्वारा हुई है, तब तो इस कथन की यथार्थता स्वयंसिद्ध है।

साहित्यलहरी मे नायिकाभेद संक्षिप्त रूप में लिखा गया है, फिर भी उसमें मुख्य–मुख्य नायिकाओं का विवरण आ गया है। सर्व प्रथम नायिका के दो भेद स्वकीया और परकीया किये गये हैं; तीसरा भेद सामान्या नहीं लिखा गया। इससे भी इस ग्रंथ के रचयिता की धार्मिक भावना का

---

† प्राचीन वार्ता रहस्य, द्वितीय भाग, गुजराती विभाग पृ० १०७

* नंददास–एक अध्ययन, पृ० ५१

‡ संमेलन पत्रिका, श्रावण–भाद्रपद सं० २००२

संकेत मिलता है। सामान्या नायिका रस का कारण नहीं हो सकती और देव रति में उसका कोई स्थान भी नहीं है, इसलिए भक्त कवियों ने उसका उल्लेख नहीं किया है। केवल भक्त-रहित शृंगारवादी कवियों ने अथवा रीतिकालीन कवियों ने उसका वर्णन किया है।

स्वकीया के अंतर्गत मुग्धा के ज्ञातयौवना और अज्ञातयौवना दो उपभेद किये गये हैं। मुग्धा के पश्चात् मध्या और प्रौढ़ा का उल्लेख कर धीरा और ज्येष्ठा-कनिष्ठा को लिखा गया है। परकीया के अनूढ़ा भेद का उल्लेख कर फिर उसके प्रसिद्ध ६ भेदों में से सुरतिगुप्ता, विदग्धा, लक्षिता, मुदिता और अनुशयना का वर्णन किया गया है, किंतु कुलटा को छोड़ दिया गया है। परकीया के दूसरे भेद ऊढ़ा और कुलटा का उल्लेख न होने से साहित्यलहरी के रचयिता के उच्चादर्श का और भी एक प्रमाण मिलता है।

इसके पश्चात् नायिका के अन्य भेदों में पहले अन्यसुरतिदुःखिता, गर्विता और मानवती लिख कर बाद को प्रोषितभर्तृका, खंडिता, उत्कंठिता, वासकसज्जा, स्वाधीनपतिका, अभिसारिका, पतिगमनी, आगतपतिका और कलहांतरिता—इन नौ भेदों को लिखा गया है। इस प्रकार साहित्यलहरी के दृष्टिकूट पदों में नायिकाभेद का उल्लेख हुआ है।

यदि साहित्यलहरी को सूरदास की रचना न भी मानें, तब भी सूरसागर के अनेक पदों में नायिकाभेदोक्त कथन मिलते हैं। राधा-कृष्ण की प्रेम-भावना के विकास में अज्ञातयौवना से लेकर स्वकीया के समस्त भेदोपभेदों के अनुकूल वर्णन किये गये हैं। परकीया भक्ति पुष्टि संप्रदाय के अनुकूल नहीं है और सूरदास ने राधा का वर्णन स्वकीया के रूप में किया है, इसलिए सूरसागर में परकीया नायिका के पद मिलने की आशा नहीं हो सकती, किंतु कृष्ण के प्रति गोपियों के प्रेमानुराग और तत्संबंधी उनकी अनेक चेष्टाओं में परकीया-प्रेम की भी अभिव्यंजना हो जाती है। इसके अतिरिक्त मानवती, गर्विता आदि दशानुसार और खंडिता, कलहांतरिता आदि अवस्थानुसार सभी भेदों के अनुकूल बड़े विस्तार पूर्वक कथन किये गये हैं। नायिकाओं के लक्षण और उनके नामों का निर्देश किये बिना प्रायः संपूर्ण नायिकाभेद सूरदास के पदों में मिल जाता है।

सूरदास के अतिरिक्त अष्टछाप के समस्त कवि तथा वैष्णव संप्रदायों के अन्य समकालीन कवियों की पद–रचनाओं में भी इसी प्रकार के नायिकाभेदोक्त कथन मिलते हैं। अष्टछाप के आठों कवियों की रचनाओं में खंडिता के पद प्रचुर परिमाण में मिलते हैं। ये पद आरंभ से ही पुष्टि संप्रदाय के मंदिरों में मंगला–झाँकी के समय गाये जाते रहे है।

इस प्रकार के नायिकाभेदोक्त कथन कृपाराम के समय में अथवा कुछ उनसे भी पहले सूरदास आदि भक्त कवियों द्वारा हुए थे, किंतु रीति–रचना के रूप में नायिकाभेद की सर्व प्रथम कृति 'हिततरंगिनी' है और उसके बाद की रचना 'साहित्य-लहरी' है। इसी क्रम से उनका उल्लेख भी किया गया है।

नंददास और 'रसमंजरी'—

'रसमंजरी' प्रसिद्ध भक्त कवि नंददास कृत नायिकाभेद की एक रीति-रचना है। नंददास के ग्रंथों के संपादक श्री उमाशंकर शुक्ल ने इस बात की संभावना प्रकट की है कि—

"रसमंजरी भाषा-साहित्य में कदाचित नायिकाभेद का पहला ग्रंथ है*,"

किंतु इससे पहले 'हिततरंगिनी' और साहित्यलहरी' की रचना हो चुकी थी, इसलिए 'रसमंजरी' नायिकाभेद का पहला ग्रंथ न होते हुए भी आरंभिक ग्रंथों में से अवश्य है।

नंददास के ग्रंथों में उनके रचना-काल का उल्लेख नहीं हुआ है, इसलिए यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि 'रसमंजरी' की रचना कब हुई। नंददास ने अपनी कुछ उत्कृष्ट रचनाएँ अपने किसी 'रसिक मित्र' के कहने से की थीं। ये रचनाएँ 'रसमंजरी', 'विरह मंजरी' और 'दशमस्कंध' है। कुछ विद्वानों के मतानुसार 'रूपमंजरी' की कथा भी उसी 'रसिक मित्र' से संबंध रखती है। ये सब रचनाएँ एक ही श्रेणी में आती है। काव्यशास्त्र की दृष्टि से ये सब प्रौढ़ रचनाएँ है, किंतु "इनमें काव्यकला का इतना आग्रह नहीं है, जितना सांप्रदायिक दृष्टिकोण का।" इस दृष्टि से ये सब नंददास की अंतिम रचनाएँ हो सकती है। नंददास अंतिम रूप से गृहस्थ को त्याग कर सं० १६२४

* 'नददास', भूमिका पृ० ६३

के लगभग गोवर्धन में रहने लगे थे और वहीं पर वे अपने देहावसान-काल सं० १६४० तक रहे। इससे अनुमान होता है कि ये सब प्रौढ़ ग्रंथ उसी समय में रचे गये होंगे, अतः 'रसमंजरी' का रचना-काल सं० १६२४ से १६३० तक हो सकता है।

नंददास ने इसकी रचना भानुदत्त कृत रसमंजरी के आधार पर की थी। रसमंजरी भानुदत्त की सुप्रसिद्ध संस्कृत रचना का अनुवाद नहीं है, किंतु उसके मतानुकूल अवश्य है, जैसा पुस्तक के आरंभ में ही स्वीकार किया गया है—

'रसमंजरि' अनुसारि कै, नंद सुमति अनुसार।
बरनत बनिता-भेद जहँ, प्रेम सार बिस्तार॥

रसमंजरी में नायिकाओं के लक्षण मात्र लिखे गये हैं, किंतु उनके लिखने की शैली ऐसी अद्भुत है कि उनमें लक्षण और उदाहरण दोनों का समावेश हो जाता है। परवर्ती कवियों ने नायिकाभेद को शास्त्रीय रूप दे दिया था, किंतु नंददास ने उसे ऐसे विलक्षण कवित्वपूर्ण ढंग से लिखा है कि उसके पढ़ने में सरस निबंध का सा आनंद आता है।

नंददास के नायिकाभेद का क्रम प्रचलित क्रम से कुछ भिन्न है। उन्होंने नायिकाभेद के तीनों भेद स्वकीया, परकीया और सामान्या में मुग्धा, मध्या और प्रौढ़ा उपभेदों को लिखा है, जब कि अन्य प्रसिद्ध कवियों ने पिछले तीनों उपभेदों को केवल स्वकीया के अंतर्गत माने गये हैं। मुग्धा के नवोढ़ा और विश्रब्ध नवोढ़ा दो भेदों लिख कर फिर अज्ञातयौवना और ज्ञातयौवना दो अन्य भेदों को लिखा है। नायिकाभेद के जिन परवर्ती आचार्यों ने मुग्धा नायिका को स्वकीया के अंतर्गत न लिख कर तीनों नायिकाओं में वयक्रमानुसार लिखा है, उन्होंने प्राय नवोढ़ा और विश्रब्ध नवोढ़ा उपभेदों को नहीं लिखा है, क्यों कि ये उपभेद स्वकीया में ही समीचीन ज्ञात होते हैं, परकीया और सामान्या में नहीं। यही बात 'अज्ञातयौवना' के विषय में भी कही जा सकती है। अधिकांश आचार्यों ने मुग्धा आदि तीनों भेदों को स्वकीया के ही अंतर्गत माना है। इसी सिलसिले में नंददास ने धीरादि तो लिखे हैं, किंतु ज्येष्ठा-कनिष्ठा का उल्लेख नहीं किया।

† 'अष्टछाप-परिचय' पृ० १६७

परकीया के भेदों मे केवल सुरतिगोपना, वाग्विदग्धा और लक्षिता को लिखा है। परकीया के शेष तीन भेद एवं ऊढा, अनूढा का उल्लेख न कर उन्होंने इस विषय का संक्षिप्त रूप से वर्णन किया है, जो उनके सांप्रदायिक सिद्धांत के अनुकूल है।

उन्होने दशानुसार गर्विता आदि तीनों भेदों को नहीं लिखा है। दस प्रकार की प्रचलित नायिकाओं मे से उन्होंने नौ को लिखा है, दसवीं 'आगतपतिका' का उल्लेख नहीं किया है। इन नायिकाओं के उपभेदों में मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा और परकीया का कथन किया है, किंतु सामान्या का उल्लेख नहीं किया। इन भेदों में से सामान्या का बहिष्कार उनकी भक्ति-भावना के अनुसार उचित ही है।

उपर्युक्त उल्लेख से ज्ञात होता है कि रसमंजरी मे नायिकाभेद का संक्षिप्त रूप से कथन किया गया है। इसका महत्व केवल इसलिए है कि यह नायिकाभेद की आरंभिक रचनाओं में से है और इसके लिखने की शैली बडी सरस और कवित्वपूर्ण है।

नंददास की अन्य रचना 'रूपमंजरी' पर भी नायिकाभेद का अत्यंत प्रभाव है। यह 'रसमंजरी' की तरह रीति–रचना नहीं है, किंतु इसके कथानक में नायिकाभेद के अनुकूल अनेक प्रसंग लिखे गये है। इन प्रसंगों मे रसमंजरी के अनेक छंदो को दुबारा लिख दिया गया है। इस प्रकार एक सामग्री का दो स्थानों में उपयोग किया गया है।

ग्रंथ–रचना के अतिरिक्त नंददास की स्फुट रचना के रूप में बहुत से गेय पद भी प्राप्त हैं। इन पदों को उन्होंने कीर्तन के लिए लिखा था। अन्य भक्त कवियों की तरह इन पदों मे भी उन्होंने नायिकाभेदोक्त कथन किये हैं। इस प्रकार के पदों में खंडिता के पद यथेष्ट संख्या में उपलब्ध हैं।

रहीम और 'बरवा नायिकाभेद'—

अब्दुर्रहीम खानखाना सम्राट अकबर के उच्च राज–कर्मचारी थे। उन्होंने सेनापति और मंत्री के सर्वोच्च पदों पर रह कर बादशाह की सेवा की थी। ऐसे प्रतिष्ठित एवं उत्तरदायित्वपूर्ण पदों पर रहते हुए भी उनका विद्या–व्यसन और काव्य–प्रेम सराहनीय है। वे तुर्की, फारसी, संस्कृत, हिंदी आदि भाषाओं के विद्वान और कवि थे। उनका जन्म सं० १६१० में

और मृत्यु सं० १६८३ में हुई थी। उन्होंने अपने जीवन के कई सुखी एवं दुखी पक्ष देखे थे। वे परम उदार और गुणग्राहक थे। उन्होंने कवियों एवं गुणियों को अपने जीवन में लाखों रुपये प्रदान किये थे।

हिंदी साहित्य में वे अपने नीति विषयक दोहाओं के लिए प्रसिद्ध हैं, किंतु वे शृंगार रस की भी बड़ी उत्कृष्ट रचना करते थे। नायिकाभेद पर उन्होंने 'बरवा नायिकाभेद' नामक प्रसिद्ध रचना की थी। यह पुस्तक अवधी भाषा में है और बरवा छंद में लिखी गई है। अवधी भाषा की कृति होने के कारण इस पुस्तक में उसके उल्लेख की आवश्यकता भी नहीं थी, किंतु भाषा नायिकाभेद की आरंभिक कृतियों में होने के कारण उसके उल्लेख की भी आवश्यकता समझी गई। इस पुस्तक में नायिकाभेद का वर्णन ऐसी सरल, सरस और स्पष्ट रीति से हुआ है कि उसके बरवा छंदों का उपयोग हमने भी यथा स्थान किया है।

'बरवा नायिकाभेद' की रचना कब हुई, यह निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता। हिततरंगिनी, साहित्यलहरी और रसमंजरी की रचना इससे पहले हो चुकी थी, किंतु केशवदास कृत 'रसिकप्रिया' से 'बरवा नायिकाभेद' पहले बना या नहीं, यह निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता। रसिकप्रिया की रचना सं० १६४८ में हुई थी। ऐसा अनुमान होता है कि बरवा-नायिकाभेद इससे पहले बन चुका था। इस अनुमान का यह आधार है कि गो० तुलसीदास ने अपनी बरवा रामायण रहीम के बरवों को देख कर बनाई थी। यह भी कहा जाता है कि रहीम ने ही गोस्वामीजी को बरवा रामायण लिखने के लिए प्रेरित किया था। बाबा वेणीमाधवदास ने इसका उल्लेख भी किया है†। इसलिए यह समझा जा सकता है कि 'बरवा नायिकाभेद' की रचना केशवदास की 'रसिकप्रिया' से पूर्व सं० १६४५ के लगभग हुई थी।

'बरवा नायिकाभेद' में ११५ बरवे हैं। इनमें आरंभ के ६५ बरवों में नायिकाभेद लिखा गया है। अंत के शेष बरवों में नायकभेद सखी आदि का संक्षिप्त रूप से उल्लेख किया गया है। रहीम के नायिकाभेद, का क्रम प्रायः वैसा ही है, जैसा रीति-काल के अधिकांश नायिकाभेद के कवियों ने लिखा है।

---

† कवि रहीम बरवै रचे, पठये मुनिवर पास।
लखि तेइ सुंदर छंद मे, रचना कियेउ प्रकास॥
—"गुसाईं चरित्र"

'बरवा नायिकाभेद' में प्रथम स्वकीया नायिका के अंतर्गत मुग्धा, मध्या और प्रौढ़ा का उल्लेख कर मुग्धा के उपभेद अज्ञातयौवना और ज्ञातयौवना का तथा ज्ञातयौवना के उपभेद नवोढ़ा एवं विश्रब्ध नवोढ़ा का कथन किया गया है। परकीया नायिका के ऊढ़ा और अनूढ़ा भेदों के अतिरिक्त गुप्ता आदि छै प्रसिद्ध भेदों को लिख कर गुप्ता के उपभेद भूत, वर्तमान एवं भविष्य सुरतिसंयोगना का तथा विदग्धा के उपभेद वचन एवं क्रिया विदग्धा का उल्लेख किया गया है। अनुशयना में भी प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय अनुशयना नायिकाओं को लिखा गया है। इस प्रकार परकीया का कथन कर उसके पश्चात् गणिका का कथन किया गया है।

दशानुसार नायिकाओं में अन्यसुरतिदुःखिता और वक्रोक्तिगर्विता को लिखा है, किंतु मानवती का उल्लेख नहीं किया। गर्विता के अंतर्गत प्रेमगर्विता एवं रूपगर्विता को लिखा है। इसके पश्चात् दस प्रकार की प्रसिद्ध नायिकाओं को लिख कर उनके अंतर्गत मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा, परकीया एवं गणिका उपभेदों का कथन किया गया है। सबके अंत में उत्तमा, मध्यमा और अधमा नायिकाएँ लिख कर इस विषय की समाप्ति की गई है।

नंददास ने रसमंजरी में नायिकाओं के उदाहरण न लिख कर लक्षण मात्र लिखे थे, इसके विरुद्ध रहीम ने बरवा नायिकाभेद में लक्षण न लिख कर केवल उदाहरण ही लिखे हैं। खोज में रहीम कृत नायिकाभेद की कुछ ऐसी हस्तलिखित प्रतियाँ भी मिली हैं, जिनमें लक्षण मतिराम कृत 'रसराज' के दोहाओं के दिये गये हैं। इन प्रतियों में मतिराम के लक्षण और रहीम के उदाहरणों के कारण विषय की अद्भुत पूर्णता आ गई है। रहीम कृत नायिकाभेद का ऐसा संपादन संभवतः स्वयं मतिराम ने किया हो, अथवा उनके बाद किसी कवि ने; किंतु वह तभी किया गया होगा, जब मतिराम कृत सुप्रसिद्ध ग्रंथ 'रसराज' की रचना हो चुकी होगी। रहीम के अंतिम समय में मतिराम कुछ समय तक उनके समकालीन भी रहे। मतिराम के काव्य में भी रहीम का कुछ प्रभाव ज्ञात होता है।

रहीम कृत 'नगर शोभा' नामक एक अन्य रचना भी प्राप्त हुई है। इसमें १४२ दोहा छंद हैं। इस पुस्तक में भिन्न-भिन्न जाति की स्त्रियों का शृंगार रस पूर्ण कथन हुआ है। प्रत्येक जाति की स्त्री के वर्णन में उसके अनुरूप विशिष्ट शब्दों के लाने की चेष्टा की गई है, जिनके कारण उसका पूर्ण चित्र

नेत्रों के सन्मुख खिंच जाता है। संभवतः रहीम की इसी कृति के अनुकरण पर महाकवि देव ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'जाति-विलास' की रचना की थी। देव ने भी इसी शैली में विविध प्रदेशों और जातियों की स्त्रियों का सरस वर्णन किया है। रहीम कृत 'नगर शोभा' ग्रंथ भी एक प्रकार से नायिकाभेद संबंधी रचना कही जा सकती है। श्री मयाशंकर याज्ञिक का कथन है कि यह ग्रंथ रहीम के सैलानी स्वभाव का परिचायक है और इसके लिखने की प्रेरणा उनको अकबर के मीना बाज़ार से मिली होगी‡।

इसी प्रकार के कुछ बरवा छंद भी मिले हैं, जिनमें 'नगर शोभा' की शैली में अनेक जाति की स्त्रियों का वर्णन किया गया है। विषय, भाव और शब्द-योजना को देखते हुए ये छंद भी रहीम के ही हो सकते हैं। संभवतः दोहा छंद में 'नगर शोभा' लिखने पर उनकी संतुष्टि न हुई हो और उन्होंने इसी विषय को अपने प्रिय छंद बरवा में भी लिख डाला हो। बरवा छंद के लिखने में रहीम को अद्भुत सफलता प्राप्त हुई है। इस दोहा से भी छोटे छंद में अवधी बोली द्वारा रहीम ने जिस सरस कवित्व का परिचय दिया है, वह रसिकों को अतीव आनंद देने वाला है।

केशवदास और 'रसिकप्रिया'—

नायिकाभेद के आरंभिक कवियों में कृपाराम के बाद केशवदास ही इस विषय के आचार्य कहे जा सकते हैं। साहित्यलहरी, रसमंजरी और बरवा नायिकाभेद के रचयिता इस विषय के कवि थे, आचार्य नहीं। केशवदास ने संस्कृत काव्यशास्त्र के अनुसार हिंदी में भी रीति-ग्रंथों का निर्माण किया था। उन्होंने 'रसिकप्रिया' में रस-रीति और नायिकाभेद का तथा 'कविप्रिया' में अलंकार और काव्य-शिक्षा का पांडित्यपूर्ण विवेचन किया है। 'रामचंद्रिका' द्वारा उन्होंने अपने पिंगल-विषयक ज्ञान का परिचय दिया है। इन ग्रंथों के कारण केशवदास हिंदी साहित्य में रीति-ग्रंथों के प्रवर्त्तक माने जाते हैं।

केशवदास के कुल में सदा से ही संस्कृत साहित्य के विद्वान होते रहे थे, अतः वे 'भाषा-कवि' कहलाने में गौरव का अनुभव नहीं करते थे†, किंतु

---

‡ 'रहीम रत्नावली' पृष्ठ १६

† भाषा बोल न जानहीं, जिनके कुल के दास।
'भाषा-कवि' भो मंदमति, तिहिं कुल केसवदास॥

उनकी भाषा-कविता ने ही उनको सदैव के लिए अमर कर दिया है। उनका जन्म सं० १६१२ में और देहावसान स० १६७४ के लगभग हुआ था। उन्होंने सं० १६४८ में 'रसिकप्रिया' एवं स० १६५८ मे 'कविप्रिया' और 'रामचंद्रिका' की रचना की थी। इनके अतिरिक्त उन्होने और भी कई ग्रंथों का निर्माण किया था।

केशवदास संस्कृत काव्यशास्त्र के महान् पंडित थे। संस्कृत के ही आधार पर उन्होंने अपने समस्त ग्रंथों की रचना की थी। काव्य-रीति मे उनका मत रसवादी मम्मट-विश्वनाथ के अनुकूल न होकर चमत्कारवादी दंडी–हृदयक के अनुकूल था। नायिकाभेद का वर्णन उन्होंने 'रसिकप्रिया' मे किया है। इस ग्रंथ की सरसता और विषय–प्रतिपादन की सरलता के कारण केशवदास को अपने अन्य ग्रंथों की अपेक्षा इसकी रचना में विशेष सफलता प्राप्त हुई है। इसी में उनके कवि-हृदय का भी परिचय प्राप्त होता है। यदि उन्होंने अन्य ग्रंथों को भी इसी शैली मे लिखा होता तो वे शायद 'कठिन काव्य के प्रेत' नहीं कहे जाते।

'रसिकप्रिया' में वर्णित नायिकाभेद का क्रम विविध संस्कृत ग्रंथों के आधार पर निश्चित किया गया है। सर्व प्रथम पद्मिनी, चित्रिनी आदि चार प्रकार की नायिकाएँ लिखी गई हैं। इनके उपरांत उन्होंने मुग्धा, मध्या और प्रौढ़ा नायिकाओं को स्वकीया के अंतर्गत लिख कर प्रत्येक के चार-चार भेद किये है, जो उनके परिवर्ती मतिराम आदि आचार्यों ने स्वीकृत नहीं किये। धीरादि भेद पृथक न लिख कर मध्या और प्रौढ़ा के साथ ही साथ लिखे गये हैं, किंतु ज्येष्ठा-कनिष्ठा का उल्लेख नही हुआ है। परकीया मे केवल ऊढा और अनूढा लिख कर अन्य छै भेदो का उल्लेख नहीं किया गया। गणिका नायिका का भी उन्होंने उल्लेख नही किया है। 'नाट्यशास्त्र' की प्रणाली पर नायिकाओं के केवल ८ भेद लिखे गये हैं। ब्रजभाषा नायिकाभेद के अन्य आचार्यों की तरह 'प्रवच्छतपतिका' और 'आगतपतिका' का उन्होंने उल्लेख नही किया है। इन आठों प्रकार की नायिकाओं के मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा, परकीया और सामान्या भेद न कर 'प्रच्छन्न' और 'प्रकाश' नामक प्रत्येक के दो-दो भेद लिखे हैं। केशवदास ने भोजराज कृत 'शृंगार प्रकाश' के आधार पर जो प्रच्छन्न और प्रकाश भेदों को लिखने की प्रणाली प्रचलित की, वह देव के अतिरिक्त ब्रजभाषा के अन्य आचार्यों ने स्वीकार नहीं की। अष्ट नायिकाओं में से अभिसारिका के ६ भेद भी परवर्ती कवियों को मान्य नहीं हुए। अभिसारिका

में शुक्लाभिसारिका एवं कृष्णाभिसारिका तो प्रचलित हैं, किंतु केशवदास द्वारा वर्णित प्रेमाभिसारिका, गर्वाभिसारिका, कामाभिसारिका और उनके प्रच्छन्न एवं प्रकाश भेद ब्रजभाषा नायिकाभेद में प्रचलित नहीं हुए। अभिसारिका के वर्णन में ही उन्होंने स्वकीया आदि तीन भेद लिखे हैं, जबकि अन्य सात नायिकाओं में ये भेद नहीं लिखे गये। सामान्या नायिका पृथक् रूप से न लिख कर भी अभिसारिका के अंतर्गत लिखी है। इन आठ प्रकार की नायिकाओं के अतिरिक्त नायिका के तीन प्रचलित भेद अन्यसंभोगदुःखिता, गर्विता और मानवती का भी उन्होंने उल्लेख नहीं किया। सबके अंत में उत्तमा, मध्यमा और अधमा नायिकाओं का उल्लेख कर इस विषय की समाप्ति की गई है। उनके द्वारा वर्णित कुल नायिकाओं की संख्या ३६० होती है। यथा—

केसवदास सु तीनि विधि, बरनी सुकिया नारि।
परकीया द्वै भाँति पुनि, आठ-आठ अनुहारि॥
उत्तम, मध्यम अधम अरु, तीन-तीन विधि जान।
प्रगट 'तीन सै साठि' तिय, केसवदास बखान॥

केशवदास ने भक्त कवियों की प्रणाली के अनुसार परकीया और सामान्या का विशेष विस्तार नहीं किया। परकीया नायिका की परिभाषा भी उन्होंने उसी प्रणाली के अनुकूल की—"सब तें पर परसिद्ध जो, ताकी तिया जो होय।" केशवदास भक्त कवि न होकर रीति वादी कवि थे, किंतु परकीया और सामान्या के कथन में उन्होंने रीति वादी कवियों के समान आचरण नहीं किया। इसका कारण उनके समकालीन भक्त कवियों का प्रभाव ही हो सकता है।

यदि केशवदास की तरह परवर्ती काल के अन्य कवि भी परकीया और सामान्या नायिकाओं के भेदोपभेदों पर ज़ोर नहीं देते, तो आचार और उपयोगिता की दृष्टि से उन कवियों की रचनाएँ और भी अधिक महत्वपूर्ण हो जातीं और समाज-व्यवस्था पर भी इसका हितकारी प्रभाव पड़ता। जो कुछ भी हो, रसिकप्रिया ब्रजभाषा साहित्य के नायिकाभेद की आरंभिक रचनाओं में अत्यंत महत्वपूर्ण है, किंतु उसके रस-वर्णन की परिपाटी और नायिकाभेद को परवर्ती कवियों ने स्वीकार नहीं किया।

---

* रसिकप्रिया

रीति कालीन परिवर्तित दृष्टिकोण का प्रभाव—

हिंदी साहित्य में केशवदास रीति-ग्रंथों के प्रवर्त्तक माने जाते हैं, किंतु उनका मत परवर्ती कवियों को मान्य नहीं हुआ। केशवदास के प्रायः ५० वर्ष पश्चात् आचार्य चिंतामणि ने रीति कालीन युग-परिवर्तन का कार्य किया है। उन्होंने दशांग कविता का मार्मिक विवेचन कर केशवदास से भिन्न मत प्रकट किया, जिसका अनुकरण परवर्ती कवियों ने भी किया है। अलंकारादि काव्यांगों की चिंतामणि ने नवीन और निश्चित प्रणाली प्रचलित कर दी थी, किंतु नायिकाभेद-कथन में उनका भी मत अनुकरणीय नहीं समझा गया।

नायिकाभेद की निश्चित और सर्वमान्य प्रणाली इन्हीं चिंतामणि के छोटे भाई आचार्य मतिराम ने चलाई, जिनका 'रसराज' नायिकाभेद का प्रसिद्ध ग्रंथ है। इनके तीसरे भाई भूषण ने महाराज शिवाजी के आश्रय में वीर रस के काव्य का पुनरुद्धार किया था। इस प्रकार इन तीनों भाइयों ने ब्रजभाषा-साहित्य के गति-परिवर्तन में अपने-अपने विभिन्न मार्गों द्वारा ऐसा महत्वपूर्ण कार्य किया है, जो साहित्य-जगत् में अनुपम है।

केशवदास के पश्चात् और चिंतामणि के पूर्व एक 'सुंदर' नामक कवि ने भी नायिकाभेद का सुंदर कथन किया है। 'सुंदर कवि' शाहजहाँ बादशाह के दरबारी कवि थे। उन्होंने सं० १६८८ में अपने ग्रंथ 'सुंदर शृंगार' द्वारा अपने पूर्ववर्ती कवियों की अपेक्षा नायिकाभेद पर अधिक प्रकाश डाला है। उनकी कविता में यमक और अनुप्रास की अद्भुत छटा दिखलाई देती है। उन्होंने नायिकाओं की विभिन्न दशाओं का भी अच्छा कथन किया है।

चिंतामणि कृत "कविकुलकल्पतरु"—

आचार्य चिंतामणि का सबसे प्रमुख और प्रशंसनीय ग्रंथ 'कविकुल-कल्पतरु' है। इसकी रचना सं० १७०७ वि० में हुई थी। इस महत्वपूर्ण ग्रंथ में उन्होंने काव्यशास्त्र के समस्त अंगों का मार्मिक विवेचन किया है। इसके पंचम अध्याय में अभिधा, लक्षणा और व्यंजना के उपरांत भावभेद का साधारण कथन कर शृंगार रस के विभावांगंत नायिकाभेद का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है।

चिंतामणि ने नायिका के सर्वप्रथम दिव्य, अदिव्य और दिव्यादिव्य—ये तीन भेद किए हैं, जो देव के अतिरिक्त किसी बड़े आचार्य ने नहीं लिखे,

देव ने भी इन नायिकाओं को नायिका के प्रधान वर्गों में न लिख कर स्वकीया के अंतर्गत लिखा है। इन भेदों के बाद उन्होंने स्वकीया, परकीया और सामान्या भेदों को लिख कर स्वकीया के तीन भेद मुग्धा, मध्या और प्रौढ़ा का उल्लेख किया है। इनके अनंतर मुग्धा के छै भेद, मध्या के चार भेद और प्रौढ़ा के चार भेदों का उल्लेख किया है, जिनके नाम अन्य आचार्यों के कथित नामों से भिन्न हैं, यद्यपि नायिकाओं के कथन में विशेष भिन्नता नहीं है। इसके पश्चात् मध्या और प्रौढ़ा में धीरादि भेद लिख कर ज्येष्ठा-कनिष्ठा का भी उल्लेख किया है। परकीया नायिका में ऊढ़ा लिख कर उसी के अंतर्गत 'सुरतिगोपना' आदि छै भेदों का कथन किया है, फिर अनूढ़ा लिख कर परकीया प्रकरण को समाप्त किया है। केशवदास के विरुद्ध चिंतामणि ने नायिका का तीसरा भेद सामान्या स्वीकार करते हुए भी उसका विशेष वर्णन नहीं किया है। केशवदास की तरह गर्विता आदि तीन नायिकाओं का उल्लेख कर उन्हीं के समान आठ प्रकार की नायिकाएँ भी लिखी हैं, किंतु केशवदास के विरुद्ध और परिवर्ती आचार्यों के अनुसार इन आठों नायिकाओं में मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा, परकीया और सामान्या का कथन किया है। केशवदास की तरह शेष दो 'प्रवच्छतपतिका' और 'आगतपतिका' नायिकाओं का इन्होंने भी उल्लेख नहीं किया। अंत में उत्तमा, मध्यमा और अधमा नायिकाओं का कथन कर नायिकाभेद की समाप्ति की है।

इस प्रकार चिंतामणि का नायिकाभेद केशवदास के नायिकाभेद से प्रायः मिलता हुआ होने पर भी उससे अधिक विस्तृत है और परवर्ती आचार्यों के मत से भी अधिक भिन्न नहीं है। चिंतामणि के कथन में केशवदास और मतिराम के बीच की परिवर्तित स्थिति का स्पष्ट दिग्दर्शन होता है।

रस-रीति का प्रमुख अंग—नायिकाभेद –

गत पृष्ठों में लिखा जा चुका है कि ब्रजभाषा-नायिकाभेद का प्रधान आधार संस्कृत ग्रंथ 'रसमंजरी' है। रसमंजरी नाम से ऐसा अनुमान होता है कि उसमें रस विषय का पूर्ण विवेचन होगा, परंतु उक्त ग्रंथ में शृंगाररस के विभावांतर्गत नायिकाभेद का ही विशेष वर्णन है। ब्रजभाषा नायिकाभेद के कवियों एवं आचार्यों ने भी इसी परिपाटी को ग्रहण किया। मतिराम का 'रसराज' इसी पद्धति का आदर्श ग्रंथ है। इसमें उन्होंने नायिकाभेद का विस्तारपूर्वक वर्णन कर रस-भेद की अन्य बातें संक्षिप्त रूप से लिखी हैं। केशवदास की 'रसिकप्रिया' का क्रम दूसरा है। उसमें विविध संस्कृत

ग्रंथों के आधार पर रस-रीति का विशद वर्णन करने पर भी नायिकाभेद का उतना ही विवेचन किया गया है, जितना एक रस के उपांग का होना उचित था। केशवदास के परवर्ती कवियों में केवल देव ने अपने आरंभिक ग्रंथों में उनका कुछ अनुसरण किया है, किंतु अन्य कवियों को मतिराम की शैली ही उपयुक्त ज्ञात हुई।

इस काल में नायिकाभेद के वर्णन पर इतना ज़ोर क्यों दिया गया, इसके विषय में गत पृष्ठों में विस्तार पूर्वक लिखा जा चुका है। उस समय के धर्माचार्य, उनकी भक्ति–भावना तथा उनसे प्रभावित कविगण, उस समय की राजकीय एवं सामाजिक स्थिति–सब ने ब्रजभाषा के शृंगार-साहित्य और नायिकाभेद का मार्ग प्रशस्त किया था। ऐसी दशा में शृंगार रस और विशेष कर नायिकाभेद के साहित्य की उन्नति होना स्वाभाविक ही था।

नायिकाभेद का सर्वमान्य आचार्य–मतिराम—

मतिराम ब्रजभाषा साहित्य के सुप्रसिद्ध शृंगारी कवि और नायिकाभेद के सर्वमान्य आचार्य थे। उनका 'रसराज' नायिकाभेद का सर्वप्रधान ग्रंथ है, जिसमें नायिकाओं का सुसंबंधित क्रम, उनके सरल लक्षण और स्पष्ट उदाहरण दिये गये हैं। रसराज के नायिका–वर्णन की शैली इतनी सुंदर और सरल है तथा इसकी भाषा इतनी प्रसाद गुण सपन्न और स्वाभाविक है कि अपने विषय का सर्वप्रथम सर्वांगपूर्ण ग्रंथ होने पर भी इस विषय पर किसी भी परवर्ती कवि की रचना इसके समान सुंदर नहीं बन सकी। मतिराम के पश्चात् सैकड़ों कवियों ने नायिकाभेद का कथन किया है। उन्होंने विषय–विस्तार और नवीन उद्भावनाओं में भी काफ़ी मग़ज़–पच्ची की है, किंतु कला की दृष्टि से वे मतिराम के उच्च धरातल तक नहीं पहुँच सके। इसीलिए नायिकाभेद पढ़ने वाले विद्यार्थी आज तक सर्वप्रथम रसराज का ही अध्ययन करते हैं।

मतिराम का रचना–काल सं० १७०० के बाद आरंभ होता है। आयु में वे अपने दोनों भाई चिंतामणि और भूषण से छोटे थे। 'रसराज' के अतिरिक्त इनके बनाए कई अन्य रीति ग्रंथ भी हैं। इनकी 'सतसई' नामक पुस्तक शृंगाररस की उत्कृष्ट रचना है। सतसई के अनेक दोहे बिहारी के काव्य–कौशल का स्मरण दिलाते हैं। मतिराम शृंगार रस के सफल कवि हैं। इनकी कविता में शब्दाडंबर न होकर स्वाभाविक सौन्दर्य है और इनके भावों में सजीवता है।

इनके नायिकाभेद वर्णन का क्रम सीधा और सरल है, जिसको अधिकांश परवर्ती कवियों ने भी स्वीकार किया है। इन्होंने सर्वप्रथम कर्मानुसार नायिकाओं के तीन भेद स्वकीया, परकीया और गणिका का उल्लेख कर स्वकीया के मुग्धा, मध्या और प्रौढ़ा भेदों का वर्णन किया है। मुग्धा के उपभेद अज्ञातयौवना और ज्ञातयौवना का उल्लेख कर ज्ञातयौवना के अंतर्गत नवोढ़ा और विश्रब्ध नवोढ़ा का वर्णन किया है। इन्होंने मध्या और प्रौढ़ा के कोई उपभेद नहीं किए, केवल उनके धीरादि भेदों को लिखा है। इसके उपरांत ज्येष्ठा-कनिष्ठा का वर्णन कर स्वकीया प्रकरण की समाप्ति की है। परकीया में पहले ऊढ़ा और अनूढ़ा दो भेदों को लिख कर बाद में गुप्ता आदि छै भेदों का कथन किया है, फिर गणिका का उल्लेख कर कर्मानुसार नायिकाओं का वर्णन समाप्त कर दिया है। इसके पश्चात् अन्यसंभोगदुःखितादि तीन प्रकार की और प्रोषितपतिकादि दस प्रकार की नायिकाओं को लिख कर अंत में उत्तमादि तीनों प्रकार की नायिकाओं का वर्णन कर नायिकाभेद की समाप्ति की है। इस प्रकार की नायिकाओं को मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा, परकीया और सामान्या उपभेदों में भी विभाजित किया गया है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि मतिराम क्रम का बिलकुल सीधा-सादा है, इसीलिए वह इतना प्रचलित हो सका। इनके पश्चात् अनेक कवियों ने नायिकाभेद के विस्तार की चेष्टा की, किंतु उनके क्रम मतिराम के सरल क्रम के समान प्रसिद्धि प्राप्त न कर सके।

देव द्वारा नायिकाभेद का विस्तार—

मतिराम के पश्चात् महाकवि देव नायिकाभेद के सर्वश्रेष्ठ कवि और आचार्य थे। उन्होंने अनेक ग्रंथों की रचना द्वारा हुए दशांग काव्य का पूर्ण विवेचन किया है। काव्यशास्त्र का ऐसा कोई विषय नहीं, जिस पर देव ने न लिखा हो। उनके ७२ ग्रंथ कहे जाते हैं, जिनमें ३० ग्रंथ प्रसिद्ध है। इन ग्रंथों में 'भावविलास', 'भवानीविलास', 'सुजानविनोद', 'प्रेमतरंग', 'रसविलास', 'जातिविलास', 'कुशलविलास', 'सुखसागरतरंग', काव्यरसायन' आदि सुप्रसिद्ध रीति-ग्रंथ हैं। इनमें से अधिकांश में नायिकाभेद का कथन हुआ है।

उपर्युक्त ब्रजभाषा ग्रंथों के अतिरिक्त उनका एक संस्कृत ग्रंथ 'शृंगार-विलासिनी' भी प्राप्त हुआ है। इसमें भी विशेष कर नायिकाभेद का ही वर्णन है। यह ग्रंथ सं० १७४७ वि० में दक्षिण भारत के कोंकण प्रदेश में

लिखा गया था। इस ग्रंथ की यह विशेषता है कि संस्कृत मे लिखा होने पर भी इसकी रचना हिंदी छंद छप्पय, सवैया, दोहा आदि में हुई है। हिंदी छंदशास्त्र के नियमानुसार पदो के अंत में तुक भी मिलाई गई है। इस ग्रंथ से देव कवि का संस्कृत काव्य-रचना पर भी पर्याप्त अधिकार ज्ञात होता है।

देव का जन्म सं० १७३० वि० में हुआ था और वे कदाचित सं० १८०० के बाद तक जीवित रहे। इस प्रकार उन्होने पूर्ण आयु का उपभोग किया था। उन्होने १६ वर्ष की अल्प आयु मे ही 'भावविलास' जैसे प्रौढ़ ग्रंथ की रचना की थी और मृत्यु पर्यंत कविता-कामिनी का शृंगार करते रहे। इस प्रकार देव ने अपनी आयु के कम से कम ५० वर्ष काव्य-रचना में लगाए! इस दीर्घ काल में जितना साहित्य इस कवि ने प्रस्तुत किया है, वह परिमाण मे तो अत्यधिक है ही, किंतु काव्य-सौन्दर्य मे भी अनुपम है। इन्होने अगणित छंदो द्वारा भिन्न-भिन्न विषयों पर काव्य-रचना की है, किंतु उनका कोई छंद उठा लीजिए, उसमें कुछ न कुछ अनूठापन अवश्य मिलेगा।

महाकवि देव का सर्वप्रथम ग्रंथ 'भावविलास' है। इसकी रचना उन्होंने केवल १६ वर्ष की आयु मे ही की थी। इस ग्रंथ में भाव-भेद का बड़ा ही उत्कृष्ट वर्णन हुआ है। विषय-विस्तार और काव्य-सौन्दर्य दोनों दृष्टियों से यह ग्रंथ ऐसा प्रौढ़ बना है, जैसा दूसरे आचार्य अपनी प्रौढ़ावस्था मे भी नही बना सके हैं। इसमें नायिकाभेद का वर्णन विस्तृत रूप से नही हुआ है, किंतु कोई आवश्यक बात भी नही छूटने पाई है। इस ग्रंथ का क्रम केशवदास की 'रसिकप्रिया' से प्रायः मिलता हुआ है। इस ग्रंथ में वर्णित नायिकाओं की संख्या भी प्रायः केशवदास कृत नायिकाओं के समान ही है। जहाँ केशवदास ने रसिकप्रिया' में नायिकाओं की संख्या ३६० लिखी है, वहाँ देव ने 'भावविलास' में उनकी संख्या ३८४ लिखी है[१]।

---

[१] स्वीया तेरहै भेद करि, द्वै जु भेद पर-नारि।
एक जु वेस्या ये सबै, सोरह कहौ विचार॥
एक-एक प्रति सोरही, आठ अवस्था जान।
जोरि सबै ये एक सौ अट्ठाईस बखान॥
उत्तम, मध्यम, अधम करि, ये सब त्रिविधि विचार।
चौरासी अरु तीनसै, जोरै सब विस्तार॥
—"भावविलास"

इस ग्रंथ के पश्चात् देव ने जिन ग्रंथों का निर्माण किया, उनमें नायिकाभेद का विशेष रूप से विस्तार किया है। इन ग्रंथों में वर्णित नायिकाओं की संख्या भी बेहद बढ़ गई है।

देव ने नायिकाभेद का वर्णन बड़े विस्तारपूर्वक किया है। उन्होंने स्थान-स्थान पर नायिकाओं के ऐसे शब्द-चित्र खींचे हैं, जिनके सौन्दर्य पर मुग्ध होकर पाठक भी चित्रवत् हो जाता है! देव के इतने अधिक ग्रंथों में एक मात्र नायिकाभेद का कोई ग्रंथ नहीं किंतु उन्होंने अपने कई ग्रंथों में भिन्न-भिन्न प्रकार से नायिकाभेद का इतना विशद विवेचन किया है कि उनसे अधिक इस विषय पर अन्य कोई कवि अथवा आचार्य नहीं लिख सका है।

देव ने नायिकाओं को प्रधान रूप से जाति, कर्म गुण, देश, काल, वयक्रम, प्रकृति और सत्व—इन ८ वर्गों में विभाजित कर उनके अनेक अंतर्भेदों का कथन किया है†। इस प्रकार नायिकाभेद को विस्तृत रूप देकर नायिकाओं की संख्या-वृद्धि का आग्रह करने वाले आचार्यों के लिए देव ने मार्ग प्रशस्त कर दिया था, जिसका अनुकरण आगे चल कर रसलीन और दास आदि ने पूरी तरह किया। देश-भेद से देव ने भारतवर्ष के अनेक भागों की स्त्रियों का वर्णन कर अपने देशव्यापी पर्यटन और अपनी सूक्ष्म दृष्टि का अद्भुत परिचय दिया है। 'जातिविलास' और 'रसविलास' में अनेक जाति की स्त्रियों का रसपूर्ण कथन उन्होंने कदाचित रहीम कृत 'नगर शोभा' के अनुकरण पर किया है। इस प्रकार के वर्णन में जोहरिन, छीपिन, पटवन, सुनारिन, गंधिन, तेलिन कुम्हारिन, दरजिन—यहाँ तक कि चूहरी तक का कथन बड़े ही रसपूर्ण शब्दों में किया गया है!

देव के जिन ग्रंथों में नायिकाभेद का कथन हुआ है, उनमें "सुखसागर-तरंग" मुख्य है। इसे उन्होंने अपनी प्रौढ़ अवस्था में पिहानी वाले खान अली अकबर खाँ के लिये सं० १८२४ वि० में बनाया था। ऐसा ज्ञात होता है कि इस ग्रंथ की रचना स्वतंत्र रूप से नहीं हुई। देव ने अपने ग्रंथों के सुंदर छंदों को लेकर इसकी रचना की है, अतः यह एक संग्रह ग्रंथ है। इस

† आठ भेद नायिका के, बरनत है कवि सत।
भेद-भेद प्रति होत है, अंतरभेद अनत॥
जाति, कर्म, गुन, देस अरु काल, वयक्रम जान।
प्रकृति, सत्व नाइका के, आठों भेद बखान॥
—"रसविलास"

ग्रंथ के छंद काव्य–सौन्दर्य में बडे ही प्रौढ़ और उत्कृष्ट हैं। इस विशाल संग्रह ग्रंथ में विशेष रूप से नायिकाभेद के ही छंद मिलते हैं, किंतु उसमें न तो नायिकाओं की परिभाषा दी गई है और न उनका निश्चित क्रम ही। इससे प्रकट होता है कि इस ग्रंथ की रचना लेखक ने नायिकाभेद के ग्रंथ रूप में भी नहीं की। संभव है उत्कृष्ट छंदों को एक स्थान पर एकत्रित कर देने के अभिप्राय से इसकी रचना की गई हो। नायिकाभेद की क्रमबद्ध रचना न होने पर भी इसमें प्रायः सभी नायिकाओं के बढिया से बढिया उदाहरण मिलते है। नायिकाभेद के अतिरिक्त भावभेद, नखशिख तथा षटऋतु आदि के उत्तम छंद भी दिये गये हैं। यह बहुत बड़ा ग्रंथ है, जिसमें प्रायः ६०० कवित्त एवं सवैया छंद है।

देव ने नायिका को जाति, कर्म, गुण, देश, काल, वय, प्रकृति और सत्व के अनुसार आठ प्रधान वर्गों मे विभाजित किया है। उन वर्गों मे से प्रत्येक के भेद-उपभेद बतलाते हुए सब से प्रथम जाति अनुसार वर्ग के पद्मिनी आदि चार भेद लिखे हैं। दूसरे वर्ग कर्मानुसार मे नायिका के स्वकीया, परकीया और गणिका—ये तीन भेद लिखे है, जिनमें स्वकीया के पुनः दो भेद—अंशाभेदानुसार और ज्येष्ठा–कनिष्ठा किये है। अंशभेद के अनुसार स्वकीया नायिका के पाँच उपभेद किये है और उनको वयक्रमानुसार इस प्रकार विभाजित किया है—१. देवी (७ वर्ष), २. देव-गधर्वी (१४ वर्ष), ३. गधर्वी (२१ वर्ष), ४. गंधर्व-मानुषी (२८ वर्ष), ५. मानुषी (३५ वर्ष)। इनमे देवी को पूज्य, देव-गंधर्वी, गंधर्वी और गंधर्व मानुषी को भोग-विलास योग्य एव मानुषी को कुल–धर्म तथा संतान-सुखार्थ लिखा है। उन्होने परकीया के अनूढा और ऊढा दो भेद लिखे है, जिनमें ऊढा के अतर्गत गुप्ता आदि छै भेदो को लिखा है। उन्होंने गणिका का कोई भेद नहीं लिखा। तीसरे वर्ग गुणानुसार मे उत्तमा आदि तीन भेद लिखे है। चौथे वर्ग देशानुसार में अनेक देशों की स्त्रियों का वर्णन किया है, जो अद्भुत और विलक्षण है। पाँचवे वर्ग कालानुसार में स्वाधीनपतिका आदि आठ भेद लिखे गये है। इनमे प्रवच्छतपतिका और आगतपतिका भेदों का उल्लेख नहीं हुआ है। छटे वर्ग वयक्रमानुसार मे मुग्धा, मध्या और प्रौढा भेद किये है और इनमे से प्रत्येक के उपभेद भी किये है।

मुग्धा आदि नायिकाओं को सभी आचार्यों ने वयक्रमानसार विभाजित किया है, किंतु उनकी वय का विचार नहीं किया। देव ने इनके भेद और उपभेदों के वय-क्रम का भी उल्लेख कर दिया है। इस प्रकार मुग्धा

नायिका को १२ से १६ वर्ष तक, मध्या को १७ से २० वर्ष तक तथा प्रौढ़ा को २१ से २४ वर्ष तक लिखा गया है। इनके उपभेदों के वय-क्रम का भी उल्लेख है। इनमें सबसे प्रथम मुग्धा के पाँच उपभेद लिखे हैं, जिनके नाम और उनकी वय इस प्रकार लिखी गई है--१. वनसंधि (अज्ञातयौवना) १२ से १३ वर्ष तक, २. नवलवधू १३ वर्ष, ३. नवयौवना १४ वर्ष—इन दोनों का दूसरा नाम ज्ञातयौवना भी लिखा है—४. नवलअनगा (नवोढ़ा) १५ वर्ष, ५. सलज्जरति (विश्रब्धनवोढ़ा) १६ वर्ष। मध्या के ४ भेद किये हैं-१. रूढ़यौवना १७ वर्ष, २. प्रगटमनोज (प्रादुर्भूत मनोभवा) १८ वर्ष, ३. प्रगल्भरचना १९ वर्ष, ४. विचित्रचतुरता २० वर्ष। प्रौढ़ा के भी चार भेद किये हैं--१. लब्धापति २१ वर्ष, २ रतिकोविदा २२ वर्ष, ३ आक्रांता २३ वर्ष, ४. सविभ्रमा २४ वर्ष।

इसके अनंतर मध्या-प्रौढ़ा-मान के नाम से धीरादि भेदों का उल्लेख कर छटे वर्ग की समाप्ति की है। सातवें वर्ग प्रकृति-अनुसार में कफ, पित्त और वात नामक भेद किये हैं और आठवें वर्ग सत्वानुसार में देव, मनुष्य आदि नौ भेद किये हैं।

इस प्रकार देव कृत नायिकाभेद का क्रम है, जो उनके कई ग्रंथ भाव-विलास, भवानीविलास, रसविलास, सुखसागरतरंग आदि में वर्णित है। गर्विता आदि तीन नायिकाओं को देव ने अपने प्रधान वर्गों में स्वीकार नहीं किया किंतु भावविलास में परकीयदुःखिता, प्रेमगर्विता, रूपगर्विता और मानिनी के नाम से इन चारों नायिकाओं का भी उल्लेख कर दिया है। रसविलास के आरंभ में नायिका के ६ वर्ग और भी लिखे हैं, जो सब से निराले हैं, यथा--१. नागरी २. पुरवासिन ३. ग्रामीणा ४. बनवासिन ५. सेन्या ६. पथिकनिय। देव ने इन भेदों के भी अनेक उपभेद किये हैं।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि नायिकाभेद का जितना विस्तार देव ने किया है, उतना कोई भी आचार्य नहीं कर सका। देव के परवर्ती रसलीन, दास आदि कितने ही आचार्यों ने भी नायिकाओं की संख्या-वृद्धि का आग्रह किया है किंतु उन्होंने उनके प्रधान वर्गों में ही भेदोपभेद बढ़ाकर उनकी वृद्धि की है। देव ने जिन नवीन और अद्भुत भेदों का आविष्कार किया था, उनका अनुकरण बाद में नहीं हुआ। देव का महत्व नायिकाओं की संख्या-वृद्धि करने के कारण नहीं है, बल्कि काव्यशास्त्र के विशद विवेचन और अपूर्व काव्य-कौशल के कारण है। इस संबंध में कदाचित ही कोई कवि उनकी समता कर सका है।

रीति-साहित्य का सर्वश्रेष्ठ काल और नायिकाभेद के प्रमुख कवि—

देव के अंतिम समय में ब्रजभाषा साहित्य के कितने ही बड़े आचार्य और सुकवि उत्पन्न हुए। उनमें सुरति मिश्र, श्रीपति, तोष, रघुनाथ सोमनाथ, रसलीन और दास प्रमुख हैं। वे प्रायः सभी समकालीन थे। उन धुरंधर आचार्यों और कवियों ने साहित्य के रूप को इस प्रकार सुधारा और उसके अंग-उपांगों का ऐसा मार्मिक तथा विवेचनापूर्ण वर्णन किया कि वि० सं० १७७५ से १८२५ तक का ५० वर्ष का समय रीति-साहित्य का सर्वश्रेष्ठ तथा गौरवपूर्ण काल कहा जा सकता है। इसी काल में नायिकाभेद पर भी कवियों का यथेष्ट ध्यान रहा और उन्होंने उसका बड़ा विशद विवेचन किया। इस काल के सभी कवियों का वर्णन लिखना कठिन है, अतः कुछ प्रमुख कवियों का संक्षिप्त परिचय दिया जाता है।

सुरति मिश्र—साहित्य के मार्मिक विद्वान और सुप्रसिद्ध टीकाकार थे। उन्होंने 'रससरस', 'काव्यसिद्धांत', 'रसरत्नाकर' आदि कितने ही ग्रंथों का निर्माण किया और नायिकाभेद पर सुंदर रचनाएँ कीं। उनका विशेष महत्व केशव और बिहारी के काव्यों पर विद्वतापूर्ण टीक-ग्रंथों के कारण है।

श्रीपति—ब्रजभाषा साहित्य के उत्कृष्ट आचार्य और सुकवि थे। उनका 'काव्यसरोज' प्रमुख ग्रंथ है, जिसमे प्रसंगानुसार नायिकाभेद का भी कथन हुआ है। इस प्रशंसनीय ग्रंथ की रचना सं० १७७७ वि० में हुई थी। इसमे काव्य के समस्त अंगो पर पांडित्यपूर्ण विवेचन किया गया है। इस ग्रंथ से ज्ञात होता है कि वे काव्यशास्त्र के अच्छे विद्वान और उसके मर्मज्ञ थे। उन्होने केशव जैसे महाकवि की कविता में भी दोष ढूंढ़ निकाले हैं, और दास जैसे धुरंधर आचार्य तक ने उनके ग्रंथों का आधार लिया है। इन बातों से उनका महत्व स्वयसिद्ध है। उन्होंने कई अन्य रीति-ग्रंथों की भी रचना की थी, जिनमें प्रसंगानुसार नायिकाभेद के भी उत्कृष्ट छंद लिखे गये हैं।

तोष—रसरीति और नायिकाभेद के उत्तम कवि हुए हैं। उन्होंने 'सुधानिधि' नामक सुप्रसिद्ध ग्रंथ की रचना स० १७९१ वि० मे की थी। इसमें नायिकाभेद का भी सुंदर विवेचन हुआ है।

रघुनाथ—रस-रीति और नायिकाभेद के उत्कृष्ट कवि और कई रीति-ग्रंथों के रचयिता थे। उन्होंने सं० १८०२ में 'काव्यकलाधर' की रचना द्वारा भाव-भेद और रस-भेद के अतिरिक्त नायिकाभेद का भी विस्तृत कथन किया था।

सोमनाथ, रसलीन और दास नायिकाभेद के प्रमुख कवि और आचार्य थे। उनका विस्तार पूर्वक वर्णन आगे किया गया है।

सोमनाथ और 'रसपीयूषनिधि'—

सोमनाथ ब्रजभाषा रीति–साहित्य के सुप्रसिद्ध आचार्य और सुकवि थे। उन्होंने सं० १७९४ मे अपने विख्यात ग्रंथ 'रसपीयूषनिधि' की रचना की थी। रसपीयूषनिधि बड़ा ग्रंथ है। इसमे दशांग काव्य का विशद विवेचन हुआ है। इसमे छंद, काव्य–लक्षण, काव्यभेद, शब्दार्थ, ध्वनि, भावभेद, रसभेद गुण, अलंकार, काव्यदोष, चित्र–काव्य आदि सभी विषयों पर प्रकाश डाला गया है। इस प्रकार यह ब्रजभाषा रीति-साहित्य का प्रमुख ग्रंथ है। इसमें उपर्युक्त सभी विषयों को बड़ी सुगम रीति से समझाया गया है। ब्रजभाषा साहित्य में दशांग काव्य का विवेचन करने वाले आचार्य देव, श्रीपति, सोमनाथ और दास थे। उनमें सोमनाथ का महत्वपूर्ण स्थान है।

'रसपीयूषनिधि' में शृंगार रस के आलंबन विभाव के अंतर्गत नायिकाभेद का भी उत्कृष्ट वर्णन किया गया है। सोमनाथ ने परकीया और दस प्रकार की नायिकाओं का अपेक्षाकृत सुंदर कथन किया है। नायिकाभेद के आरंभ मे पद्मिनी, चित्रिनी आदि चार प्रकार की नायिकाओं का कथन कर स्वकीया का भेदोपभेद सहित वर्णन किया गया है। इसके पश्चात् परकीया प्रकरण में प्रथम उसके परोढ़ा और अनूढा दो भेद लिखे गये हैं। परोढा नायिका के अतर्गत गुप्ता आदि छै भेदों को लिखा गया है। इसके उपरांत अन्य भेदों को लिखकर अंत मे स्वाधीनपतिका आदि दस प्रकार की नायिकाओं के विस्तृत वर्णन के साथ इस विषय को समाप्ति की गई है। सोमनाथ के नायिकाभेद का क्रम सरल और विस्तार रहित है।

रसलीन और 'रसप्रबोध'—

रसलीन का पूरा नाम सैयद गुलाम नबी बिलग्रामी 'रसलीन' था। यह मुसलमान सुकवि ब्रजभाषा नायिकाभेद और काव्यशास्त्र के प्रसिद्ध आचार्य थे। उन्होंने स० १७९४ मे 'अंगदर्पण' और सं० १७९९ मे सुप्रसिद्ध 'रसप्रबोध' की रचना की थी। अंगदर्पण मे नखसिख और रसप्रबोध में रस-रीति और नायिकाभेद का विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है। ये दोनों ग्रंथ दोहा छंद मे हैं। उनका निम्न दोहा विख्यात है—

अमिय, हलाहल, मद भरे, सेत, स्याम, रतनार।
जियत, मरत, झुकि-झुकि परत, जेहि चितवत इक बार॥

यह सुप्रसिद्ध दोहा, जो रसिकों की जिह्वा पर नाँचता रहता है और जो पहिले बिहारी का समझा जाता था, वह इन्हीं मुसलमान कवि के 'अंगदर्पण' का है। इससे इनके काव्य–चमत्कार का अच्छा परिचय मिलता है।

'रसप्रबोध' अत्यंत प्रशंसनीय ग्रंथ है। इसके ११५५ दोहाओं में रसभेद, भावभेद और नायिकाभेद का ऐसा विशद और सर्वांगपूर्ण वर्णन किया गया है कि इस ग्रंथ के महत्व पर उसके रचयिता की निम्न लिखित उक्ति यथार्थ ज्ञात होती है—

बाँचि आदि ते अंत लौं, ये समुझै जो कोइ।
ताहि और रस ग्रंथ की, फेर चाहि नहि होइ॥

इस ग्रंथ के आरंभ मे रस का साधारण परिचय देकर—'भावहि तें रस होत है, समुझि लेउ मन मोंहि। यातें पहिलै भाव सब बरनत सुकवि सराहि।" – इस उक्ति के कारण पहले भाव–भेद का वर्णन किया गया है। आचार्यों ने स्थायी भाव के कारण को विभाव, कार्य को अनुभाव और सहकारी कारणों को संचारी भाव कहा है। चूंकि कारण से ही कार्य होता है, इसलिये पहले कारण का वर्णन करना सर्वथा उचित है। रस के कारणीभूत स्थायी भाव का भी कारण विभाव है, इसलिये रसभेद के ग्रंथों मे विभाव का वर्णन पहले किया जाता है। रसों में भी प्रमुखता शृंगार रस की है और शृंगार रस के आलंबन विभाव में नायिका–नायक का वर्णन होता है, इसलिये शृंगार रस के आलंबन स्वरूप नायिकाभेद का पहले वर्णन कर अन्य बातों को बाद में लिखा जाता है। ब्रजभाषा साहित्य में यह परिपाटी पहले से ही प्रचलित थी और कितने ही कवियों ने उसका अनुसरण भी किया था, किंतु उसका यथार्थ कारण रसलीन ने अपने 'रसप्रबोध' मे बतलाया है।

रसलीन ने भावभेद का संक्षिप्त वर्णन कर शृंगार रस के अंतर्गत नायिकाभेद का विस्तारपूर्वक विवेचन किया है। नायिकाभेद के पश्चात् नायकभेद भी बडे विस्तार से लिखा गया है। इसके अनंतर सखी, दूती, षटऋतु आदि का वर्णन कर 'विभाव' प्रकरण को समाप्त किया गया है। इसके बाद 'अनुभाव' के वर्णन में ही 'हाव' और 'सात्विक भावों' का कथन किया गया है। इसके अनंतर संचारी आदि भावभेद की शेष बातें कह कर रसभेद का वर्णन किया गया है। इसमें शृंगार रस के दो भेद संयोग और विप्रलंभ का वर्णन कर शेष रसों को संक्षिप्त रूपसे लिखा गया है।

रसप्रबोध में भावभेद और रसभेद का विस्तृत वर्णन होने पर भी उसका नायिकाभेदोक्त कथन विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। उन्होंने अनेक नायिकाओं के उल्लेख द्वारा इस विषय का बड़ा विस्तार किया है। देव की तरह उन्होंने भी कितनी ही नई नायिकाओं की उद्भावना की है, जिनके कारण नायिकाभेद एक जंजाल सा बन गया है।

उनके मतानुसार १३५२ प्रकार की नायिकाएँ होती हैं—

इक सुकिया, द्वै परकिया, सामान्या मिलि चारि।
अष्ट नायिका मिलि सोई, बत्तिस होत विचारि॥

उत्तमादि सो मिलि उहैं, सुन छियानवे होत।
पुन चौरासी तीनसै, पदमिन आदि उदोत॥

तेरासै बावन बहुरि, दिव्यादिक के संग।
यों गनना मे नायिका, बरनी बुद्धि तरंग॥

रसलीन ने नायिका के सर्व प्रथम स्वकीया, परकीया और गणिका तीन भेद लिखे हैं। स्वकीया के अंतर्गत मुग्धा, मध्या और प्रौढ़ा लिखकर उन्होंने मुग्धा के पाँच, मध्या के चार और प्रौढ़ा के छै भेदों का उल्लेख किया है। मुग्धा के पाँच उपभेदों में नवयौवना के अंतर्गत अज्ञातयौवना और ज्ञातयौवना, नवलअनंगा के अंतर्गत अविदितकाम और विदितकाम, तथा नवलवधू के अंतर्गत नवोढ़ा, विश्रब्धनवोढ़ा और लज्जासक्ता-रतिकोविदा—इन उपभेदों का कथन किया है। इसके बाद धीरादि भेद और ज्येष्ठा-कनिष्ठा लिख कर स्वकीया-वर्णन को समाप्त किया है। परकीया के भेदों मे पहले ऊढा और अनूढा दो भेद लिख कर दोनो के उद्बुद्धा और उद्बोधिता दो-दो भेद लिखे है। फिर परकीया को असाध्या और सुखसाध्या दो भेदों मे विभाजित किया है। उन्होंने असाध्या के पाँच उपभेद किये हैं--१ सभीता, २. गुरुजनसभीता, ३. दूतीवर्जिता, ४. अतिकांता, ५. खलदृष्ट, तथा सुखसाध्या के दस उपभेद किये हैं—१. वृद्धबधू, २. बालबधू, ३. नपुंसकबधू, ४. विधवाबधू, ५ गुर्नाबधू, ६. गुनरिझवती, ७. सेवकबधू, ८. निरंकुश, ९ परतियासक्त पति की स्त्री, १०. अति रोगी की स्त्री। इसके बाद परकीया के अवस्थाभेद से गुप्ता आदि छै भेदों को लिखा गया है। इनमें लक्षिता के तीन उपभेद भी लिखे हैं।

रसलीन ने स्वकीया और परकीया के कामवती, अनुरागिनी और प्रेमासक्ता नामक तीन नये भेद और भी लिखे हैं। उन्होंने सामान्या के भी चार भेद लिखे हैं—१. स्वतंत्रा, २. जननीआधीना, ३. नेमता और ४. प्रेमदुःखिता।

इसके पश्चात् दशा-भेद से गर्विता आदि तीन भेद किये गये हैं। इनमें गर्विता के अंतर्गत प्रेम, रूप और गुण के अनुसार तीन और वक्रोक्ति द्वारा तीन—कुल छै उपभेद किए गये हैं। इसके बाद दसों नायिकाओं का कथन कर उनको मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा, परकीया और सामान्या नायिकाओं में विभाजित किया गया है। सबके अंत में गुणानुसार उत्तमादि तीनों भेदों को लिख कर इस विषय की समाप्ति की है।

रसलीन के नायिकाभेद से ज्ञात होता है कि उन्होंने परकीया और गणिका का विशेष रूप से विस्तार किया है। परकीया नायिका के कितने ही नये भेदों की उद्भावना कर, जहाँ उन्होंने अपनी विस्तारकारिणी प्रतिभा का अद्भुत परिचय दिया है, वहाँ एक अनावश्यक विषय का व्यर्थ विस्तार भी किया है।

ब्रजभाषा–नायिकाभेद में दस प्रकार की नायिकाओं का कथन किसी निश्चित क्रम के अनुसार नहीं किया गया। प्रत्येक कवि ने अपनी रुचि के अनुसार उक्त नायिकाओं का आगे–पीछे उल्लेख किया है। रसलीन ने इन नायिकाओं को जिस क्रम से लिखा है, उससे उनकी क्रमशः विकसित मनोदशा का परिचय मिलता है। ब्रजभाषा साहित्य में इस प्रकार का क्रमबद्ध कथन रसलीन के अतिरिक्त अन्य किसी कवि ने नहीं किया। रसलीन ने भी इस प्रकार के क्रमबद्ध विवेचन का कोई कारण नहीं बतलाया है, किंतु यह भी नहीं माना जा सकता कि उसका अनायास ही कथन हो गया है। वास्तव में रसलीन ने नायिकाओं की विकसित मनोदशा पर दृष्टि रख कर उनका क्रमबद्ध वर्णन किया है, चाहें अपने इस कथन का स्पष्ट कारण उन्होंने नहीं लिखा।

काव्य–सौन्दर्य की दृष्टि से उनके नायिकाभेद-कथन का विशेष महत्व नहीं है, इसलिए उनको इस विषय का सुकवि नहीं कहा जा सकता। उन्होंने नायिकाभेद का कथन आचार्यत्व की दृष्टि से किया है, इसलिए उन्होंने दोहा छंदों द्वारा सीधी–सादी भाषा में अपना मन्तव्य प्रकट कर दिया है। नायिकाओं के लक्षण, उदाहरण और विस्तृत विवेचन के कारण रसलीन को इस विषय का प्रमुख आचार्य कहा जा सकता है।

दास और 'शृंगारनिर्णय'—

दास ब्रजभाषा नायिकाभेद के सुप्रसिद्ध कवि और आचार्य थे। उनका पूरा नाम भिखारीदास था। उन्होंने कई रीति ग्रंथों की रचना की थी। उनके रचित ग्रंथों में 'काव्यनिर्णय' और 'शृंगारनिर्णय' विशेष प्रसिद्ध हैं। इन ग्रंथों से उनका पांडित्य और आचार्यत्व सिद्ध होता है। काव्य-सौन्दर्य की दृष्टि से भी उनकी कविता अच्छी हुई है। रस-रीति और नायिकाभेद पर उनका प्रशंसनीय ग्रंथ 'शृंगारनिर्णय' है। इसकी रचना सं० १८०७ में हुई थी। यह अपने विषय का प्रमुख ग्रंथ है।

दास ने नायिका का प्रथम वर्ग 'आत्मधर्मानुसार' लिखा है और उसके स्वकीया एवं परकीया दो भेद किये हैं। तीसरे भेद सामान्या का दास ने उल्लेख नहीं किया। उन्होंने स्वकीया के पतिव्रता, उढ़ारिज और माधुर्ज—ये तीन उपभेद किये हैं। इनके पश्चात् उन्होंने ज्येष्ठा-कनिष्ठा का कथन किया है। प्रायः सभी आचार्यों ने ज्येष्ठा-कनिष्ठा नायिका का एक ही भेद लिखकर उसका अत्यंत संक्षिप्त वर्णन किया है, किंतु दास ने इसके छै उपभेद लिखकर उनका भी विस्तारपूर्वक कथन किया है। ज्येष्ठा-कनिष्ठा के छै उपभेद ये हैं—१. साधारण ज्येष्ठा, २. दक्षिण की ज्येष्ठा-कनिष्ठा, ३ शठ की ज्येष्ठा, ४. शठ की कनिष्ठा, ५. धृष्ट की ज्येष्ठा और ६. धृष्ट की कनिष्ठा।

उन्होंने परकीया नायिका के सर्वप्रथम प्रगल्भा और धीरा दो भेद किये हैं। इनके बाद उसे अनूढ़ा और ऊढ़ा दो भेदों में विभाजित किया है। इनमें अनूढ़ा के अंतर्गत उद्बुद्धा और उद्बोधिता लिख कर उद्बुद्धा के दो उपभेद अनुरागिनी और प्रेमासक्ता किये है। ऊढ़ा के अंतर्गत पहले असाध्या, दुःखसाध्या और साध्या तीन भेद किये हैं, फिर विदग्धा, लक्षिता, मुदिता और अनुशयना—ये चार भेद किये हैं। उन्होंने पाँचवें भेद गुप्ता को विदग्धा के अंतर्गत रखा है और छटे भेद कुलटा का उल्लेख नहीं किया है। उन्होंने मुदिता और अनुशयना में भी विदग्धत्व स्थापित किया है और परकीया के अतिरिक्त स्वकीया में भी ऊढ़ा-अनूढ़ा का कथन किया है।

उनका दूसरा वर्ग 'अवस्थानुसार' है, जिसके मुग्धा, मध्या और प्रौढ़ा तीन भेद किये गये हैं। इन भेदों को उन्होंने स्वकीया और परकीया दोनों में लिखा है। मुग्धा के दो भेद अज्ञातयौवना और ज्ञातयौवना को भी स्वकीया और परकीया दोनों में लिखा गया है, किंतु नवोढ़ा, विश्रब्धनवोढ़ा और तीसरे नये भेद अविश्रब्धनवोढ़ा में स्वकीया और परकीया का भेद नहीं किया है।

तीसरा वर्ग अष्ट नायिकाओं का है। इन नायिकाओं को उन्होंने संयोग शृंगार और वियोग शृंगार में विभाजित किया है। संयोग शृंगार में पहले स्वाधीनपतिका को लिखा है, जिसके अंतर्गत रूपगर्विता, प्रेमगर्विता और गुनगर्विता का कथन किया है, फिर बासकसज्जा को लिखकर उसी के अंतर्गत आगतपतिका को लिखा है। तीसरी नायिका अभिसारिका है, जिसमें शुक्ला और कृष्णा दो भेद किये गये हैं। उन्होने संयोग शृंगार की तीनों नायिकाओं को स्वकीया और परकीया दोनों में लिखा है। वियोग शृंगार मे उत्कंठिता, खंडिता, कलहांतरिता, विप्रलब्धा और प्रोषितभर्तृका—इन पाँच भेदों को लिखा है। इनमें खंडिता के अंतर्गत धीरादि भेद और मानिनी नायिका का उल्लेख कर मानिनी में,मानभेद का भी कथन कर दिया है। कलहांतरिता के अंतर्गत भी मानभेद का कथन है। विप्रलब्धा के अंतर्गत अन्यसंभोगदुःखिता और प्रोषित-भर्तृका के अंतर्गत प्रवत्स्यत्प्रेयसी, आगच्छत्पतिका एव आगतपतिका का उल्लेख किया गया है।

उन्होंने चौथे वर्ग 'उत्तमादि' के अंतर्गत उत्तमा, मध्यमा और अधमा का उल्लेख कर नायिकाभेद की समाप्ति की है।

दास द्वारा कथित नायिकाभेद के उपर्युक्त विवरण से ज्ञात होगा कि उन्होंने किसी भी आचार्य का अनुकरण न कर अपनी परिपाटी स्वतंत्र रूप से चलाई थी। उन्होने देव और रसलीन की तरह अनेक प्रकार की नवीन नायिकाओं की उद्भावना की है और उनके भेदोपभेद-कथन में बड़ी कारीगरी दिखलाई है। उनके कथन मे स्वतंत्र उद्भावना के साथ मौलिकता की छाप है। इस दृष्टि से ब्रजभाषा नायिकाभेद के कवियों मे दास का स्थान अत्यत महत्वपूर्ण है।

उन्होंने आचार्यत्व की दृष्टि से भी नायिकाभेद का महत्वपूण कथन किया है और पूर्व आचार्यों से कई बातों मे भिन्न मत रखते हुए उन्होंने अपना स्वतंत्र मत प्रकट किया है। यदि ब्रजभाषा-साहित्य मे संस्कृत-साहित्य की तरह शास्त्रार्थ और खंडन-मंडन की प्रणाली प्रचलित होती, तो दास को अपने मत की पुष्टि के लिए अन्य आचार्यों के मतों का का खंडन करना पड़ता। उस समय उनके रचना-कौशल का महत्व और भी बढ़ जाता। इस प्रणाली के अभाव मे उन्होंने अपना विशिष्ट मत तो प्रकट कर दिया, किंतु उन्होंने ऐसा क्यों किया और किन कारणों से उनका मत पूर्वाचार्यों से भिन्न है, यह जानने का कोई साधन नहीं है।

नायिकाभेद का इतना विस्तार करने पर भी दास ने सामान्या और कुलटा नायिकाओं का कथन नहीं किया है। इन नायिकाओं को भक्त कवि एवं केशवदास के अतिरिक्त प्रायः सभी बड़े आचार्यों ने लिखा है और रसलीन ने तो सामान्या के भी उपभेदों का उल्लेख किया है, जो उनके अतिरिक्त कदाचित किसी भी प्रमुख आचार्य ने नहीं किया। दास के नायिकाभेद-कथन से ज्ञात होता है कि वे इस विषय में शुद्धादर्श स्थापित करने के पक्षपाती थे।

रीति-काल के अंतिम वर्ष—

ब्रजभाषा काव्य के समस्त अंगों की उन्नति के लिए वैसे तो रीति-काल (सं० १७०० से १९०० तक) के पूरे दो सौ वर्ष ही महत्वपूर्ण हैं, किंतु पूर्वोल्लेखित पचास वर्ष (सं० १७७५ से सं० १८२५ तक) में उनकी अभूतपूर्व उन्नति हुई थी। इस काल में रीति विषयक कविता करने वाले कवियों और साहित्य-शास्त्र का विवेचन करने वाले आचार्यों की बाढ़ सी आ गई थी। रीति संबंधी विषयों का जैसा उत्कृष्ट, विशद और कवित्वपूर्ण विवेचन इस काल में हुआ था, वैसा फिर न हो सका। सं० १८२५ के पश्चात् आचार्यों की बाढ़ कुछ रुकी सी जाती है और महाकवि भी संख्या में कम दिखलाई देते हैं। वैसे कवि-कर्म करने वाले व्यक्तियों की संख्या में कमी दिखलाई नहीं देती, किंतु काव्योत्कर्ष के विचार से बहुत थोड़े ही सुकवि कहे जा सकते हैं।

ऐसा ज्ञात होता है कि उस समय तक कविता-कामिनी का जितना शृंगार हो चुका था, वह इतना अधिक था कि उससे अधिक कर सकने की क्षमता कवियों में रही ही नहीं। वास्तव में बात भी कुछ ऐसी ही थी। उस समय तक इन विषयों पर जितना लिखा जा चुका था, वह यथेष्ट था। उससे अधिक एवं अच्छा लिखना संभव भी नहीं था, इसलिए कवियों को अपनी काव्य-प्रतिभा का उपयोग अन्य विषयों के विवेचन में भी करना उचित था। किंतु उनमें से अधिकांश भले-बुरे ढंग से उन्हीं पुराने विषयों का पिष्ट-पेषण मात्र करते रहे।

इस प्रकार के कवियों ने साहित्य के अन्य अंगों पर उत्कृष्ट रचनाएँ नहीं कीं, किंतु उन्होंने नायिकाभेद पर फिर भी अच्छी रचनाएँ की हैं। उन कवियों में से कतिपय प्रमुख व्यक्तियों का यहाँ पर उल्लेख किया जाता है।

नायिकाभेद के कतिपय प्रमुख कवि—

पद्माकर—रीति-काल के प्रमुख कवियों में गिने जाते हैं। प्रसिद्धि के विचार से कविवर बिहारीलाल के अतिरिक्त इस काल का कोई कवि उनकी समता नहीं कर सका। नायिकाभेद की दृष्टि से भी मतिराम के पश्चात् उन्हीं की रचना सर्वप्रिय हो सकी है। उनके काव्य में भाषा और भाव दोनों का उत्कर्ष दिखलाई देता है। उन्होंने सरस कवित्व और कमनीय कल्पना के साथ भाषा के उपरी ढाँचे को भी आकर्षक बनाने की चेष्टा की है। उनका काव्य-कौशल उनकी सानुप्रास रचना में दिखलाई देता है।

उन्होंने कई ग्रंथों की रचना की थी। उनका सबसे प्रसिद्ध ग्रंथ 'जनद्विनोद' है। इसकी रचना सं० १८६७ में हुई थी। नायिकाभेद के ग्रंथों में यह भी मतिराम के रसराज की तरह प्रसिद्ध है। पद्माकर के नायिकाभेद का क्रम भी मतिराम के क्रम जैसा ही है। अंतर केवल इतना है कि मतिराम ने प्रौढ़ा नायिका का कोई भेद नहीं लिखा, जब कि इन्होंने उसके रतिप्रीता और आनंदसंमोहिता नामक दो भेद लिखे हैं। प्रौढ़ा के इन दोनों भेदों का कथन प्रायः सभी कवियों ने किया है।

बेनीप्रवीन—ब्रजभाषा नायिकाभेद के प्रसिद्ध कवि हुए हैं। उन्होंने कई रीति-ग्रंथों की रचना की थी। उनका सबसे प्रसिद्ध ग्रंथ 'नवरस-तरंग' है। इसकी रचना सं० १८७८ में हुई थी। इस ग्रंथ में नायिकाभेद का बड़ा मनोहर कथन हुआ है।

नवरस-तरंग नाम से ऐसा समझा जा सकता है कि उसमें नव रसों का विस्तृत वर्णन होगा, किंतु ग्रंथ के अधिकांश भाग में शृंगार रस और उसके अंतर्गत नायिकाभेद का कथन हुआ है। ग्रंथ के अंत में शेष रसों का संक्षिप्त रूप से उल्लेख मात्र कर दिया गया है। इस प्रकार उन्होंने भी मतिराम-पद्माकर के रस-कथन की शैली को अपनाया है।

नवरस-तरंग एक प्रकार से नायिकाभेद का ही ग्रंथ है। इस ग्रंथ में नायिकाओं के लक्षण अधिकतर बरवा जैसे छोटे छंद में ही दिये गये हैं, जिसके कारण विद्यार्थियों उन्हें कंठस्थ करने में सुविधा हो सकती है। इनके नायिकाभेद का क्रम भी मतिराम-पद्माकर के क्रम से मिलता हुआ है। इस प्रकार नवरस-तरंग ब्रजभाषा नायिकाभेद की एक प्रमुख रचना है, और उसके रचयिता बेनीप्रवीन इस विषय के प्रमुख कवि हैं।

प्रतापसाहि—रीति-काल के अंत में परम यशस्वी रीति-कवि और आचार्य हो गये हैं। वे चरखारी के महाराज विक्रमशाह के दरबारी कवि थे। उन्होंने कई-रीति ग्रंथों की रचना की थी। उनके रचे हुए ग्रंथों में 'व्यंग्यार्थ-कौमुदी' और 'काव्यविलास' विशेष प्रसिद्ध हैं। इन ग्रंथों की रचना-क्रमशः सं० १८८२ और सं० १८८६ में हुई थी। इन ग्रंथों की रचना द्वारा प्रतापसाहि के अपार पांडित्य और उनके रचना-कौशल का परिचय मिलता है।

उन्होंने 'व्यंग्यार्थ कौमुदी' मे व्यग्य काव्य द्वारा समस्त नायिकाभेद का कथन किया है। इसके छंदों पर उन्होंने स्वयं टीका भी लिखी है, जिससे उनकी भाव-व्यंजना को समझने में सुविधा होती है। उनकी सराहनीय सहृदयता और काव्य-कौशल के कारण जहाँ वे उत्कृष्ट कवि कहे जा सकते हैं, वहाँ उनके प्रकांड साहित्यिक ज्ञान और विवेचनात्मक प्रतिभा के कारण उनको उच्च श्रेणी का आचार्य भी कहना चाहिए।

ग्वाल—रस-रीति के उत्तम कवि हुए हैं। उनकी कविता ब्रज के काव्य-प्रेमियों में बड़ी प्रसिद्ध है। वे परम प्रतिभाशाली और अलौकिक शक्ति-सम्पन्न कवि थे। उन्होंने कितने ही ग्रंथो की रचना की थी। इन ग्रंथों से उनका साहित्यिक महत्व प्रकट होता है।

उनके रचे हुए ग्रंथों में 'रसरंग' बडी उत्कृष्ट रचना है। इसे उन्होंने अपनी प्रौढावस्था में सं० १९०४ में लिखा था। यह रस-रीति की प्रशंसनीय रचना है। यद्यपि इसमे भावभेद और रसभेद का विस्तृत वर्णन किया गया है, तथापि इसमें नायिकाभेद का प्राधान्य है। इस ग्रंथ से ग्वाल कवि का शास्त्रीय ज्ञान और अपूर्व पांडित्य ज्ञात होता है। ग्वाल ने अपनी बहुत सी कविताएँ पद्माकर की शैली के अनुकरण में लिखी हैं। पद्माकर की तरह उन्होंने भी अनुप्रासों का प्रचुरता से प्रयोग किया है। ग्वाल अपने समय मे प्रसिद्ध कवि और आचार्य समझे जाते थे।

द्विजदेव—अयोध्या नरेश महाराज मानसिंह उपनाम 'द्विजदेव' उत्तम शृंगारी कवि और कवियों के आश्रयदाता थे। उनकी 'शृंगार बत्तीसी' और 'शृंगार-लतिका' उत्तम पुस्तकें हैं। शृंगार-लतिका में नायिकाभेद के उत्कृष्ट छंद लिखे गये हैं। इन छंदो से उनकी सहृदयता और कवित्व-शक्ति प्रकट होती है। इनका कविता-काल सं० १९०० से १९२० के लगभग है।

नवीन—गोपालराय उपनाम 'नवीन' अच्छे कवि और काव्य-मर्मज्ञ थे। उनके रचे हुए ग्रंथों में 'रस-तरंग' विशेष प्रसिद्ध है। इसकी रचना सं० १८६६ में हुई थी। इन काव्य-ग्रंथों के अतिरिक्त उन्होंने 'प्रबोध-सुधा-सागर' नामक एक विशाल संग्रह-ग्रंथ की भी रचना की थी। इस ग्रंथ में रीति-काल के अनेक कवियों की उत्कृष्ट कविताओं का संकलन किया गया है। नायिकाभेद पर उन्होंने सुंदर छंदों की रचना भी की है।

सेवक—नायिकाभेद के सुकवि हो गये है। उनका 'वाग्विलास' इस विषय का उत्तम ग्रंथ है। इसमें नायिकाभेद के साथ नायकभेद भी विस्तार पूर्वक लिखा गया है। इस ग्रंथ की रचना स० १६०० वि० के लगभग हुई थी।

सरदार—पुरानी परिपाटी के सुकवि और काव्य-मर्मज्ञ थे। उनका कविता-काल सं० १६०२-४० है। उन्होंने 'साहित्य-सरसी', 'व्यंग्य-विलास' और 'साहित्य-सुधाकर' आदि कई ग्रंथों की रचना की थी। उन्होंने केशव और बिहारी के काव्यों पर तथा सूरदास के दृष्टिकूटों पर मार्मिक टीकाएँ लिखी हैं और 'शृंगार-संग्रह' में ब्रजभाषा के अनेक दुर्लभ छंदों का संकलन किया है। उनका 'साहित्यसुधाकर' प्रसिद्ध रीति-ग्रंथ है। उनके नायिकाभेद विषयक छंद भी सुंदर बने है।

लछिराम—रसरीति के सुंदर कवि और काव्यशास्त्र के ज्ञाता थे। उन्होंने कई ग्रथों की रचना की है। नायिकाभेद पर उनका 'महेश्वरविलास' ग्रंथ है, जिसमें इस विषय के उत्तम छंद लिखे गये है।

नंदराम—नायिकाभेद के सुकवि थे। उन्होंने सं० १६२६ वि० में भाव-भेद और रस-भेद पर 'शृंगारदर्पण' नामक ग्रंथ की रचना की थी। उनकी शैली वही मतिराम-पद्माकर की है और क्रम भी उन्ही के जैसा है, अंतर केवल इतना है कि उन्होंने मध्या और प्रौढ़ा दोनों के चार-चार भेद किये हैं।

'द्विज'—मन्नालाल त्रिवेदी उपनाम 'द्विज' ने सं० १६४२ वि० के लगभग 'साहित्यसिधु' की रचना की थी। इसके अतिरिक्त उनके रचित ग्रंथ 'शृंगार-सुधाकर', 'सुंदरी-सर्वस्व' और 'शृंगार-सरोज' भी हैं। वे नायिकाभेद के उत्तम कवि थे।

प्रतापनारायण सिंह—उपनाम 'दद्दुआ साहब' अयोध्या के राजा थे। वे अयोध्या नरेश 'द्विजदेव' जी के दौहित्र और उनके उत्तराधिकारी थे। वे स्वयं कवि नहीं थे, किंतु उच्च श्रेणी के काव्य-मर्मज्ञ और कवियों के

आश्रयदाता थे। उन्होंने द्विजदेव कृत शृंगारलतिका पर सौरभी टीका लिखी थी, जिसके कारण द्विजदेव जी के भावों का पूर्णतया स्पष्टीकरण हो सका है। इस 'शृंगारलतिकासौरभ' के अतिरिक्त उन्होंने सं० १९२१ में 'रसकुसुमाकर' नामक प्रसिद्ध ग्रंथ की रचना की थी। इस ग्रंथ में नायिकाभेद का अच्छा वर्णन हुआ है।

जगन्नाथप्रसाद 'भानु'—काव्यशास्त्र के मर्मज्ञ और कई रीति-ग्रंथों रचयिता थे। 'काव्यप्रभाकर' उनका विशाल संग्रह ग्रंथ है। इसकी 'द्वादश मयूखों' मे काव्यशास्त्र के समस्त अगों का वर्णन और तत्संबंधी दुर्लभ छंदों का संकलन किया गया है। इस ग्रथ की तृतीय मयूख में नायिकाभेद का विस्तार पूर्वक वर्णन हुआ है। नायिकाभेद पर इनकी अन्य पुस्तक 'नायिकाभेद-शंकावली' भी है।

विहारीलाल भट्ट—पुरानी शैली के आधुनिक कवि हैं। इन्होंने सं० १९८८ वि० में व्रजभाषा कविता में 'साहित्य-सागर' नामक विशाल ग्रंथ की रचना की थी। इस ग्रंथ मे दशांग कविता के अतिरिक्त नायिकाभेद का भी विशद वर्णन किया है। इन्होंने नायिकाभेद संबंधी अपना विशिष्ट मत स्थापित करने की चेष्टा की है।

इन्होंने ज्येष्ठा-कनिष्ठा को प्रौढ़ा का ही भेद माना है और उसी के अंतर्गत धीरादिभेद का कथन किया है। इसका यह अभिप्राय है कि जब नायक ज्येष्ठा के पास होकर कनिष्ठा के पास जाता है तभी धीरादिभेद की सृष्टि होती है। इन्होंने नायिका के स्वाधीनपतिकादि भेद भरतमुनि के अनुसार ८ ही लिखे हैं। व्रजभाषा-आचार्यों ने इनके अतिरिक्त ५ भेद और माने हैं; जिनमें गर्विता, अन्यसंभोगदुःखिता और मानवती—इन तीनो को पृथक कहा गया है और शेष दो प्रवत्स्यत्प्रेयसी और आगतपतिका को आठ नायिकाओं में सम्मिलित कर यह संख्या १० मानी गई है, किंतु इन्होंने इन पाँचों को भी उन्हीं आठों के अंतर्गत लिख कर और कुल नायिकाएँ १३ मान कर भी मुख्य संख्या ८ ही रखी है। जैसे गर्विता को स्वाधीनपतिका के अंतर्गत, अन्यसंभोगदुःखिता और मानिनी को खंडिता के अंतर्गत तथा प्रवत्स्यत्प्रेयसी और आगतपतिका को प्रोषितपतिका के अंतर्गत लिखा है। यह क्रम कुछ नवीनता लिए हुए है। ८ प्रकार की नायिकाओं को भी एक क्रम से रखा गया है। इसके विषय में कहा गया है कि यह क्रम इनका आविष्कृत है, किंतु ऐसा ही क्रम पहले रसलीन द्वारा रसप्रबोध में लिखा जा चुका है।

हरिऔध—कविसम्राट पं० अयोध्यासिंह जी उपाध्याय 'हरिऔध' कृत 'रसकलस' प्राचीन परिपाटी और आधुनिक शैली पर लिखी हुई ब्रजभाषा काव्य-रीति की सबसे प्रमुख पुस्तक है, जो स० १९८८ वि० में प्रकाशित हुई है। जहाँ 'प्रियप्रवास' लिख कर हरिऔध जी खड़ी बोली के महाकवि माने गये है, वहाँ 'रसकलस' के कारण आप ब्रजभाषा के भी महाकवि और आचार्य माने जाते हैं। हिंदी भाषा के दोनों रूपों की कविता में इतना सिद्धहस्त होना आपका ही काम था।

रसकलस में ब्रजभाषा कविता द्वारा रस विषय का पूर्ण और सांगोपांग कथन हुआ है। शृंगार-रस के अंतर्गत नायिका-नायकभेद भी विस्तार पूर्वक लिखा गया है। नायिकाभेद के आरंभ में जाति अनुसार पद्मिनी आदि चार नायिकाओं का कथन कर प्रकृति अनुसार उत्तमा, मध्यमा और अधमा नायिकाएँ लिखी गई हैं। इनमें उत्तमा के आठ—१. पतिप्रेमिका, २. परिवारप्रेमिका, ३. जातिप्रेमिका, ४. देशप्रेमिका; ५. जन्मभूमिप्रेमिका, ६. निजतानुरागिनी, ७. लोकप्रेमिका, ८. धर्मप्रेमिका और मध्यमा के दो—१. व्यंगविदग्धा, २. मर्मपीड़िता—ये नवीन भेद लिखे गये हैं। ये भेद इस युग के सर्वथा अनुकूल हैं, किंतु शृंगार-रस के आलंबन स्वरूप 'नायिका' में इन भेदों का होना कहाँ तक उचित है, यह विचारणीय है। इसके अनतर तीसरे धर्मानुसार वर्ग में स्वकीया, परकीया और सामान्या का उल्लेख है। स्वकीया के अंतर्गत मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा और मध्या-प्रौढ़ा के धीरादि-भेद लिख कर यहीं पर स्वभावानुसार अन्यसुरतिदुःखिता, वक्रोक्तिगर्विता और मानवती नायिकाओं का भी कथन कर दिया है। इसके अनंतर ज्येष्ठा-कनिष्ठा लिख कर स्वकीया के वर्णन को समाप्त किया गया है। इसके उपरांत परकीया के ऊढ़ादि दो और गुप्तादि छै भेदो का कथन कर सामान्या को लिखा है। अंत में प्रोषितपतिकादि दस नायकाएँ और उनके मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा और परकीया—ये ४-४ उपभेद लिख कर नायिकाभेद-कथन की समाप्ति की है।

इस विवरण से स्पष्ट है कि उत्तमा के अंतर्गत आधुनिक नायिकाओं को लिख कर और दस प्रकार की नायिकाओं में सामान्या का उल्लेख न कर हरिऔधजी ने इस युग के अनुकूल कथन किया है। इसके अतिरिक्त उनकी कथित नायिकाएँ प्राचीन शैली की हैं। रसकलस में पहले प्रत्येक विषय गद्य द्वारा समझाया गया है और बाद में उदाहरण स्वरूप हरिऔध जी कृत ब्रजभाषा कविता के सुंदर छंद दिये गये हैं। ये छंद काव्य-सौन्दर्य में ब्रजभाषा

के बड़े से बड़े कवि की तुलना में रखे जा सकते हैं। इस ग्रंथ के आरंभ की विशद भूमिका से लेखक का अपार साहित्यिक ज्ञान, गंभीर अध्ययन और पांडित्यपूर्ण विवेचन पूर्णतया प्रकट है। इस प्रशंसनीय पुस्तक द्वारा हरिऔध जी व्रजभाषा के प्राचीन और नवीन रीति–कवियों में अत्यंत उच्च स्थान के अधिकारी हैं।

आधुनिक गद्य ग्रंथों में नायिकाभेद –

प्राचीन काल के कवियों ने साहित्य के सभी अंगों का कवितावद्ध वर्णन किया था। इसी परिपाटी के अनुसार नायिकाभेद का भी कविता मे कथन किया गया। वह युग ही कविता का था, इसलिए सभी प्रकार के विषय—ज्योतिष, वैद्यक तक कविता मे लिखे गये थे। ऐसी दशा मे नायिकाभेद, जो काव्य का ही एक अंग है, अब तक कविता मे लिखा जाता रहा, तो इसमे कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

युग-परिवर्तन के साथ जब गद्य का प्रचार हुआ, तब सभी विषयों को गद्य मे लिखा जाने लगा। कविता-काल मे भी विषय के स्पष्टीकरण के लिए भाष्य और टीकाओं के रूप में गद्य का उपयोग किया जाता था, किंतु उस काल का गद्य शिथिल और अस्पष्ट होने के कारण वास्तविक उद्देश्य की सिद्धि करने में असमर्थ था। गद्य-काल मे यह बात नहीं रही। गद्य की उन्नति के कारण सभी विषयों को स्पष्ट रूप और सरल रीति से लिखा जाने लगा।

इस युग में नायिकाभेद के स्पष्टीकरण के लिए भी गद्य के उपयोग की आवश्यकता हुई। इसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए अयोध्यानरेश महाराजा प्रतापनारायणसिंह 'ददुआ साहब' ने "रसकुसुमाकर" और श्री जगन्नाथप्रसाद 'भानु' ने "काव्यप्रभाकर" ग्रंथों की रचना की थी। इन ग्रंथों में लक्षण संक्षिप्त-रूप से गद्य में दिये गये हैं और उनके अधिकांश भाग में तत्संबंधी कविताओं का संग्रह दिया गया है।

आधुनिक काल के गद्यात्मक रस-ग्रंथों में रस-प्रकरण की अन्य बातों के साथ नायिकाभेद का भी थोड़ा–बहुत उल्लेख किया गया है। इस प्रकार के ग्रंथों में श्री बाबूराम बित्थरिया कृत 'हिंदी काव्य में नवरस', सेठ कन्हैयालाल पोद्दार कृत 'रसमंजरी', श्री गुलाबराय कृत 'नवरस' और श्री हरिशंकर शर्मा कृत 'रस-रत्नाकर' मुख्य हैं। श्री बाबूराम बित्थरिया कृत 'हिंदी काव्य मे नवरस' इस विषय की प्रथम पुस्तक होने के कारण विशेष महत्वपूर्ण नहीं है। इसके रस-सामग्री नामक परिच्छेद में आलंबन विभाग के अंतर्गत

नायिकाभेद का अत्यंत संक्षिप्त रूप से उल्लेख मात्र कर दिया गया है। सेठ कन्हैयालाल पोद्दार कृत 'रसमंजरी' अपने विषय की सर्वश्रेष्ठ रचना है। इसमें रस–प्रकरण का बड़ा पांडित्यपूर्ण विवेचन किया गया है। इस विषय की अन्य बातों का विशद विवेचन होने के कारण इसमें शृंगार रस के अंतर्गत नायिकाभेद का संक्षिप्त वर्णन ही किया जा सका है। श्री गुलाबराय कृत 'नवरस' और श्री हरिशंकर शर्मा कृत 'रस-रत्नाकर' में रस-भेद की अन्य बातों के साथ नायिकाभेद का भी अपेक्षाकृत अधिक वर्णन किया गया है।

गद्य साहित्य में नायिकाभेद का विस्तृत विवेचन सर्वप्रथम श्री गुलाबराय द्वारा 'नवरस' में हुआ है। इसके पश्चात श्री हरिशंकर शर्मा कृत 'रस-रत्नाकर' में भी इस विषय का विस्तार पूर्वक विवेचन किया गया है। इन दोनों रस-ग्रंथों में अन्य विषयों के साथ नायिकाभेद पर इससे अधिक लिखा जाना संभव भी नहीं था। इन रस ग्रंथों द्वारा रस-प्रकरण के प्रमुख अंग के रूप से नायिका-भेदोक्त विवेचन का सूत्रपात तो हो गया है, किंतु उसका यथार्थ और विस्तृत वर्णन इस विषय के स्वतंत्र ग्रंथों में ही हो सकता है।

नायिकाओं की संख्या-वृद्धि का आग्रह—

नायिकाभेद के आरंभिक आचार्य कृपाराम और केशवदास ने नायिकाओं की संख्या का अधिक विस्तार नहीं किया था। कृपाराम ने संस्कृत नायिका-भेद के प्रमुख कवि भानुदत्त के आधार पर ब्रजभाषा-नायिकाभेद का सर्वांगपूर्ण कथन किया था। उन्होंने जितनी नायिकाओं का उल्लेख किया है, वे इस विषय के वर्णन के लिए पर्याप्त थीं; यद्यपि मतिराम और पद्माकर ने मध्या और सामान्या का और भी संक्षिप्त कथन कर इस विषय को सरल और सुगम बना दिया था। केशवदास द्वारा मुग्धा, मध्या और प्रौढ़ा में प्रत्येक के चार-चार उपभेद करने से नायिकाओं की कुछ संख्या बढ़ा दी गई थी, किंतु परकीया के केवल छै भेद लिखने और सामान्या का उल्लेख न करने से प्रस्तार करने पर भी संख्या अधिक नहीं होती थी। इन आचार्यों के पश्चात् नायिका-भेद के सर्वमान्य आचार्य मतिराम ने संख्या-वृद्धि का आग्रह न कर मुख्य नायिकाओं का ही उल्लेख किया है। केशवदास से अधिक परकीया और सामान्या का कथन करने पर भी उनके द्वारा वर्णित नायिकाओं की संख्या और केशवदास की संख्या में अधिक अंतर नहीं है।

जिन आचार्यों ने नायिकाओं की संख्या–वृद्धि करने की रुचि प्रकट की है, उनमें देव, रसलीन और दास प्रमुख हैं। महाकवि देव ने सर्वप्रथम नायिकाओं की संख्या का विस्तार किया था। उनका विस्तार देश, सत्व, प्रकृति और जाति के अनुसार है; मुख्य नायिकाओं के भेदों के अंतर्भेद मान कर नहीं। रसलीन और दास ने मुख्य भेदों के अनेक अंतर्भेद कर दिये हैं। रसलीन ने परकीया और सामान्या के उपभेदों की विशेष रूप से वृद्धि की है, किंतु दास ने उपभेदों का विस्तार करते हुए भी सामान्या और कुलटा नायिकाओं का कथन नहीं किया है। इन तीनों कवियों ने संख्या–वृद्धि के आग्रह से नायिकाभेद को अत्यंत जटिल और दुर्बोध बना डाला है।

देव की सूझ के अनुसार देवल, रावल, राजनागरी, पुरवासिन, ग्रामीणा, बनवासिन सेन्या और पथिक–तिय आदि अनेक प्रकार की अद्भुत नायिकाएँ और उनके देवी, पूजनहारी, द्वारपालिका, जौहरिन, छीपिन, तेलिन, तमोलिन, धोविन, नायन, यहाँ तक कि चूहरी (भंगिन ?) तक पचासों उपभेदों का प्रचार हो जाता तो नायिकाभेद एक खासा चिड़िया–घर बन जाता ! रसलीन के मतानुसार परकीया के अंतर्गत ऊढ़ा नायिका के असाध्या और सुखसाध्या तथा अन्य भेद सभीता, गुरुजनसभीता, दूतीवर्जिता, अतिक्रांता, खलपृष्ठ एवं वृद्धवधू, बालवधू, नपुंसकवधू, विधवावधू, गुनीवधू, सेवकवधू, तथा लक्षिता के हेतुलक्षिता, सुरतिलक्षिता, प्रकाशलक्षिता एवं कुलटा के मूढ़पतिदुःखिता, बालपतिदुःखिता, वृद्धपतिदुःखिता आदि, यहाँ तक कि सामान्या के भी स्वतंत्रा, जननीआधीना, नेमता, प्रेमःदुखिता जैसे उपभेदों के कारण नायिकाभेद एक अजीब गोरखधंधा बन गया है ! दास ने न तो देव की तरह अद्भुत भेदों का आविष्कार किया और न रसलीन की तरह कुलटा और सामान्या जैसी आचारहीन नायिकाओं का व्यर्थ विस्तार किया; फिर भी उन्होंने ज्येष्ठा–कनिष्ठा नायिकाओं में दक्षिण, शठ और धृष्ठ नायकों की ज्येष्ठा और कनिष्ठाएँ; परकीया में प्रगल्भा और धीरा; अनूढ़ा में उद्बुद्धा, अनुरागिनी, प्रेमासक्ता; ऊढ़ा में साध्या, असाध्या, दुःखसाध्या और सुखसाध्या; लक्षिता में सुरतिलक्षिता, हेतुलक्षिता तथा धीरा और मुदिता में विदग्धा आदि अनेक उपभेदों के विस्तार से नायिकाभेद के किसी विशेष हित का संपादन नहीं किया है।

देव, रसलीन और दास के अतिरिक्त जिन कवियों ने नायिकाओं की संख्या–वृद्धि का प्रयास किया है, उनके द्वारा वर्णित नायिकाओं का प्रस्तार

करने पर यह संख्या हज़ारों पर पहुँचती है ! यह ग़नीमत हुई कि नायिकाओं की संख्या—वृद्धि करने की प्रवृत्ति ने विशेष बल नहीं पकड़ा, वरना उपर्युक्त अद्भुत और नवीन नायिकाओं के जंजाल में पड़ कर कविता-कामिनी की घोर दुर्दशा हो जाती !

नायिकाभेद काव्यशास्त्र के अंतर्गत एक मनोवैज्ञानिक विवेचन है। कुछ थोड़ी सी नायिकाओं का उल्लेख नारी—मन के विकारों का अध्ययन करने के लिए आवश्यक है, जिससे 'दृश्य' और 'श्रव्य' काव्यों में पात्रों के चरित्र—चित्रण संबंधी कोई अस्वाभाविक बात न कहदी जावे। इसी लिए साहित्य में नायिकाभेद कथन की आवश्यकता भी प्रतीत हुई, किंतु ब्रजभाषा—साहित्य के अनेक कवि नायिकाभेदोत्पत्ति के इस मूल तत्व को भूल कर उनकी संख्या-वृद्धि के बखेड़े में ही पड़े रहे !

वर्तमान काल के आलोचक नायिकाभेद के कथन की तो कुछ आवश्यकता समझते हैं, किंतु उसके इस विस्तार को व्यर्थ और अनावश्यक मानते हैं। वास्तव में देखा जाय तो नायिकाभेद के ये कविगण संख्या—वृद्धि के प्रपंच में पड़ कर अपने वास्तविक उद्देश्य से भटक गये थे†।

———

† "नायिकाभेद का यह विवेचन नाट्यशास्त्र और विशेषतः अभिनय की वस्तु थी, उसकी बहुत मोटी बातें काव्य में ग्रहण करने की थीं। केवल अवस्था, स्वभाव और श्रेणी के अनुसार उनके स्वरूप का संकेत मात्र कर देने की आवश्यकता थी और वह इसलिए कि प्रबंध काव्यों में अथवा काव्य—ग्रंथों में पात्रों का स्वरूप—चित्रण करने में कोई बे ठिकाने की बात न कह दी जाय, इसलिए नहीं कि उन्हीं विभेदों के केवल लक्ष्य प्रस्तुत करके काव्य के वास्तविक उद्देश्य से बाहर भटका जाय। काव्य का वास्तविक उद्देश्य रस-संचार है, यह नहीं कि लोग केवल रस के आलंबन अथवा विभाव पक्ष का निरूपण या वर्णन करते रह जाँय, भाव पक्ष पर उनकी दृष्टि ही न हो।"

—"पद्माकर पंचामृत"

आठवाँ परिच्छेद

नायिकाभेद का सिंहावलोकन

★

कामशास्त्र और तंत्रों का प्रभाव—

ब्रजभाषा—नायिकाभेद की पृष्ठभूमि और उसके विकास के संबंध में गत पृष्ठों में बहुत-कुछ लिखा जा चुका है। अब नायिकाभेद की प्रमुख नायिकाओं का सिंहावलोकन करते हुए उनके स्वरूप पर विचार किया जाता है। नायक-नायिकाओं के विभिन्न आचार-व्यवहार, रहन-सहन और आमोद-प्रमोद पर गंभीरता पूर्वक विचार करने से यह ज्ञात होता है कि उन पर केवल नाट्यशास्त्र अथवा काव्यशास्त्र का ही प्रभाव नहीं है, बल्कि कामशास्त्र और तंत्रों का भी यथेष्ट प्रभाव है।

भारतवर्ष के प्राचीन ऋषि-मुनियों ने केवल पारलौकिक चिंता में ही अपनी प्रखर प्रतिभा का उपयोग नहीं किया था, बल्कि उन्होंने लौकिक जीवन को सुखी और संतुष्ट बनाने के साधनों पर भी गंभीरता पूर्वक विचार किया था। इस प्रकार की लौकिक चिंता उन कामसूत्रों में व्यक्त की गई थी, जो विक्रम संवत् से भी पहले परोपकारी ऋषि-मुनियों द्वारा प्रस्तुत किये गये थे। महामुनि वात्सायन ने उन कामसूत्रों के संकलन द्वारा सुप्रसिद्ध कामशास्त्र की नींव डाली। इस महत्वपूर्ण शास्त्र ने भारतीय गृहस्थ के लोक-जीवन को बहुत-कुछ प्रभावित किया है।

कामशास्त्रोक्त ग्रंथों में स्त्री-पुरुष के आहार-विहार और केलि-क्रीडा का ही कथन नहीं है, बल्कि उनमें दाम्पत्तिक और गार्हस्थिक जीवन को सुखी, समृद्ध एवं संतुष्ट बनाने के समस्त साधनों की व्याख्या की गई है। उन ग्रंथों में जहाँ स्त्री-पुरुष के मधुर जीवन की व्याख्या की गई है, वहाँ उन साधनों को भी बतलाया गया है, जिनके कारण जीवन में माधुर्य का संचार होता है। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए उनमें गृहस्थ के दैनिक जीवन की अनेक बातों पर विस्तार पूर्वक विचार किया गया है। घर की बनावट और सजावट किस प्रकार की हो; बाग-बगीचा, खिड़की-दरवाज़े किस प्रकार के और कहाँ बनवाये जाँय, उत्सव-भ्रमण आदि किस समय और किस प्रकार से किये जाँय, इन सब बातों पर भी उनमें विचार किया गया है।

नायिकाभेद के ग्रंथों में नायक-नायिकाओं के दैनिक रहन-सहन और आचार-व्यवहार की मर्यादा कामशास्त्रीय ग्रंथों के आधार पर ही बाँधी गई है। वात्सायन के अनंतर कामशास्त्र के ग्रंथों में अन्य आवश्यक बातों के अतिरिक्त शुद्ध 'काम' से संबंधित विषयों का अधिक उल्लेख होने लगा। तब 'अनंगरंग' और 'पंचसायक' जैसे ग्रंथों के कारण नायिकाभेद मे भी भोग-विलास की बातों पर अधिक ध्यान दिया जाने लगा।

यहीं पर भारत की प्राचीन तांत्रिक उपासना-पद्धति पर भी विचार कर लेना चाहिए। तंत्रों में देवता और उसकी शक्ति के स्वरूप, गुण, कर्म आदि के चिंतन पूर्वक उनकी उपासना करने की विधि बतलाई गई है। तंत्र की पूजा में पंचम कार—मत्स्य, मांस, मीन, मुद्रा और मैथुन-का विधान है। आरंभ में इन उपादानों का आध्यात्मिक अर्थ किया जाता था, किंतु कालांतर मे वे भौतिक अर्थ में प्रयुक्त होने के कारण भ्रष्टाचार मे सहायक होने लगे। तंत्रों की आध्यात्मिक साधना मे जो स्त्री पूज्य भाव से ग्रहण की जाती थी, वही तांत्रिक साधना के ही कारण भोग-विलास की वस्तु बन गई!

स्त्री-जीवन की विविध झाँकियाँ—

इस प्रकार कामशास्त्र और तंत्रों के विकृत प्रभाव ने स्त्री को काम-वासना और भोग-विलास का साधन बना दिया। नायिकाभेद के ग्रंथों में इस विकृत प्रभाव के कारण स्त्री का यही रूप स्वीकार किया गया है, किंतु उनमें गृहस्थ-जीवन की उन समस्याओं को भी सुलझाया गया है, जो स्त्री को दूसरे रूप में भी चित्रित करती हैं। इसलिए स्त्री-जीवन की नाना प्रकार की झाँकियों के लिए नायिकाभेद की विविध नायिकाओं का दिग्दर्शन कराना आवश्यक है। ब्रजभाषा कवियों ने इन नायिकाओं का ऐसा कवित्वपूर्ण कथन किया है, जिसके कारण लौकिक उपयोगिता से भी अधिक उनका साहित्यिक महत्व हो गया है।

वैष्णव संप्रदायों के कई कवियों ने नायिकाभेद की रचनाओं द्वारा अपनी मधुर भक्ति को भी अभिव्यक्त किया है। ब्रजभाषा नायिकाभेद के साहित्य मे वैष्णव कवियों की नायिकाएँ अपना पृथक् स्थान रखती है। इस प्रकार ब्रजभाषा साहित्य के नायिकाभेद का कई दृष्टियों से महत्व है, जिसका यथार्थ ज्ञान इसके सिंहावलोकन मात्र से हो सकता है।

नायिका की परिभाषा और उसका वर्गीकरण—

नायिकाभेद के आचार्यों ने नायिका की इस प्रकार परिभाषा की है—जिस रमणी को देखते ही चित्त में शृंगार रस का संचार हो, उसे 'नायिका' कहते हैं। इस परिभाषा के अनुसार नायिकाभेद का संपूर्ण विषय शृंगार रस से संबंधित है।

आचार्यों ने नायिका के विविध भेदों के विवेचन के लिए उसके कितने ही वर्ग लिखे हैं। उनमें से ५ वर्ग मुख्य हैं—

१. जाति–अनुसार, २. धर्म–अनुसार, ३. दशा–अनुसार,
४. अवस्था–अनुसार और ५. गुण–अनुसार।

प्रथम वर्ग 'जाति–अनुसार' में नायिका के ४ भेद होते हैं—१. पद्मिनी, २. चित्रिनी, ३. शंखिनी और ४. हस्तिनी। नायिकाभेद में इस वर्ग की नायिकाओं का विशेष महत्व नहीं माना गया है, इसलिए इनका संक्षिप्त रूप से वर्णन किया गया है।

नायिकाओं का दूसरा 'धर्म-अनुसार' वर्ग सबसे अधिक महत्वपूर्ण है–अथवा यह कहना चाहिए कि संपूर्ण नायिकाभेद का आधार ही इस वर्ग पर है, इसलिए इस वर्ग की नायिकाओं का विस्तार पूर्वक कथन किया गया है। धर्म–अनुसार वर्ग मे नायिका के ३ भेद होते हैं—

१. स्वकीया, २. परकीया और ३. सामान्या

अपनी स्त्री को स्वकीया, दूसरे की स्त्री को परकीया और सबकी (अर्थात् जो धन दे उसकी) स्त्री को सामान्या कहते हैं। इस प्रकार विवाह संस्कार द्वारा प्राप्त निज पत्नी को स्वकीया, प्रेम-संबंध से उपलब्ध पर-नारी को परकीया और धन से प्राप्त बाज़ारू स्त्री को सामान्या कहा गया है।

स्वकीया नायिका—

नारी जाति को धर्मानुसार तीन भेदों में विभाजित करते हुए नायिकाभेद के आचार्यों ने स्वकीया नायिका को प्रधानता दी है। इसी नायिका को उन्होंने शृंगार रस की प्रमुख पात्र स्वीकार किया है†।

† 'पात्र मुख्य सिंगार की, सुद्ध सुकीया नारि।'

—देव

जहाँ आचार्यों ने नायिका के अष्टांग—१. यौवन, २. रूप, ३. गुण, ४. शील, ५. प्रेम, ६. कुल, ७. भूषण और ८. वैभव का वर्णन किया है, वहाँ स्वकीया मे ही इनका पूर्ण विकास माना है, जिनके कारण वह अष्टांगवती नायिका कहलाती है। आचार्यों ने नायिकापन का पूर्ण विकास भी स्वकीया में ही माना है, इसलिए उन्होंने इसका विस्तार पूर्वक कथन किया है।

स्वकीया नायिका की परिभाषा करते हुए उन्होंने स्पष्ट रूप से लिखा है कि जो विवाहिता स्त्री मन, वचन और कर्म से सदा अपने पति के अनुकूल रहे और पर-पुरुष की ओर भूल कर भी आकर्षित न हो, उसे स्वकीया नायिका कहना चाहिए।

यही आर्य ललनाओं का आदर्श है। पति के दोष को न देख कर उसके गुण ही गुण देखना उसका धर्म है। पति की सब प्रकार सेवा करना, उसके संबंधियों को अपना संबंधी, उसके मित्रों को अपना मित्र और उसके शत्रुओं को अपना शत्रु मानना उसका कर्तव्य है। स्वकीया नायिका का आदर्श अत्यंत उच्च, उसका त्याग प्रशंसनीय और उसका पति-प्रेम अनुपम होता है। स्वकीया नायिका पति के परिवार रूपी रथ की धुरी है, जिसके आधार पर वह संसार की यात्रा को सुख और सरलता पूर्वक पूरी करता है।

आर्य ललनाएँ अपने पातिव्रत धर्म के लिएजग-विख्यात् है। हिंदुओं का सपूर्ण ऐतिहासिक, पौराणिक और धार्मिक साहित्य ऐसी देवियों के उज्ज्वल चरित्रों से भरा पड़ा है। इस प्रकार के देवोपम चरित्र संसार के साहित्य मे अन्यत्र मिलना असंभव है। हिंदू स्त्रियाँ अपने पति द्वारा ही अपनी समस्त लौकिल और पारलौकिक आकांक्षाओं की पूर्ति कर पाती हैं और उसी पर अपनी समस्त आशाएँ और अभिलाषाएँ केन्द्रित कर देती हैं। वे पति के सुख मे सुखी और दुःख में दुखी रहती हैं। भला बुरा जैसा भी पति हो, वही उनके लिए सर्वस्व है। पति का दोष वे देखती ही नहीं, पति के गुण ही गुण दिखलाई देते हैं। उनका पति-प्रेम कामानुराग पर आश्रित नहीं है, बल्कि कर्त्तव्य पर आधारित है। सच्चे और सात्विक प्रेम की वे मूर्तियाँ है। हिंदू नारियाँ अपने प्रेम का बदला पति से नहीं चाहतीं, वे तो प्रेम करने के लिए ही प्रेम करती हैं। इस प्रकार की स्त्रियाँ गौरव और आदर की पात्र है और उन्हीं के कारण हिंदू-परिवार का इतना महत्व है। इस प्रकार की आदरणीय नारियों का वर्णन स्वकीया नायिका के अंतर्गत किया गया है।

वय क्रम के अनुसार स्वकीया नायिका के तीन भेद किये गये हैं—१. मुग्धा, २. मध्या और ३. प्रौढ़ा।

मुग्धा नायिका—

जिसके शरीर में नव यौवन का संचार हो रहा हो, ऐसी लज्जाशीला नायिका को 'मुग्धा' कहते हैं। इस परिभाषा के अनुसार नव विवाहिता पत्नी की विभिन्न चेष्टाओं का बड़ा ही मनोरम वर्णन 'मुग्धा' नायिका के अंतर्गत किया गया है। मुग्धा नायिका के दो भेद होते हैं—१. अज्ञातयौवना और २. ज्ञातयौवना। ज्ञातयौवना को भी नवोढ़ा और विश्रब्ध नवोढ़ा दो भेदों में विभाजित किया गया है।

मुसलमानों के शासन-काल में लड़के-लड़कियों को बहुत छोटी आयु में ही विवाहित करने की प्रथा चल पड़ी थी। इसका आभास नायिकाभेद के ग्रंथों में भी मिलता है। बाला पत्नी के तन में नवयौवन का संचार हो रहा है, किंतु स्वयं उसे इनका ज्ञान नहीं है। ऐसी अबोधावस्था वाली किशोरी को 'अज्ञातयौवना' कहा गया है। अज्ञातयौवना का अल्हड़पन दिखलाने में कवियों ने मनोविज्ञान का अच्छा परिचय दिया है। धीरे-धीरे नायिका का वह बाल-स्वभाव जनित अल्हड़पन दूर होने लगता है। अब उसकी चेष्टाओं ने भिन्न रूप धारण कर लिया है। जहाँ पहले वह उछलती-कूदती चलती थी, वहाँ वह अब मंद गति से चलने लगती है। खिलखिला कर हँसने की अपेक्षा वह मुँह छिपाकर मुसकाती है। अपने प्रत्येक कार्य में उसे अब लज्जा का अनुभव होता है। इस प्रकार की चेष्टा वाली नायिका का उल्लेख 'ज्ञातयौवना' के नाम से किया गया है। ज्ञातयौवना के दोनों भेद 'नवोढ़ा' और 'विश्रब्धनवोढ़ा' का संबंध नव विवाहित दंपति की काम-क्रीड़ा से है। जो नव विवाहिता बाला पत्नी भय और लज्जा के कारण अपने पति का संग नहीं चाहती, उसे 'नवोढ़ा' नायिका कहते हैं। भय और लज्जा के भाव में कुछ कमी आने पर जब वह अपने पति की ओर किंचित आकर्षित होने लगती है, तब उसे 'विश्रब्धनवोढ़ा' कहा जाता है। मुग्धा नायिका के भेदोपभेदों में कवियों ने जिन मधुर और कोमल भावों की उद्भावना की है, वे सहृदय जनों को अतीव आनंद प्रदान करते हैं।

मध्या नायिका—

मुग्धत्व की लज्जाजनित अवस्था के पश्चात् तथा निःसंकोच भाव से केलि-क्रीड़ा में तत्पर होने वाली प्रौढ़ावस्था के पूर्व आचार्यों ने एक मध्यवर्ती अवस्था

का भी उल्लेख किया है, जिसमें नायिका की लज्जा और काम-चेष्टा का समान रूप से कथन होता है। इस अवस्था की नायिका को 'मध्या' कहते हैं। मध्या के कथन में लज्जा और काम-चेष्टा के दोनों पलड़ों को बराबर रखने में कवियों ने बड़ी कारीगरी दिखलाई है। वास्तव में मध्या का कलापूर्ण वर्णन पढ़ने की चीज़ है।

प्रौढ़ा नायिका—

नायिकाभेद के कवियों की परम प्रिय नायिका 'प्रौढ़ा' है। यह रति-कला में अत्यंत प्रवीण है और अपने नायक को सब प्रकार से संतुष्ट करने की क्षमता रखती है। प्रौढ़ा को 'रतिप्रीता' और 'आनंदसंमोहा' नामक दो भेदों में विभाजित किया गया है। ये दोनों भेद उसकी रति-प्रियता और अपने पति के रतिसुख-जनित प्रेमानंद में निमग्न होने की अवस्था के सूचक है। प्रौढ़ा के वर्णन में कवियों ने काम-विज्ञान और केलि-कला के अनेक गूढ़ रहस्यों का उद्‌घाटन किया है।

धीरादि भेद और ज्येष्ठा-कनिष्ठा—

स्वकीया नायिका अपने पति के संपूर्ण प्रेम का पूरी तरह उपभोग करने की आकांक्षा ही नहीं रखती, बल्कि उस पर एक मात्र अपना ही अधिकार समझती है। इसमें कोई अन्य स्त्री, चाहें वह उसके पति की विवाहिता दूसरी पत्नी हो, अथवा उसके पति से गुप्त प्रीति रखने वाली कोई परकीया हो, कुछ भी हिस्सा बँटाना चाहे, तो उसे ईर्ष्या होती है। किसी भी पत्नी की यह चेष्टा स्वाभाविक है। किंतु प्राचीन समय से ही हिंदू समाज में एक पुरुष की अनेक विवाहिता पत्नियों का होना पाया जाता है। इसके फल स्वरूप जो अनिष्टकारी परिणाम हुए है, उनसे इतिहास और पुराणों के पृष्ठ के पृष्ठ भरे पड़े हैं। राजा दशरथ का शोचनीय अंत और राम जैसे सर्वगुण सम्पन्न पुत्र का बनवास इसी बहु-विवाह-प्रणाली के कुफल थे। एक से अधिक पत्नियों के कारण गार्हस्थिक अशांति और पारिवारिक कलह का होना भी अनिवार्य है।

अपने पति को अन्य स्त्री पर आसक्त जानकर उसकी ईर्ष्यापूर्ण अनेक चेष्टाओं को धीरादि भेद में और अनेक पत्नियों की प्रेम-प्रतियोगिता को ज्येष्ठा-कनिष्ठा में दिखलाया गया है। धीरा नायिका की व्यंगोक्ति, अधीरा के कटु वचन और धीराधीरा के अश्रुपात पाठक के हृदय में नायिका की परिहास-प्रियता, तेजस्विता और दयनीय दशा का मूर्तिमान चित्र उपस्थित कर देते हैं।

एक पुरुष अपनी कई पत्नियों से समान रूप में प्रेम कर सके—ऐसा संभव नहीं है। जिस स्त्री पर पति का अधिक प्रेम हो, उसे 'ज्येष्ठा' और जिस पर न्यून हो, उसे 'कनिष्ठा' कहा गया है। ज्येष्ठा-कनिष्ठा में स्वपत्नियों को प्रेम-प्रतियोगिता और गार्हस्थिक अशांति का उल्लेख होना उचित था, किंतु इन नायिकाओं के वर्णन में नायिकाभेद के आचार्यों की चेष्टा पति द्वारा सभी पत्नियों को संतुष्ट कराने की रही है। इस संबंध में कवियों द्वारा जो कथन किये गये हैं, वे बच्चों के खिलवाड़ से ज्ञात होते हैं।

धीरादि और खंडिता में अंतर—

धीरादि भेदों का कथन स्वकीया के मध्या-प्रौढ़ा भेदों में और खंडिता का नायिका के अवस्थानुसार भेदों में पृथक्-पृथक् रूप से किया जाता है, किंतु इनकी उत्पत्ति के कारण प्रायः समान हैं। परकीयासक्त पति के तन पर कतिपय चिन्ह देख कर ही धीरादि और खंडिता दोनों प्रकार के भेदों की उत्पत्ति होती है, इसलिए कभी-कभी इन दोनों प्रकार की नायिकाओं में अंतर करना कठिन हो जाता है। आचार्यों ने इनके भेद-प्रदर्शन की एक मर्यादा बाँध दी है। जिन चिन्हों को देख कर धीरादि और खंडिता की उत्पत्ति होती है, वे दो प्रकार के माने गये हैं—१. साधारण और असाधारण। साधारण चिह्न वे हैं, जिनसे निश्चयपूर्वक पर-स्त्री संसर्ग का बोध न होता हो, जैसे पाग के बंदों का का खुलना, नेत्रों की अरुणिमा और नायक का आलस्य-भाव। इन चिन्हों का कथन धीरादि भेद में होता है। असाधारण चिह्न उनको कहते हैं, जिनसे निश्चय पूर्वक नायक की रति का बोध हो; जैसे नायक के वक्षस्थल पर नख-क्षत, नेत्रों पर पीक और अधर पर अंजन के दाग़ आदि। इन चिह्नों का कथन 'खंडिता' में होता है।

इस प्रकार की मर्यादा होने पर भी कवियों ने कभी कभी अपने कथन में उसे भंग कर दिया है, जिसके फल स्वरूप धीरादि और खंडिता के उदाहरणों में गड़बड़ हो जाती है। नायिकाभेद के प्रमुख आचार्य मतिराम भी प्रौढ़ा-खंडिता और प्रौढ़ा-धीरा में कुछ स्पष्ट भेद सूचित नहीं कर सके हैं! इसी प्रकार और भी कितने ही कवियों के नाम गिनाये जा सकते हैं। साधारणतः यह कहना चाहिये कि धीरादि में स्पष्ट रूप से रति-चिन्हों का वर्णन नहीं होता, जब कि खंडिता में इनका वर्णन करना आवश्यक है।

स्वकीया का उच्चादर्श और गौरव—

सौत की कल्पना स्त्री मात्र के लिए दुःखदायी है; किंतु नायिकाभेद के कवियों ने ऐसी स्वकीया नायिकाओं का भी कथन किया है, जो सौत की स्थिति को प्रसन्नता पूर्वक सहन ही नहीं करती हैं, बल्कि उनके प्रति सद्भाव भी रखती हैं। इस प्रकार के उल्लेख से उन्होंने स्वकीया के उच्चादर्श का गौरवपूर्ण कथन किया है। जहाँ अन्य देशीय स्त्रियाँ सौत का नाम सुनते ही पति का जीवन दूभर कर देंगी, अथवा उसको तलाक दे देंगी, वहाँ आर्य ललनाएँ पति तो क्या सौत के प्रति भी उदार रहती हैं†।

प्रायः ऐसा कहा जाता है कि हिंदू-सभ्यता स्त्रियों के प्रति अनुदार है। उसमें नारियों का कर्तव्य कठोर और उनके स्वाभिमान को ठेस पहुँचाने वाला घोषित किया गया है; किंतु नायिकाभेद के आचार्यों ने स्वकीया स्वाधीनपतिका के उल्लेख से इस मत के विरुद्ध कथन किया है।

स्वकीया स्वाधीनपतिका का पति अपनी पत्नी पर इतना अनुरक्त है कि वह उसका सब शृंगार अपने हाथ से ही करता है। वह उसकी सेवा-चाकरी और टहल तक करता है और सब प्रकार से उसको प्रसन्न रखने की चेष्टा करता है, किंतु पत्नी शृंगार-विहार में भी पति के मान-मर्यादा की रक्षा करती हुई अपने गौरव की वृद्धि करती है‡।

नायिकाभेद के प्रमुख आचार्य रसलीन ने स्वकीया और पतिव्रता में भी भेद का कथन किया है। उनके विचारानुसार स्वकीया स्नेह के कारण पति से प्रेम करती है, किंतु पतिव्रता अपना कर्त्तव्य मान कर पति-भक्ति करती है*।

---

‡ "पीय कौं दच्छिन जानि न दूषत, चौगुनौ चाउ बढ़ै वा लली कौं।
सौतिन हू कौं असीसै सुहाग, भरै कर आपने सेंदुर टीकौं॥"

† "सरसाए दुकूल सुगंध सो सानि, सबै रति-मंदिर बास रच्यौ।
रँग-रँग के अंग अनूप सिंगार, सिंगार निहारि कै मोद लच्यौ॥
पुनि बीरी खवावत ह्वै 'सपिनाथ', सुजान सों प्यारी कछू न कच्यौ।
जब लागन लागे महावर पाँय, तबै मुसक्याय कै हाथ गच्यौ॥"
—"रसपीयूषनिधि"

* सुकीया और पतीव्रता, में यह भेद विचारि।
वह सनेह, यह भगति सो, सेवत है निरवारि॥

प्रायः देखा जाता है कि स्त्री-पुरुष का दाम्पत्य प्रेम इन्द्रिय-सुख पर भी आधारित है। इन्द्रिय-सुख के अभाव में इस दाम्पत्य-प्रेम में उदासीनता आ जाती है, किंतु पतिव्रता स्वकीया नायिका इंद्रिय-सुख के अभाव में भी कर्तव्यवश अपने पति की भक्ति ही नहीं करती, बल्कि उसके दोष को छिपाने की भी चेष्टा करती है। वृद्ध और नपुंसक पति की पत्नी आत्मत्याग पूर्वक अपने पातिव्रत का निर्वाह ही नहीं करती, बल्कि पति के दोष को छिपा कर कलंक को स्वयं अपने ऊपर ले लेती है†। स्वकीया नायिका की महत्ता और उसका गौरव सर्वमान्य है। उसके महत्वपूर्ण वर्णन से नायिकाभेद के ग्रंथों के पृष्ठ के पृष्ठ भरे पड़े हैं।

परकीया नायिका—

पर-पुरुष से प्रीति करने वाली स्त्री को परकीया कहते हैं। इस परिभाषा के अनुसार परकीया नायिका भारतीय संस्कृति और शिष्टाचार के विरुद्ध है। इस देश में पतिव्रता और पत्नीव्रत के आदर्शों को महत्व दिया गया है। यहाँ पर मन और वचन से भी स्त्री को पर-पुरुष और पुरुष को पर-स्त्री की ओर आकर्षित होने मे पातक माना गया है फिर कर्म से पर-पुरुष-गमन अथवा पर-स्त्री-रति की बात करना भी घोर अनुचित कार्य है।

यह होने पर भी नायिकाभेद के आचार्यों ने परकीया नायिका का उल्लेख किया है। इसका कारण यह है कि धर्म और आचार के विरुद्ध होने पर भी समाज मे परकीयापन के बीज अति प्राचीन काल से विद्यमान रहे हैं। जहाँ समाज मे स्वकीया और पतिव्रता स्त्रियाँ अथवा पत्नीव्रत पुरुषों की स्थिति है, वहीं परकीया और कुलटा स्त्रियों अथवा उपपति और लंपट पुरुषों का भी अभाव नहीं है। अत्यंत प्राचीन काल मे जब धार्मिक और सदाचारपूर्ण जीवन का अधिक महत्व था, तब इस प्रकार के आचारहीन स्त्री-पुरुषों की संख्या अत्यंत अल्प थी, किंतु जिस प्रकार समाज मे आदर्शहीनता का प्रभाव बढ़ा, उसी प्रकार इन आचारहीन नर-नारियों की संख्या भी वृद्धि को प्राप्त होने लगी।

---

† गुरुजन दूजे ब्याह को, प्रति दिन कहत रिसाय।
पति की पति राखै बहू, आपुन बाँझ कहाय॥

नायिकाभेद के आचार्यों ने सब प्रकार के नर-नारियों का चरित्र-चित्रण मनोवैज्ञानिक शैली पर किया है। ऐसी दशा में स्वकीया के साथ परकीया का भी उल्लेख आवश्यक था। परकीया के कथन में कवियों ने उसको आदर्श रूप में उपस्थित न कर उसकी बुराई बतलाने की ही चेष्टा की है। समाज के नर-नारियों का वास्तविक रूप से चरित्र-चित्रण करने के लिए भले की भलाई और बुरे की बुराई बतलाना आवश्यक था। नायिकाभेद के ग्रंथों में स्वकीया के साथ परकीया के भी उल्लेख का यही कारण है।

साहित्य में परकीयापन का प्राचीन आदर्श—

वैष्णव संप्रदायों के धार्मिक साहित्य में श्रीकृष्ण से प्रेम करने वाली अनेक गोपियों का उल्लेख है। गोपियों ने अपने पतियों के रहते हुए भी अति शुद्ध भाव से श्रीकृष्ण से प्रेम किया था। जब गोपी-कृष्ण के प्रेम का उल्लेख साहित्य में होने लगा तो कृष्ण को नायक और गोपियों को परकीया नायिका लिखना आवश्यक था। धार्मिक साहित्य में परकीयापन के प्रचार का यही कारण ज्ञात होता है।

इस प्रकार परकीया नायिका का उल्लेख होने पर भी आरंभिक कवियों ने उस पर कोई दोषारोपण नहीं किया। इसका कारण स्पष्ट है कि गोपियों ने शुद्ध भाव से प्रेम किया था और उनके प्रेम का पात्र कोई लौकिक नायक नहीं, बल्कि स्वयं श्रीकृष्ण थे, जो परमात्मा के अवतार माने गये हैं। ब्रजभाषा साहित्य के सर्वश्रेष्ठ कवि महात्मा सूरदास ने गोपियों के प्रेम का बड़ा अपूर्व वर्णन किया है। उनकी गोपियाँ कहने को परकीया थीं, किंतु उन्होंने स्वकीया भाव से कृष्ण के प्रति प्रेम किया था। जहाँ परकीया नायिका अपना परकीयत्व भूल कर स्वकीया भाव से भगवान् की भक्ति करती है, ऐसे परकीयापन को कौन बुरा कहेगा? आदर्श देवी मीरा का प्रेम भी इसी कोटि का था।

सूरदासजी ने गोपियों की भावना को इस प्रकार व्यक्त किया है—"ब्याहौ लाख, धरौ दस कुवरी, अंतहू कान्ह हमारौ।" जो गोपियाँ ऐसे अनन्य भाव से श्रीकृष्ण का चिंतन करती थीं, उनके आचरण पर दोषारोपण करने का कौन अपराध कर सकता है!

वैष्णव संप्रदायों की भक्ति-भावना में गोपियों की सी परकीया भक्ति को श्रेयष्कर माना गया है। जिस प्रकार परकीया नायिका पूर्ण आत्म-त्याग

और लगन के साथ नाना प्रकार की बाधाओं के रहते हुए भी अपने प्रेम का निर्वाह करती है, इसी प्रकार साधक को भी भगवान् की भक्ति करनी चाहिए। वैष्णवों की परकीया भक्ति का यही अभिप्राय है।

ब्रजभाषा साहित्य का अलौकिक और लौकिक परकीया प्रेम—

ब्रजभाषा नायिकाभेद के आरंभिक आचार्यों में प्रमुख महाकवि केशवदास ने परकीया नायिका की परिभाषा उपर्युक्त आदर्श के अनुसार की है‡ और परकीया प्रकरण को समाप्त करते हुए भी उसके संबंध में इसी प्रकार के उद्‌गार प्रकट किये है*। कालांतर में परकीयापन का यह अलौकिक शुद्धादर्श लौकिक नर–नारियों की प्रेम–लीला में परिणित होगया। तब केशवदास की परिभाषा के विरुद्ध अपने पति से छिपा कर पर–पुरुष से प्रीति करने वाली स्त्री को परकीया नायिका लिखा जाने लगा†।

ब्रजभाषा साहित्य में अलौकिक और लौकिक दोनों प्रकार के परकीया प्रेम का कथन किया गया है। अलौकिक प्रेम से जहाँ भक्तों को भगवान् के प्रति शुद्ध भक्ति-भावना की प्रेरणा मिलती है, वहाँ लौकिक प्रेम से विषयी जनों का विषय–वासना की ओर भी झुकाव हो सकता है। किंतु ब्रजभाषा कवियों ने परकीया की दयनीय दशा का ऐसा मार्मिक और व्यथापूर्ण वर्णन किया है, जिसके कारण विषयी जीवों की विषय–वासना भी मंद पड़ जाती है। वे परकीया–प्रेम के दुष्परिणाम का चिंतन कर इस मार्ग पर चलने से अपने को बचा सकते हैं।

---

‡ सब ते पर, परसिद्ध जो, ताकी प्रिया जु होय।
परकीया तासों कहे, परम पुराने लोय॥
—'रसिकप्रिया"

* जगनायक की नायिका, बरनी केसवदास।
—"रसिकप्रिया"

† करै नेह पर कंत सो, दुरादुरी जो नारि।
ताहि परकिया कहत है, पंडित लोग विचारि॥
—"रसपीयूषनिधि"

परकीयापन से शिक्षा—

जब रीति-काल के कवियों ने परकीया नायिका के लौकिक रूप पर अधिक ध्यान दिया, तो वे नायिकाभेद के ग्रंथों में उसके अनेक भेदोपभेदों का कथन करने लगे। व्रजभाषा नायिकाभेद के आचार्यों मे रसलीन और दास ने परकीया नायिका का विशेष रूप से विस्तार किया है। उन्होंने नवीन भेदो की उद्भावना द्वारा भिन्न-भिन्न प्रकार की परकीया नायिकाओं का विस्तृत वर्णन किया है।

उस समय की धार्मिक एवं राजकीय परिस्थिति के कारण साहित्य में परकीया नायिकाओं का विशेष रूप मे वर्णन होने लगा, किंतु कवियों ने इस प्रकार का कथन करते हुए भी परकीयत्व को प्रश्रय नहीं दिया। उन्होंने स्वकीया के प्रेम की अपेक्षा परकीया के प्रेम को निम्न कोटि का ही नहीं, बल्कि अहितकर भी बतलाया है। महाकवि देव ने स्वकीया के प्रेम रूपी शुद्ध दूध की तुलना में परकीया के प्रेम को खोआ में गर्म पानी मिला कर बनाये हुए नकली दूध के समान बतलाया है† ।

नायिकाभेद के कवियों ने परकीया के कंटकाकीर्ण मार्ग का कथन करते हुए पाठकों को शिक्षा दी है कि इसमें बड़ा ख़तरा है, इससे बचना चाहिए। श्री हरिऔधजी के शब्दों में परकीया का वर्णन सुनिये—

"परकीया नायिका मे जो प्रेमजन्य व्याकुलता होती है, उसमे जो अधीरता, उत्सुकता, प्रेमोन्माद और तड़प देखी जाती है, वह बड़ी ही अदम्य एवं वेदनामयी होती है। पहाड़ी नदियों की गति मे बड़ी प्रखरता, बड़ी सबलता, बड़ा वेग और बड़ी ही दुर्दमनीयता होती है, क्यों कि उसके पथ में विघ्न-बाधा स्वरूप अनेक प्रस्तर खंड, अनेक संकीर्ण मार्ग और बहुत से पहाड़ी दर्रे होते हैं। परकीया नायिकाओं का पथ भी इसी प्रकार विपुल संकटाकीर्ण होता है। उसको लोक-लाज की बेड़ी काटनी पड़ती है, वंशगत बंधन तोड़ना पड़ता है, गुरुजनो की भर्त्सना, गाँव वालो का उत्पीड़न और सखियों का तिरस्कार सहना पड़ता है, अतएव उसकी गति भी पहाड़ी नदियों की सी उद्वेलित होती है। उसके हृदय के भावों का चित्रण टेढ़ी खीर है, साथ

† पर-रस चाहै परकीया, तजै आप गुन गोत।
आप औटि खोआ मिले, खात दूध फल होत॥

ही बड़ा ओजमय, द्रावक और मर्मस्पर्शी भी है। उसमें सत्यता है, सौन्दर्य है, और है प्रेम-पथ का भीषण दृश्य। उसमे वह अटलता है, जो हथेली पर सर लिए फिरने वालों मे ही देखी जाती है†।

परकीया के वर्णन में बतलाया गया है कि रूप के अद्भुत आकर्षण से चढ़ती जवानी मे स्त्री-पुरुष न मालूम कैसे-कैसे अनर्थ कर बैठते हैं*, जिनके कारण उनको जन्म भर पछताना पड़ता है। युवावस्था के आरंभ में स्त्री-पुरुषों मे प्रेम की हिलोरें उठने लगती है। स्त्री का मन सुंदर पुरुष की ओर तथा पुरुष का मन सुंदर स्त्री की ओर स्वाभाविक रूप से आकर्षित होता है, किंतु लोकाचार और कुल-मर्यादा के विचार उनको अनुचित मार्ग पर चलने से रोकते हैं। जो दुर्बल मन के स्त्री-पुरुष अपने पर क़ाबू नहीं रख सकते, वे पथभ्रष्ट हो जाते हैं। स्त्री जब तक अपने पर काबू रख सकती है, तब तक पुरुष की अपेक्षा अधिक दृढता का परिचय देती है। वैसे तो स्त्रियों की अपेक्षा पुरुष ही अधिक आचारहीन देखे जाते है, किंतु जब स्त्री का मन बेकाबू हो जाता है, तो वह बेलगाम घोड़े की तरह सरपट दौड़ने लगता है। उस समय उसे काबू में रखना प्राय. असंभव हो जाता है। उस अवस्था में वह लोक-लाज, कुल-मर्यादा और भविष्यत् परिणाम का विचार किये बिना ही बड़ी से बड़ी मूर्खता करने को तैयार हो जाती है! इस प्रकार की स्त्रियों का वर्णन परकीया नायिका में किया गया है।

ब्रजभाषा कवियों ने परकीया नायिका की दयनीय दशा, वेदनामयी परिस्थिति और उसके प्रेमोन्माद का ऐसा करुणोत्पादक वर्णन किया है, जिसे पढ़ कर कलेजा मुँह को आने लगता है! इस विवरण से यह शिक्षा मिलती है कि यह मार्ग अनुचित ही नहीं, बड़ा दुःखपूर्ण भी है। इसमें सुख नाम मात्र को भी नहीं है, अतः अपना भला चाहने वालों को इस पथ पर भूल कर भी पग नहीं रखना चाहिए। जो लोग इस पथ पर चलते हैं, वे नष्ट हो जाते हैं, और दीन-दुनियाँ कहीं के भी नहीं रहते हैं। जिस प्रेम के लिए वे इतना

---

† "रस-कलस"

* इक भीजे चले परे, बूड़े बहे हजार।
कितने औगुन जग करत, नय बय चढ़ती वार॥

—देव।

मँहगा सौदा करते हैं, वह भी प्रायः उनको नहीं मिलता, केवल हृदय की तपन, कसक और निराशा ही उनको प्राप्त होती है ! इसीलिए परकीया द्वारा सुख-प्राप्ति को योग से भी कठिन व्यापार माना गया है‡ ।

इस प्रकार के वर्णन कभी परकीयापन को उत्साहित नहीं कर सकते, बल्कि जो लोग भूल से इस पथ पर चल पड़े हैं, वे भी इसके भीषण परिणाम को पढ़कर सावधान हो सकते हैं ।

परकीया के भेद—

परकीया नायिका के मुख्य रूप से दो भेद किये गये हैं—१. अनूढ़ा और २. ऊढ़ा अर्थात् परोढ़ा । अविवाहित अवस्था मे किसी पुरुष से प्रीति करने वाली और उसके साथ विवाह करने की इच्छा रखने वाली कुमारी को अनूढ़ा कहते हैं । इस प्रकार की परकीया मे कोई दोष नही है, बल्कि इसे परकीया कहना ही नहीं चाहिए । हिंदुओं के धार्मिक साहित्य में भगवती पार्वती, जगज्जननी जानकी, महारानी रुक्मिणी आदि सभी दैवी स्त्रियाँ अनूढ़ा रह चुकी हैं । उनके इस कार्य को कोई बुरा नहीं कहता । क्षत्रिय राजाओं मे स्वयंवर की प्रथा और राजपूत बालाओं का स्वेच्छा से किसी वीर योद्धा से प्रेम करना और उसके साथ विवाह करना सदा से प्रचलित है, इसलिए अनूढ़ा नायिका के आदर्श पर कोई दोष नहीं लगाया जा सकता । अनूढ़ा के शुद्ध प्रेम में व्यभिचार की भावना करना अनुचित है । हम जानते हैं कि रीति-काल के कुछ लंपट कवियों ने अनूढ़ा नायिका के व्यभिचार का भी कथन किया है, किंतु यह भारतीय आदर्श नहीं है । मुसलमानी काल की विलासिता और व्यभिचार-वृद्धि का यह प्रभाव हो सकता है ।

परकीया नायिका का दूसरा भेद ऊढ़ा है । जो विवाहिता स्त्री अपने पति के अतिरिक्त पर-पुरुष से प्रीति करे, वह ऊढ़ा कहलाती है । इस प्रकार ऊढ़ा ही वास्तव में परकीया नायिका है । आचार्यों ने ऊढ़ा के निम्न लिखित छै भेद किये हैं—

१. मुदिता, २. विदग्धा, ३. अनुशयना, ४. गुप्ता, ५. लक्षिता ६. कुलटा ।

उपर्युक्त भेदों में परकीया की मनोदशा का विभिन्न रूप से वर्णन किया गया है । पर-पुरुष से प्रीति करने वाली स्त्री अपने प्रेमी से मिलने का

---

‡ भूले हू न भोग, बड़ी विपति वियोग-विथा,
जोग हू तें कठिन सँयोग पर नारी कौ ।

अकस्मात अवसर पाकर किस तरह प्रसन्न होती है, किस प्रकार वह संकेत द्वारा अपनी आंतरिक भावना को पर-पुरुष के प्रति प्रकट करती है, प्रेमी से मिलने का संकेत-स्थल नष्ट हो जाने पर उसे किस प्रकार व्यथा होती है, अपनी गुप्त प्रीति को छिपाने की अनेक चेष्टाएँ करने पर भी वह किस प्रकार प्रकट हो जाती है आदि बातों से परकीया नायिका की मनोवृत्ति का विश्लेषण किया गया है। परकीया के छुटे भेद कुलटा में परकीयत्व की चरम सीमा बतलाई गई है। अनेक पुरुषों से संबंध रखने वाली व्यभिचारिणी स्त्री को कुलटा कहते हैं।

वैष्णव भक्तों की परकीया-भक्ति में कुलटा के लिए कोई स्थान नहीं है, इसलिए भक्त कवियों द्वारा इसका कथन नहीं किया गया है। वैसे भी कुलटा में प्रेम का अभाव होता है, इसलिए नायिकाभेद के कई आचार्यों ने भी इसका उल्लेख नहीं किया है। जिन कवियों ने इसका कथन किया है, उन्होंने कुलटा में परकीयत्व की भयावह अवस्था का दिग्दर्शन कराया है।

सामान्या नायिका—

धन के लिए पर-पुरुष से प्रेम का ढोंग करने वाली बाज़ारू स्त्री को सामान्या, गणिका या वेश्या कहते हैं। सामान्या की स्थिति स्त्री जाति के लिए कलंक है, किंतु फिर भी समाज में उसका अस्तित्व है। इस प्रकार की स्त्रियाँ इस देश में अति प्राचीन काल से होती रही हैं, किंतु उनके आचार-व्यवहार में समय-समय पर अंतर होता रहा है।

विक्रम संवत् से पूर्व की बौद्ध कथाओं में राजनर्तकियों का उल्लेख मिलता है। उस समय की सामाजिक स्थिति के अनुसार वे नर्तकियाँ प्रतिष्ठित मानी जाती थीं। समाज में उनका उच्च स्थान था। विशाल की विख्यात नर्तकी अम्बपाली का वर्णन बौद्ध ग्रंथों में हुआ है। मौर्य काल में वेश्याओं की और भी उन्नत अवस्था का परिचय प्राप्त होता है। राज-महलों में वेश्याओं को अनेक प्रकार के सेवा-कार्यों के लिए नियत किया जाता था। स्नान-गृह से शयन-गृह तक की परिचर्या, पुष्प-माला बनाना, अंगराग तैयार करना, पंखा डुलाना, राज-छत्र को धारण करना, अंतःपुर की स्त्रियों को नृत्य-गायन की शिक्षा देना और इन कलाओं से सबका मनोरंजन करना आदि अनेक प्रकार की राजकीय सेवाएँ वे करती थीं। यात्राओं में राजाओं के साथ रहने का उनको सम्मान प्राप्त था। इन वेश्याओं का संबंध राज-दरबार और धनी-मानी व्यक्तियों से रहता था और उनको पुष्कल धन की आय होती थी। वे बड़े ठाट-बाट से ऐश्वर्य पूर्ण जीवन व्यतीत करती थीं।

प्राचीन काल की वेश्याओं के विवरण से ज्ञात होता है कि उनका पेशा घृणा की दृष्टि से नहीं, बल्कि आदर और प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखा जाता था। भले घर की स्त्रियाँ स्वेच्छा पूर्वक इस पेशे को स्वीकार कर समाज में उसी प्रकार प्रतिष्ठित समझी जाती थीं, जिस प्रकार आज-कल की नर्स आदि। दक्षिण भारत के देव-मंदिरों में भगवान् की सेवा के लिए पवित्र वेश्याएँ रहती थीं, जिनको देव-दासियाँ कहते थे। सब प्रकार के उत्सवों में उनकी उपस्थिति मंगल सूचक मानी जाती थी। नृत्य, गायन आदि ललित कलाओं से उनका सदा से संबंध रहा है। प्रतिष्ठित घराने के व्यक्ति भी उनसे इन कलाओं की शिक्षा लेने अथवा उनसे अपना मनोरंजन करने में अपनी मान-हानि नहीं समझते थे।

यह प्राचीन काल की वेश्याओं का विवरण है, किंतु इस समय उनका पेशा घृणित और अपमानपूर्ण माना जाता है। वास्तव में आज-कल की वेश्याएँ नारी-जाति के लिए कलंक हैं। यद्यपि इनके द्वारा समाज में कुरुचिपूर्ण और अहितकर भावना का प्रचार होता है, तथापि कभी कभी बुराई में भी कुछ भलाई निकल आती है। इस नियमानुसार इन वेश्याओं द्वारा भी समाज की कुछ सेवा हो जाती है!

वर्तमान काल की सामान्या स्त्रियाँ घृणित एवं अपवित्र जीवन व्यतीत करती हुई अनेक स्त्री-रहित, कामुक और व्यभिचारी पुरुषों की कामाग्नि को शांत करती हैं। यदि समाज में सामान्याएँ न हों, तो उपर्युक्त व्यक्ति गृहस्थ की कुलशीला नारियों की ताक में रहेंगे, जिसके फल स्वरूप उनका जीवन सदैव अरक्षित रहेगा और समाज में अनेक प्रकार के अपराध बढ़ जावेंगे। इस दृष्टि से सामान्याएँ स्वयं अपवित्र जीवन व्यतीत कर आचारवती कुलशीला नारियों के पवित्र चरित्र की रक्षा करती हैं। छावनी में सैनिकों के लिए वेश्याओं का उपयोग अत्यंत प्राचीन काल से होता रहा है। महाकवि देव ने इस प्रकार की सामान्या नायिका का कथन किया है।

सामान्या नायिका किस प्रकार चतुरता पूर्वक दूसरों से धन प्राप्त करती है, यह भी एक कला है। कदाचित् इसीलिए प्राचीन समय में लोग चतुरता सीखने के लिये वेश्याओं के घर पर जाया करते थे। नीतिशास्त्र में देश-विदेशों का भ्रमण, विद्वानों की मैत्री, राजसभा-प्रवेश और शास्त्रानुशीलन के अतिरिक्त वेश्याओं को भी चतुरता सीखने का साधन माना गया है—

देशाटनं पण्डितामित्रता च द्वाराङ्गना राजसभाप्रवेशः।
अनेक शास्त्राणि विलोकतानि चातुर्यमूलानि भवन्तिपञ्च॥

यह सब होने पर भी कवियों ने सामान्या नायिका को प्रश्रय नहीं दिया है। उन्होंने समाज के एक अंग के नाते उसका भी मनोवैज्ञानिक वर्णन कर दिया है। वेश्यागामी पुरुष को नायिकाभेद में वैसिक नायक कहते हैं। नायिकाभेद के आचार्यों ने वैसिक नायक द्वारा गणिका के प्रेम को बड़ा निकृष्ट बतलाया है। उच्चादर्श पुरुष को इससे सदैव बचना चाहिये। आचार्य विश्वनाथ ने लिखा है कि चोर, नपुंसक, मूर्ख, अन्यवास धन प्राप्त करने वाले, ब्रह्मचारी–संन्यासी आदि वेशधारी प्रच्छन्न कामुक पुरुष प्रायः वेश्यावल्लभ होते हैं[1]। इससे स्पष्ट है कि वैसिक नायकों की समाज में क्या स्थिति है।

नायिकाभेदों के ग्रंथों में सामान्या के वर्णन द्वारा यह बतलाया गया है कि वार-वनिता का प्रेम कृत्रिम और स्वार्थपूर्ण होता है। वह प्रेम का बहाना कर धनी पुरुषों के धन को लूटा करती है। उसका ध्यान प्रेम की ओर न होकर धन की ओर होता है। वेश्या के स्वार्थपूर्ण प्रेम के लिए अंधे बन कर जो धनी युवक अपने धन, धर्म और यौवन को व्यर्थ नष्ट करते हैं, उनको इस प्रकार के कथन से शिक्षा लेनी चाहिए।

साहित्य में सामान्या—

नायिकाभेद के आचार्यों की परिभाषा के अनुसार धन के कारण प्रेम का ढोंग रचने वाली अर्थलोलुप बाज़ारू स्त्री को 'सामान्या' कहते हैं। नायिका के आठ गुणों में से शील, कुल, प्रेम और वैभव का सर्वथा अभाव होने से कई आचार्यों ने सामान्या को उल्लेख योग्य भी नहीं माना है, इसलिए भक्त कवि और केशवदास आदि कई आचार्यों ने सामान्या का उल्लेख नहीं किया है। दास जैसे सुप्रसिद्ध आचार्य ने नायिकाभेद का विशेष रूप से विस्तार करते हुए परकीया नायिका के अनेक भेदोपभेदों का कथन किया है, किंतु उन्होंने सामान्या का उल्लेख तक नहीं किया। जिन आचार्यों ने उसको लिखा भी है,

---

[1] तस्करः पण्डका मूर्खाः सुखप्राप्तधनास्तथा।
लिङ्गिनश्छद्म कामाद्या आसा प्रायेण वल्लभः॥

—"साहित्यदर्पण" (३–७०)

उन्होंने उसका विशेष विस्तार न कर केवल नाम मात्र का उल्लेख कर दिया है। उन्होंने उसका वर्णन भी उसकी धन-लोलुपता और स्वार्थ बुद्धि को दिखलाते हुए किया है†।

रसलीन द्वारा सामान्या का विस्तार—

ब्रजभाषा कवियों ने सामान्या नायिका का उपर्युक्त प्रकार से वर्णन करते हुए उसके भेदों का विस्तार करने की रुचि नहीं दिखलाई। नायिकाभेद के प्रधान आचार्यों में से एक रसलीन ही ऐसा व्यक्ति है, जिसने सामान्या के भी भेदों का कथन किया है। रसलीन के मतानुसार चार प्रकार की सामान्या नायिकाएँ होती हैं—

१. स्वतंत्रा, २. जननी-आधीना, ३. नेमता और ४. प्रेम-दुःखिता।

१. **स्वतंत्रा**—सामान्या स्त्रियों में प्रभुता और प्रतिष्ठा प्राप्त एवं अपनी इच्छा से धनी पुरुषों के साथ भोग-विलास करने वाली नायिका को 'स्वतंत्रा' सामान्या कहते हैं। इसी प्रकार की सामान्या नायिकाओं का अन्य आचार्यों और कवियों ने कथन किया है।

२. **जननी-आधीना**—जननी अथवा अभिभावकों के आश्रय और अनुशासन में रहने वाली तथा उन्हीं की इच्छानुसार धनी पुरुषों की काम-वासना को तृप्त करने वाली सामान्या 'जननी-आधीना' कहलाती है।

३. **नेमता**—जो सामान्या द्रव्य लेकर एक ही पुरुष के पास रहे और द्रव्य-प्राप्ति न होने पर ही उससे पृथक् हो, उसे 'नेमता' कहते हैं।

४. **प्रेमदुःखिता**—साधारणतया सामान्या स्त्री अपने प्रेमी से वास्तविक प्रेम नहीं करती, वह कृत्रिम प्रेम दिखलाती हुई धन प्राप्त करती रहती है। धन मिलने में कमी होने पर उसका प्रेम भी लुप्त हो जाता है।

---

† 'देव' हमैं तुमैं अंतर पारत, हार उतारि इतै धरि राखौ।

—देव

लाए पायल हौं भली, परी रहैगी पाय।
लाल! दीजिऐ माल जो, राखौं हिय मे लाय॥

—रसलीन

जो सामान्या स्त्री धन लेकर किसी पुरुष के साथ रहती हुई और उससे कृत्रिम प्रेम करती हुई भी कालांतर में उससे वास्तविक प्रेम करने लगे और नायक के बिछुड़ने पर दुखित होवे, उसे 'प्रेमदुःखिता' कहते हैं। यथा—

बित-हित बाढ़त नेम यह, बँध्यौ जीव सुख पाय।
अब अलि छुटवत होत दुख, कीजै कौन उपाय॥

रसलीन कृत सामान्या के उपर्युक्त भेदों को नायिकाभेद के आचार्यों ने स्वीकार नहीं किया। सामान्या के वर्णन के साथ नायिकाभेद के सबसे महत्वपूर्ण वर्ग की समाप्ति होती है।

दशा–अनुसार नायिकाएँ—

नायिका का तीसरा वर्ग दशा–अनुसार होता है। इसके तीन भेद कहे गये हैं—

१. गर्विता, २. अन्यसंभोगदुःखिता और ३. मानवती।

अधिकांश आचार्यों ने उपर्युक्त तीनों नायिकाओं को पृथक् वर्ग के अंतर्गत रखा है, किंतु शुद्ध रूप से ये स्वकीया के अंतर्गत मध्या और प्रौढ़ा में हो सकती हैं। कुछ कवियों ने परकीया और सामान्या में भी इनका वर्णन किया है, जो अधिकांश आचार्यों के मतानुसार समीचीन नहीं है। कुछ कवियों ने खींच-तान कर मुग्धा में भी इन भेदों का कथन किया है, जो सर्वथा अनुचित है।

गर्विता—

जो स्त्री अपने प्रियतम के प्रेम और अपने रूप का गर्व करे, उसे 'गर्विता' नायिका कहा गया है। गर्विता के दो भेद होते हैं—१. प्रेमगर्विता और २. रूपगर्विता। दास ने 'गुनगर्विता' और देव ने 'कुलगर्विता' का भी कथन किया है, किंतु अधिकांश कवियों ने प्रेमगर्विता और रूपगर्विता को ही लिखा है।

रूप, गुण और कुल का गर्व करना अनुचित कहा जा सकता है, किंतु अपने पति–प्रेम का गर्व करना किसी भी स्त्री के लिए बड़े सौभाग्य की बात है।

अन्यसंभोगदुःखिता—

किसी स्त्री के तन पर अपने प्रियतम के प्रीति-चिह्न देख कर दुखित होने वाली नायिका को 'अन्यसंभोगदुःखिता' कहा गया है। अपने नायक को किसी अन्य स्त्री पर आसक्त जान कर नायिका को जो व्यथा होती है, उसका वर्णन धीरादिभेद और खंडिता में किया जाता है, किंतु जब नायक की प्रेमपात्रा स्वयं नायिका के सन्मुख उपस्थित हो और वह भी नायिका की सखी या दूती हो, तब उसकी मनोदशा किस प्रकार की होती है, यह अन्यसंभोगदुःखिता के वर्णन में बतलाया गया है। नायिका अपनी सखी के कृत्य पर मन ही मन कुढ़ रही है, किंतु ऊपर से अनभिज्ञता प्रकट करती हुई व्यंग्य वचनों द्वारा उसे पानी-पानी कर देती है!

मानवती—

अपने प्रियतम को अन्य स्त्री की ओर आकर्षित जान कर ईर्ष्या पूर्वक मान करने वाली नायिका को 'मानवती' या मानिनी कहा गया है। मानवती की विभिन्न चेष्टाओं और उसके प्रियतम द्वारा उसको मनाने के यत्न में कभी सफल और कभी विफल होने के अनेक उदाहरण कवियों ने उपस्थित किये हैं। नायक-नायिका का परस्पर रूठना और मनाना भी काम-क्रीड़ा-कौतुक से संबंधित बातें हैं, जिनको पढ़ कर सहृदय जनों को अतीव आनंद की प्राप्ति होती है।

आचार्यों ने रोष के परिमाणानुसार मान को लघु, मध्यम और गुरु तीन भेदों में विभक्त किया है। किस प्रकार का मान किस स्थिति में होता है और उसकी किस प्रकार शांति होती है, इसकी भी मर्यादा बाँधा गई है। आचार्यों का मत है कि अपने प्रियतम को पर-स्त्री की ओर लालायित भाव से देखने पर नायिका को 'लघु' मान होता है, जो नायक द्वारा हँसी-विनोद अथवा मनोरंजन की बातें करने से ही दूर हो जाता है। अपने प्रियतम के मुख से पर-स्त्री की चर्चा आदर और प्रशंसापूर्ण शब्दों में सुनने से नायिका को 'मध्यम' मान होता है, जो उसके प्रियतम के विनयपूर्ण वचन अथवा शपथ आदि से दूर हो जाता है, किंतु पर-स्त्री-गमन का विश्वास होने पर नायिका को 'गुरु' मान होता है, जो उसके प्रियतम द्वारा अन्य चेष्टाओं के विफल होने पर अधीनता पूर्वक प्रियतमा के पैर पकड़ने पर ही दूर होता है।

अवस्था-अनुसार नायिकाएँ—

नायिका का चतुर्थ वर्ग अवस्था-अनुसार होता है। इस वर्ग में नायिका की अवस्था अथवा परिस्थिति के अनुसार दस भेद किये गये हैं—

१. स्वाधीनपतिका, २. बासकसज्जा, ३. उत्कंठिता, ४. अभिसारिका,
५. विप्रलब्धा, ६. खंडिता, ७. कलहांतरिता,
८. प्रवत्स्यत्प्रेयसी, ९. प्रोषितपतिका, १०. आगतपतिका

उपर्युक्त भेदों में मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा के उपभेदों सहित स्वकीया, परकीया और सामान्या नायिकाओं का कथन किया जाता है। इन भेदों में नायिका की विभिन्न मनोदशा का मार्मिक वर्णन किया गया है। नायिका की विकसित मनोदशा का वैज्ञानिक क्रम निश्चित करते हुए इन भेदों का विस्तार पूर्वक वर्णन आगामी परिच्छेद मे किया गया है, अतः यहाँ पर उनके विषय में अधिक लिखना अनावश्यक है।

गुण-अनुसार नायिकाएँ—

नायिका का पचम वर्ग गुण अथवा प्रकृति के अनुसार होता है। यह वर्ग विशेष महत्वपूर्ण नहीं है, इसलिए नायिकाभेद में इसका सबके अंत में कथन होता है। इस वर्ग की नायिकाओं के तीन भेद किये गये है—

१. उत्तमा, २. मध्यमा, ३. अधमा,

उत्तमा नायिका—

अपने प्रियतम का दोष जान भी रुष्ट न होने वाली और अपने प्रति उसका अहित देख कर भी उसका हित करने वाली नायिका को 'उत्तमा' कहा गया है। उत्तमा नायिका हिंदू-संस्कृति की गौरवशाली नायिका है, जो सात्विक प्रकृति की स्वकीया ही हो सकती है। ऐसी असाधारण नारियों के कारण ही हिंदू-परिवार का गौरव है। आचार्यों ने लिखा है कि उत्तमा नायिका कभी अपने प्रियतम से 'मान' नहीं करती।

मध्यमा नायिका—

अपने प्रियतम का हित देख कर उसके साथ हित और उसका दोष देख कर मान करने वाली नायिका 'मध्यमा' कहलाती है। प्रायः इसी प्रकार की स्त्रियाँ आज-कल के समाज में हुआ करती हैं। अपनी इस साधारण प्रकृति के अनुसार न तो मध्यमा नायिका प्रशंसनीय हैं, और न निंदनीय।

अधमा नायिका—

अपने प्रियतम के हित करने पर भी उसके साथ मान करने वाली नायिका को 'अधमा' कहा गया है। यह तामसी प्रकृति की ककशा नारी जिस परिवार में होगी, वहाँ सुख और शांति का रहना असंभव है।

इस प्रकार भली और बुरी सभी प्रकार की स्त्रियों की प्रकृति का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण नायिकाभेद के ग्रंथों में किया गया है।

ब्रजभाषा-नायिकाभेद के आचार्य और कवि—

ब्रजभाषा साहित्य के नायिकाभेद का सिंहावलोकन करने से ज्ञात होता है कि उसमें विभिन्न नायिकाओं के भेदोपभेदों का मनोवैज्ञानिक रीति से विश्लेषण करने की अपेक्षा उनका सरस कवित्वपूर्ण कथन करने में अधिक रुचि प्रकट की गई है। इसलिए ब्रजभाषा साहित्य मे नायिकाभेद के आचार्य कम हैं, किंतु कवि अधिक हैं। आचार्य भी अपने कवित्व की दृष्टि से पहले कवि है और बाद को आचार्य। कवियों मे दो प्रकार के व्यक्ति हैं। एक वे, जिन्होंने नायिकाभेद के लिए ही नायिकाओं का क्रमबद्ध कथन किया है। दूसरे वे, जिन्होंने नायिका-भेद तो नहीं लिखा, किंतु उनकी रचना में नायिकाभेद के अनुसार कितनी ही नायिकाओ का कथन हुआ है।

नायिकाभेद के आचार्य—आचार्यत्व की दृष्टि से जिन्होंने नायिकाभेद का विवेचन किया है, उनमे से प्रमुख व्यक्तियो के नाम निम्न लिखित हैं—

१. कृपाराम, २. केशवदास, ३. मतिराम, ४. देव, ५. दास ६. रसलीन।

नायिकाभेद के कवि—कवित्व की दृष्टि से नायिकाभेद का कथन करने वाले व्यक्तियों की सख्या बहुत अधिक है। इसमे आचार्यों को भी सम्मिलित किया जावेगा, क्यो कि वे भी आचार्य होने की अपेक्षा कवि ही अधिक हैं। उनमे स प्रमुख व्यक्तियों के नाम निम्न लिखित है—

१. कृपाराम, २. नददास, ३. रहीम, ४. केशवदास, ५. सुंदर, ६. चिंतामणि, ७. मतिराम, ८. कुलपति, ९. सुखदेव, १०. देव. ११. सुरति, १२. श्रीपति, १३. सोमनाथ, १४. तोष, १५. रघुनाथ, १६. दास, १७. रसलीन, १८. पद्माकर १९. वेनी प्रवीन, २०. प्रतापसाहि, २१. ग्वाल. २२. सेवक, २३. सरदार, २४ लछिराम २५. नंदराय, २६. बिहारीलालभट्ट, २७. हरिऔध।

उपर्युक्त कवियों के अतिरिक्त निम्न लिखित उत्कृष्ट कवियों की रचनाओं में भी अनेक प्रकार की नायिकाओं का कथन मिलता है—

१. सूरदास २. रसखान, ३. बिहारीलाल, ४. सेनापति, ५ घनानंद, ६. नेवाज, ७. पजनेस, ८. ठाकुर, ९. बोधा, १०. आलम ११. शेख, १२. द्विजदेव

नवम परिच्छेद

नायिकाभेद का वैज्ञानिक क्रम

★

नायिकाओं के नाम और उनकी संख्या—

नायिकाभेद के आचार्यों ने जितनी नायिकाओं का कथन किया है, उनके मूल भेद आठ या दस माने गये हैं। इन भेदों के अंतर्गत अन्य नायिकाओं का भी कथन किया गया है। भरतमुनि ने इनकी संख्या आठ लिखी है। भरत के अनुकरण पर संस्कृत साहित्य में धनंजय, विश्वनाथ और भानुदत्त ने भी अष्ट नायिकाओं का कथन किया है।

ब्रजभाषा साहित्य मे केशवदास, चिंतामणि और देव ने भी संस्कृत आचार्यों की शैली पर आठ नायिकाएँ ही लिखी है; किंतु कृपाराम, मतिराम और पद्माकर आदि ब्रजभाषा के प्रायः समस्त आचार्य एवं कवियों ने दस नायिकाओं का उल्लेख किया है। रसलीन ने पहले आठ नायिकाएँ लिख कर शेष नायिकाओं को पृथक् रूप से लिख दिया है। दास ने मूल रूप से आठ नायिकाएँ मान कर भी शेष नायिकाओं को उनके अंतर्गत लिखा है। इस प्रकार सभी आचार्यों ने अपनी-अपनी रुचि का प्रदर्शन किया है—किसी निश्चित मत पर चलने की चेष्टा नहीं की। इस संबंध मे यह निश्चय पूर्वक कहा जा सकता है कि संस्कृत साहित्य मे और उसका अनुकरण करने वाले ब्रजभाषा कवियों की कृतियों मे आठ नायिकाओं का कथन किया गया है, जब कि ब्रजभाषा के अन्य कवि एवं आचार्यों ने दस नायिकाएँ मानी हैं।

भरतमुनि द्वारा प्रचारित अष्ट नायिकाएँ उन्हीं के निश्चित नाम और क्रम के अनुसार निम्न लिखित हैं—

१. वासकसज्जा २. विरहोत्कंठिता ३. स्वाधीनभर्तृका ४. कलहांतरिता
५. खंडिता ६. विप्रलब्धा ७. प्रोषितपतिका ८. अभिसारिका।

संस्कृत साहित्य में धनंजय, विश्वनाथ और भानुदत्त ने तथा उन्हीं का अनुकरण करने वाले ब्रजभाषा कवियों ने भी इन्हीं आठों नायिकाओं का उल्लेख किया है, किंतु उनके नाम और क्रम में अंतर है। ब्रजभाषा के जिन कवियों ने उनसे अधिक नायिकाओं का कथन किया है, उनमें नंददास ने एक

'प्रीतमगमनी' और बढ़ाकर यह संख्या नौ कर दी है। कृपाराम, मतिराम और पद्माकर आदि ने प्रवत्स्यत्प्रेयसी एवं आगतपतिका लिखकर यह संख्या दस मानी है। रसलीन और दास ने एक नई नायिका 'आगच्छत्पतिका' और लिखी है। इस प्रकार उन्होंने कुल नायिकाओं की संख्या ग्यारह मान कर भी मूल रूप से आठ नायिकाएँ ही मानी हैं, शेष नायिकाओं को उनके अंतर्गत या पृथक् रूप से लिखा है। इन ग्यारह नायिकाओं के नाम निम्न लिखित हैं —

१. स्वाधीनपतिका, २. बासकसज्जा, ३. उत्कंठिता, ४. अभिसारिका,
५. विप्रलब्धा, ६. खंडिता, ७. कलहांतरिता, ७. प्रवत्स्यत्प्रेयसी,
९. प्रोषितपतिका, १०. आगच्छत्पतिका, ११. आगतपतिका।

वास्तव में इन सब नायिकाओं के उल्लेख से ही संख्या में पूर्णता आती है, किंतु अधिकांश आचार्यों ने 'आगच्छत्पतिका' को पृथक् न लिखकर केवल दस नायिकाओं का ही कथन किया है।

इस प्रकार ज्ञात हुआ कि भिन्न-भिन्न आचार्यों के कथित नाम, संख्या और क्रम में बड़ा अंतर है। नाम और संख्या का प्रश्न अधिक महत्वपूर्ण नहीं है, क्यों कि उत्कंठिता को विरहोत्कंठिता अथवा उक्ता, प्रोषितपतिका को प्रोषितभर्तृका तथा स्वाधीनपतिका को स्वाधीनभर्तृका लिख देने से नायिकाओं के अभिप्राय को समझने में कोई असुविधा नहीं होती है। इसी प्रकार उनकी संख्या भी प्रायः दस स्वीकार कर ली गई है। मुख्य प्रश्न उनके क्रम का है, जिस पर हमें विशेष रूप से विचार करना है।

निश्चित क्रम का अभाव—

भिन्न-भिन्न आचार्यों ने अपनी-अपनी रुचि के अनुसार आठ, नौ, दस अथवा ग्यारह नायिकाओं को मान कर भी उनको किसी निश्चित क्रम के अनुसार नहीं लिखा है। ऐसा ज्ञात होता है कि इन नायिकाओं की मनोदशा का अत्यंत सूक्ष्म विवेचन करते हुए भी उनका कोई वैज्ञानिक क्रम निश्चित करने की चेष्टा नहीं की गई। नायिकाओं के इस वर्ग को आचार्यों ने अवस्था, दशा अथवा काल के अनुसार माना है। इस वर्ग का नाम कुछ भी रख लिया जाय, किंतु जब इसके अंतर्गत अन्य नायिकाओं का भी कथन किया जाता है, तो यह मानना पड़ेगा कि प्रत्येक नायिका को किसी अवस्था या परिस्थिति में इस वर्ग को अवश्य पार करना पड़ता है। ऐसी दशा में इसका कोई ऐसा क्रम अवश्य होना चाहिए, जिसके अनुसार नायिकाओं की उत्तरोत्तर विकसित मनोदशा का परिचय प्राप्त हो सके।

आश्चर्य की बात है कि इस महत्वपूर्ण विषय पर संस्कृत और ब्रजभाषा के किसी आचार्य अथवा कवि का ध्यान नहीं गया और उन्होंने नायिकाओं की विकसित मनोदशा के अनुसार उनको किसी निश्चित क्रम से रखने की चेष्टा नहीं की। संस्कृत साहित्य में इस विषय के चार प्रमुख आचार्य भरत, धनंजय, विश्वनाथ और भानुदत्त सब का क्रम एक दूसरे से भिन्न है। क्रम की भिन्नता किसी सिद्धांत पर आधारित नहीं है, बल्कि प्रत्येक आचार्य ने बिना किसी विशेष कारण के अपनी इच्छानुसार चाहें जिस नायिका को आगे-पीछे लिख दिया है।

यही बात ब्रजभाषा के आचार्यों व कवियों के संबंध में भी कही जा सकती है। जहाँ उन्होंने नायिकाओं की संख्या–वृद्धि और उनकी मनोदशा के अनुसार उनके अनेक भेदोपभेद करने में इतनी सिरपच्ची की है, वहाँ उन्होंने उनका कोई वैज्ञानिक क्रम निश्चित करने की चेष्टा नहीं की।

हमने अपनी बुद्धि के अनुसार इन नायिकाओं का एक क्रम निश्चित कर उसका मिलान संस्कृत और ब्रजभाषा के प्रायः समस्त प्रमुख कवियों के क्रमों से किया, तो हमारी यह दृढ़ धारणा हो गयी कि उन लोगों ने अपने इन क्रमों को रखने में किसी सिद्धांत का विचार नहीं किया है। केवल रसलीन और दास के क्रम ही इसके अपवाद हैं।

रसलीन का क्रम—

जब हमने अपने क्रम का मिलान रसलीन के क्रम से किया, तो वह उससे मिल गया। संस्कृत और ब्रजभाषा के समस्त क्रमों में यही एक ऐसा क्रम है, जो हमारे विचारानुसार नायिकाओं की विकसित मनोदशा को पूर्ण रूप से व्यक्त कर सकता है।

जिस प्रकार अन्य कवियों ने बिना कोई कारण बतलाये अपनी रुचि के अनुसार नायिकाओं का आगे-पीछे कथन कर दिया है, उसी प्रकार रसलीन ने भी अपने पूर्ववर्ती कवियों से भिन्न क्रम रखते हुए उसके संबंध में एक शब्द भी लिखना उचित नहीं समझा। इसके कारण यह ज्ञात नहीं हो सका कि उनके द्वारा अनायास ही ऐसे वैज्ञानिक क्रम का कथन हो गया है, अथवा उन्होंने विचार पूर्वक इसे लिखा है।

संभव है रसलीन का ध्यान ही सर्व प्रथम ऐसा क्रम निर्धारित करने की ओर गया हो और उन्होंने नायिकाओं की विकसित मनोदशा के अनुसार

उनको एक क्रम से रख दिया हो। यद्यपि उनके ग्रंथ में इस संबंध का कोई उल्लेख नहीं किया गया, तब भी यह कैसे समझा जा सकता है कि उनके द्वारा अनायास ही ऐसे सुंदर वैज्ञानिक क्रम का कथन है गया है। अतः यह मानना चाहिए कि सर्व प्रथम रसलीन ने ही नायिकाओं का क्रमबद्ध कथन किया था।

दास का क्रम—

रसलीन ने इस क्रम के संबंध में कुछ विवेचन नहीं किया था, अतः उनके परवर्ती कवियों का भी ध्यान उनके क्रम की ओर नहीं गया। रसलीन कृत 'रसप्रबोध' के कुछ ही समय पश्चात् व्रजभाषा नायिकाभेद के सुप्रसिद्ध आचार्य दास ने 'शृंगारनिर्णय' ग्रंथ की रचना की थी, जिसमें उन्होंने अपनी विशिष्ट धारणाओं के अनुसार अनेक भेदोपभेदों का उल्लेख किया था।

दास ने अपनी इन मौलिक धारणाओं के अनुसार नायिकाओं को संयोग और वियोग शृंगार के दो भेदों में विभाजित किया है। संयोग शृंगार में क्रम से स्वाधीनपतिका, वासकसज्जा और अभिसारिका का कथन है। इनमें स्वाधीनपतिका के अंतर्गत रूप-प्रेम-गुनगर्विता और बासकसज्जा के अंतर्गत आगतपतिका का उल्लेख किया गया है। वियोग शृंगार में क्रम से उत्कंठिता, खंडिता, कलहांतरिता, विप्रलब्धा और प्रोषितभर्तृका का कथन किया गया है। इनमें खंडिता के अंतर्गत धीरादिभेद, मानिनी और मानभेद का, विप्रलब्धा के अंतर्गत अन्यसंभोगदुःखिता का तथा प्रोषितभर्तृका के अंतर्गत प्रवत्स्यत्प्रेयसी, प्रोषितपतिका, आगच्छत्पतिका एवं आगतपतिका का उल्लेख किया गया है।

दास के इस उल्लेख से यह तो ज्ञात हो गया कि उन्होंने अन्य कवियों की तरह बिना किसी क्रम के नायिकाओं का कथन न कर उनको संयोग और वियोग शृंगार के अनुसार दो भागों में विभाजित कर दिया है, किंतु संयोग और वियोग की अवस्था में भी नायिकाओं की विकसित मनोदशा के अनुसार एक क्रम हो सकता था, जिसका उन्होंने विचार नहीं किया। जैसे वियोग पक्ष में उत्कंठिता के पश्चात् विप्रलब्धा और उसके अनंतर खंडिता एवं कलहांतरिता का क्रमशः कथन करना सर्वथा उचित था, किंतु उन्होंने उत्कंठिता के पश्चात् खंडिता आदि लिखकर नायिकाओं की विकसित मनोदशा के अनुकूल कथन नहीं किया है। इसके अतिरिक्त भरत मुनि की अष्ट नायिकाओं को प्रमुखता देकर उनके अंतर्गत अन्य नायिकाओं के अंतर्गत गर्विता, मानिनी और अन्यसंभोगदुःखिता को

भी सम्मिलित कर दिया है। अधिकांश आचार्यों के मतानुसार इन तीनों नायिकाओं का पृथक् वर्ग है, जो केवल स्वकीया में ही बन पाता है, जब कि वे अष्ट नायिकाएँ स्वकीया, परकीया और सामान्या—सब में होती हैं, और प्रायः सभी कवियों ने उनको इन सब नायिकाओं में पृथक-पृथक् लिखा भी है। इन सब बातों के कारण दास के क्रम में भी गड़बड़ी हो गयी है।

रसलीन और दास के पश्चात्—

रसलीन और दास के पश्चात् किसी प्रमुख कवि ने क्रमबद्ध कथन करने की चेष्टा नहीं की। उन्होंने या तो बिना किसी सिद्धांत का विचार किये अपनी रुचि के अनुसार चाहे जिस नायिका का आगे-पीछे कथन कर दिया है, अथवा नायिकाभेद के प्रमुख आचार्य मतिराम ने नायिकों को जिस क्रम से लिखा है, वैसे ही उन्होंने भी लिख दिया है। यहाँ पर यह बतलाना आवश्यक है कि स्वयं मतिराम का क्रम भी किसी सिद्धांत पर आधारित नहीं है।

नवीन शैली की जिन आधुनिक पुस्तकों में नायिकाभेद का कथन हुआ है, उनके कर्त्ताओं ने भी इस विषय पर विचार करने की आवश्यकता नहीं समझी। यही कारण है कि यद्यपि हरिऔध जी कृत 'रसकलस' अपने विषय की महत्वपूर्ण रचना है, तथापि उसमें भी वही पुराना—बे सिलसिले का क्रम दिखलाई देता है।

बिहारीलाल भट्ट का क्रम—

आधुनिक पुस्तकों में केवल पं० बिहारीलाल भट्ट कृत 'साहित्य-सागर' में जो क्रम दिया गया है, वह ठीक है और रसलीन के कम से मिलता हुआ है। साहित्य-सागर की भूमिका में इस क्रम के आविष्कार का श्रेय भट्टजी को दिया गया गया है। यह कथन यथार्थ नहीं है। वास्तव में इसके आविष्कार का श्रेय रसलीन को देना चाहिए।

भट्टजी ने नायिकाओं को एक विशिष्ट क्रम के अनुसार रख कर स्वाधीन-पतिका के अंतर्गत रूप-प्रेम-गुनगर्विता, खंडिता के अंतर्गत अन्यसंभोग-दुःखिता, मानिनी और मानभेद, एवं प्रोषितपतिका के अंतर्गत प्रवत्स्यत्प्रेयसी और आगतपतिका को लिखा है। इस विशिष्ट क्रम के लिए भी भूमिका में उनकी प्रशंसा की गयी है. किंतु जैसा हम पहले लिख चुके है, इसी पद्धति से

दास भी अपनी नायिकाओं का उल्लेख कर चुके हैं, और जो दोष दास के कथन में बतलाया जा चुका है, वही भट्टजी के कथन में भी आता है। भट्टजी ने दास के मत के विरुद्ध अन्यसंभोगदुःखिता को विप्रलब्धा की अपेक्षा खंडिता के अंतर्गत और आगतपतिका को बासकसज्जा की अपेक्षा प्रोषितपतिका के अंतर्गत लिख कर भी कोई महत्वपूर्ण कार्य नहीं किया है।

नायिकाओं का क्रमबद्ध कथन—

नायिकाओं की विकसित मनोदशा के अनुसार उनको इस प्रकार क्रमबद्ध रखा जा सकता है—

१. **स्वाधीनपतिका**—अपने रूप, प्रेम और गुण के कारण नायक को सदा अपने वशीभूत रखने वाली।

२. **बासकसज्जा**—अपने प्रियतम का निश्चित मिलन जान कर उससे मिलने के लिए साज-शृंगार और संभोग-सामग्री एकत्रित करने वाली।

३. **उत्कंठिता**—केलि-स्थान में नायक की उत्सुकता पूर्वक प्रतीक्षा करने वाली।

४. **अभिसारिका**—कामार्त्त होकर स्वयं नायक के पास जाने वाली।

५. **विप्रलब्धा**—केलि-स्थान पर नायक को न पाकर व्यथित एवं अपमानित होने वाली।

६. **खंडिता**—रात्रि में अन्यत्र रम कर प्रातःकाल आने वाले अपने नायक के तन पर पर-स्त्री-संसर्ग के चिह्न देख कर ईर्ष्या करने वाली।

७. **कलहांतरिता**—अपने नायक का अपमान कर पुनः पश्चात्ताप करने वाली।

८. **प्रवत्स्यत्प्रेयसी**—अपने नायक के भविष्यत् वियोग की आशंका से व्याकुल होने वाली।

९. **प्रोषितपतिका**—अपने नायक के वियोग में विरह-वेदना से कष्ट पाने वाली।

१०. **आगतपतिका**—अपने नायक के आगमन पर प्रसन्न होने वाली।

इस क्रम का विवेचन—

नायक अपनी नायिका पर इस प्रकार अनुरक्त है कि वह पूर्णतया उसके वशीभूत हो जाता है। इस प्रकार जिसका नायक उसके आधीन है, ऐसी नायिका को **'स्वाधीनपतिका'** कहते हैं। नायक की यह आधीनता नायिका के रूप, प्रेम और गुण के कारण होती है, इसलिए सर्व प्रथम दास ने और कदाचित उनके अनुकरण पर बिहारीलाल भट्ट आदि ने रूपगर्विता, प्रेमगर्विता और गुणगर्विता नायिकाओं को स्वाधीनपतिका के अंतर्गत लिखा है। हम गत पृष्ठों में लिख चुके हैं कि स्वाधीनपतिका नायिका स्वकीया, परकीया और सामान्या—सब में होती है, जब कि गर्विता का उल्लेख स्वकीया में ही होना उचित है। परकीया और सामान्या नायिकाएँ नायक से गर्व करने पर कदाचित अपनी स्थिति को क़ायम न रख सकें। वास्तव में यह अधिकार स्वकीया का है। जहाँ स्वकीया नायिका अपने पति से मन, वचन और कर्म से प्रेम करती है और पर-पुरुष का ध्यान स्वप्न में भी नहीं करती, वहाँ वह किसी समय गर्व भी कर सकती है।

इस प्रकार अनुरक्त नायक प्रति दिन नायिका के पास आता रहता है। नायिका भी अपने प्रियतम से मिलने के लिए साज-शृंगार और सभोग-सामग्री एकत्रित करती है। इस अवस्था वाली नायिका को **'वासकसज्जा'** कहा गया है। वासकसज्जा मुग्धा नायिका भी लिखी जाती है, किंतु मुग्धा में विश्रब्धनवोढ़ा ही वासकसज्जा हो सकती है। नवोढ़ा अपनी झिझक के कारण वासकसज्जा नहीं हो सकती। 'आगतपतिका' नायिका भी नायक का स्वागत करती है, इसलिए दास ने उसे भी 'वासकसज्जा' के अंतर्गत लिखा है। आगतपतिका परदेश से आये हुए नायक का स्वागत करती है, इसलिए वासकसज्जा के अंतर्गत उसका रखना उचित नहीं है।

नायक से मिलने के लिए नायिका सब प्रकार के साज-शृंगार सहित प्रस्तुत है, किंतु उसका नायक अभी नहीं आया है। अब नायिका उसकी उत्सुकता पूर्वक प्रतीक्षा करती है। इस अवस्था की नायिका को **'उत्कंठिता'** कहा गया है।

नायिका अपने नायक की उत्सुकता पूर्वक प्रतीक्षा कर रही है, किंतु वह नहीं आ रहा है। अब नायिका कामार्त्त होकर स्वयं नायक के पास जाती है। इस प्रकार की नायिका को **'अभिसारिका'** कहा गया है।

यद्यपि स्वकीया, परकीया एवं सामान्या—सब प्रकार की अभिसारिकाओं का कथन होता है, तथापि इसका औचित्य परकीया में ही है; उसीलिए शुक्ला, कृष्णा और दिवा आदि अनेक प्रकार की अभिसारिकाएँ परकीया में ही मानी गयी हैं। वैसे तो कवियों ने स्वकीया के अंतर्गत मुग्धा अभिसारिका का भी कथन किया है, किंतु उनका यह कथन अधिक उपयुक्त ज्ञात नहीं होता।

नायिका स्वयं नायक के पास गयी, किंतु जहाँ उससे मिलने की आशा थी, वहाँ नायक को न पाकर उसे अत्यंत व्यथा हुई। इस प्रकार की मनोदशा वाली नायिका को 'विप्रलब्धा' कहा गया है। कभी-कभी नायिका स्वयं नायक के पास न जाकर उसे अपने यहाँ सखी अथवा दूती द्वारा बुलवाती है। नायिका की भेजी हुई यह स्त्री नायिका का हित-संपादन तो नहीं करती, बल्कि स्वयं नायक के साथ प्रेम-संबंध स्थापित कर लेती है! जब वह स्त्री नायक का संदेशा लेकर नायिका के पास वापिस आती है, तो उसके रंग ढंग से नायिका ताड़ जाती है कि दाल में कुछ काला है! इस प्रकार की मनोदशा वाली नायिका को 'अन्यसंभोगदुःखिता' कहा गया है। इस नायिका को एक पृथक् वर्ग के अंतर्गत लिखा जाता है। दास ने प्रसंग के विचार से अन्यसंभोगदुःखिता को विप्रलब्धा के अंतर्गत लिखा है, किंतु इसका पृथक् वर्णन होना ही उचित है।

नायिका रात्रि भर नायक के लिए व्याकुल रही, किंतु वह किसी अन्य नायिका के साथ केलि-क्रीड़ा करता रहा। प्रातःकाल होने पर जब वह नायिका के पास आता है, तो उसके तन पर पर-स्त्री-संसर्ग के चिह्न देखकर नायिका को अत्यंत ईर्ष्या होती है। इस प्रकार की मनोदशा वाली नायिका को 'खंडिता' कहा गया है। पर-स्त्री-प्रेम का अनुमान होने पर नायिका को नायक के प्रति अनेक चेष्टाओं का वर्णन किया जाता है। नायक के कृत्य के लिए कभी नायिका व्यंग्योक्ति करती है, कभी उपालंभ देती है, कभी नायक के प्रेम के प्रति उदासीनता और विरक्ति का प्रदर्शन करती है, कभी अश्रु-पात करती है और कभी कटु वचनों द्वारा अपना रोष प्रकट करती है। इन सब चेष्टाओं का वर्णन धीरादि भेद के अंतर्गत होता है। धीरादि भेद स्वकीया नायिका के मध्या-प्रौढ़ा भेदों में माने गये हैं, किंतु दास ने धीरादि भेद, मानिनी और मानभेद को, तथा बिहारीलाल भट्ट ने अन्यसंभोगदुःखिता, मानिनी और मानभेद को खंडिता के अंतर्गत लिख कर क्रम के सूत्र को जोड़ने की चेष्टा की

है, किंतु उनका यह प्रयास आचार्यों की निश्चित प्रणाली के विरुद्ध है। बिहारीलाल भट्ट ने धीरादि भेद ज्येष्ठा-कनिष्ठा के अंतर्गत लिखे हैं, जो कुछ उचित भी ज्ञात होते हैं; फिर भी ज्येष्ठा-कनिष्ठा और धीरादि भेद पृथक्-पृथक् लिखने की ही प्रथा है।

खंडिता की स्थिति में नायिका नायक के कृत्य पर दुखित होकर उसका अपमान कर देती है, जिसके कारण नायक भी नायिका से रुष्ट हो जाता है। ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाने पर नायिका अपने कृत्य पर पश्चात्ताप करती है। इस प्रकार की मनोदशा वाली नायिका को 'कलहांतरिता' कहा गया है।

इसी प्रकार के गार्हस्थिक क्लेश अथवा किसी कार्यवश नायक परदेश जाना चाहता है, अथवा किसी अन्य कारण से उसका नायिका से वियोग होने वाला है। इस भविष्यत् वियोग की आशंका से दुखित नायिका को 'प्रवत्स्यत्प्रेयसी' कहा जाता है।

परदेश-गमन अथवा किसी अन्य कारण से नायक अपनी नायिका से पृथक होगया है। नायिका उसके वियोग में रात-दिन दुखी रहती है। विरह-व्यथा से व्यथित इस प्रकार की विरहिणी नायिका को प्रोषितपतिका'कहा गया है।

नायिका अधिक समय तक नायक के वियोग में दुखी रह चुकी है। अब उसका प्रियतम आने वाला है, अथवा आगया है। इस प्रकार अपने नायक के आगमन पर प्रसन्न होने वाली नायिका को 'आगतपतिका' कहा गया है। कुछ आचार्यों ने इस प्रकार की नायिका की मनोदशा को दो भागों में विभाजित किया है। नायिका ने नायक के आगमन का समाचार सुना है, किंतु वह अभी आया नहीं है। इस स्थिति की नायिका को 'आगमस्यत्पतिका' कहा जाता है। जब नायक आ जाता है, तब उसका स्वागत करने वाली नायिका को 'आगतपतिका' कहा गया है। अधिकांश आचार्यों ने इन दोनों का कथन न कर केवल आगतपतिका का ही उल्लेख किया है।

इस प्रकार नायिकाभेद की दस नायिकाओं का उनकी अवस्था के अनुसार क्रमबद्ध कथन किया जा सकता है।

अन्य नायिकाओं का क्रम—

स्वकीया नायिका के सबसे प्रमुख भेद वयक्रम के अनुसार मुग्धा, मध्या और प्रौढ़ा होते हैं। इनका क्रम सर्वथा उचित है। यद्यपि इन भेदों का कथन नायिका के वय-क्रम के अनुसार होता है, तथापि देव के अतिरिक्त कदाचित किसी भी प्रमुख आचार्य ने उनके वय-क्रम का विचार नहीं किया। देव ने

७ वर्ष से ३५ वर्ष तक की नायिकाएँ लिखी हैं और उनके नाम और वय का क्रमपूर्वक उल्लेख भी किया है। स्वकीया के अंतर्गत धीरादि भेदों का क्रम ठीक है।

परकीया नायिका के विभिन्न भेदों का परकीयत्व की विकसित अवस्था के अनुसार क्रम पूर्वक कथन नहीं किया गया है। इसका कारण यह हो सकता है कि आरंभिक आचार्यों ने तो परकीया के विस्तार में अपनी रुचि ही नहीं दिखलायी और परवर्ती आचार्य उसके भेदोपभेदों में उलझे रहे। उनकी दृष्टि में अष्ट नायिकाओं की तरह परकीया का क्रम पूर्वक कथन भी महत्वपूर्ण ज्ञात नहीं हुआ। रसलीन और दास ने परकीया के अनेक भेदोपभेद लिखकर उसका विशेष रूप से विस्तार किया है, किंतु अधिकांश आचार्यों ने उसके अनूढ़ा-ऊढ़ा और गुप्तादि छै भेदों का ही कथन किया है। अनूढ़ा और ऊढ़ा का वर्णन तो क्रमपूर्वक होना ही है, किंतु गुप्तादि भेदों को क्रमपूर्वक लिखने की आवश्यकता है।

हमने परकीयत्व के क्रमिक विकास पर दृष्टि रख कर परकीया का भी एक क्रम निश्चित किया है। संभव है इस क्रम में सुधार करने की आवश्यकता हो। हम स्वयं इस क्रम को निर्विवाद और भ्रांति-रहित नहीं मानते हैं। यदि इसमें अधिकारी विद्वानों द्वारा उचित सुझाव बतलाया गया, तो आगामी संस्करण में उसके अनुसार संशोधन कर दिया जावेगा।

परकीया का क्रम—

पर-पुरुष से प्रेम करने वाली स्त्री को परकीया नायिका कहते हैं। परकीयत्व की मनोभावना के अनुसार उसके भेदों को इस क्रम के अनुसार रखा जा सकता है—

१. **मुदिता**—पर-पुरुष से मिलने का संयोग उपस्थित होने पर मुदित होने वाली।

२. **विदग्धा**—पर-पुरुष से मिलने का अवसर आने पर अपनी मनोभिलाषा को संकेत द्वारा प्रकट करने वाली।

३. **अनुशयना**—पर-पुरुष से मिलने के संकेत-स्थानों के नष्ट हो जाने पर व्यथित।

४. **गुप्ता**—पर-पुरुष प्रेम को छिपाने की चेष्टा करने वाली।

५. **लक्षिता**—पर-पुरुष-प्रेम जब छिपाने से न छिप सके और वह सब पर प्रकट हो जावे, इस प्रकार की स्थिति वाली।

६. **कुलटा**—अनेक पुरुषों से संबंध रखने वाली व्यभिचारिणी स्त्री।

परकीया के क्रम का विवेचन—

परकीया के सर्व प्रथम अनूढ़ा और ऊढ़ा दो भेद लिखे जाते हैं। अविवाहित अवस्था में किसी पुरुष से प्रीति करने वाली कुमारी को 'अनूढ़ा' कहते हैं, और विवाहित होने पर भी अपने पति के अतिरिक्त किसी अन्य पुरुष से प्रेम करने वाली स्त्री को 'ऊढ़ा' कहते हैं। आजकल जिस अर्थ में परकीया का बोध होता है, उसे देखते हुए 'अनूढ़ा' को परकीया कहना ही व्यर्थ है। वास्तव में 'ऊढ़ा' ही परकीया नायिका है।

परकीया नायिका के गुप्ता आदि छै भेद और किये जाते हैं। कुछ आचार्यों ने इनको 'ऊढा' के भेद माने हैं, और दूसरों ने इनको पृथक् रूप से अवस्था के अनुसार परकीया के स्वतंत्र भेद लिखे हैं। यहाँ पर परकीयत्व की विकसित अवस्था के अनुसार उसके भेदों का क्रमबद्ध विवेचन करना है।

नायिका के मन में पर-पुरुष-प्रेम की भावना के उठते ही वह परकीया हो जाती है। वह किसी पुरुष से मन ही मन प्रीति कर सकती है; किंतु लोकाचार, कुल-मर्यादा और संबंधियों के भय के कारण उसको अपने प्रेमी से मिलने का अवसर अति काल तक प्राप्त नहीं होता। यदि संयोग वश ऐसा कोई अवसर आ जावे, जब वह अपने प्रेमी से मिल सके, तो उस समय वह अत्यंत मुदित होती है। इस प्रकार मुदित होने वाली नायिका को 'मुदिता' कहा गया है। आचार्यों द्वारा कथित परकीया के छै भेदों में उसकी आरंभिक अवस्था का बोध 'मुदिता' में ही हो सकता है। अतः अब तक के प्रायः सभी आचार्यों और कवियों की परंपरा के विरुद्ध हमने मुदिता से ही परकीया के क्रम का आरंभ किया है। अधिकांश आचार्य परकीया के भेदों को गुप्ता से आरंभ करते हैं। इसका कारण यह हो सकता है कि परकीया अपने कृत्य को गुप्त रखना चाहती है, अतः उसकी सर्व प्रथम अवस्था 'गुप्ता' ही समझी गयी है, किंतु गुप्ता को प्रथम रखने से उसका क्रमबद्ध कथन नहीं हो सकता है।

संयोगवश पर-पुरुष से मिलने का अवसर तो आ गया; किंतु जिस पुरुष के प्रति नायिका का प्रेम है, संभव है उसे इसका ज्ञान भी न हो। अब नायिका अपनी आंतरिक भावना को नायक पर प्रकट करना चाहती है, किंतु स्त्री-स्वभाव जनित लज्जा इस कार्य में बाधक हो रही है। उधर कामदेव अपने शस्त्रों का प्रहार कर रहा है। इस प्रकार बाध्य होकर नायिका

अपनी मनोभिलाषा को संकेत द्वारा नायक पर प्रकट करती है। यह संकेत क्रिया और वचन दोनों प्रकार की विदग्धता से हो सकता है। अतः इस अवस्था वाली नायिका को 'विदग्धा' कहा गया है और उसके 'क्रिया विदग्धा' एवं 'वचन विदग्धा' दो भेद किये गये हैं।

नायिका अपनी विदग्धा से जिन संकेत-स्थलों पर नायक से मिला करती थी, उनके अनायास नष्ट हो जाने पर उसे अपने प्रेमी से सुविधापूर्वक मिलने में बाधा उपस्थित हो जाती है; अथवा प्रेमी से मिलने का अवसर आने पर भी किसी हठात् बाधा से वह उससे मिलने में असमर्थ हो जाती है। इस प्रकार की अवस्था वाली चिंताकुला नायिका को 'अनुशयना' कहा गया है। अनुशयना के तीन भेद किये गये हैं, जो उसकी अवस्थाओं के सूचक हैं। जिस नायिका का 'सहेट' नष्ट होगया है उसे 'प्रथम अनुशयना', केलि-स्थान-विनाशिता अथवा स्थानविघट्टना आदि कई नामों से लिखा गया है। जिस सहेट में वह अपने प्रेमी से मिला करती थी, वहाँ भविष्य में किसी कारण वश न मिल सकने की आशका वाली अवस्था 'द्वितीय अनुशयना', भावीस्थानअभाव, भावीस्थानसाधन आदि कई नामों से लिखी गयी है। जो स्थान और समय प्रिय-मिलन के लिए निश्चित था, उस पर किसी कारणवश न जा सकने से व्यथित होने वाली नायिका को 'तृतीय अनुशयना', संकेतस्थलनष्टा आदि नामों से लिखा गया है।

नायिका गुप्त रीति से संकेत स्थानों पर अपने प्रेमी से मिला करती है। उसके दुष्कृत्य की किसी को कानों-कान ख़बर नहीं होती। कालांतर में किसी अवसर पर वे प्रेमी युगल एक साथ देख लिये जाते हैं, तब नायिका अपने कृत्य को छिपाने का यत्न करती है। इस प्रकार पर-पुरुष-प्रेम को छिपाने की चेष्टा करने वाली नायिका 'गुप्ता' कही गयी है। गुप्ता नायिका के कालानुसार तीन उपभेद होते है—भूत गुप्ता, भविष्यत् गुप्ता और वर्तमान गुप्ता। पर पुरुष-प्रेम की विगत घटना को छिपाने वाली 'भूत गुप्ता', भविष्य में होने वाली घटना को पहले से ही छिपाने की चेष्टा करने वाली 'भविष्यत् गुप्ता' और उपस्थित घटना को छिपाने का प्रयास करने वाली 'वर्तमान गुप्ता' कही जाती है।

छिपाने की चेष्टा करने पर भी जिस नायिका का पर-पुरुष-प्रेम सब पर प्रकट हो जावे, उसे 'लक्षिता' कहा गया है। परकीया नायिका की समस्त चेष्टाएँ गुप्त रहती हैं। मुदिता से गुप्ता तक के भेदों में परकीयत्व के उत्तरोत्तर

विकास की सूचना मिलती है । 'लक्षिता' की अवस्था में पहुँचने पर परकीयत्व एक निश्चित सीमा पर पहुँच जाता है। परकीया नायिका भी कुलशीला स्त्री होती है। वह अपनी प्रकृति की दुर्बलता के कारण किसी अन्य पुरुष से प्रीति तो करती है, किंतु लोकापवाद के भय से उसे सदा गुप्त रखने की चेष्टा करती रहती है । मुदिता से गुप्ता की अवस्था तक परकीया का प्रेम गुप्त रहता है। जब वह प्रेम प्रकट हो जाता है, तब परकीया नायिका 'लक्षिता' कहलाती है । पर-पुरुष-प्रेम के प्रकट हो जाने पर लोकापवाद से बचने के लिए वह अपने दुष्कृत्य को छोड़ भी सकती है, उस समय उसका परकीयापन समाप्त हो सकता है । दास आदि द्वारा परकीया के छूटे भेद 'कुलटा' का उल्लेख न होने का यह भी कारण हो सकता है। वास्तव में आचार्यों ने परकीया नायिका की भी एक मर्यादा बाँध दी है।

पर-पुरुष-प्रेम के प्रकट हो जाने पर कोई स्त्री या तो अपने कृत्य को सदा के लिए त्याग कर अपनी स्थिति साफ़ कर लेती है, अथवा दृढ़ता-पूर्वक उसी निंदित मार्ग पर खुले आम चलती रहती है। दूसरी स्थिति मे आने पर उस स्त्री का और भी नैतिक पतन हो सकता है, जिसके परिणाम स्वरूप वह एक ही उपपति से संतुष्ट न होकर अनेक पुरुषों की ओर भी आकर्षित हो सकती है। इस अवस्था वाली कामासक्ता व्यभिचारिणी स्त्री को 'कुलटा' नायिका कहा गया है। कुलटा मे परकीयत्व की चरम सीमा और उसका भयावह रूप दिखलाया गया है।

अधिकांश आचार्यों ने परकीया के जिन छै भेदों का उल्लेख किया है, उनका क्रमबद्ध विवेचन हो चुका। हमारा मत है कि 'लक्षिता' से 'कुलटा' की स्थिति तक पहुँचने के लिए एक भेद की और आवश्यकता है, जो परकीया की मध्यवर्ती अवस्था को प्रकट कर सके। लक्षिता की स्थिति मे परकीया का पर-पुरुष प्रेम प्रकट हो जाने पर कभी-कभी वह उसे छोड़ने मे भी अपने को असमर्थ पाती है। उस समय वह शांत भाव से धैर्य पूर्वक लोकापवाद को सहन करती रहती है । ब्रजभाषा के अनेक कवियो ने परकीया की इस असाधारण अवस्था का बड़ा मर्मस्पर्शी वर्णन किया है। परकीया प्रेम की इस दृढ़ता और अनन्यता की मुक्त कंठ से सराहना करनी पडती है। रसखान आदि प्रेमी भक्त कवियों ने श्री कृष्ण के प्रति गोपियों की ऐसी ही अनन्य भक्ति का कथन किया है । इस अवस्था की परकीया नायिका

'लक्षिता' के बाद 'कुलटा' नहीं हो सकती। लक्षिता के बाद की अवस्था को प्रकट करने के लिए परकीया के एक नवीन भेद की आवश्यकता है। दास ने परकीया प्रकरण के आरंभ से 'प्रगल्भा' और 'धीरा' नामक दो भेदों का कथन करते हुए धीरा की मनोदशा का ऐसा ही वर्णन किया है। इसलिए परकीया के इस नवीन भेद का नाम 'धीरा' या 'दृढ़ानुरागिनी' रखा जा सकता है। इस भेद का कथन परकीया के भेदों में लक्षिता के पश्चात् होना चाहिए।

परकीया के क्रमबद्ध कथन के लिए मुदिता से लक्षिता तक के भेदों का उल्लेख किया जा चुका है। लक्षिता से कुलटा की कड़ी मिलाने के लिए एक नवीन भेद की आवश्यकता भी बतलायी जा चुकी है; किंतु यह आवश्यक नहीं है कि परकीयत्व की अंतिम अवस्था कुलटा ही हो। परकीया का प्रेम किसी एक उप-पति से होता है। इसके लिए वह परकीयत्व की समस्त अवस्थाओं में होती हुई भी कुलटापन से अपने को बचा सकती है। कुलटा का संबंध अनेक पुरुषों से होता है; इसलिए एक ओर उसमें परकीयत्व की चरम सीमा है, तो दूसरी ओर परकीया के भेदों की मौलिक परंपरा से भिन्नता भी है। वास्तव में कुलटापन अतृप्त वासना जन्य मनोवृत्ति का कुफल है।

परकीया के पश्चात् 'सामान्या' नायिका का कथन होता है। व्रजभाषा कवियों ने इस नायिका का कोई भेद नहीं लिखा है, इसलिए उसके क्रम का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता है। नायिकाभेद के सैकड़ों कवियों में केवल रसलीन ही एक ऐसा व्यक्ति है, जिसने सामान्या के भेदों का भी कथन किया है; किंतु हम उसके क्रम पर विचार करना अनावश्यक समझते हैं।

———

दशम परिच्छेद

ब्रजभाषा-नायिकाभेद का काव्य-सौन्दर्य

★

नायिकाभेद के काव्य-कौशल की परख—

ब्रजभाषा साहित्य का नायिकाभेद काव्यबद्ध विवेचन है। ब्रजभाषा के सर्वश्रेष्ठ कवियों ने इस विषय का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करते हुए भी अपना मुख्य लक्ष अपनी काव्य-कला के प्रदर्शन की ओर रखा है। नायिकाभेद की रचनाओं में कवियों के काव्य-कौशल का परमोत्कृष्ट रूप दिखलायी देता है। यदि ब्रजभाषा साहित्य का सर्व श्रेष्ठ काव्य-सौन्दर्य देखना है, तो वह नायिकाभेद की रचनाओं में ही दिखलायी देगा। जो लोग मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के रूप में नायिकाभेद का महत्व स्वीकार नहीं करते, वे भी उसके अनुपम काव्य-सौन्दर्य की मुक्त कंठ से सराहना करते हैं। नायिकाभेद का काव्य-सौन्दर्य वास्तव में प्रशंसा की वस्तु है। इस विषय के वर्णन में कवियों की भाव-व्यंजना, कमनीय कल्पना, सराहनीय सहृदयता और प्रखर प्रतिभा का अपूर्व प्रदर्शन हुआ है।

ब्रजभाषा-नायिकाभेद के काव्य-सौन्दर्य की परख के लिए उपयुक्त छंदों के चुनाव का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता है। इस विषय का कोई भी छंद उठा लीजिये, उसमें कोई न कोई विशिष्ट साहित्यिक गुण अवश्य मिलेगा, और उसका काव्य-सौन्दर्य सहृदय एवं रसिक जनों को मुग्ध कर देगा। यहाँ पर स्थानाभाव से इस विषय के थोड़े ही छंद दिये जावेंगे, किंतु उनके रसास्वादन से ही पाठकों को ब्रजभाषा-नायिकाभेद के अनुपम काव्य-सौन्दर्य का आभास मिल जावेगा।

नायिका का चमत्कारपूर्ण कथन—

नायिकाभेद के आचार्यों की दृष्टि में नायिका शृंगार रस का मूर्तिमान स्वरूप है। इसी दृष्टिकोण से उन्होंने नायिका और उसके विभिन्न भेदों का कथन किया है। नायिका की परिभाषा करते हुए उन्होंने बतलाया है कि जिस रमणी के अवलोकन मात्र से चित्त में शृंगार रस का संचार हो, उसे नायिका कहते हैं। इस परिभाषा के अनुसार कवियों ने नायिका के उदाहरण

स्वरूप जिन छंदों की रचना की है, उनमें नायिका का बड़ा ही चमत्कारपूर्ण कथन किया गया है।

महाकवि मतिराम ने नायिका के स्वाभाविक सौन्दर्य का अनोखा वर्णन किया है। इस संबंध में उनका निम्न लिखित छंद इतना प्रसिद्ध है कि नायिका के सर्वोत्कृष्ट उदाहरण के लिए प्रायः उसे ही उपस्थित किया जाता है—

कुंदन को रंग फीको लगै, झलकै अंग चारु गोराई।
आँखिन में अलसानि, चितौनि में मंजु विलासन की सरसाई॥
को बिन मोल बिकात नहीं 'मतिराम' लहै मुसकानि मिठाई।
ज्यों-ज्यों निहारिये नेरे ह्वै नैननि, त्यों-त्यों खरी निकरै-सी निकाई॥

उसके अंगों के सुंदर गोरेपन की झलक से कुंदन का रंग भी फीका लगता है। उसकी आँखों में आलस्य और चितवन में अच्छे विलासों की सरसता है। उसकी मुसकान रूपी मिठाई के लेने पर ऐसा कौन है, जो स्वयं विना मूल्य न बिक जावे! साधारणतः किसी वस्तु का मूल्य देने से वह ग्राहक को बेच दी जाती है, किंतु उसके मुसकान की ऐसी अद्भुत मिठाई है, जिसके लिए स्वयं ग्राहक को ही बिकना पड़ता है, और वह भी बिना 'मूल्य! यहाँ प्रत्येक देखने वाले पर उसके सौन्दर्य का प्रभाव बतलाते हुए नायिका की सर्वमान्य परिभाषा की पुष्टि की गयी है। नायिका को जितना निकट से देखा जाता है, उसका सौन्दर्य उतना ही खरा अर्थात सच्चा या पक्का निकलता सा ज्ञात होता है। प्रायः बहुत सी वस्तुएँ दूर से देखने पर अच्छी मालूम होती हैं, किंतु निकट से देखने पर उनकी पोल खुल जाती है, पर उक्त नायिका को जितना ही अधिक निकट से देखा जाता है, उसकी सुंदरता उतनी ही बढ़ती हुई दिखलाई देती है।

इस छंद में नायिका के साज-शृंगार और उसकी तड़क-भड़क का वर्णन न होकर उसके स्वाभाविक सौन्दर्य का कथन किया गया है। नायिकाभेद के कवियों ने नायिका की तड़क-भड़क का भी बड़ा आकर्षक वर्णन किया है। महाकवि देव की इस नायिका को देखिये—

जगमगी जंतिन जराऊ माने-मोतिन की, चंद मुख-मंडल पै मंडित किनारी सी।
बेंदी बर बीर नगहीर नग-हीरन की, 'देव' झमकन में झमक भरि भारी सी॥
अंग-अंग उमड्यौ परत रूप-रंग, नव जोवन अनूपम उज्यारन उजारी सी।
डगर-डगर बगरावति अगर अंग, जगर-मगर आपु आवति दिवारी सी॥

उस नायिका के चंद्रमा सदृश मुख मंडल पर साड़ी की मणि-मोतियों से खचित किनारी जगमगा रही है। उसके मस्तक की बेंदी का हीरा और भी भारी 'झमक' पैदा कर रहा है। उसके प्रत्येक अंग से अनुपम रूप, रंग और नवयौवन उमड़ा पड़ता है। इस प्रकार मार्ग को अपने अंगों की सुगंध से सुवासित करती हुई वह साक्षात् दीपावली के समान जगर-मगर करती हुई चली आ रही है!

नायिका को स्नान कराने के लिए आई हुई नायन उसके अंगों की अपार शोभा को देखते ही किस प्रकार उबटन का कार्य भूल कर भौचक सी खड़ी रह जाती है, इसे निम्न छंद मे देखिये—

आई हुती अनह्वावन नायन सौंधे लिए बोह सौंधे सुभायनि।
कंचुकी छोरि धरी उबटेवे को, ईंगुर से अँग की सुखदायनि॥
'देव' सुरूप की रासि निहारति, पाँय ते सीस लो, सीस ते पाँयनि।
ह्वै रही ठौरई ठाढ़ी ठगी-सी, हँसे कर ठोड़ी दिये ठकुरायनि॥

नायन सीधे स्वभाव से नायिका को स्नान कराने के लिए आई है। ईंगुर के समान अंग वाली नायिका ने सुगंधित द्रव्य का उबटना कराने के लिए जैसे ही अपनी अँगी उतार कर रखी कि उसके खुले हुए अंगों की अपार शोभा के कारण नायन उसे ऊपर से नीचे तक देखती रह गयी! वह उबटना करना भूल कर आश्चर्य-चकित सी उसी स्थान पर खड़ी की खड़ी रह गयी! उसकी इस विचित्र दशा पर सीधे स्वभाव से हँसती हुई नायिका हाथ पर ठोढ़ी रख कर सोचने लगी कि आख़िर इस नायन को हो क्या गया है!

नायिका के अपूर्व रूप-लावण्य पर नायन का हतसंज्ञक होना और उस पर नायिका की माधुर्यमयी सरल स्वाभाविक चेष्टा का कैसा अद्भुत चित्र खींचा गया है। कविवर पद्माकर ने होली खेल कर आने वाली नायिका का दूसरा आकर्षक चित्र खींचा है—

आई खेलि होरी घरै नवलकिसोरी कहू, बोरी गई रंग मे सुगंधनि झकोरै है।
कहै 'पदमाकर' इकंत चलि चौकी चढ़ि, हारन के गारन ते फंद-बंद छोरै है॥
घाघरे की घूमनि सु ऊरुन दुबीचैं दाबि, अँगी हू उतारि सुकुमारि मुख मोरै है।
दतनि अधर दाब, दृनरि भई सी चापि, चौवर-पचौवर कैं चूनरि निचोरै है॥

नायिका कहीं पर होली खेल कर घर वापिस आयी है। वह रंग में शराबोर है, उसके सब कपड़े भीग गये हैं और उसके केश उसके हारों में उलझ

गये हैं। वह घर के एकांत स्थान पर जाकर और चौकी पर चढ़ कर हारों में से केशों को सुलझा रही है। वह अपने घूमदार घाँघरे को जाँघों के बीच में दाब कर और मुख को मोड़ कर अपनी आँगी उतार रही है। इसके साथ ही वह दाँतों से होठ दाबती हुई और झुकने के कारण कमान की तरह दुहैरा होती हुई अपनी भीगी चूँदरी को चार-चार, पाँच-पाँच तह में निचोड रही है। कैसा वास्तविक चित्र है!

नायिका का नख-शिख—

नायिका के रूप-लावण्य का विविध रूप से कथन करने के लिए कवियों ने उसके प्रत्येक अंग का पृथक्-पृथक् वर्णन किया है। यह वर्णन नायिका के चरणों के नखों से लेकर उसकी चोटी तक का किया जाता है, जिसके कारण वह 'नख-शिख वर्णन' के नाम से विख्यात है। ब्रजभाषा काव्य में नख-शिख का प्रचुर साहित्य है। इसमें नायिका के प्रत्येक अंग का वर्णन करते हुए कवियों ने अपनी सूझ, कल्पना और नाजुक ख्याली का अद्भुत परिचय दिया है।

चंद्रमा को प्रति दिन घटते-बढ़ते देख कर एक कवि कल्पना के सहारे नायिका के अनुपम मुखचंद का इस प्रकार वर्णन करता है—

आनद कौ कंद, बृषभानुजा कौ मुखचद लीला ही तें मोहन के मानस कौ चोरै है।
दूजौ तैसौ रचिबे कौ चाहत बिरंचि नित, ससि कौ बनावै, अजौं मन कौ न मोरै है॥
फेरत है सान आसमान पै चढाय, फेर पानिप चढाइबे कौ वारिध मे बोरै है।
राधिका के आनन कौ जोट न बिलोकै, बिधि टूक-टूक तोरै पुन टूक-टूक जोरै है॥

राधिका के मुख के समान दूसरा मुख बनाने के लिए ब्रह्मा प्रति दिन चंद्रमा पर अपनी कारीगरी का प्रयोग करता है। वह चंद्रमा पर शान फेरने के लिए उसे आसमान पर चढ़ाता है और उस पर 'पानी' चढ़ाने के लिए उसे समुद्र में डुबाता है! फिर भी वह उसे राधिका के मुख के समान नहीं बना पाता। तब वह प्रति दिन चंद्रमा मे तनिक-तनिक सी वृद्धि अथवा कमी करता हुआ उसे राधिका के मुख के समान बनाने की चेष्टा करता रहता है!

चंद्रमा के उदय-अस्त और घटा-बढ़ी की अन्योक्ति के बहाने नायिका के मुख की अनुपम शोभा का कैसा विचित्र कथन है! प्रति दिन की निरंतर चेष्टा के बाद स्वयं ब्रह्मा भी उसके मुख के समान दूसरा मुख नहीं बना पाता! एक दूसरा कवि उसके निर्माण की सामग्री जुटाने मे समस्त संसार के वैभव को लूट करा देता है! देखिये—

कोमलता कंज तें, गुलाब तें सुगंध लैकें, चंद तें प्रकास लैके उदित उजेरौ है।
रूप रति आनन तें, चातुरी सुजानन तें, नीर लै निसानन तें कौतुक निबेरौ है॥
'ठाकुर' कहत यों मसालौ बिधि कारीगर रचना निहारि जन होत चित चेरौ है।
कंचन कौ रंग लै, सबाद लै सुधा कौ, बसुधा कौ सुख लूटि कै बनायौ मुख तेरौ है॥

ब्रह्मा जैसे कुशल कारीगर ने नायिका के मुख निर्माणार्थ जो मसाला तैयार किया था, उसकी सामग्री का ब्यौरा सुनिये। कमल की कोमलता, गुलाब की सुगंध, चंद्रमा का प्रकाश, रति का रूप, सज्जनों की चतुरता, सोने का रंग और अमृत का स्वाद लेकर जो मसाला बनाया गया, उससे ब्रह्मा ने नायिका के मुख की रचना की! जब समस्त जगत् के सुख लूट हो गयी, तब कहीं नायिका का मुख बन सका!

नायिका के प्रत्येक अंग का वर्णन करते हुए कवियों ने जिन अद्भुत सूक्तियों का कथन किया है, उनका यथार्थ परिचय नख-शिख के ग्रंथावलोकन द्वारा ही हो सकता है। यहाँ पर स्थानाभाव से नख-शिख विषयक छंदों को उद्धृत करना संभव नहीं है।

स्वकीया नायिका—

नायिकाभेद की सर्वश्रेष्ठ नायिका स्वकीया है। जो विवाहिता स्त्री मन, वचन और कर्म से सदा अपने पति के अनुकूल रहे और स्वप्न में भी पर-पुरुष की ओर आकर्षित न हो, उसे स्वकीया नायिका कहते हैं। स्वकीया लज्जावती, पतिप्राणा, सुशीला, नम्र स्वभाव वाली और पति के परिवार वालों के प्रति विनय एवं आदर का भाव रखने वाली स्त्री होती है। स्वकीया से गृहस्थ की शोभा है।

भारतेन्दु हरिश्चंद्र जी ने इसी प्रकार की एक स्वकीया नायिका का कथन किया है। सास-जेठानियों की आज्ञा में रहना, ननद के अनुकूल रहना, दासियों तक से तीखी बात न कहना, सबका सम्मान करना, पति की कुप्रवृत्ति के लिए भी उसे दोष न देना और सौतों को आशीष देती हुई उनके सौभाग्य की कामना करते रहना स्वकीया का स्वाभाविक धर्म है—

सासु जेठानिन सों दबती रहै, लीने रहै रुख त्यों ननदी कौ।
दासिन सों सतराति नहीं, 'हरिचंद' करै सनमान सभी कौ॥
पाय कों दच्छिन जानि न दूषत, चाहुनो चाउ बढ़ै वा लाली कौ।
सौतिन हू का असीस सुहाग, भरे कर आपने सेंदुर टीकौ॥

संचार हो रहा हो, ऐसी लज्जाशीला किशोरी को मुग्धा कहते हैं। नायिकाभेद के कवियों ने मुग्धा का कथन करते हुए नायिका के बाल्य काल की विदाई और यौवन–आगमन का बड़ा मनोमुग्धकारी वर्णन किया है।

नायिका के बाल्य काल की नादानी दूर होने लगी। अब वह अपनी सखियों के साथ चतुरता की बातें करने लगी है। उसकी चितवन मे वक्रता आने लगी है और उसके चलने की गति धीमी हो गयी है। उसके अंगों मे यौवन की झलक आने लगी है और उसका बालपन धीरे-धीरे जा रहा है। उसकी कमर छट कर छोटी होने लगी है। दोज के चंद्रमा के समान उसके अंगों की आभा प्रति दिन बढ़ने लगी है—

बिछुरन लागे बालपन के अयानप,
सखीन सों सयानप की बतिया गढ़ै लगी।

दृग लागे तिरछे, चलन पग मंद लागी,
उर मे कछुक उकसन सी चढ़ै लगी॥

अंगन मे आई तरुनाई की झलक,
लरिकाई अब दह तें हरैं-हरैं कढ़ै लगी।

होन लागी कटि अब छुटिकै छला सी,
द्वैज-चद की कला सी दिन दीपत बढ़ै लगी॥

भारतेन्दु हरिश्चंद्र जी कहते हैं कि नायिका के तन से शिशुता अभी पूरी तरह दूर भी नहीं हुई कि वह यौवन–ज्योति का संचय करने लगी। पति की चर्चा होने पर वह उसे ध्यान पूर्वक कान लगा कर सुनती है, किंतु ऊपर से अपना रोष सा दिखलाती हुई भौंहों को टेढ़ा करती है। सास और जेठानियों से बचती हुई वह घूँघट में ही अपने पति की ओर छिपे–छिपे देखने लगी है। इस प्रकार वह उल्लास पूर्ण दुलहिन कुछ दिनों से मानो अपने अंगों से अमृत सा निचोड़ने लगी है—

सिमुताई अजौं न गई तन तें, तऊ जोबन–जोति बटोरै लगी।
सुनिकै चरचा 'हरिचद' की कान कछुक दै, भौंहे मरोरै लगी॥
बचि सासु-जेठानिन सों, पिय तें दुरि घूँघट मे दृग जोरै लगी।
दुलही उलही सब अंगन तें, दिन द्वै तें पियूष निचोरै लगी॥

जिस मुग्धा नायिका को अपने यौवन–आगमन का ज्ञान न हो, ऐसी अबोधावस्था वाली किशोरी को 'अज्ञात यौवना' कहते हैं। अज्ञात यौवना

अपनी शारीरिक और मानसिक अवस्था में अपूर्व आनंददायक और विचित्र परिवर्तन का अनुभव करती हुई भी उसका कारण नहीं समझ पाती है।

एक बाला दुलहिन अपने प्रियतम के साथ आँख-मिचौनी खेल रही है। जब नायक खेल में नायिका की आँखें बंद करता है, तो उसके स्पर्श-सुख के कारण नायिका की बे-जानकारी में भी उसे कामोद्दीपन होने लगता है, जिसके फल स्वरूप नायिका के नेत्रों मे सात्विक अश्रु आ जाते हैं। अबोधा नायिका को इसका वास्तविक कारण ज्ञात नही होता है। वह समझती है कि नायक अपने हाथों मे कपूर लगा कर उसकी आँखे बद करता है, जिसके कारण उसकी आँखों से पानी बहने लगता है! नायिका यही शिकायत करती हुई नायक के साथ खेलने को मना कर रही है—

लाल! तिहारे संग मे, खेले खेल बलाय।
मूंदत मेरे नैन हो, करन कपूर लगाय॥

इसी प्रकार की एक अज्ञातयौवना नायिका अपने नायक के साथ अन्य दिनों की भाँति आँख-मिचौनी खेलने गयी थी। खेल में नायक के शरीर का स्पर्श होने से नायिका को कामोद्दीपन हुआ, जिसके कारण उसे कंप, स्वेद और रोमांच हो आया। नायिका के लिए आज यह नयी बात थी, क्यों कि ऐसा पहले कभी नहीं हुआ था। वह इसका कारण न समझती हुई अपनी सखी से इस नवीन घटना की आश्चर्य पूर्वक चर्चा कर रही है—

खेलन चोर-सिहीचनी आजु, गई हुता पाछिले द्यौस की नाई।
आली! कहा कहौं एक भई, 'मतिराम' नई यह बात तहाँई॥
एकहि भौन दुरे इक सगहि, अंग सो अंग छुवायौ कन्हाई।
कंप छुट्यौ, घन स्वेद बढ्यौ, तन रोम उठे, अँखिया भरि आईं॥

जब मुग्धा नायिका को अपने यौवन का ज्ञान होने लगता है, तब वह 'ज्ञात यौवना' कहलाती है। यौवन-आगमन के कारण नायिका का कटि-प्रदेश क्षीण हो रहा है और उसकी चितवन मे वक्रता आ गयी है। उभरे हुए उरोजों पर से अंचल हट जाने पर वह लज्जा का अनुभव करने लगती है। बाल्यावस्था के खेल छोड़ कर अब वह सयानी सखियों के सपर्क में रहने लगी है। दो-एक दिन से तो वह अपने पति का नाम सुनते ही छिपती और मुड़ती हुई मुसकाने भी लगी है—

छुटिकै कटि रंचक छीन भई, गति नैननि की तिरछानि लगी ।
'ससिनाथ' कहै, उर ऊपर तें अँचरा उघरे ते लजान लगी ॥
लरकाई के खेल पछेल कछूक, सयानि सखीन पत्यान लगी ।
पिय नाम सुने तिय बीसक ते, दुरिकै-मुरिकै मुसक्यान लगी ॥

मध्या—

मुग्धत्व की अवस्था के उपरांत जब नायिका में लज्जा की कुछ न्यूनता और काम की कुछ अधिकता होने लगती है, तब वह मध्या कहलाती है। मध्या में लज्जा और काम दोनों समान रूप से होते हैं। मध्या नायिका के कथन में कवियों ने लज्जा और काम के संघर्ष का अद्भुत वर्णन किया है।

नायिका अपने प्रियतम का भली भाँति मुख देखना चाहती है, किंतु उसकी आँखें संकोच वश उसकी मनोभिलाषा को पूर्ण नहीं कर पातीं हैं। उसका मन चाहता है कि वह नायक से कुछ बातचीत करे, किंतु लज्जा वश उसका मुख कुछ कहने के लिए खुलता ही नहीं है। उसकी बाहें प्रियतम से भेंट करने को फड़कती हैं, किंतु वह जिह्वा से 'नहीं-नहीं' कहने को बाध्य है। इस प्रकार काम और संकोच दोनों के बीच में आज उसकी ऐसी शोचनीय दशा हो गयी है, जैसी दो राजाओं की प्रजा की होती है—

देखयौं चहै पिय कौ मुख, पै अँखिया न करे जिय की अभिलाखी ।
चाहति 'सभु' कहै मन मे, बतियाँन सो सो नहिं जाति है भाखी ॥
भेटिबे को फरकै भुज, पै कहि जीभ ते जाइ नहा-नहीं भाखी ।
काम संकोच दुहून बह बलि, आज दुराज-प्रजा करि राखी ॥

वह नायिका अपने प्रियतम को बिना ओट किये देखना भी चाहती है और उसे घूँघट खोलते भी नहीं बनता है। वह अपने पति का संग छोड़ना भी नहीं चाहती और संकोच वश काम-क्रीड़ा भी नहीं कर सकती। वह बात करना चाहती है, पर कर नहीं पाती, किंतु उससे बिना बोले भी नहीं रहा जाता। इस प्रकार उस नायिका का मन हिंडोले की भाँति लज्जा और काम के बीच में झूल रहा है—

पेख्यौं चहै पिय को बिन ओट, बनै न कछू बिन घूँघट खोलै ।
भावै न संग छुट्यौ पति कौ, सकुचै, न करै कछु काम-कलोलै ॥
चाहति बात कह्यौ, न कह्यौ, पर जात रह्यौ न रहै बिन बोलै ।
झूलत है मन प्रान-पियारी कौ, लाज-मनोज के बीच हिंडोलै ॥

प्रौढ़ा—

मध्या की अवस्था के उपरांत जब नायिका में लज्जा की भावना और भी कम हो जाती है, तब वह निस्संकोच भाव से अपने प्रियतम के साथ केलि-क्रीड़ा में संलग्न होने लगती है। प्रौढ़ा में लज्जा की न्यूनता एवं काम की अधिकता होती है और वह रति-कला में परम प्रवीण होती है। प्रौढ़ा के दो भेद रतिप्रीता और आनंदसंमोहा में उसकी रतिप्रियता और केलि-क्रीड़ा जनित आनंद में निमग्न होने की अवस्था का वर्णन किया जाता है।

कोक-कला में निपुण और शोक को दूर करने वाली प्रौढ़ा नायिका अपने प्रियतम के साथ रात्रि भर आनंद-विहार करने के कारण कामदेव के बाणों को भूल गयी है। उसी समय आकाश में प्रातःकालीन ऊषा की अरुणिमा देख कर उसे अत्यंत व्यथा होने लगी। उसे स्मरण हुआ कि दिन निकलने पर उसे नायक से पृथक् होने का दुःख सहन करना पड़ेगा। इसके लिए उसने एक उपाय किया। उसने शीत की वायु से बचने के बहाने दरवाज़ों के परदों की डोरियाँ खोल दीं। परदों के गिराने से उसका यह अभिप्राय था कि नायक को प्रातःकाल होने का ज्ञान न होगा और इस प्रकार वह उसके शीघ्र वियोग के कष्ट से बच सकेगी—

कोक की कलन बारी, सोक की दलन,
निसि कीन्ही सब बातें घातें सीति गरदन की।
आनँद-मगन सो 'प्रवीन बेनी' प्यारे पास,
भूलि गई बिपदा मनोज करदन की॥
बिलखी बिकल ऐसी नभ में ललाई लखि,
आवन सुरति लागी दिन-दरदन की।
सीत सों सभीत सी समार के बहाने गोरि,
छोरि दीन्ही डोरी बेग दौरि परदन की॥

धीरादि भेद—

मध्या और प्रौढ़ा के अंतर्गत निज पति को अन्य स्त्री पर आसक्त जान कर कुपित होने वाली नायिका के धीरा, अधीरा और धीराधीरा नामक तीन भेद होते हैं। गुप्त कोप करने वाली नायिका को धीरा, प्रकट कोप करने वाली को अधीरा और कुछ गुप्त एवं कुछ प्रकट कोप करने वाली को धीराधीरा कहते

है। धीरा नायिका हृदय में कुपित होते हुए भी प्रकट रूप से अपना रोष प्रकट नहीं करती है, वरन् व्यंगोक्ति अथवा केलि-कला के प्रति उदासीनता द्वारा अपनी खिन्नता प्रकट करती है। अधीरा नायिका प्रकट रूप से नायक को फटकारती है। धीराधीरा रोदन एवं मान प्रदर्शन द्वारा अपना कोप प्रकट करती है।

कोई नायक रात्रि भर कहीं रम कर प्रातःकाल अपनी नायिका के पास आया है। रात्रि–जागरण के कारण उसके नेत्र लाल हो रहे हैं। वह कुछ झेंपता हुआ नायिका की ओर भली भांति देखता नहीं है। नायिका उसकी करतूत समझ कर हृदय मे दुखी है, किंतु ऊपर से व्यंगोक्ति द्वारा उसके नेत्रों की अरुणिमा का मज़ाक उड़ा रही है।

नायिका कहती है—हे सुख देने वाले घनश्याम! ऐसी रुखाई क्यों कर रहे हो, ज़रा मेरी ओर दृष्टि तो कीजिये। कमल, गुलाब और गुलाल की अरुणिमा की भी ऐसी शोभा नहीं होती, जैसी आज आपके नेत्रों की हो रही है। धन्य है उस रंगरेजिन की चतुरता, जिसने ऐसा गहरा रंग लगाया है। हे लाल! सच–सच बतलाइये, आपने इन नेत्रों की ऐसी बढ़िया रंगाई के लिए क्या दिया है? मध्या धीरा का कैसा अच्छा उदाहरण है—

क्यों घनस्याम अबै दु–चितै भए मो तन दीठि करो सुखदाई।
कंज–गुलाबहु की अरुनाई न लाल गुलालन की सरसाई॥
पतेहु पै इतनी गहिरी रंग, बनि है रंगरेजिन की चतुराई।
साँची कहौ इन नैननि-रंग की, दीन्ही कहा तुम लाल! रंगाई॥

अपने नायक की दिन–रात की हरकत से नायिका अत्यंत दुखी है। वह प्रायः अश्रु–पात किया करती है। कभी कभी वह मान भी कर बैठती है। एक दिन पर-स्त्री संसर्ग के चिह्न देख कर नायिका अपने नायक से मान कर बैठी और अपने नेत्रों से अश्रु-पात करने लगी। नायक उसे मनाने की चेष्टा करने लगा। इस पर नायिका कहती है—मेरे अश्रुओं को देख कर आप मुझे मानिनी कैसे कह रहे हैं! आँखों से पानी तो बहता ही रहता है, यह तो आँखों का स्वाभाविक धर्म है। आप भी तो संध्या-सवेरे मेरी आँखों से पानी बहते देखते ही हैं, आज यह कोई नयी बात तो है नहीं! इस हृदय मे भी इतने घाव हो गये हैं कि उनको कहा नहीं जा सकता। हे लाल! ज़रा विचारिये तो सही, जिसकी आँखों से सदा पानी बहता रहता है और जिसके हृदय मे अनेक छिद्र हो गये है, वहाँ मान टिक कैसे सकता है! नेत्रों के जल से वह

बह न जायगा और हृदय के अनेक छिद्रों में होकर वह निकल न जायगा। आप व्यर्थ ही मुझे मानिनी-मानिनी कह कर अपनी बकवाद से मेरे जी को जला रहे हो।' नायिका के अश्रु-पात और उसकी नरम-गरम उक्तियों के कारण यह धीराधीरा का अच्छा उदाहरण है—

आँखिन के जल की जु है रीति, सदा तुम सोभ-हू-भोर निहारत।
तैं 'द्विजदेव' जू क्यों कहि जाय, परे छत जे हिय कों करे आरत॥
बात बिचारिबे की यह लाल! कहा बकवाद कै मो तन जारत।
मान रहैगो कितै बलि जाउँ, सो मानिनी! मानिनी!! काहि पुकारत॥

किसी अन्य स्त्री से संसर्ग करने के बाद जब नायक नायिका के पास आता है, तो यह उसका रंग-ढंग देख कर आपे से बाहर हो जाती है। वह क्रोधावेश में कटु शब्दों द्वारा नायक को फटकारती है। नायिका कहती है—'आज आप किसके पास चले आये; मालूम होता है कि आप मकान भूल कर इधर आ निकले हैं! अपनी डगमगाती चाल, आनन्द-थकित देह, ढीली पाग और नेत्रों की अरुणिमा पर भी आपको लज्जा नहीं आती; आप बहुत अच्छी पट्टी पढ़े हैं! हे ब्रजराज! अब कोई और उपाय करने की आवश्यकता नहीं है। जाइये, जाइये, जहाँ इच्छा हो वहीं जाइये! मैं अब भली भाँति समझ गयी कि 'घर की मिश्री फीकी लागै, चोरी कौ गुड मीठो' वाली कहावत बिलकुल सच्ची है।' ग्वाल कवि ने नायिका के प्रकट कोप और उसकी कटूक्तियों का कैसा ज़ोरदार वर्णन किया है—

आए पास कौन के हौ, भले कौन भौन के हौ,
डगमग गौन के हौ, देह मौज-मार्चा है।
पाग पेच ढीले भए, दृग उनमीले भए,
लऊ न लजीले भए, पाठा भली चार्चा है॥
'ग्वाल' कवि और न उपाय ब्रजराज अब,
जाउ-जाउ जहाँ चाउ, मैं तौ यह जार्चा है।
घर की जो मिसरी सो फीकी सी लगन लागै,
मीठो गुड चोरी कौ, कहन यह साँची है॥

परकीया—

पर-पुरुष से प्रीति करने वाली स्त्री परकीया नायिका कहलाती है। व्रजभाषा-कवियों ने परकीया की दयनीय दशा, वेदनामयी परिस्थिति और

उसके प्रेमोन्माद का बड़ा ही मर्मस्पर्शी कथन किया है। रूप के लालच में जो स्त्रियाँ पर-पुरुष से प्रेम करने लगती हैं, उनके हृदय की तपन, कसक और निराशा का ऐसा करुणापूर्ण कथन किया गया है, जिसे पढ़ कर किसी को भी इस मार्ग पर चलने का साहस नहीं होना चाहिए।

राजा शंभुनाथ ने दही बेचने वाली एक ऐसी ग्वालिनी का कथन किया है, जो प्रेम-कंकरी का कलेजे में घाव लिए तड़फड़ा रही है। वह कहती है—'सास ने मुझसे दही बेच आने को कहा। हाय! वह कैसी कुवड़ी थी, जब दुःखदायी विधना ने मुझसे सास के उक्त कथन पर 'हाँ' करा ली। दही बेचने जाते समय मुझे उस तंग रास्ते में तमाल वृक्ष के नीचे खड़े हुए गोपाल मिले। उन्होंने अपनी बड़ी-बड़ी आँखों से मुझे ताका और शैतानी करते हुए मेरे तन पर कंकरी फेंक कर मारी। उस कंकरी को मैंने अपने हाथ से रोक लिया था; पर न जाने वही कंकरी मेरे कलेजे में कैसे गड़ गयी! देखिये—

सासु कह्यौ दधि बेचन कौं, सु दई दुखदाई कहाँ ते धौं हा करी।
मोहि मिले 'नृपसभु' गोपाल, तमाल तरैं वो गैल जो साँकरी॥
मो तन ताकि बड़ी अँखियाँन तें, कांकरी लै फिर मो तन घाँकरी।
काँकरी ओढि लई कर तें, पै करेजै कहाँ लौं गई गढि काकरी॥

पर-पुरुष-प्रेम के फंदे में फँसी हुई एक परकीया नायिका अपना दुखड़ा इस प्रकार रो रही है। वह कहती है—'मेरे प्राण रात-दिन घुटते रहते हैं और मेरी दुखिया आँखों से रात-दिन झरना सा झरता रहता है। मेरे अंतस्तल में प्रियतम की याद पँसलियों की टीस की भाँति कसकती रहती है। चारों ओर लोग मुझ पर चबाब करते हुए हँस रहे हैं। ऐसे प्रेम की फाँसी में पड़ने की अपेक्षा तो मरना ही भला है।' घनानंद कहते हैं—

रैन-दिना घुटिबौ करैं प्रान, झरैं अँखियाँ दुखियाँ झरना सी।
प्रीतम की सुधि अंतर मैं, कसकै सखि! ज्यों पँसुरीनि मे गाँसी॥
चौचँद चार चबाइन के चहु ओर मचै, बिरचै करि हाँसी।
यों मरियै भलयै कहि क्यों सु परौ जनि कोऊ सनेह की फाँसी॥

ऐसी ही एक दूसरी नायिका की करुण कहानी सुनिये। वह कहती है—'उनकी छवि रूपी पिंजरे में बंद मेरे खंजन रूपी नेत्र फड़फड़ा रहे हैं। उनको किसी प्रकार भी स्थिरता प्राप्त नहीं होती है। जब से मैंने उनकी सुंदर

मुसकान देखी है, तभी से कुल की लज्जा भी छूट गयी। मेरी सब देह चित्र की लिखी सी जड़वत् हो गयी है और मेरे मुख से शब्द तक नहीं निकलता है। हाय, मैं क्या करूँ! मेरी ऐसी दशा हो गयी है कि जहाँ भी जाती हूँ, वहीं सब लोग चिल्ला उठते हैं, देखो यह पगली आ रही है'—

खंजन नैंन फँदे छवि-पिंजरा, नाहिं रहे थिर कैसेउ माई।
छूटि गई कुल-कानि सखी, 'रसखान' लखी मुसिकानि सुहाई॥
चित्र लिखी सी भई सब देह, न बैन कहैं, सुख दीनि दुहाई।
कैसि करौं, जित जाउँ तितै, सब बोलि उठैं जे बावरि आई॥

इस प्रकार के प्रेम का भयंकर परिणाम सब जानते हैं, किंतु फिर भी उससे बचना बड़ा कठिन है। जो स्त्रियाँ दुर्भाग्य से इस मार्ग पर चल पड़ी हैं, उनको सीधे मार्ग पर लाना तो और भी कठिन है। ऐसी ही एक नायिका की उक्ति उसकी सखी के प्रति सुनिये। वह कहती है—'लोक की सब चालों को मैं भी जानती हूँ, मुझे यह सब क्या बतला रही हो! तुम तो मेरी सखी कहलाती हो, इसलिए तुमको वही काम करना चाहिए, जिसमें मेरा हित बनता हो। हे सजनी! तुम्हारे समझाने से क्या लाभ है, जब मेरा मन ही मेरे हाथ में नहीं है'—

हम हू सब जानतीं लोक की चालनि, क्यों इतनौ बतरावती हौ।
हित जामैं हमारौ बनै सो करो, सखिआँ तुम मेरी कहावती हौ॥
'हरिचंद जू' जामैं न लाभ कछू, हमैं बातनि क्यों बहरावती हौ।
सजनी! मन हाथ हमारे नहीं, तुम कौन कौं का समुझावती हौ॥

एक और परकीया नायिका कहती है—'व्रज की गलियों में फिरने के लिए मुझसे पहले ही बड़े-बूढ़ों ने मना किया था, किंतु मेरी कुछ ऐसी बुद्धि हुई कि मैंने उनका भी कहा नहीं माना। अब तुम भी मुझे क्या समझाती हो; विधना ने मेरे भाग्य में जो लिखा था, वही हुआ है। हे सखी! अब तो उस मनमोहन के हाथ में अपनी लोक-लज्जा देकर बदले में बदनामी ले ली है!' इनुमान द्वारा इस निराश परकीया का चित्रण देखिये—

व्रज-बिथिन मे फिरिबे के लिऐ, गुरु-लोगन हू मिलि कीन्ही खई।
पर मान्यौ नहीं उन हू कौ कह्यौ, जिय ऐसी कछू मति आनि ठई॥
तुम हू अब का समुझावती हौ, विधि ने 'हनुमान' लिखी सो भई।
अब तौ मनमोहन हाथ सखी! कुल-कानि दई, बदनामी लई॥

जब परकीया नायिका लोक-लज्जा और कुल-मर्यादा की परवा न कर प्रेम-मार्ग में बहुत आगे बढ़ जाती है, और वहाँ से वापिस आने में अपने को असमर्थ पाती है, तब उसे हितकारिणी सखी-सहेलियों की शिक्षा भी बुरी लगती है और वह डंके की चोट अपने प्रेम की घोषणा करती हुई कहती है—संसार चाहे पसंद करे या न करे, पर मुझे तो यही कार्य करना है।

ठाकुर कवि की परकीया नायिका दृढ़ता पूर्वक कहती है—'अजी! मैं कुराह पर चली हूँ, तो मुझे चलने दो, तुम औरों को तो कुराह पर चलने से रोको। मैं अपने प्रेम को छिपाती नहीं हूँ, तुम सब सुन लो, मैं गला फाड़ कर कहने को तैयार हूँ कि मैंने गोपाल से प्रेम किया है। मुझे जो अच्छा लगा, वह मैंने किया। मेरा यह कृत्य तुम्हें अच्छा लगे तो ठीक और अच्छा न लगे तो ठीक!' कैसी अद्भुत दृढ़ता है—

हम एक कुराह चला तौ चली, हटको इन्हैं ए ना कुराह चलै।
इहि तौ बलि आपुनौ सुकृती है, प्रन पालिऐ सोई, जो पालै पलै॥
कवि 'ठाकुर' प्रीति करी है गुपाल सों, टेरें कहौ, सुनौ ऊँचे गलै।
हमैं नीकी लगी सो करी हमने, तुम्हैं नीकी लगौ, न लगौ तौ भलै॥

गर्विता—

अपने प्रियतम के प्रेम अथवा अपने रूप का गर्व करने वाली नायिका को गर्विता कहते हैं। 'दास' ने एक प्रेम-गर्विता नायिका का अद्भुत चित्र खींचा है। नायिका की विविध प्रकार की सेवा के लिए नायन आयी है, किंतु उसे करने के लिए कोई कार्य ही नहीं है। प्रेमानुरक्त नायक ने स्वयं ही सब प्रकार की सेवा-चाकरी कर डाली है! नायक के इस अनौचित्य-कथन के बहाने नायिका अपने प्रति उसके प्रेम का गर्व कर रही है। वह नायन से कहती है—जब नायक 'मेरे स्नान का समय देखता है, तब साज-शृंगार की आवश्यक सामग्री लेकर पहले से ही आगे आकर बैठ जाता है। 'तुम नायक हो, यह कार्य तुम्हारे करने योग्य नहीं है'—ऐसा कह कर मैं कितना समझाती हूँ, किंतु उसकी समझ में आता ही नहीं है। यहाँ तक कि मेरे मना करने पर भी वह अपने हाथ से ही मेरे पैरों में महावर भी लगा देता है। क्या करूँ नायन! तुमसे महावर लगवाने की मेरी बड़ी इच्छा है, किंतु अपने नायक के कारण लाचार हूँ।' इस प्रेमगर्विता नायिका का अनोखा शब्द-चित्र देखिये—

न्हान-समै जब मेरौ लखै, तब साज लै बैठत आनि अगाऊँ ।
नायक हौं, जे न राउरे लायक, यों कहि हौं कितनौ समझाऊँ ॥
'दास' कहा कहौं पै निज हाथई देत, न हौं हू सम्हारन पाऊँ ।
सोय तौ साथ महा ·उर मे, जो महाउर नाइन ! तोसों दिवाऊँ ॥

नायिका अपने रूप का गर्व करती हुई कहती है—अरे, इस भौंरे ने तो मुझे परेशान कर डाला ! 'आम्र-वृक्ष की रसीली मंजरी को छोड़ कर, सरस गुलाब के पुष्पों में से निकल कर और सुंदर कमलों के बन का किनारा परित्याग कर वह इसी ओर गूंजता हुआ आ रहा है । हे सखी ! तेरी शपथ पूर्वक कहती हूँ, वह मेरे मुख की सुगंध के सहारे गूँज-गूँज कर अभी यहाँ धूम मचा देगा । उससे बचने के लिए मैं भूल कर भी घर से बाहर नहीं निकलूँगी । क्या करूँ मैं तो इस पागल भ्रमर से ऊब गई हूँ ।' हरिऔध जी ने भ्रमर की शिकायत के बहाने नायिका के रूप-गर्व का कैसा अनोखा वर्णन किया है—

छोरि-छोरि आम की रसीली मंजरीन कहि
निकसि गुलाब के प्रसून रसवारे में ।
गुंजरत याही ओर देख वह आवतु है,
अति कमनीय कंज-बन के किनारे में ॥
'हरिऔध' की सौं, आय अब ही मचैहै धूम,
गूंजि-गूंजि आनन-सुवास के सहारे में ।
भूलि अब भौन तें न बाहर कढ़ौंगी कबौं,
ऊबि हौं गई री, या मलिंद मतवारे में ॥

एक दूसरी रूपगर्विता की उक्ति सुनिये । प्रातःकाल हो गया है । नायिका अँगड़ाई लेती हुई और अपने अंगों की सुगंध के झकोरों से भू-मंडल को सुवासित करती हुई उठी है । स्नानार्थ सरोवर पर जाने की तैयारी हो रही है । उसी समय अपने अनुपम रूप को देख कर नायिका के दृष्टिकोण में गर्व का आभास होने लगा । उसने अपने प्रियतम से कहा कि मैं सरोवर पर स्नान करने नहीं जाऊँगी । सरोवर पर न जाने का कारण भी विचित्र था । नायिका ने सोचा कि उसके चंद्रमा सदृश मुख को

देख कर सरोवर के फूले हुए कमल कुम्हला जावेंगे। व्यंग्यार्थ से रूपगर्विता नायिका का कैसा सुंदर वर्णन है—

रंग घने पति-प्रेम सने, सब रैन गने, मन मैन हिलोरन।
अंगन मोति भोर उठा, छिति पूरति अंग-सुगंध झकोरन॥
रूप अनूप निहारि-निहारि, गुमान जनाय कह्यो दृग-कोरन।
नंदकिसोर अहो चितचोर, न जाउँ मैं न्हान सरोवर ओरन॥

अन्यसंभोगदुःखिता—

अन्य स्त्री के तन पर अपने प्रियतम के प्रीति-चिह्न देख कर दुखित होने वाली नायिका को अन्यसंभोगदुःखिता कहा जाता है। नायिका ने अपनी एक सखी को अपने प्रियतम के पास उसे बुलाने के लिए अथवा कोई संदेशा देने के लिए भेजा है। उस सखी ने नायिका का प्रिय कार्य तो नहीं किया, वरन् स्वयं ही उक्त नायक के प्रेम में फँस गयी! नायिका सखी के आगमन की प्रतीक्षा कर रही है, उधर वह विश्वासघातिनी सखी नायक के साथ सुखोपभोग कर रही है। जब वह सखी नायिका के पास वापिस गयी तो उसके रंग-ढंग से वह सब बातें जान गयी। नायिका अपनी सखी के इस कृत्य से हृदय में अत्यंत दुखित है, किंतु ऊपर से व्यंग-बाणों की वर्षा करती हुई उसे लज्जित कर देती है।

नायिका कहती है—अरी सखी! यह तुझे क्या हो गया है? 'तू उदास सी दिखलायी देती है और तेरे चेहरे पर पीलापन छा गया है। तुझको अपने-पराये की भी सुध नहीं है। तू कहना कुछ और चाहती है, किंतु तेरे मुँह से निकलता कुछ और है। मैं देखती हूँ कि तेरी हालत आज पागलों की सी हो रही है। मुझ पर वज्र पड़े, हाय! मैंने क्यों तुझे वहाँ भेज दिया, जिसके कारण तुझ पर उस ज़ुल्फों वाले की नज़र लग गयी! ज़रा स्थिर होकर तो बैठ; मैं नज़र दूर करने के लिए तुझ पर राई-नौन वारती हूँ। अरी, तू तो मेरी बालपन की सहेली है, तेरी इस दशा पर मेरा चिंतित होना स्वाभाविक ही है!

कैसी व्यंग्योक्ति है! बालपन की साथिन वह कर तो मानों उस पर सैकड़ों घड़े पानी डाल दिया। अपनी बालपन की सहेली के साथ भी तुझे विश्वासघात करते हुए लज्जा नहीं आयी—

आई अनमनी ह्वै बदन पियराई छाई,
सुधि न रही है कछू आपने पराये की।
कहति कछू है, मुख कहत कछू को कछू,
देखति हौं आजु तेरी गति मतवारे की॥
नैक थिर ह्वै कै बैठि, राई-नौन वारौं तोपै,
तू तौ 'हनुमान' मेरी साथिन है बारे की।
बजर परौ री मोपै, पठई कहाँ तैं तहाँ—
नजर लगी री तोहि जुलफन वारे की॥

एक दूसरी अन्यसंभोगदुःखिता अपने नायक के पास से आयी हुई सखी की अस्त-व्यस्त दशा देख कर उससे कहती है—'मार्ग के काँटों से अटक-अटक कर जो तेरे वस्त्र स्वतः फट गये हैं, उनको ज़रा ठीक तो कर ले। मार्ग की भाग-दौड़ में तेरी वेणी के बाल हारों में उलझ गये हैं, उनको जरा शांति से बैठ कर सुलझा तो ले। अरी, तू दबी सी क्यों जा रही है! श्रम के कारण जो पसीना बह रहा है, ज़रा बैठ कर उसे सुखा तो ले। जल्दी-जल्दी आने के कारण तुझे जो हफ़हफ़ी आ गयी है, ज़रा विश्राम लेकर पहले उसे मिटा ले; फिर नंदलाल का संदेशा कहना। उसे कहने की ऐसी क्या उतावली है!' कैसे मर्मवेधी वाक्य-बाण हैं—

कंटक तें अटकि-अटकि सब आप ही तें,
फटिगे बसन तिन्हें नीके कै बनाय लै।
बेनी के विचित्र बार हारन में आय-आय,
अरुझे अतीसे तेतौ बैठि सुरझाय लै॥
कहै 'मिश्र' कवि दबि काहे कौं रही है बाम,
घाम तें पसीना बह्यौ, ताको सिअराय लै।
बात कहिबे में नंदलाल की उताल कहा,
हाल तौ हरिन-नैनी हकनि मिटाय लै॥

स्वाधीनपतिका—

जिस नायिका का प्रेमानुरक्त नायक सदा उसके वशीभूत रहे, उस नायिका को स्वाधीनपतिका कहते हैं। नायक अपनी नायिका पर इतना अनुरक्त है कि उसका साज-शृंगार और उसकी सेवा-चाकरी स्वयं अपने हाथों से करता है। बहुत सी बातों में नायिका चुप रहती है, किंतु औचित्य की सीमा का उल्लंघन होने पर उसे बाध्य होकर नायक को रोकना पड़ता है।

एक स्वाधीनपतिका नायिका अपने नायक से कह रही है—'जब आपने मेरे अंगों में अंगराग लगाया, तब तो मैंने आपको नहीं रोका, किंतु मैं अब आपसे अपने पाँवों में महदी नहीं लगवाऊँगी।' भला, एक पतिव्रता नायिका पति से अपने पैर कैसे छुवा सकती है—

अगराग और अंगन करत, कछू बरजी न ।
पै महँदी न दिवाय हौं, तुम सों पगन प्रवीन ॥

एक दूसरी स्वाधीनपतिका अपने नायक को महावर लगाते देख कर प्रेम विह्वल होती हुई इस अनुचित कार्य से उसे रोक रही है। नायक ने नायिका की वेणी को फूलों से गूथ दिया और उसके मस्तक पर कस्तूरी की काली बेंदी लगादी। फिर उसने नायिका को नाना भाँति के आभूषण पहनाये और अपने ही हाथ से हित पूर्वक उसे पान का बीड़ा भी खिलाया। इसके बाद प्रेम के वशीभूत नायक ने नायिका के सुंदर चरणों में महावर लगाना चाहा। अब तक नायिका चुप थी, किंतु जब उसने नायक द्वारा यह अनुचित कृत्य होते देखा, तो उसने नायक के महावर वाले हाथ को अपने हाथों में लेकर चूम लिया और फिर उसे आँखों से लगा कर कहने लगी—हे प्राणनाथ! ऐसा अनुचित कार्य न कीजिये।' आर्य ललना तो अपने को पति की दासी समझती है, फिर शृंगार-विहार में भी वह अपने पति से कैसे पैर छुवा सकती है—

फूलन सों बाल की बनाय गुही बेनी लाल,
भाल दई बेंदी मृग-मद की असित है।
भाँति-भाँति भूषन बनाए ब्रजभूषन,
सु बीरी निज कर सों खवाई करि हित है॥
ह्वै कै रस-बस जब दीबे को महाउर के,
'सेनापति' लाल गह्यौ चरन ललित है।
चूमि हाथ नाह के लगाय रही आखिन सों,
यहै प्राननाथ! यह अति अनुचित है॥

वासकसज्जा—

अपने प्रियतम से मिलने के लिए साज-शृंगार और संभोग-सामग्री एकत्रित करने वाली नायिका वासकसज्जा कहलाती है। मुग्धा वासकसज्जा स्वाभाविक संकोच के कारण स्वयं तैयारी नहीं कहती, बल्कि यह कार्य

उसकी सखियों को करना पड़ता है। ग्वाल कवि एक मुग्धा वासकसज्जा का वर्णन करते हुए लिखते हैं—'कुंजों से अपने प्रियतम के आने का समय जान कर नायिका ने सुनहरी किनारी की सुंदर साड़ी पहन ली। उसकी सखियों ने आनंददायक सुंदर सेज को बिछा दिया। लज्जित नायिका किवाड़ों की ओट में होकर सखियों का यह कृत्य देखने लगी। वह नायिका ऐसी सुंदर है कि चंद्रमा का प्रकाश उसे देख कर पराजित होता है और बेचारी बिजली उसकी चमक से प्रतिस्पर्धा करती हुई दिखलाई देती है। नींद की खुमारी के कारण नायिका की आँखें झपने लगी हैं, तब भी वह बाला अपने प्रियतम के आगमन की प्रतीक्षा कर रही है—

कुंजन ते कंत की तयारी आयवे का जानि,
धारी जरतारी, कोर कलित किनारी की।
सखिन सुधारी सेज, सेज मंजु मौजकारी,
लखत लजारी होत ओट मे किवारी का॥
'ग्वाल' कवि चंद की उज्यारा लखि हारी ताहि
बीजुका बिचारी मर करै चमकारी की।
आस भासकारी, चढ़ा नाद की खुमारी भारी,
तऊ वैस बारी बाट जोवै बनवारी का॥

अब एक मध्या वासकसज्जा का शब्द-चित्र देखिये। नायिका ने सुख-सेज सजा कर शृंगार किया और सुगंध से सुवासित केशों को गूँथा। फिर चुनी हुई लाल चूनरी पहनी, जिससे उसका वेश और भी शोभायमान हो गया। प्रियतम से भेंट करने को उसका वक्षस्थल उमड़ा पड़ता है, जिसे वह हँसती हुई छिपाने की चेष्टा करती है। आनंदोल्लास के उभार से उसकी आँगी की तनी बार-बार खुल जाती थी, जिसे वह नायिका बार-बार कस कर बाँध रही थी। वक्षस्थल के उभार और उसे छिपाने की चेष्टा के कारण नायिका मे काम और सकोच दोनो समान रूप मे विद्यमान हैं, इसलिए यह छंद मध्या वासकसज्जा का अच्छा उदाहरण है—

सुख-सेजहिं साजि, सिंगार सजे, गुह बार सुगंध सबै बसिकै।
चुनि चूनरी लाल खरी पहिरी, कवि 'देव' सुवेस रह्यौ लसिकै॥
पिय भेटिवे को उमही छतिया, सु छिपावति हेरि हियौ हँसिकै।
अँगिया की तनी खुलि जाति घना, सु बनी फिर बाँधति है कसिकै॥

उत्कंठिता—

केलि-स्थान में नायक की उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा करने वाली नायिका उत्कंठिता कहलाती है। एक मुग्धा उत्कंठिता नायिका अपने प्रियतम के आगमन में विलंब होते देख कर अत्यंत व्याकुल हो रही है। 'वह लज्जावश अपनी सखियों से भी इस विषय में पूछ-ताछ नहीं कर सकती है। वह मन ही मन ऐसा विचार करने लगी कि या तो मेरे प्रियतम को किसी ने मोहित कर लिया है, अथवा उस सुकुमार को किसी ने कुपित कर दिया है, इसीलिए उसके आने मे विलब हो रहा है। वह उसके न आने का कोई निश्चित कारण नहीं जान पाती और संकोच वश किसी से पूछ भी नहीं सकती, तब वह अपने मन से ही पूछती है। वह कहती है—हे मेरे मन! तू तो सदैव मेरे प्रियतम के पास रहता है, फिर तू क्यों नहीं बतलाता है कि आज उनको क्यों विलंब हो रहा है। इसी चिंता मे वह नायिका पीली पडती हुई पतझड़ मे लबंग की डाली के समान शोभा विहीन हो गयी है।' प्रिय-आगमन की उत्सुकता का मन ही मन चिंतन करने से और सखियों से भी तत्संबंधी वार्त्ता करने मे संकोच होने से उत्कंठिता नायिका का मुग्धत्व सूचित होता है—

लाज ते बूझि सखी हू सकै न, बिचारति सो कछू एई बिचारि है।
कै तौ रिझाय लयौ कहू काहू, खिझायो कतौ अति ही सुकुमार है॥
रे मन! तू तौ रहै प्रिय-पास, कहै किन काहे ते कीन्ही अबार है।
प्यारी ह्वै पीरी गई इहिं सोच, मनो पतझार लवंग की डार है॥

सोमनाथ कवि एक मध्या उत्कंठिता का इस प्रकार कथन करते हैं। नायक की प्रतीक्षा करते हुए नायिका को इतना विलंब होगया कि 'चंद्रमा आधे आकाश में चढ़ आया और चारों ओर घोर सन्नाटा छा गया। उस समय वह प्रेम से इतनी विह्वल हो रही थी कि इतनी रात्रि हो जाने पर भी उसकी आँखों में नींद की खुमारी नहीं थी। वह सोचने लगी कि मेरे प्रियतम आज घर की याद भूल गये, अथवा कहीं रसीली बातों में रम गये। वह नायिका संकोच वश नीची गर्दन किये हुए सखियों से पूछती है—वे कैसे नहीं आये; अब क्या करना चाहिए।' लज्जा और प्रेम का समान कथन होने से यह मध्या उत्कंठिता नायिका का अच्छा उदाहरण है—

आधे अकास मे आयौ ससी, चुपचाप चहूं दिसि माँझ भई अति।
नींद सों नाँहिं झुकै अँखियाँ, 'ससिनाथ' सनेह बिहाल करी मति॥
भूलि गए घर की सुधि कै, कि कहू रस-बातन मे बिरमे पति।
क्यों नहिं आए, कहा करिऐ, तिय नार नबाय सखीन सो बूझति॥

अभिसारिका—

कामार्त्त होकर स्वयं नायक के पास जाने वाली नायिका को अभिसारिका कहते हैं। नंददास कवि ने एक मध्या अभिसारिका का इस प्रकार वर्णन किया है—'हरिण के समान नेत्रों वाली अनुपम नायिका ने नख से शिखा तक शृंगार किया और अपने अंगों में अंगराग लगाया। वह स्वर्ण-लता सी नायिका नाना प्रकार के रसीले मनोरथ करती हुई अकेली क्रीड़ा-स्थान को जाने लगी। वह चंद्रमा के समान मुख वाली शयनागार की ओर इस प्रकार धीरे-धीरे जा रही है, जैसे कोई चोर चोरी करने के लिए जा रहा हो। उसके एक पैर को कामदेव ने सीढ़ी पर मज़बूती से पकड़ा हुआ है, तो दूसरे पैर को लज्जा ने भूमि पर कस कर जकड़ा हुआ है। अर्थात कामदेव तो नायिका को आगे बढ़ने के लिए उत्साहित करता है, किंतु लज्जा उसके आगे बढ़ने में बाधक हो रही है।' मध्या अभिसारिका का कैसा स्पष्ट कथन है—

कान्ही है सिंगार नख-सिख लौं कुरंग-नैनी,
अंगना अनूप अंगराग अंग घसिकै।
कंचन की बेली सी अकेली चली केलि-भौन,
करिके मनोरथ रसीले रस रसिकै॥
मंद-मंद चोरी सी करन जात चंद्रमुखी,
'नंददास' कोठे के समीप गई लसिकै।
एक पाय सीढ़ी पै मनोज मजबूत गहे
एक पाय भूतल पै लाज गहे कसिकै॥

इसी प्रकार की मध्या अभिसारिका का मतिराम ने भी सुंदर कथन किया है—'यौवन-मद के कारण मस्त हाथी के समान नायिका मंद गति से प्रियतम के क्रीड़ा-भवन की ओर जा रही है। स्नेह रूपी महावत उसे आगे चलने की ओर प्रेरित करता है, किंतु लज्जा रूपी पैरों का लंगर उसके आगे बढ़ने में बाधक हो रहा है'—

जोबन-मद गज मद गति, चली बाल पिय गेह।
पगनि लाज-आँदू परी, चल्यौ महावत नेह॥

अब एक कृष्णाभिसारिका का वर्णन सुनिये। रात्रि के अंधकार में अपने को छिपाती हुई प्रियतम के पास जाने वाली नायिका कृष्णाभिसारिका कहलाती है। 'आकाश श्याम हो रहा है, रात्रि अंधकारमयी है, भयावनी

काली छटा घिरी हुई है और आनंददायक पवन झोका देकर बह रहा है। ऐसी सुखमयी वर्षा ऋतु में उस सांवली-सलौनी नायिका ने अपने प्रियतम श्याम के पास जाने का आयोजन किया। उस गुणवती चतुर नायिका को उस भयंकर काली रात में भी डरने की कोई आवश्यकता नहीं थी, क्यों कि उसके साथ मनोभिलाषा रूपी रथ, उत्साह रूपी सखी, कामदेव का मद रूपी योद्धा और चंद्रमा समान मुख रूपी मसाल जैसी सहायक सामग्री थी।' जिसके साथ रात्रि–गमन के ये उपयुक्त साधन हों, उसको डर किस बात का—

कारौ नभ, कारी निसि, कारिऐ डरारी घटा,
झूकन बहत पौन आनँद कौ कंदरी।
'द्विजदेव' साँवरी सलौंनी सजी स्याम जू पै,
कीन्हौ अभिसार लखि पावस-अनंदरी॥
नागरी गुनागरी सु कैसें डरै रैन-डर,
जाके संग सोई ए सहायक अमंदरी।
बाहन मनोरथ, उमाहै संगवारी सखी,
मैन-मद सुभट, मसाल मुख-चंदरी॥

विप्रलब्धा—

केलि–स्थान पर नायक को न पाकर व्याकुल होने वाली नायिका विप्रलब्धा कहलाती है। एक मध्या विप्रलब्धा की व्याकुलता देखिये—'घर के बड़े-बूढ़ों को सुलाकर नायिका ने सुगंधित द्रव्यों का लेप किया, फिर उसने जड़ाऊ भूषण और सुंदर वस्त्र धारण कर दबे पाँव धीरे-धीरे केलि–भवन की ओर प्रस्थान किया। उस समय उत्साह और लज्जा से पूर्ण नायिका घूँघट करती हुई अपने प्रियतम को उत्सुकता पूर्वक देखने लगी, किंतु वहाँ पर सूनी सेज देख कर वह भयभीत मृगी के समान चकित रह गयी। उस समय वह इतनी व्याकुल हुई, जैसे दोपहरी का प्यासा पथिक जल की आशा में किसी सरोवर के किनारे पर जाकर उसे सूखा हुआ पाने पर व्यथित होता है—

स्वाय गुरु लोगन को, सौंधे सों अन्हाय, भूषे–
भूषन जरायन के, पहिरे बसन वर।
मंद-मंद दावे पाँय, आय केलि–मंदिर में,
घूँघट में हेरत उछाह भरी, लाज भर॥

'द्विजजू' बिलोकि सूनी सेज ह्वै चकित रही,
चारों ओर चाहति मृगी सी भूरि भरि डर ।
ऐसी भई विकल विसूरि विथा बाढी, जैसे–
पथिक निदाघ कौ पियासौ देखै सूनौ सर ॥

अब एक परकीया विप्रलब्धा की उक्ति सुनिये—'हाय ! वह कैसी घड़ी थी, जब तुम से प्रेम हो गया । इसका पश्चात्ताप करती हुई नायिका के हृदय में कसक सी हो रही है । वह कहती है कि छिप-छिप कर अनेक उपायों द्वारा तुमसे मिलने की प्रबल इच्छा हुई थी । तुमने मुझे तो कुंज में बुला लिया. किंतु मुझे दुःख देते हुए तुम स्वयं न मालूम कहाँ रम गये ! यहाँ तक आने में मेरे पैरों मे छाले पड गये; इस पर भी अनेक नदी नालों को लाँघती हुई मै यहाँ पर आ सकी हूँ, किंतु प्यारे ! तब भी तुम्हारे दर्शन के लाले पड़े हुए है'—

कैसो ही लगन, जामैं लगन लगाई तुम,
प्रेम की पगानि के परेखे हिय कसके ।
केतिकौ छपाय के उपाय उपजाय प्यारे !
तुम ते मिलाप के बढाये चोप चसके ॥
भनत 'कविंद' हमैं कुंज मे बुलाय करि,
बसे कित जाय, दुख देकर अबस के ।
पगन मे छाले परे, नाघिबे को नाले परे,
तऊ लाल ! लाले परे राउरे दरस के ॥

खंडिता—

रात्रि मे कहीं रम कर प्रातःकाल आने वाले अपने नायक के तन पर पर-स्त्री-संसर्ग के चिह्न देख कर ईर्ष्या करने वाली नायिका खंडिता कहलाती है । एक नायिका अपने नायक पर कुपित होती हुई कह रही है–'आपकी सब गुन-गाथा सुन कर भी मैं आज तक चुप रही, किंतु अब मैं सच-सच कहती हूं कि अपनी आँखों से देख लेने के बाद भी अब कैसे जला जा सकता है ! हे विहारी ! मैं इसलिए आप से पूछती हूँ कि आप इस काजल लगे हुए कपोल को छिपाते क्यों हैं, इसे सामने कीजिए ! भला यह तो बतलाइये कि वह घड़ी कब तक रस पीती रहेगी और मुझ घड़ियाल पर कब तक चोट पड़ती रहेगी ?' वर्तमान कालीन घड़ियों के आविष्कार के पूर्व समय जानने के लिए एक छोटे बर्तन में

इस हिसाब से छिद्र किया जाता था कि वह एक घंटे में पानी से भर जाने पर डूब जाता था, तब घंटा बजाने वाला घड़ियाल पर चोट लगा कर घंटा बजाता था। नायिका ने नायक के कपोल पर पर-स्त्री के अंजन का दाग देख कर घड़ी का संकेत करते हुए उससे पूछा है कि आखिर वह नायिका कब तक आपके प्रेमामृत का पान करती रहेगी और मेरा हृदय कब तक ईर्ष्या की चोट सहता रहेगा! उसने 'बिहारी' संबोधन द्वारा भी नायक की विहार-वृत्ति पर कटाक्ष किया है—

आज लौं मौन गह्यौई हुतौ, मुनि कैं सिगरौ गुन-ग्राम तिहारौ।
पै 'द्विजदेव' जू साँचा कहौं, अब जोबत हू जिय जाय न जारौ॥
बूझता तातैं बिहारी! तुम्हैं, बिन सौंहे कपोल करौ कजरारौ।
पी हैं घरी रस कौ लौं लला, अरु घाइ सहैं घरयार बिचारौ॥

एक नायिका अपने नायक की अस्तव्यस्त दशा और उसके मस्तक पर महावर का चिह्न देख कर उसे पर-स्त्री-संसर्ग का दोषी मानते हुई व्यंग्य वचनों द्वारा उससे कह रही है—'आपका मन उधर अटका हुआ है, इसीलिए आपके पैर सीधे नहीं पड़ रहे हैं। जल्दी उठ कर आने के कारण ही आपके अंग अलसाए हुए हैं। आपकी रतनारी आँखें अनुपम रूप की चोरी कर रही हैं। वाह, खूब अच्छा रूप देखा है! हे प्रिय! अब आपने हमसे तो हँस कर बोलना छोड़ ही दिया और सब प्रकार उसी के हाथों में बिक गये! जिसका अनुराग आप अपने मस्तक पर धारण किए हुए आये हो, वही आपके वचनों से स्वतः प्रकट हो रही है, अब मना करने से क्या लाभ!' नायक के मस्तक पर पर-स्त्री के महावर-चिह्न को उक्त स्त्री के अनुराग की उपमा दी गयी है। वचनों द्वारा प्रकट होने का यह अभिप्राय है कि उक्त स्त्री का नाम अनायास आपके मुख से निकला पड़ता है—

उतई है मन, थाँ सूधे न परत पग, अंग अरसान भुरहरे उठि आए हौ।
रँगमगी अँखियाँ अनूप रूप चोरे लेत, 'सोमनाथ' आछे यहि रूप लखि पाए हौ॥
हम सों तौ बिहँसि बिलोकिबौ बिसारयौ पिय! सबै बिधि उनई के हाथन बिकाए हौ।
काहे कों नटत, वेई बैनन प्रकट होत, अनुराग जिनकौ लिलार धरि आए हौ॥

कलहांतरिता —

अपने नायक का अपमान कर पुन पश्चात्ताप करने वाली नायिका को कलहांतरिता कहते हैं। एक कलहांतरिता नायिका के पश्चाताप की कहानी

सुनिये। वह कहती है—'लज्जा के कारण मैं कभी छिप कर न बैठती और न घूँघट का बनावटी परदा करती; मैं भय का परित्याग कर कोपपूर्वक अपने हाथ को कभी न खींचती और दृष्टि बचाती हुई हठ पूर्वक कभी पीठ मोड़ कर भी न बैठती; मैं अपने प्रिय के साथ सुख पूर्वक शयन करती और इस सुहाग की रात में रोने की अपेक्षा हित पूर्वक अपने हृदय की दाह को शांत करती। हाय! यदि मैं जानती कि प्रिय-मिलन का इतना सुख होता है, तो मुझे इतना दुःख क्यों सहन करना पड़ता'—

लाज के अठोट कै-कै बैठना न ओट दे-दे,
घूघट कौं काहे कों कपट-पट तानती।
डारि देती डर, कर ऐंचती न कोप करि,
दीठि चोरि, पीठ मोरि हौं न हठ ठानती॥
'देव' सुख सोवती न रोवती सुहाग रैन
मेट ताप ही तें, आपही तें हित मानती।
हाय! हाय!! काहे कों तितेक दुख देखती,
जो पीतमै मिलै कौं मैं इतेक सुख जानती॥

गच्छत्पतिका—

जिसका प्रियतम परदेश जा रहा हो, उस नायिका को गच्छत्पतिका कहते हैं। ग्वाल कवि ने एक मुग्धा गच्छत्पतिका का बड़ा सुंदर कथन किया है—मुग्धा नायिका अपने पति के परदेश जाने के समाचार को सुन कर अत्यंत दुखित है, किंतु वह अपने आंतरिक परिताप को लज्जावश किसी पर प्रकट नहीं कर सकती है। प्रिय वियोग की आशंका स्वरूप उसका पीत मुख, मलीन कांति, सखियों से बिछुडना और उनसे बेकार लड बैठना, गर्दन को नीचा कर लेना, कोठरी मे छिप कर बैठ जाना, सास को देखते ही किनारा-कशी करना और लाजवंती के पौधे की तरह सिकुड जाना आदि चेष्टाओं से उसकी मनोगत व्यथा का भली भाँति ज्ञान हो जाता है। छंद इस प्रकार है—

उर गई बात पिय पर–पुर जायवे की,
मुर गई, जुर गई, बिरहागि पुर गई।
घुर गई हीं, जो खेल उमंग सो दुर गई,
फुर गई पीर मुख, दुति है अउर गई॥

'ग्वाल' कवि अलि सों बिछुरि गई, लरि गई,
नार हू निहुरि गई, नैन सों निचुरि गई ।
दुरि गई कोठरी मे, मुरि गई सासै तकि,
जुर गई लाज, लाजवंती सी सिकुरि गई ॥

मतिराम ने भी एक मुग्धा गच्छत्पतिका का बड़ा सुंदर कथन किया है। किसी मुग्धा नायिका की सखी परदेश जाने के लिए इच्छुक किसी नायक से कह रही है—'जिस दिन से तुमने परदेश जाने की चर्चा की है, उसी दिन से उसका मुख पीला पड गया है। उसने सुंदर वस्त्राभूषण का धारण करना और पान खाना छोड दिया है। उसने सखियों के साथ खेलना और उनके साथ हँसी-मज़ाक करना भी छोड दिया है। हे लाल ! ऐसी रमणीय ऋतु मे उस स्नेहमयी प्रियतमा को छोड कर तुम परदेश जा रहे हो, इसमे तुम्हारी क्या बडाई है ! तुम्हारे वियोग की आशंका से उस बाला की नींद हराम हो गयी है और वह रात-दिन रोती रहती है। यदि कोई उससे इसका कारण पूछता है, तो वह लज्जा वश वास्तविक बात को न बतलाती हुई यह कह देती है कि उसे मातृ-गृह की याद आ गयी है—

जा दिन ते चलिबे की चरचा चलाई तुम
ता दिन ते वाके पियराई तन छाई है ।
कहै 'मतिराम' छोडे भूषन, बसन, पान,
सखिन सों खेलनि, हँसनि बिसराई है ॥
आई रितु सुरभ सुहाई, प्रीति वाके चित,
ऐसे मैं चलो, का लाल ! राउरी बडाई है ।
सोवत न रैन-दिन, रोवत रहत बाल
बूझे ते कहत माइके की सुधि आई है ॥

प्रोषितपतिका—

अपने प्रियतम के वियोग मे दुखित विरहणी नायिका को प्रोषितपतिका कहते है। प्रोषितपतिका की करुण कहानी लिखने में कवियों ने क़लम तोड दी है। सुकवि घनानद एक ऐसी विरहणी नायिका का कथन करते है, जो बहुत दिनों से अपने प्राणों को बलपूर्वक रोकती हुई, अंततः निराश होकर प्राणों के द्वारा ही संदेशा भेजने को बाध्य होती है ! नायिका कहती है—

बहुत दिनों की अवधि को समाप्त-प्राय देख कर मेरे प्राण उड़ जाने को तैयार होते हैं, किंतु मैं प्रियतम के आगमन का संदेशा कह-कह कर उनको खुशामद पूर्वक रोक रही हूँ ! इन झूठी बातों पर अविश्वास करते हुए आखिर वह उदास होकर अब घेरे से भी नहीं घिरते हैं। अब मेरे प्राण चल कर होठों पर आ गये हैं और अब संदेशा लेकर प्रियतम के पास जाना ही चाहते हैं !' विरहणी की कैसी निराशापूर्ण उक्ति है—

बहुत दिनानि की अवधि आस-पास परे,
खरे अधरानि मरे हैं उडि जान कौं।
कहि-कहि आवन संदेसो मन भावन कौ,
गहि-गहि राखत हौ दै-दै सनमान कौं॥
झूठी बतियान के पत्यान ते उदास ह्वै कै,
अब न घिरत 'घनआनँद' निदान कौं।
अधर लगे हैं आनि, करके पयान प्रान,
चाहत चलन ये संदेसौ लै सुजान कौं॥

एक विरहणी नायिका अपने प्रियतम के साथ आनंद-विहार के दिनों का स्मरण करती हुई व्यथित हृदय से कह रही है—'जिस स्थल पर नाना प्रकार के विहार किये थे, वहाँ पर बैठ कर अब कंकरी चुनने का ही काम रह गया है ! जिस जिह्वा से उनके साथ नाना प्रकार की रसपूर्ण बातें की थीं, उसी जिह्वा से अब उनके चरित्रों का कथन किया जाता है। जिन कुंजों में अनेक प्रकार की केलि-क्रीडाएँ की थी, वहाँ उनके वियोग में अब अपना सिर धुना जाता है। जहाँ वे प्रियतम सदा अपने नेत्रों में बसा करते थे, वहाँ अब कानों द्वारा उनकी केवल कहानी सुनी जाती है !' दिनों के हेर-फेर का कैसा मर्मस्पर्शी कथन किया गया है—

जा थल कीन्हे विहार अनेकन, ता थल काकरी बैठि चुन्यौ करै।
जा रसना सों करी बहु बातन, ता रसना सों चरित्र गुन्यौ करै॥
'आलम' जान सों कुंजन में करी केलि, तहाँ अब सीस धुन्यौ करै।
नैनन में जे सदा रहते, तिनकी अब कान कहानी सुन्यौ करै॥

प्रियतम के वियोग में विरहणी नायिकाएँ रात-दिन रोती रहती हैं। उनकी आँखों में नींद का नाम भी नहीं है। वे रात भर जागती हुई आकाश के तारे गिना करती है। ऐसी ही वियोगिनी नायिकाओं का हरिऔध जी ने इस प्रकार कथन किया है—'इस कुपूत चंद्रमा को देखते ही हमारा सब समाप्त हो

जाता है। हम अपने नेत्रों के तारों से आकाश के इन तारागण की पंक्तियों को पिरोया करती हैं। महान् दुःख के कारण हमारी आखें ज़रा भी नहीं लगतीं और न क्षण भर के लिए हमें नींद आती है। हम उनके पत्रों को पढ़-पढ़कर सारी रात छाती पकड़ कर रोया करती हैं'—

लखिकै या कपूत कलानिधि कौं, सिगरी कल आपुनी खोवती है।
नभ के इन तारन की अबली, निज नैन के तारन पोवती है॥
'हरिऔध' न आख लगै कबहूँ, दुख सों पल हू नहिं सोवती है।
पतियाँ पढ़िकै सिगरी रतियाँ, पकरै छतियाँ हम रोवती है॥

विरहणी नायिका को सुखदायक ऋतु और उसकी आनंददायक वस्तुएँ भी घोर दुःख का कारण बन जाती हैं। यहाँ पर एक ऐसी नायिका का कथन किया जाता है, जो किसी प्रकार अपने विरह के दिन काट रही थी। अब बसंत के आगमन से तो उसका जीवन और भी संकट में पड़ गया है। उसकी सखी इसका प्रबंध करती हुई कहती है—'अरी, ज़रा शिकारियों से कह दे कि वे इस बाग में कोकिलों को न आने दें। ज़रा भवन के झरोखों को भी बंद करदे, ताकि मलय पर्वत की सुगंधित पवन यहाँ पर आकर छा न जाय। उसके प्रियतम के आये बिना बसंत-आगमन का समाचार उसे कोई सुना न दे। यदि तुम इस नायिका को जीवित रखना चाहते हो, तो ग्राम का कोई व्यक्ति धमार का गायन न करे।' वाह, कैसी अनोखी व्यवस्था की जा रही है—

दै कहि बीर! सिकारिन कों, इहि बाग न कोकिल आवन पावै।
मूँदि झरोखनि मंदिर के, मलयानिल आइ न छावन पावै॥
आए बिना 'रघुनाथ', बसंत कौ ऐबौ न कोऊ सुनावन पावै।
प्यारी को चाहौ जिवाऔ, धमार तौ गाव कौ कोऊ न गावन पावै॥

वर्षा ऋतु तो विरहणी नायिकाओं के लिए और भी संकट उपस्थित कर देती है। एक वियोगिनी नायिका वर्षा ऋतु के आते ही अत्यंत व्याकुल होती हुई अपनी सहेली से कह रही है—'हे सखी! वर्षा ऋतु आ गयी, किंतु मेरे प्राण-प्यारे अभी तक नहीं आये। इसलिए इन बादलों को मना कर दे कि वे गरजें नहीं; इन मेढ़कों को हटा दे, ताकि वे बक-बक कर कानों को न फोड़ें और इन पिकों को भी फटकार दे, ताकि वे अपना शब्द न

सुनावें ! मैं तो विरह-व्यथा से व्याकुल हुई जा रही हूँ, इसलिए इस बिजली को भी रोक दे कि वह चमक कर मेरे हृदय के टुकडे न करे। जब तक मेरे प्रियतम घर पर न आ जावें, तब तक ऐसा प्रबंध कर कि पपीहा गा न सके, मोर शोर न मचा सके और बादल आकाश मे घुमड न सके" वर्षा ऋतु वियोगिनियों के लिए ऐसी ही दु:खदायी है—

आई रितु पावस न आए प्रान-प्यारे यातें—
मेघन बरजि आली ! गरजनि लावैं ना ।
दादुर हटकि बक-बक कै न फोरै कान,
पिकन फटाक मोहि सबद सुनावै ना ॥
बिरह बिथा तें हौं तौ व्याकुल भई हौ देव,
चपला चमकि चित-चिनगा उडावै ना ।
चातक न गावै मोर सोर ना मचावै,
घन घुमडि न छावै, जौ लौं लाल घर आवै ना ॥

वर्षा ऋतु में वियोगाग्नि से दग्ध एक गोपी उद्धव से कह रही है - 'मेह के बरसते ही समस्त अंगों में स्नेह उमडने लगता है, उस समय देह जवासे की तरह झुलसने लगती है ! यमुना के तटवर्ती कदंबों पर भौंराओं ने अपना अड्डा बना लिया है । हे उद्धव ! तुम इस गडबडी से मोहन को परिचत कर देना और उनसे कहना कि व्रज का सुंदर निवास-स्थान अब अग्नि का अवा सा हो गया है ! यह पापी पपीहा जल-पान का प्यासा नहीं है, बल्कि किसी व्यथित वियोगिनी के प्राणों का प्यासा मालूम होता है ।' पद्माकर के काव्य-सौन्दर्य को देखिये—

बरसत मेह, नेह सरसत अंग-अंग,
झरसत देह जैसे जरत जवासौ है ।
कहै पद्माकर ! कलिंदी के कदंबन पै,
मधुपन कौनौं आय महत मवासौ है ॥
ऊधौ ! यह ऊधम जनाय दीजो मोहन कों,
ब्रज कौ सुबासौ, भयौ अगिनि-अवा सौ है ।
पापी पपीहा जल-पान कों न प्यासौ,
काहू विथित वियोगिन के प्रानन कौ प्यासौ है ॥

एक विरहणी नायिका पहिले ही वियोगाग्नि में जल रही थी, अब वर्षा ऋतु के आते ही कामाग्नि ने उसे और भी जलाना आरंभ कर दिया। उस समय वह कामदेव को संबोधन करती हुई कहती है—'यह पापी पपीहा बार-बार 'पिउ-पिउ' कह कर सहज स्वभाव से ही आग लगा रहा है, और पलास वृक्ष की डालों से पुष्प अंगारों के समान झड़ रहे हैं। इनके अतिरिक्त मैं तो वैसे ही वियोग की अग्नि में झुलस रही हूँ; अरे पागल कामदेव! अब तू क्यों विष डाल रहा है? तू तो स्वयं जलने का दुःख भली भाँति जानता है, फिर इन जले हुए अंगों को अब और क्यों जला रहा है'—

पीउ-पीउ पातकी पपीहा करै बार-बार,
सहज सुभायन ही पावक पसारै है।
पास पलास के प्रसूननि-अंगारनि सों,
लसि-लसि डारनि अगारनि मे झारै है॥
'भुवनेस' ऐसिए परी तौ बिरहानल मे,
बावरे अनंग 'अंग विष क्यों बगारै है।
आपु तौ जरे की दुख जानत भली ही भाँति,
काहे जरे अंगनि कौ फेरि अब जारै है॥

एक वियोगिनी नायिका अपने आँसुओं को मेघ द्वारा अपने निर्मोही प्रेमी के पास भेज रही है! वह मेघ की खुशामद करती हुई कह रही है—'तुम तो परोपकार के निमित्त ही अपनी देह को धारण किये हुए फिरते हो, इस प्रकार तुम यथार्थ रूप में परजन्य हो! तुम समुद्र के जल को अमृत के समान कर देते हो और तुम सब प्रकार से सज्जनता प्रकट किया करते हो। तुम प्राणीमात्र को जीवन देने वाले हो; इसलिए अपने हृदय में कुछ मेरे दुःख के लिए भी स्थान दो! उस निर्मोही के आँगन में कभी मेरे आँसुओं को भी लेजा कर बरसा दो।' विरहणी के प्रेमाश्रुओं की वर्षा के लिए घनानंद का निम्न लिखित छंद देखिए—

पर-काजहि देह को धारै फिरौ, परजन्य जथारथ ह्वै दरसौ।
निधि-नीर सुधा के समान करौ, सब ही विधि सज्जनता सरसौ॥
'घनआनँद' जीवन दायक हौ, कछु मेरिउ पीर हिऐ परसौ।
कबहूँ वा बिसासी सुजान के आँगन, मो अँसुआन कौ लै बरसौ॥

अपने निर्मोही प्रेमी के प्रति एक दूसरी वियोगिनी की उक्ति सुनिये। वह कहती है—'मेरे हृदय मे तुम्हारी सीधी नज़र की चाह सदा बनी रही, मगर तुम तो सदैव बातें भी टेढ़ी करते रहे ! तुम मुझसे कभी हँस कर न बोले, और सदा दूर से मेरे मन को ललचाते रहे। हाय, तुम्हारा कैसा स्वभाव हो गया है कि तुम्हारे हृदय मे जरा भी दया नहीं आती है। हे प्यारे ! तुमने पहले ही कौन सा सुख दिया है, जिसके बदले मे मुझको इस प्रकार सता रहे हो !' भारतेन्दु हरिश्चंद्र के करुण हृदय के उद्गार सुनिये—

जिय सदा चितौन की साध रही सदा बातन मे अनखाय रहे।
हँसिकै 'हरिचंद' न बोले कबौ मन दूर ही सों ललचाय रहे॥
नहिं नेक दया उर आवत क्यों, करिकै कहा ऐसे सुभाय रहे।
सुख कौन सो प्यारे ! दियो पहले, जिहि के बदले यों सताय रहे॥

आगतपतिका—

अपने प्रियतम के आगमन पर प्रसन्न होने वाली नायिका आगतपतिका कहलाती है। पति-वियोग मे दुखित विरहणी नायिका शकुन मनाती हुई अपने प्रियतम के आगमन की प्रतीक्षा कर रही है। उसी समय उसकी बाँई भुजा फड़कने लगती है। स्त्रियों के बाँए अंगों का फडकना शुभ माना गया है। बाँई भुजा के फडकने से नायिका अपने प्रियतम के आगमन का अनुमान करती है और प्रसन्नता पूर्वक उक्त भुजा को यह पुरस्कार देना चाहती है कि वह पहिले उसी के द्वारा प्रियतम से भेंट करेगी। साधारणतया बाँए अंगो से भेंट करना शिष्टाचार के विरुद्ध है, किंतु जो भुजा उसके प्रियतम के आगमन की सूचना दे रही है, उसको पुरस्कार तो मिलना ही चाहिए। नायिका कहती है—'हे मेरी बाँई भुजा ! जो तेरे फडकने से मेरे जीवन-सर्वस्व प्रियतम मिलेंगे, तो दाहिनी भुजा को दूर रख कर मैं पहिले तेरे द्वारा ही उनसे भेंट करूँगी।' महाकवि बिहारीलाल का अद्भुत काव्य-चमत्कार निम्न लिखित दोहा में देखिये—

बाम बाहु फरकत मिलै, जो हरि जीवन-मूरि।
तौ तोहा सों भेटि हौं, राखि दाहिनी दूरि॥

एक दूसरी नायिका विशिष्ट दशा मे कौवे के बोलने से प्रिय-आगमन का शकुन मनाती हुई कौवे से कह रही है—'तेरे पाँखों के लिए पैजनी बनवा कर तेरी चोंच सोने से मँढ़वा दूँगी, अपने हाथ पर तुझे बैठा कर रुचि पूर्वक तेरे

पंखों को सुधारूँगी, और एक क्षण का भी विलंब किये बिना तेरे भोजन के लिए स्वर्ण पात्र में दूध भर कर उसे अटारी पर धर दूँगी। हे काले काग! तेरे शकुन-संयोग से यदि आज मेरे पति आवेंगे, तो मैं अपने वचन से टलने वाली नहीं हूँ। मैं तुझसे इकरार करती हूँ कि पहिले ये सब कार्य कर लूँगी, तब बाद में अपने प्रियतम से भेंट करूँगी।" प्रिय-आगमन का शुभ संवाद देने के निमित्त तोष कवि ने कौवे के लिए भी कैसे अनुपम उपहारों का आयोजन किया है—

पैजनी गढाय, चौंच मौंने सो मढाय देहौं,
कर पर लाय, पर रुचि सो सुधारि हौं।
कहै कवि तोष' छिन अटक न लेहौं कबौं,
कंचन कटोरे अटा खीर भरि धरि हौं॥
ए रे कारे काग! तेरे सगुन सजोग आजु
मेरे पति आवै, तौ बचन ते न टरि हौं।
करतौ करार, तौन पहिलै करौंगी सब,
आपने पिया को फिरि पाछें अंक भरि हौं॥

एक कवि ने मुग्धा आगतपतिका का कैसा मधुर वर्णन किया है - किसी ने कहीं से आकर कहा कि वे आ रहे हैं। यह सुन कर नायिका विशेष चाव से उधर की ओर देखने लगी। उसके नेत्रों से आनंद के आँसू बहने लगे और उसका हृदय फड़कने लगा। वह चौकन्नी और चकित सी चारों ओर देखने लगी। उसी समय अपने प्रियतम को आते देख कर उसे अत्यंत हर्ष हुआ। वह घूँघट की ओट में, नेत्रों की कोरों से छिपे-छिपे, दरवाज़े की ओर देखने लगी—

आए, कहाँ काहू आय कहते उठी चितवै चित चाय विसेखै।
आनँद के आँसुआ ढरकै, फरकै स हियौ, मुकह लखि लेखै॥
औचकई चित चौंकि चहूँ दिसि, आगम सो उमगा अवरेखै।
घूँघट ओट किए दृग-कोरन द्वार की ओर दुरै-दुरै देखै॥

द्वितीय

प्रतिपादन-खंड

★

एक मित्र हम सों अस गुन्यौ ।
मैं नायिकाभेद नहिं सुन्यौ ॥
जब लग इनके भेद न जानैं ।
जब लग प्रेम-तत्व न पहिचानैं ॥

बिन जानैं ये भेद सब, प्रेम न परखै कोय ।
चरनहीन ऊँचे अचल, चढ़त न देख्यौ कोय ॥

—"रस-मंजरी"

★

'कला में हृदय का भावुकता ही नहीं होता इसमें मस्तिष्क का कार्य-कलाप भी होता है । दोनों के साहचर्य से ही कला पूर्णता को प्राप्त होती है । नायिकाभेद की कविता में यथा स्थान दोनों का समुचित विकास देखा जाता है, इसलिए इसकी कविताएँ कला की दृष्टि से बहुत ही उच्च कोटि की पायी जाती हैं ।"

— 'रस-कलस"

★

'काव्य-कला की दृष्टि से नायिकाभेद संबंधिनी कविताएँ अति उत्कृष्ट समझी जा सकती हैं, क्यों कि उनमें मनोभावों की बड़ी सुंदर और स्वाभाविक व्याख्या की गयी है । रमणीयता और रसात्मकता स्पष्ट दिखाई देती है । हृदयगत भाव बड़ी सरसता से चुने हुए शब्दों में व्यक्त किये गये हैं । वास्तव में ये कविताएँ सार्थक संगीत हैं ।"

"नायिकाभेद संबंधिनी कविताएँ बड़ी आकर्षक और हृदय को स्पर्श करने वाली प्रतीत होंगी । उनमें मस्तिष्क और हृदय दोनों की सूक्ष्म भावनाओं के दर्शन होंगे । प्रतिभाशाली कवियों की लेखनी से निकली हुई मोहक सुषमा पाठक पर अपनी अमिट प्रभाव अंकित किये बिना नहीं रहती । आवश्यकता केवल सहृदयता या संवेदनशीलता की है ।'

—'रस-रत्नाकर"

प्रथम परिच्छेद

नायिका और उसका वर्गीकरण

★

नायिका-निरूपण

नायिका—जिस रमणी को देखते ही चित्त में शृंगार रस का संचार हो, उसे नायिका कहते हैं।

लाज भरी, भाग भरी, सुंदर सुहाग भरी,
राग भरी, रति में पिया की सुखदाइका।
लाजै रति-रूप खरा, सील भरी सौगुने है,
गुन-गान-आगरी करत हाइ-भाइका॥
'भौन' कवि कहत बिलोकत ही जासु अंग,
प्रगटै अनग रस-रासि उपजाइका।
बैन मन भाइका मनोरथ सहाइका,
सु चित-चोप चाइका, बखानै ताहि नायिका॥१॥

जासु की दीपति दीप ते सौ गुनी, दामिनी-कुंदन-केसर आइका।
काम की खानि, सदा मृदु बानि, सनेह छकी, छित में छवि छाइका॥
अंग अनूपम को बरनै, सब अंगन प्रीतम कों सुख दाइका।
मानो रची छवि-मूरति मोहिनी, 'श्रीधर' ऐसी बखानत नाइका॥२॥

---

१ रस-सिंगार कौ भाव उर उपजत जाहि निहारि।
तासौ कवि नाइका बरनत विविध विचारि॥
—"जगद्विनोद"

उपजत जाहि विलोकि के चित्त बीच रस-भाव।
ताहि बखानत नाइका जे प्रवीन कविराव॥
—"रसराज"

डोलत समीर लंक लहकैं समूल अंग,
फूल से दुकूलन सुगंध बिथुरयौ परै ।
इंदु सौ बदन, मंद हाँसी सुधाबिंदु,
अरबिंद ज्यों मुदित मकरंदन मुरयौ परै ॥
ललित लिलार स्रम झलक अलक-भार,
मग में धरत पग-जावक घुरयौ परै ।
'देव' मनि-नूपुर परम-पद दूपर ह्वै,
भू पर अनूप रंग-रूप निचुरयौ परै ॥३॥

★

झलकै अति सुंदर आनन गोरे, छके दृग राजत काननि छ्वै ।
हँसि बोलनि में छवि फूलन की, बरषा उर ऊपर जाति है ह्वै ॥
लट लोल कपोल कलोल करैं, कल कंठ बनी जल जावलि द्वै ।
अँग-अंग तरंग उठैं दुति की, परि है मनों रूप अबै धर च्वै ॥४॥

★

कुंदन कौ रँग फीकौ लगै, झलकै अस अंगन चारु गुराई ।
आँखिन में अलसानि चितौनि में, मंजु बिलासन की सरसाई ॥
को बिन मोल बिकात नहीं, 'मतिराम' लहैं मुसकानि मिठाई ।
ज्यों-ज्यों निहारिऐ नेरे ह्वै नैननि, त्यों-त्यों खरी निखरै सी निकाई ॥५॥

★

चंपक सौ तन, नैंन सरोज से, इंदु सौ आनन, जोति सबाई ।
बिंब से ओठ, लसै तिलफूल सी, नासिका-स्वाँस-सुबास सोहाई ॥
बाहैं मृनाल सी 'बैनी प्रवीन', उरोज उतंगन यों छवि छाई ।
ज्यों-ज्यों बिलोकिऐ जू प्रति अंगन, त्यों-त्यों लगै अति सुंदरताई ॥६॥

★

लाजनि लपेटी, चितवनि भेद-भाय भरी,
लसित ललित लोल चख तिरछानि में ।
छवि कौ सदन गोरौ बदन, रुचिर भाखि,
रस निचुरत मीठी मृदु मुसिक्यानि में ॥
दसन-दमक फैलि हियैं मोती-माल होत,
पिय सों लड़कि प्रेम पगी बतरानि में ।
आनँद की निधि जग-मगति छबीली बाल,
अंगनि अनंग-रंग दुरि मुरजानि में ॥ ७ ॥

सुंदर सुरंग नैंन सोभित अनंग-रंग,
अंग-अंग फैलत तरंग परिमल के ।
बारन के भार सुकुमार की लचत लंक,
राजै परजंक पर भीतर महल के ॥
कहै 'पदमाकर' बिलोकि जन रीझै जाहि,
अंबर अमल के सकल जल-थल के ।
कोमल कमल के, गुलाबन के दल के, सु-
जात गडि पाँयन बिछौना मखमल के ॥८॥

★

दीठ के परे ते गात-मंजुता मलीन होति,
देखै अंग दलकहि दल सतदल के ।
कोमल कमल-सेज हू पै ना लहति कल,
भारी लगै बसन अमोल मलमल के ॥
'हरिऔध' हरा पहिराए बपु-कंप होत,
पाँयन मे गडहिं बिछौने मखमल के ।
कुसुम छुए तें रंग हाथन कौ मैलौ होत,
छिपत छपाकर छबीली-छवि छलके ॥ ९ ॥

★

दुरि है क्यों भूषन बसन दुति जोबन की,
देह टू की जोति होति द्यौस ऐसी राति है ।
नाहक सुबास लागै ह्वै है कैसी 'केसव', सु-
भामती की बास भौंर-भीर फारै खाति है ॥
देखि तेरी सूरति की मूरति बिसूरति हूँ,
लालन के दृग देखिबे को ललचाति है ।
चालि है क्यो चंदमुखी कुचन के भार झुए,
कचन के भार ही लचकि लंक जाति है ॥ १० ॥

★

घोंघरे झीन सो, सारी महीन सो, पीन नितंबन भार उठै सचि ।
बास सुबास सिंगार सिंगारनि, बोझनि ऊपर बोझ उठै मचि ॥
स्वेद चले मुख चंद ते चवै, डग द्वैक धरै महि फूलन सो पचि ।
जात है पंकज-बारि-बयारि सों, वा सुकुमारि कौ लंक लला ! लचि ॥११॥

चरन धरै न भूमि विहरै तहाँई जहाँ,
फूले-फूले फूलन बिछायौ परजंक है।
भार के डरनि सुकुमार चारु अंगन में,
करत न अंगराग कुंकुम कौ पंक है॥
कहै 'मतिराम' देखि बालापन बीच आयौ,
आतप मलीन होत बदन मयंक है।
कैसे वह बाल लाल! बाहरैं बिजन आवै,
बिजन-बयारि लागै लचकति लंक है॥ १२॥

★

जावक के भार पग धरति धरा पै मंद,
गंध-भार कुचन परी है छूटि अलकैं।
'द्विजदेव' तैसिऐ विचित्र बरुनी के भार,
आधे-आधे दृगन परी हैं अध पलकैं॥
ऐसी छवि देखि अंग-अंग की अपार, बार-
बार लोल लोचन सु कौन के न ललकैं।
पानिप के भारन सँभारति न गात, लंक-
लचि-लचि जाति कच-भारन के हलकैं॥ १३॥

★

चंदन चहल चोबा चाँदनी चँदोवा चारु,
घनौ घनसार घोरि सींच महबूबी के।
अतर उसीर सीर सौरभ गुलाब नीर,
गजब गुजारैं अंग अजब अजूबी के॥
फेरन फबत फैली फूलन फरस तामैं,
फूल सी फबी है बाल सुंदर सुखूबी के।
बिसद बिताने ताने तामैं तहखाने बीच,
बैठी खसखाने में खजाने खोलि खूबी के॥ १४॥

★

चित चाँहि अबूझ कहैं कितने, छवि छीनी गयंदन की टटकी।
कवि केते कहैं निज बुद्धि उदै, यहि सीखी मरालन की मटकी॥
'द्विजदेव' जू ऐसे कुतरकन में, सबकी मति यौंही फिरै भटकी।
वह मंद चलै किन भोरी भटू!, पग लाखन की अँखियाँ अटकी॥१५॥

जोबन उजारी प्यारी बैठी रंग रावटी में,
मुख की मरीची सो दरीची बीच झलकैं ।
'भूधर' सुकवि मोहैं। सोहैं मन मोहै खरी,
खंजन सी आँखें, मन-रंजन सी पलकैं ॥
सीसफूल बैंना बैंदी बीर अरु बंदन की,
चंदन की चरचा की चारु छवि छलकैं ।
कोर वारी चूनरी, चकोर वारी चितवनि,
मोर वारी बेसरि, मरोर वारी अलकैं ॥ १६ ॥

★

रात पिय चाँदनी बिलोकिवे को रनवास,
सिगरी बुलाई मोद मंदिर में भरिगौ ।
'रघुनाथ' ता समैं की सोभा कौ समाज देखि,
रीझि रह्यौ मोपै न बखान कछु करिगौ ॥
घूँघट खुलति ही दुलहैया के आनन तें,
दस हू दिसान में प्रकास ऐसौ भरिगौ ।
दरिगौ गुमान सब सौतिन के जी कौ भट्ट !
तारन समेत तारापति फीकौ परिगौ ॥ १७ ॥

★

कातकी के द्यौस कहुँ आइ न्हाइवे कों वह,
गोपिन के संग जऊ नैसुक लुकी रही ।
द्विजदेव' दीह–द्वार ही तें घाट–बाट लगि,
खासी चंद्रिका सी तऊ फैली विधु की रही ॥
घेरि वार-पार लों तमासे-हित ताही समै,
भारी भीर लोगन की ऐसिऐ झुकी रही ।
आली ! उत आज बृषभानुजा विलोकिवे कों,
भानु-तनया हू घरी द्वैक लों लुकी रही ॥१८॥

★

आई हुती अनह्वावन नायन, सौंधे लिए वोह सोधे सुभायनि ।
कचुकी छोरि धरी उबटैवे कों, ईंगुर से अँग की सुखदायनि ॥
'देव' सुरूप की रासि निहारति, पाँय ते सीस लों, सीस ते पाँयनि ।
ह्वै रही ठौरई ठाढ़ी ठगी सी, हँसै कर ठोड़ी दिऐ ठकुरायनि ॥१९॥

थोरिऐ बैस, विसाल लभैं कुच, टेढ़ी चितौनि, पै सूधी चलै पथ ।
कौंवरे अंग, करेरे कुचावृत, लाज-लची गुन ऊँचे मनोरथ ॥
अंक लग्यौ उमग्यौ उर 'देव', सु बोलैं हरैं गरुई सी गिरा लथ ।
नैंन बडे-बडे नैसुक अंजन, मोती बडे-बड़े नैंसुक सी नथ ॥२०॥

★

बास बगारती, ढारती नेह, दुरी घन में छनभा सी सुभायन ।
त्यों ललचौंहे लचाइकैं नैन, मचाइ विनोद चितै तिरछायन ॥
कौंन धौं, का घर जाति चली,'द्विजदेव' लखौ किन चित्त के चायन ।
घेर कौ घाँघरौ घूटन लौं, सिर ओढ़नी बैजनी, पैजनी पाँयन ॥२१॥

★

सुथरे सम्हारे बार सैंदुर सों माँग भरि,
सीसफूल-जोति सब जोतिन सों आगरी ।
सारीऐ किनारी जरतारी, भाल रोरी आड़,
बिंदिया जरख रही भौंहन सों लागरी ॥
बडे नैन, छोटी नथ, गोरे मुख पान रचै,
मेंहदी चुँवति 'दयानिधि' अनुरागरी ।
गरब गहेली, छवि पाँयन सों पेली, हेली-
देखि अलबेली या नवेली कौ सुहाग री ॥२२॥

★

चालि निकाई लखैं बिलखैं अचि, पंगु मरालनि भाल बिसूरति ।
पाय परैं न परैं परि पायस, चीत रमै थरमै न कछू रति ॥
घूँघट बीच मरीचिनि की रुचि, कोटिक चंदन कौ मद चूरति ।
लाजन सों लपटी 'घनआनँद' साजन के हिय में हित पूरति ॥२३॥

★

पीछे परबीनै बीन संग की सहेली आगें,
भार उर-भूषन डगर डारे छोरि-छोरि ।
मोरैं मुख मोरन त्यों, चौंकति चकोरन त्यों,
भोरन की भीर ओर हेरैं मुख मोरि-मोरि ॥
एक कर आली कर ऊपर धरैं ही," हरैं-
हरैं पग धरैं ' देव ' चलै चित चोरि चोरि ।
दूजे हाथ साथ लै सुनावत बचन,
राजहंसन चुगावति मुकत-माल तोरि-तोरि ॥२४॥

फटकि-सिलानि सों सुधारयौ सुधा मंदिर,
उदधि दधि को सो उँमगाई अधिकै अमंद।
बाहर तें भीतर लों भीति न दिखाई देत,
छीर के से फेन फैली चाँदनी फरसबंद॥
तारा सी तरुनि, तामें ठाढी झिलमिल होत,
मोतिन की जोति मिल्यौ मल्लिका को मकरंद।
आरसी से अंबर में आभा सी उज्यारी ठाढ़ी,
प्यारी राधिका को प्रतिबिंब सो लगत चंद॥२५॥

★

मदन-तुका सी, किधौं राजै कुंदका सी, मानों–
कुंद-कलिका सी, मानो जोराहू बिकासी है।
गाँसी भरी हाँसी, मुख बाँसी मोह फाँसी, मद–
जोबन उजासी नेह दिए की सी खासी है॥
जाकी रति दासी, रस-रासी है रमा सी कोक,
कहैं तिलोत्तमा सी रूप-सारन प्रकासी है।
काम की लता सी, चपला सी, कवि 'नाथ' किधौं,
चंपक–लता सी, चारु चंद-चंद्रिका सी है॥२६॥

★

जगमगी जोतिन जराऊ मनि-मोतिन की
चंद-मुख मंडल पै मंडित किनारी सी।
बेदी बर बीर नगहीर नग हीरन की,
'देव' झमकन मे झमक भरि भारी सी॥
अंग-अंग उमरयौ परत रूप-रंग, नव–
जोबन अनूपम उज्यासन उजारी सी।
डगर–डगर बगरावति अगर-अंग,
जगर–मगर आपु आवति दिवारी सी॥२७॥

★

कौहर, कौल, जपा-दल विद्रुम, का इतनी जो बँधूक मे कोति है।
रोचन, रोरी, रची मेहदी, 'नृप संभु' कहै मुकता सम पोति है॥
पाँय धरै डरै इंगुर सौ, तिन में मनि–पायल की धनी जोति है।
हाथ द्वै–तीन लो चारि हू ओर ते, चाँदनी चूनरि के रंग होति है॥२८॥

पीत रंग सारी गोरे अंग मिल गई 'देव',
श्रीफल-उरोज-आभा, आभा सों अधिक सी।
छूटी अलकनि छलकनि जल-बूँदन की,
बिना बेनीबंदन बदन-सोभा विकसी॥
तजि-तजि कुंज-पुंज ऊपर भ्रमर गुंज,
गुंजरत मंजु रव बोलै बाल पिक-सी।
नीबी उसकाइ नैंक, नैनन हँसाइ-हँसि,
ससिमुखी सकुचि सरोबरि तें निकसी॥२९॥

★

आई खेलि होरी घरैं नवल किसोरी कहू,
बोरी गई रंग में सुगंधनि झकोरै है।
कहै 'पदमाकर' इकंत चलि चौकी चढ़ि,
हारन के बारन तें फंद-बंद छोरै है॥
घाँघरे की घूमनि सु ऊरुन दुबीचै दाबि,
आँगी हू उतारि सुकुमारि मुख मोरै है।
इतनि अधर दाबि, दूनरि भई सी चापि
चौवर-पचौवर कै चुनरि निचोरै॥३०॥

★

तीर पर तरनि-तनूजा के तमाल तरै,
तीज की तैयारी तकि आई अँखियान में।
कहै 'पदमाकर' सो उमगि उमग उठी,
मेंहदी सुरंग की तरंग अँखियान में॥
प्रेम-रंग बोरी गोरी नवल किसोरी झोरी,
झूलत हिंडोरे सों सुहाई अँखियान में।
काम झूलै उर में, उरोजन में दाम झूलै,
स्याम झूलै प्यारी की अन्यारी अँखियान में॥३१॥

★

जाहिरैं जागत सी जमुना, जब बूड़ै, बहै, उमहै वह बैनी।
त्यों 'पदमाकर' हीर के हारन, गंग-तरंगन कौ सुख दैनी॥
पाँयन के रँग सों रँगि जाति सी, भाँतिहि भाँति सरस्वती सैनी।
पैरै जहाँई जहाँ वह बाल, तहाँ-तहाँ ताल में होत त्रिवैनी॥३२॥

बाग बिलोकन आई हुतै, वह प्यारी कलिंद-सुता के किनारे ।
सो 'द्विजदेव' कहा कहिऐ, बिपरीत जो देखति सो दृग हारे ॥
केतकी-चंपक-जाति-जपा, जग भेद प्रसूनन के जे निहारे ।
ते सिगरे मिसि पातन के, छवि वाही सों माँगत हाथ पसारे ॥३३॥

★

चंद बिलोकन बाल बनी, सु बिसाल अटा पै चढ़ी चपला सी ।
आनन चंद समान उयौ, दुति दामिन सी चहुँ ओर प्रकासी ॥
चौंकि उठे तिथि के सब लोग रु, पंडित सों झगरैं ब्रजबासी ।
जानिय आवत है न तुम्हैं, लखौ चौथि है आजु, कै पूरनमासी ॥३४॥

★

जब-जब चढ़ति अटानि दिन, चंदमुखी वह बाम ।
तब-तब घर-घर धरनि हैं, दीप बारि सब गाम† ॥३५॥

★

सहज सहेलिन सों जु तिय, विहँसि-विहँसि बतराति ।
सरद चंद की चाँदनी, मंद परति सी जाति ॥३६॥

★

लिखन बैठि जाकी सबहि, गहि-गहि गरब गरूर ।
भए न केते जगत के, चतुर चितेरे कूर ॥३७॥

★

भूषन-भार सँभारि है, क्यों यह तन सुकुमार ।
सूधे पाँय न धर परत, सोभा ही के भार. ॥३८॥

★

(नायिका के १६ शृंगार)

प्रथम सकल सुचि, मंजन अमल बास,
जावक, सुदेस केस-पास कौ सम्हारिबौ ।
अंगराग, भूषन, विविध मुखबास-राग
कज्जल ललित लोल लोचन निहारिबौ ॥
बोलन, हँसन, मृदु चलन, चितौनि चारु,
पल-पल पतिव्रत प्रन परिपालिबौ ।
'केसौदास' सों बिलास करहु कुँवरि राधे,
इहि बिधि सोरहै सिँगारन सिंगारिबौ ॥३९॥

---

† मतिराम बिहारी

नायिकाओं का वर्गीकरण

नायिकाभेद के आचार्यों ने विविध दृष्टियों से नायिकाओं का वर्गीकरण किया है। महाकवि देव ने इसका सबसे अधिक विस्तार किया है। उनके मतानुसार नायिकाओं के आठ प्रमुख भेद होते हैं। इन आठो प्रमुख भेदों के अनेक अंतर्भेद होते हैं†।

मुख्य रूप से नायिकाओं को ५ वर्गों मे विभाजित किया जाता है‡—
१. जाति-अनुसार, २. धर्म-अनुसार, ३ दशा-अनुसार,
४. अवस्था-अनुसार और ५ गुण-अनुसार।

---

† आठ भेद नाइका के, बरनत हैं कवि संत।
भेद भेद-प्रति होत है, अंतरभेद अनंत॥
जाति, कर्म, गुन, देस अरु, काल, वयक्रम जान।
प्रकृति, सत्व नाइका के, आठौं भेद बखान॥

— 'रसविलास"

‡ महाकवि देव के मतानुसार नायिकाओं के ८ वर्ग होते हैं—जाति, कर्म, गुण, देश, काल, वयक्रम, प्रकृति और सत्त्व। इनका विवरण इस प्रकार है—

(१) जाति-अनुसार ४ प्रकार की—१. पद्मिनी, २. चित्रिनी, ३ शंखिनी, ४. हस्तिनी।

(२) कर्मानुसार ३ प्रकार की—१. स्वकीया, २. परकीया, ३. सामान्या।

(३) गुणानुसार ३ प्रकार की—सत, रज, तम तीनों गुणों के अनुसार क्रमशः १. उत्तमा, २. मध्यमा और ३ अधमा।

(४) देशानुसार अनेक प्रकार की—जैसे मध्य देश बधू, मगध बधू, कौशल बधू, उत्कल बधू, कलिंग बधू, कामरू बधू, बंग बधू आदि।

(५) कालानुसार ८ प्रकार की—१. स्वाधीनपतिका, २. कलहांतरिता, ३. अभिसारिका, ४.विप्रलब्धा, ५. खंडिता, ६.उत्कंठिता, ७.वासकसज्जा, ८. प्रोषितपतिका।

(६) वयक्रम के अनुसार ३ प्रकार की—१. मुग्धा, २. मध्या, ३. प्रगल्भा।

(७) प्रकृति के अनुसार ३ प्रकार की—१. कफ, २. वात, ३. पित्त।

(८) सत्त्वानुसार ९ प्रकार की—१. देव, २. किन्नर, ३. गन्धर्व, ४. यक्ष, ५. नर, ६. पिशाच ७. नाग, ८. कपि, ९. काक आदि।

द्वितीय परिच्छेद

जाति-अनुसार नायिकाएँ

★

जाति-अनुसार वर्ग के अंतर्गत ४ प्रकार की नायिकाएँ होती है—
१. पद्मिनी, २. चित्रिनी, ३. शंखिनी और ४. हस्तिनी

पद्मिनी—अति सुकुमार, लज्जावती, बुद्धिमती, उदारमना, प्रसन्नवदना, स्वर्ण की सी कांति वाली, पद्म की सी गंध वाली, सर्वांग सुंदरी रमणी को पद्मिनी नायिका कहते हैं।

सुबरन-रंग सुकुमारि सबै भामिन के,
अंगन उछाह की लहर लहरी रहति।
भूषन-बसन चारु दसन हँसन अरु,
नैननि मे प्रेम-रस-प्यास गहरी रहति॥
'सोमनाथ' प्यारे अलि भामरी भरति रहैं,
चहुँघा चकोरन की चौकी ठहरी रहति।
सरद कौ चंद कैसें कहौं मुख-चंद सम,
छहूँ रितु जाकी छवि छटा छहरी रहति॥४०॥

★

सरद के वारिद मे इंदु सी लसत 'देव',
सुंदर बदन चाँदनी सौ चारु चीर है।
सौंधौ सुधाबिंदु मकरंद सी मुक्त-माल,
लिपित मनोज तन-मंजरी सरीर है॥
सील भरी, सलज, सलौनी, मृदु मुसकानि,
राजै राजहंस गति गुननि गहीर है।
घेरी चहुँ ओरन तें मोरन की भीर भारी,
मोरन की भीर मे चकोरन की भीर है॥४१॥

---

† सुंदर, सहज सुगंध तन, कनक-बरन, मृदु हास।
रिस, भोजन, रति अति तनिक यह पद्मिनी बिलास॥
—"रसपीयूषनिधि"

चित्रिनी—नृत्य, गान, चित्रकला, परिहास आदि में रुचि रखने वाली, चंचल प्रकृति की अल्प लज्जाशीला सुंदरी रमणी को चित्रिनी नायिका कहते हैं† ।

देखी न परत 'देव' देखिवे की परी बान,
देखि-देखि दूनी दिख-साध उपजत है ।
सरद उदित इंदु बिंद-सी लसत लखैं,
मुदित मुखारबिंद इंदिरा लजत है ॥
अदभुत ऊख सी, पिऊख सी, मधुर बानि,
सुनि-सुनि स्रबननि भूख सी भजत है ।
मंत्री करयौ मैंन पर तंत्री करयौ बैंन, पर—
बिना तार तंत्री जीभ जंत्री सी बजत है ॥४२॥

★

गाइ, बजाइ, दिखाइ छवि, भरति हिये मे जोति ।
चलि कबूतरी सी तिया, नैंन-पूतरी होति‡ ॥४३॥

★

ह्वै रहै कमल कमलाकर कमलमुखी,
फूलनि में फूलिकैं खरीए खिलि जाति है ।
चित्रनि में चित्र तें विचित्र होति चित्रिनी,
अनूप चित्रसारी के सरूप हिलि जाति है ॥
दीपनि समीप दीप-सिखा ह्वै न पैऐ 'देव',
चंदमुखी चाँदनी महल मिलि जाति है ।
द्यौस हू न दीसै सीसमंदिर मे सुंदरी
प्रकास प्रतिबिंबन प्रभा में मिलि जाति है ॥४४॥

---

† चित्त गीत-कविता रुचैं, अचल चित्त, चल दृष्टि ।
बहिरति रति अति सुरति जल, मुख सुगंध की सृष्टि ॥
बिरल रोम तन, मदन-गृह, भावत सकल सुबास ।
मित्र-चित्र-प्रिय चित्रिनी, जानहु केसवदास ॥
—"रसिकप्रिया"

‡ हरिऔध

शंखिनी—निर्लज्ज, निःशंक, क्षमारहित, कोपसहित, अधीर स्वभाव वाली, कृशांगिनी और तीक्ष्ण वचनों वाली सुंदरी स्त्री को शंखिनी नायिका कहते हैं†।

लाल लसैं नख-दंत-कपोल, प्रवाल से ओठनि ऐंठि लचावति।
भौंहन-भाव सुभाव बताइकैं, बातन ही सब गात नचावति॥
औचकई चुटकीन बजाइ कैं, गाइ कैं प्यारे कौ प्रेम पचावति।
रूमि रहै कब हू रिसि कैं, कब हू रमनी रस-रंग रचावति॥४५॥

*

सनख हियौ लखि लाल कौ, यह मन होत सँदेह।
नखन खोदि चाहति कियौ, लालन के हिय गेह॥४६॥

*

लाल दुकूल सजै रुचि सों, सब ही सों निसक न लाज रही गहै।
और की औरहि बात कहै, 'ससिनाथ' कितो समुझाइ सखी कहै॥
पौछत स्वेदन अंगनि तें, सु अनंग-कला अति ही चित मे चहै।
जानि परै न कछू उर की, निसि-बासर बाम की भौंह चढ़ी रहै॥४७॥

*

अनख करति, तनिकै चलति, लजति न नैकौ बाल।
देखि निलजता आप ही, सलज बनत है लाल*॥४८॥

*

कोप भरी लघु गुप्त परी, उर बात चलै तरु डार-सी डोलै।
काम छुरी-सी लगै उछुरी सी, फिरै मछरी सी सुभाव बिलोलै॥
भौंह चढ़ी, कुटिलै अँखिआँ, अति तीखी कटाछिन चित्त न खोलै।
प्यारे सों रूसि रहै बिन दोस, बिना रिस-रोंस रिसानी सी डोलै॥४९॥

---

† निलज, सलज, तन रोम अति, नख-छत सों नित प्रीति।
लाल दुकूल, न संक चित, यहि संखिनि की रीति॥
—'रसपीयूषनिधि'

* हरिऔध

हस्तिनी—कटु भाषिणी, नाटे कद की और अत्यंत लोमयुक्त स्थूल शरीर वाली, गज-गामिनी कामिनी को हस्तिनी नायिका कहते हैं†।

गुलगुली गोल मखतूल की सी गैंदुआ,
गड़ै न गुड़ी जी में जऊ करत ढिठाई सी।
चोर की सी गठरी छुटै न छतियाँ तें,
मुख लागत अँधियारे हू में लागत मिठाई सी॥
भूखे को सौ भोजन, न भूलत सवाद भलौ,
नैक हूँ उमैठें नए नेह की इठाई सी।
सुरत संजोग कौ नहीं न करै निसि-दिन,
भोग की गुपत गुपचुप की मिठाई सी॥ ५०॥

★

रेगनि मोटी गोरटी, जोवन-मद एँड़ाति।
सखिन संग गज-गामिनी, चली ठवनि सों जाति॥ ५१॥

★

रोस-रुखाई भरी अँखियाँ, रस राखै नहीं सखिअाँन सों ढीठै।
भोजन भूरि भरी मदनज्जुर, भूरे से बारनि बानि अनीठै॥
चंचल चित्त छकी मद सों, छिन एक न छाती तें छाड़ति ईठै।
काम कै घात अघाति नहीं, दिन-रात नहीं रति-रंग उबीठै॥५२॥

★

नख-सिख-भारीपन भर्यौ, रंग-रूप अ-ललाम।
नाहिं काम हू तें सरत, काम-भरी कौ काम*॥ ५३॥

---

† थल चरन, कर, अधर, कटि भारी कुच, भुज, जानु।
ठिंगनी, बहु भोजन-गमन हस्तिनि तिय पहिचानु॥
—"भवानीविलास"

* हरिऔध

तृतीय परिच्छेद

धर्मानुसार नायिकाएँ

★

नायिका के धर्मानुसार वर्ग के अंतर्गत ३ प्रकार की नायिकाएँ होती हैं—१. स्वकीया, २. परकीया और ३. सामान्या।

सर्वांगपूर्ण नायिका मे ८ गुण होते हैं, जिनके कारण वह अष्टांगवती नायिका कहलाती है—१. यौवन, २. रूप, ३. गुण, ४. शील ५. प्रेम, ६. कुल, ७. वैभव और ८. भूषण†।

महाकवि देव ने स्वकीया को ही अष्टांगवती नायिका माना है*। वास्तव मे स्वकीया नायिका में ही समस्त गुणों का विकास हो सकता है। इस वर्ग की अन्य नायिकाएँ—परकीया और सामान्या मे उपर्युक्त सभी गुण नहीं हो सकते हैं। परकीया में अन्य गुण हो सकते हैं, किंतु उसमे 'कुल' का अभाव होता है। सामान्या में शील, कुल, प्रेम आदि सद्गुणों का सर्वथा अभाव होता है‡। वह अपने रूप और गुणों की मोहिनी डाल कर और कृत्रिम प्रेम दिखला कर धनी युवकों को अपने चंगुल में फँसाती हुई उनके धन को बटोरा करती है।

---

† जा कामिनि मे देखिऐ, पूरन आठौ अंग।
ताहि बखानैं नाइका, त्रिभुवन मोहन रंग॥
पहिलें जोबन, रूप, गुन, साल, प्रेम पहिचानि।
कुल, वैभव, भूषन बहुरि, आठौ अंग बखानि॥—महाकवि देव

* भूषन, जोबन, रूप, गुन, विभव सील, कुल, प्रेम।
आठौ अँग सुकियाहि के, परकिय बिन कुल-नेम॥
सामान्या बिन सील, कुल, प्रेम, विभौ पहिचानि।
भूषन, जोबन, रूप, गुन, सहित उत्तमा जान॥—'भवानी-विलास'

‡ रूप, गुन, जोबन और सील, कुल, प्रेम, विभौ,
भूषन जो आठौ अंग सुकिया के जानिऐ।
एक कुल हीन परकीया अंग सात,
कुल, सील, प्रेम विभौ बिन सामान्या बखानिऐ॥
—"सुख-सागर-तरंग"

स्वकीया नायिका

स्वकीया—जो विवाहिता स्त्री मन, वचन और कर्म से सदा अपने पति के अनुकूल रहे और पर-पुरुष की ओर भूल कर भी आकर्षित न हो, उसे स्वकीया नायिका कहते हैं† ।

मध्य कालीन राजा-महाराजाओं के अंतःपुर में विवाहिता स्त्रियों के अतिरिक्त कुछ 'भोगभामिनी' (रखेली) हुआ करती थीं. उनको भी नायिकाभेद के आचार्यों ने स्वकीया ही माना है* ।

(अष्टांगवती नायिका)

सुंदर जोबन, रूप अनूप, महा गुन-ग्यान की रासि रची तू ।
सीलभरी कुल-लोक उज्यारी है, नागरि पूरन प्रेम-पची तू ॥
भाग की भौन, सुहाग सों भूषित भूमि की भूषन, साँची सची तू ।
आठहु अंग तरंगित रंग, सबै रुचि संचि विरंचि रची तू ॥५४॥

*

सील भरी बोलति सुसील बानी सब ही सों,
'देव' गुरु-जनन की लाज जों लची रहीं ॥
कोमल कपोल पर दीसै हरदी सी दुति,
चूंनी सी सकुचि मुसुकानि मे मची रहीं ॥
लालन की लाली अँखियन में दिखाई देत,
अंतर अनंतर ही प्रेम सो पची रहीं ।
कुँवरि किसोरी मुख मोरी करै सखिन सों,
चोरा-चोरी चित्त रति रोरी सी रची रहीं ॥५५॥

---

† जाके तन, मन, वचन करि, निज नायक सों प्रीति ।
विमुख सदा पर-पुरुष सों, सो सुकिया की रीति ॥
—"भावविलास"

* श्रीमानिन के भौन जो, भोग-भामिनी और ।
तिन हू कों सुकियाहु मे, गनै सुकवि सिरमौर ॥
—'शृंगारनिर्णय"

सील सलील सलौनी सुहागिनि, सो कहै भामिनि भौंहन ऐंठी ।
गोतिन में गुन-ग्यान तुला चढ़ि, सौतिन में अभिमान अमैठी ॥
'देव' पतिव्रत पाटी पढ़ी, न कढ़ी कबहू पिय के हिय पैठी ।
लाज करै गुरु लोगन में, अरु काज करै घर में घर बैठी ॥५६॥

★

सासु जेठानिन सों दबती रहै, लीने रहै रुख यों ननदी कौ ।
दासिन सों सनरात नहीं, 'हरिचंद' करै सनमान सभी कौ ॥
पीय कों दच्छिन जानि न दूसत, चौगुनौ चाव बढ़ै वा लली कौ ।
सौतिन हू कौ अमीमै सुहाग, भरै कर आपने सेंदुर-टीकौ ॥५७॥

★

भाव भरयौ सिगरे ब्रज सोर, सराहत तेरेइ सील सुभाइन ।
दुःख हेरात सिरात हियौ, गहिरात चितैवे कौ चित्त चबाइन ॥
एरी अहो ठकुराइन मेरी, सु चेरी हौं तेरी, परौं इन पाँइन ।
सौति हू की अँखिआँ सुख पावतीं. तो मुख देखि सखी सुखदाइन ॥५८॥

★

बचना सुधा सी. बसुधा सी त्यों सहनसील,
चंद की कला सी ऐसी सोभा सरसति है ।
कुल की कला सी, सील-सिंधु कमला सी,
गुरु-लोगन की दासी सी,न सेवा अरसति है ॥
नजर निचौहैं कहूँ हेरत न सौंहैं 'बैनी',
सदा पतिव्रतन के पाँइ परसति है ।
सुखद सु लाभ भरी, पति-अनुराग भरी,
भाग भरी भामिनी भलाइ दरसत है ॥५९॥

★

दीप सम दीपति उदीपत अनूप, निज-
रूप के सरूप-रति रूपहि हरति है ।
कहै 'परताप' करि मजन सरस मन-
रंजन पिया के दृग अंजन धरति है ॥
ताही समैं दूती दिखरायौ आनि भौंरि लिखि,
निरखि उदास ह्वै उसाननि भरति है ।
सारस-बिलोचनि विचार चित चेत,
राजहंसन के बंस की सिपारस करत है ॥६०॥

कवि 'देव' हरैं बिछिआनु बजाइ, लजाइ रहै पग डोलनि पै ।
गुरु-दीठि बचाइ लचाइ कैं लोचन, सोचनि सों मुख खोलनि पै ॥
हँसि हौंस भरे अनुकूल बिलोकनि, लाल के लोल कपोलनि पै ।
बलि हो बलिहारी हौं बार हजारन, बाल की कोमल बोलनि पै ॥६१॥

★

प्रेम सु सेवन में गुरु-लोगनि देविन देवन के सम पूरी ।
'बेनि प्रवीन' लसै अधरानि में, कोमल बोल सँकोच सनेरी ॥
प्रीतम में सुख प्रीति सराहिऐ, कै गुन-सील-सुभाइ घनेरी ।
को सिय तेरी कहै उपमा, तिय तोसी तुही, तिहुँ लोक उजेरी ॥६२॥

★

पूजती और सबै बनिता, तिनके मन में अति प्रीति सुहाति है ।
कौन की सीख धरी मन में, चलिकै बलि काहे नजीक न जाति है ॥
औसर या बरसायत कौ, वर सायत ऐसी न और लखाति है ।
कौन सुभाव री तेरौ परयौ, बर पूजत काहे हिऐं सकुचाति है ॥६३॥

★

सारद सी मनि-मंदिर में, नख तें सिख लौं सुषमा रही फेलि है ।
मंद हँसी 'लछिराम' सु ओठ लौं, रोस न सापने हू मन मेलि है ॥
प्रीतम के रुख राखिवे कों, गिरजा सों लई बरदान सकेलि है ।
भाग भरी, अनुराग ढरी, पट भीतर मानों सोहाग की बेलि है ॥६४॥

★

देखति नैंन की कोरन लौं, अधरानि ही में मुसक्यानि कौ थानौ ।
बोलति बोल सो कंठ ही में, चलतै पग पै न कहूँ अहरानौ ॥
'सुंदर' रोष नहीं सपने अरु, जो भयौ तौ मन ही मे बिलानौ ।
मैं बसुधाए सुधाई सबै, पर याकी सुधाई सुधाई है मानौ ॥६५॥

★

(स्वकीया के १२ आभूषण)

सील और लाज मिठास बतान में, तैसी दृढ़ाई स्वधर्म मयूखन ।
साधुता और पतिव्रत नैम, मिताई सबै सों, न काहू कौ दूषन ॥
तैसी बिनै औ अचार छिमा, गुरु लोगन सेइवे कौ बिन दूखन ।
ए तिया के तीरथ से, सुख-कीरति कारी हैं द्वादस भूषन ॥६६॥

स्वकीया नायिका के भेद—

वयक्रम से स्वकीया नायिका के निम्न लिखित ३ भेद होते हैं ‡—

१–मुग्धा, २–मध्या, ३–प्रौढ़ा।

‡ (१) देव और दास आदि कई आचार्यों ने मुग्धा, मध्या और प्रौढ़ा नायिकाओं को स्वकीया के भेद न मान कर वयक्रम के अनुसार नायिकाओं के पृथक वर्ग के अंतर्गत माना है और इन तीनों नायिकाओं को परकीया और सामान्या में भी लिखा है। यथा—

प्रथम सुकीया, पुनि परकीया, इक सामान्य बखानी तीया।
ते पुनि तीनि-तीनि परकार, मुग्धा, मध्या, प्रौढ बिहार॥

—नंददास कृत 'रसमंजरी'

किंतु केशवदास, चिंतामणि, मतिराम, रसलीन और पद्माकर आदि ने मुग्धा, मध्या और प्रौढ़ा नायिकाओं को स्वकीया के ही भेद माने हैं। नायिकाओं के अधिकांश कवियों को यही मत मान्य है।

(२) देव ने स्वकीया के अंश भेद में ५ भेद किये हैं और वयक्रमानुसार उनको इस प्रकार विभाजित किया है—

१—देवी (७ वर्ष)
२—देव गंधर्वी (१४ वर्ष)
३—गंधर्वी (२१ वर्ष)
४—गंधर्व मानुषी (२८ वर्ष)
५—मानुषी (३५ वर्ष).

इनमें देवी को पूज्य; देव-गंधर्वी, गंधर्वी और गंधर्व-मानुषी को भोग-विलास योग्य तथा मानुषी को कुलधर्म एवं संतान-सुखार्थ लिखा है। देव के मतानुसार ३५ वर्ष तक की स्त्री तरुणी कहलाती है। —"भावनीविलास"

(३) दास ने स्वकीया नायिका के ३ भेद किये है—

१–पतिव्रता, २–उद्दारिज, ३–माधुर्ज।

(४) रसलीन ने स्वकीया और परकीया के ३ भेद और किये हैं, जो सब से निराले हैं। यथा—

१. कामवती, २. अनुरागिनी, ३. प्रेमासक्ता।

मुग्धा—जिसके शरीर में नव यौवन का संचार हो रहा हो, ऐसी लज्जाशीला किशोरी को मुग्धा नायिका कहते हैं† ।

ए अलि ! जा बलि के अधरान में, आनि चढ़ी कछु माधुरई सी ।
ज्यों 'पदमाकर' माधुरी त्यों कुच, दोउन की बढ़ती उनई सी ॥
ज्यों कुच त्यों ही नितंब बढ़े कछु, ज्यों ही नितंब त्यों चातुरई सी ।
जानी न ऐसी चढ़ा-चढ़ि में, केहिधौं कटि बीच ही लूट लई सी ॥६७॥

★

धीरी भई जाति गति, नीरी भई जाति मति,
पीरी भाई जाति ज्योति, दीपक ज्यों रतियाँ ।
'मनसुख' स्रौनी जाति, लंक लों बिलौनी जाति,
त्रिबली मिलौनी सात रोमन की पतियाँ ॥
बैस सरसानी जाति, काम-सर सानी जाति,
सुधा सरसानी जाति, सानी जाति बतियाँ ।
बढ़ी जाति अँखियाँ, सु मढ़ी जाति मैन बस,
चढ़ी जाति भौंहैं, कित कढ़ी जाति अँखियाँ ॥६८॥

★

सिसुताई अजौं न गई तन तें, तऊ जोबन-जोति बटोरै लगी ।
सुनिकै चरचा 'हरिचंद' की कान कछूक दै, भौंह मरोरै लगी ॥
बचि सासु जेठानिन सों, पिय तें दुरि घूँघटि में दृग जोरै लगी ।
दुलही उलही सब अंगन तें, दिन द्वै तें पिऊष निचोरै लगी ॥६९॥

★

लीन नितंबन नें गुरुता कटि की, कटि नें तिनकी कृसताई ।
रोमन बैंनन की रिजुता लई, बैंनन रोमन की कुटिलाई ॥
पाँयन नैंनन मंद गती गहि, नैंनन पाँयन की चपलाई ।
यों गुन-आगरि नागरि-अंगन, आपस में हठि लूटि मचाई ॥७०॥

---

† अभिनव जोबन-आगमन, जाके तन मे होइ ।
ताको मुग्धा कहत है, कवि-कोविद सब कोइ ॥
—"रसराज"

तिय तन अरुन दिनेस उदयौ है आनि,
साँझ सिसुताई के तिमिर सब भागे हैं।
फैलि रही अंबर में चहूँ ओर अरुनाई,
फूल नैंन कंज मकरंद रस-पागे हैं॥
'उदैनाथ' कंत के मनोरथ हू पथै चले,
चित चतुराई तजि आरस कों जागे हैं।
रूप के सरोवर में नाह-नैंन न्हान लागे
सौतिन के मान तेऊ दान होन लागे हैं॥ ७१॥

*

दौरि चली कुसुम-चरन सुकुमारताई,
चरन चले हैं गरुबाई के पथन कों।
गरुबाई छतियाँ कों, छतियाँ उँचाई कों,
उँचाई चोज रसमय बास अरथन कों॥
कहैं 'हरिकेस' सिसुताई के चलाचले में,
कहा कहौं चलौ चित लाज के सथन कों।
लाज चली आँखिन कों, आँखि चली कानन कों,
कान चले चौंकत से चाले के कथन कों॥ ७२॥

मनोहर अंग की भूटी रची, सिसुताई जराई अनंग-कलार।
भनै कवि 'संभु' यों देह-सी दीपति, ज्वाल अँगार-से लाल के हार॥
बड़े सिर बार यों धूम की धार, धरयौ तर भाजन नाभि सुढार।
रुमावलि कंचन-कुंभ-उरोजनि तें, मनों च्वै चली आसब-धार॥७३॥

*

ज्यों-ज्यों होत भृकुटी कुटिल धनु ऐनमैन,
त्यों-त्यों मृग नैंन लखि कानन परात हैं।
ज्यों ज्यों उरसिज अनुसरै हर मूरति लों,
त्यों-त्यों मनसिज-बान गुन मे समात है॥
ज्यों-ज्यों 'नीलकंठ' कटि सिंह छीन होत त्यों-त्यों,
जंघन गयंद पीनता कों सरसात हैं।
ज्यों-ज्यों मुख होत बिधु झांई की झकोर झख,
त्यों-त्यों हरि-लोचन चकोर होत जात हैं॥ ७४॥

बिछुरन लागे बालपन के अयानप,
सखीन सों सयानप की बतियाँ गढ़ै लगी ।
दृग लागे तिरछे, चलन पग मंद लागी,
उर में कछूक उकसन सी चढ़ै लगी ॥
अंगन मे आई तरुनाई की झलक,
लरिकाई अब देह तें हरैं-हरैं कढ़ै लगी ।
होन लागी कटि अब छुटिकै छला सी,
द्वैज चंद की कला सी दिन-दीपति बढ़ै लगी ॥७५॥

★

देखत प्रीतम को दुरिहू, दृग कंज ये पावें निकास घनेरौ ।
त्यों कुच कोकन के जुग सावक, चाहें 'कुमार' सकास बसेरौ ॥
जावक सौ रँग, सौति के नैंन चल्यौ घट तेरौ अयान अँधेरौ ।
गातन कैसें दुरायौ है जात, प्रभात सौ जोबन रूप-उजेरौ ॥७६॥

★

थापति सी चातुरी, सरापति सी लंक, अरु
आपति सी पारति अरी अजानपन में ।
कहै 'पद्माकर' सु ओप दरसावत सी,
लावत सी नैसुक उचाई उरजन में ॥
लाजहि बुलावति सी, सखिन रिझावत सी,
नावति सी प्रीति अति प्रीतम के उर मे ।
आँखिन असीसत सी, दीसति सी मंद-मंद,
आवति चली यों तरुनाई तिय-तन में ॥७७॥

★

ढरकन चंद-मुख मंद मुसकानि सुधा,
बाढ़ी रस आनँद की चोप चखियाँन में ।
तंग होत आँगी ज्यों-ज्यों उरज उतंग होत,
प्रगटी अनंग काया कंज-पखियाँन मे ॥
अंग-अंग फैलत तरंग नव जोबन की,
छकी सी निहारति नवेली सखियाँन में ।
कटि कृसताई औ नितंब पीनताई छाई,
पाँय थिरताई, चंचलाई अँखियाँन में ॥७८॥

फरकन लागीं आँख टरकन कानन लौं,
हरकन लागी लाज पलकैं सुचैनी की ।
भर लाग्यौ परन उरोजन में 'रघुनाथ'
राजी रोमराजी भांति कल अलि-सैनी की ॥
कटि लागी घटन, पटन लागी मुख-सोभा,
अटन सुबास लागी आस स्वाँस पैनी की ।
अंगन मे दुति चारु सौने सी जगन लागी,
एड़िन लगन लागी बैनी मृगनैंनी की ॥७९॥

*

मृगन की, मीनन की चंचलाई चखन में,
मोतिन की, हीरन की जोति है रदन में ।
ओठन में आई है मिठाई सब सिमिट कै,
दाख में, न ऊख में, न स्वाद सरदन में ॥
महाकवि 'बालम' के खुले हैं विसाल भाग,
रातो दिन राजति मसाल सी सदन में ।
बिधना गुलाब कौ सौ अरक उतारि मानों,
चंद की निकाई राखी प्यारी के बदन में ॥८०॥

*

आनन मे मुसिकानि सुहावनी, बंकुरता अँखियाँन छई है ।
बैन खुले, मुकुले उरजात, जकी हिय की गति कौन ठई है ॥
'दास' प्रभा उछरै सब अंग, सुरंग सुबासता केलि मई है ।
चंदमुखी तन पाय नवीनौ, भई तरुनाई अनंदमई है ॥८१॥

*

नवल वधू-तन तरनई, नई रही है छाइ ।
दै चसमा चख चतुरई लघु सिसुता लखि जाइ* ॥ ८२ ॥
अभिनव जोबन-जोति सों, जगमग होत बिलास ।
तिय के तन पानिप बढ़ै, पिय के नैंनन प्यास† ॥ ८३ ॥
सौतिन-मुख निसि कमल भे पिय-चख भए चकोर ।
गुरुजन-मन सागर भए, लखि दुलहिन मुख ओर‡ ॥ ८४ ॥

---

* कृपाराम † मतिराम ‡ रसलीन

(वय-संधि मुग्धा नायिका*)

जल में दुरी हैं, जैसे कमल की कलिका द्वै,
उरजन ऐसें दीन्ही सरुचि दिखाई सी ।
गंग' कवि साँझ सी सोहाई तरुनाई आई,
लरकाई माँझ कछु मैं न लखि पाई सी ॥
स्यामा कौ सलौनौ तन, तामें दिन द्वैक माँझ,
फिरी ही चहत मनमथ की दुहाई सी ।
सीसी में सलिल जैसें, सुमन पराग तैसें,
सिसुता में झलकति जोबन की झाँई सी ॥८५॥

*

अंग मिल्यौ चतुरंग चमू दोऊ, द्वै नद संग तरंग ज्यो ठाढ्यौ ।
हैं उमँगें उर ज्यों उरज्यौ, दुरजौ दुर जोग दुहूँ सर काढ़्यौ ॥
देव' दुहू दिसि दौरि दुहूँ की, दुहूँ कौ विवाद बराबर बाढ़्यौ ।
जोवन धाइ परयौ तन में, पकरयौ मनों बालपन्यौ गढ़ गाढ्यौ ॥८६॥

*

बीती लरिकाई न, झलक तरुनाई आई,
निरखै सुहाई अंग औरै आँप अति है ।
तुला चल संक्रमन की सी दिन राति कौ उ-
घटि-बढ़ि है न संधि ठीक ठहरति है ॥
दरस कौ अंत ज्यो उजेरौ न अँधेरौ पाख,
'सोमनाथ' उपमा प्रमान परमति है ।
दोऊ बैस-संधि मे छबीली प्रानप्यारी वह,
अरुन उदै की कंज-कली सी लसति है ॥८७॥

*

खिझवति, हँसति, लजाति पुन, चितवति, चमकति हाल ।
सिसुता जोबन की ललक, भरे बधू-तन ख्याल ॥८८॥

---

* देव आदि कुछ आचार्यों ने मुग्धा नायिका का सूक्ष्म विवेचन करते हुए उसका 'वयसंधि' नामक एक और भेद लिखा है । शैशव के प्रस्थान और यौवन-आगमन के संधि-काल वाली नायिका को 'वयसंधि' कहते है । यथा—

"लरिकाई-तरुनई की संधि जहाँ ठहराइ ॥"

† कृपाराम

मुग्धा नायिका के भेद

मुग्धा नायिका के २ भेद होते हैं—

१. अज्ञात यौवना, २. ज्ञात यौवना ‡ ।

---

‡ (१) मतिराम और पद्माकर ने मुग्धा के अज्ञात यौवना और ज्ञात यौवना नामक २ भेद ही माने हैं ।

(२) केशवदास ने उपर्युक्त २ भेदों के स्थान पर ४ भेद किये हैं—
१—नवल बधू, २—नव यौवना, ३—नवल अनंगा, ४—लज्जाप्रायः ।

(३) चिंतामणि ने मुग्धा के ६ भेद किये हैं—
१—वयसंधि, २—अविदित यौवना, ३—अविदित कामा, ४—विदित मनोभवा यौवना, ५—नवोढ़ा, ६—विश्रब्ध नवोढ़ा ।

(४) देव ने ५ भेद मान कर उनको वयक्रमानुसार इस प्रकार लिखा है—
१—वयसंधि (अज्ञात यौवना—१२ से १३ वर्ष)
२—नवल बधू (१३ वर्ष)
३—नव यौवना (ज्ञात यौवना १४ वर्ष)
४—नवल अनंगा (नवोढा—१५ वर्ष)
५—सलज्ज रति (विश्रब्ध नवोढ़ा—१६ वर्ष)

(५) कुछ कवियों ने मुग्धा के नवल बधू आदि भेद मान कर अज्ञात यौवना और ज्ञात यौवना को नवल बधू के अंतर्गत माने है ।

(६) जिन कवियों ने मुग्धा को स्वकीया का भेद न मान कर नायिका के पृथक् वयक्रम वर्ग के अंतर्गत माना है, उन्होंने परकीया मुग्धा, परकाया अज्ञात यौवना, परकीया ज्ञात यौवना, सामान्या मुग्धा, सामान्या अज्ञात यौवना, सामान्या ज्ञात यौवना आदि भेद मुग्धा के किये है, जो कि अन्य मान्य आचार्यों को स्वीकृत नहीं है ।

(७) रसलीन ने ५ भेद किये है—
१—अंकुरित यौवना, २—शैशव यौवना, ३—नव यौवना
४—नवल अनंगा, ५—नवल बधू ।

उपर्युक्त ५ भेद मान कर रसलीन ने नव यौवना के अज्ञात यौवना और ज्ञात यौवना नामक २ भेद, नवल अनंगा के अविदित काम और विदित काम नामक २ भेद तथा नवल बधू के नवोढ़ा, विश्रब्ध नवोढ़ा और लज्जासक्का—रतिकोविदा नामक ३ भेद किये है ।

(१) **अज्ञात यौवना**—जिस मुग्धा नायिका को अपने यौवन-आगमन का ज्ञान न हो, ऐसी अबोधावस्था वाली किशोरी को अज्ञात यौवना कहते हैं।†

खेलन चोर-मिहीचनी आजु, गई हुती पाछिले घौस की नाईं।
आली! कहा कहौं एक भई, 'मतिराम' नई यह बात तहाँई॥
एकहि भौन दुरे इक संगहि, अंग सों अंग छुवायौ कन्हाई।
कंप छुट्यौ, घन स्वेद बढ्यौ, तन रोम उठे, अँखियाँ भरि आईं॥८९॥

★

द्वार गई तहँ मेह मिल्यौ, हरि कामरी ओढ़ैं हुत्यौ उत वैसौ।
आतुर आइ कै अंग छपाइ, बचाइ कै मोहि गयौ जस लै सौ॥
'दास' न ऐसौ लख्यौ कबहूँ, सु अचंभौ भयौ वहि औसर जैसौ।
सेद बढ्यौ त्यों लग्यौ तन-कंपन, रौंम उठ्यौ यह कारन कैसौ॥९०॥

★

कोलिल कूक सुनैं उमँगै मन, और सुभाउ भयौ अब ही कौ।
फूले लता-द्रुम कुंज सुहात, लगै अलि-गुंजन भावतौ जी कौ॥
कारन कौन भयौ सजनी! यह, खेल लगै गुड़ियान कौ फीकौ।
काहे तें साँवरौ अँग छबीलौ, लगै दिन द्वैक तें नैनन नीकौ॥९१॥

★

नैंकौ सुहाति न, जाति गड़ी, उर पीर बड़ी, गहि गाढ़ी गड़ी क्यों।
खैंची खयून खरी खरकै नहिं, नीठि खुलै खुभि डीठि घमी क्यों॥
'देव' कहा कहौं तोसों, जु मोसों, तैं आज करी बिन काज हँसी क्यों।
गाँठीऐ तोरि तनी छिनु छोरि दै, छातीऐ कंचुकी ऐंचि कसी क्यों॥९२॥

---

† जब यौवन को आगमन, जानि परत नहिं जाहि।
सो अज्ञात यौवन तिया, भाषत सुकवि सराहि॥ —"जगद्विनोद"

सखि जब सर-स्नान लै जाहीं। फूले अमलन कमलन माँहीं॥
पौंछै डारति रोम की धारा[1]। मानतिं बाल सिबाल की डारा॥
चंचल नैन चलत जब कौने। सरद-कमल-दल हू तें लौने॥
तिनहिं सबन बिच पकरयौ चहै। अंबुज-दल से लागैं, कहै॥
इहि प्रकार बरसैं छवि-सुधा। जो अग्यात जोबना मुग्धा॥
—नंददास कृत "रसमंजरी"

कारे चीकने ह्वै कछु काहै केस आपु ही तें,
बढ़ि-बढ़ि बिथुरि छुवा लों लागे छलकन ।
बार-बार बदन बिलोकन लगी हैं सौति,
औरै तौर सौरभ समूह लागे हलकन ॥
कौन धौं बलाय बसी अंग मे हमारे, हमे
देखिवे कों कान्ह 'हनुमान' लागे ललकन ।
जंघ लागी सटन, घटन लागी लंक, औ
बढ़न लागी आखें री नितंब लागे दलकन ॥ ९३ ॥

*

कैसीधौं निकाई सरसाई नन मेरे, मोहि
हेरे बिन, एरी ! हरि लागे अब अहकन ।
गति गरुवानी, मति औरैं सरसानी कछू,
कैसैं नैंन कानन लौं लागे बीर ! बहकन ॥
पीर होत उर में, न धीर धरयौ जात मोपै,
कौन हेत लागी 'हनुमान' लक लहकन ।
आहि-आहि कैं कै उठैं कांपि-कांपि सौत काहै,
चाहि-चाहि मो मुख चकोर लागे चहकन ॥ ९४ ॥

*

बबा सामुहे में चुप साधे रहैं, भलौ भाई कौ संग निहोरत हैं ।
'लछिराम' सुरंग सजे पटुका, सिरपेच को बाँधत-छोरत हैं ॥
चलैं संग हमारे न खेलिवे कों, कर कों छिएँ भौंहै मरोरत हैं ।
ए कहाँ रहैं भाभी ! बताइदै तू, जो हमैं लखि यों मुख मोरत हैं ॥९५॥

*

सखि नेहू हुतौ निसि देखत ही, जिन पै वे भई ही निछावरियाँ ।
तिन पानि गह्यौ हुतौ मेरौ तबै, सब गाइ उठीं ब्रज गाँवरियाँ ॥
अँसुआँ भरि आवत मेरे अजौं, सुमिरैं उनकी पग पाँवरियाँ ।
कहि को हैं हमारे वे कौन लगैं, जिनके सँग खेली ही भाँवरियाँ ॥९६॥

*

कालहई गूँथि बबा कि सौं मैं, गजमोतिन की पहिरी अति आला ।
आई कहाँ तें इहाँ पुखराज की, संग गई यमुना तट बाला ॥
न्हात उतारी हौं 'बेनीप्रवीन', हँसे सुनि बैनन नैंन रसाला ।
जानति ना अँग की बदली, सब सों बदली-बदली कहै माला ॥९७॥

जैसिऐ बताइ दई, अंगन नपाइ दई,
तैसिऐ बनाइ दई, कौन चल छैहों मैं ।
गिरिहै सों जाँचि लीजै, बूटिन सु बाँचि लीजै,
बाँचि लीजै 'सेवक' लिखे कौ न दुरैहों मैं ॥
एहो ठकुराइन ! जनाइ ना मुहुँ को भेद,
संग की खेलाइन उरहानौ न लैहों मैं ।
घाँघरे की अटनि बढ़ी सो फेर देउ, तासों
कंचुकी की घटनि सु पूरी करि दैहो मैं ॥ ९८ ॥

★

अति चाह भरी जमुना–जल कों, बरजे पर हू नित ऐवौ करै ।
सखि की सुख-सीख सुनें न कछू, अपनी कहिकैं मुसकैवौ करै ॥
दुति दूनी बढ़ाय 'गुलाब' जबै, गुरुलोगन ते न रुकैवौ करै ।
नबनागरि रूप उजागरि सो, भरि गागरि क्यों डरकैवौ करै† ॥९९॥

★

आज सुभाइन ही गई बाग, विलोकि प्रसून की पाँति रही पगि ।
ताही समैं तहँ आए गुपाल, तिन्हैं लखि औरौं गयौ हियरौ ठगि ॥
पै 'द्विजदेव' न जानि परयौ धौं, कहा तिहिं काल परे अँसुआँ जगि ।
तू जो कहै सखि ! लौनौं सरूप, सो मो अँखियान में लौनी गई लगि ॥ १०० ॥

★

फूली कुंज–क्यारिन में मालती मयंक लसी,
पगन में लिऐं दुति चंपकन लीनी क्यों ।
संग की सहेलिन की कटि जो निहारि देखौ,
मेरी दिन-राति जाति होति कटि छीनी क्यों ॥
'ग्वाल' कवि चुंबक अचानक दबाइ हार,
माल कों मिलाइ पै सुवास-रस-भीनी क्यों ।
देखि नथुनी में रज राजत दुनी में बीर !
मेरी नथुनी में चुनी तीन पोहि दीनी क्यों ॥ १०१ ॥

★

अधर परसि मीठी भई, दई हाथ तें डारि ।
लावति दतुअनि ऊख की, नोखी खिजमतिगारि§ ॥ १०२ ॥

---

† गागर मे अपने नेत्रों के प्रतिबिंब को मछलियाँ समझ कर उसके जल को डाल देने से व्यंग्यार्थ द्वारा 'अज्ञात यौवना' है । § बिहारी

(२) **ज्ञात यौवना**—जब मुग्धा नायिका को अपने यौवन का ज्ञान होने लगता है, तब उसे ज्ञात यौवना कहते हैं* ।

छुटिकै कटि रंचक छीन भई, गति नैननि की तिरछान लगी ।
'ससिनाथ' कहै उर ऊपर नें, अँचरा उघरे नें लजान लगी ॥
लरिकाई के खेलि पछेलि कछूक, सयानि सखीन पत्यान लगी ।
पिय-नाम सुनैं तिय द्यौसक नें, दुरिकै-मुरिकै मुसक्यान लगी ॥१०३॥

★

आनन सिकोर गुड़िआनन के खेलन तें
सौरभ लगाइ चढ़ि चौकी पै बिभाती है ।
बारन को प्यारी अति प्यार तें सुधारि,
हिए-हारन के धारन की प्रीति सरसाती है ॥
कहै 'हनुमान' सखियाँन तें दुराइ,
अँखियाँन कों नचैवे. लै मुकुर मुसकाती है ।
सु भरे सुबासन तें बासन बनाइ चारु,
उभरे उरोजन को हेरि हरसाती है ॥१०४॥

★

नापत ही अँगुरीन सो बासर, बीतौ बनी न बनाय कै हारी ।
त्यों कह 'भानु' कसी कितनी, पर होत है आपहि सों अधिकारी ॥
री सजनी ! कुच औ कटि की, बढ़ती-घटती लखि बात विचारी ।
कंचुकी मेरी भई बलि-संपति, द्रोपति-सारो सी सारी हमारी ॥१०५॥

★

खेलत संग कुमारन के, सुकुमारि कछू सकुची जिय माँही ।
काम-कला प्रगटी अँग-अंग, बिलोकि हँसी अपनी परछाँही ॥
'ब्रह्म' भनै न रहै उर अंचल, तू छिन-हीं-छिन डंपत काँही ।
डारति हौ सिव के सिर अंबर, ए तौ दिगंबर राखत नाँही ॥ १०६ ॥

★

इतै-उतै सकुचत चितै, चलत डुलावति बाँह ।
दीठि बचाय सखीन की, छिनक निहारति छाँह ‡ ॥ १०७ ॥

---

* निज तन यौवन-आगमन, जानि परत है जाहि ।
कवि-कोविद सब कहत हैं, ज्ञात यौवना ताहि ॥—"रसराज"

‡ मतिराम ।

फरकै लगीं खंजन सी अँखियाँ, भरि भायन भौंहैं मरोरै लगी ।
अँगिराइ कछू अँगिया की तनी, छवि छाकि छिनौ छिन छोरै लगी ॥
बलि जैवै परै 'द्विजराज' कहै, मन मौज मनोज हिलोरै लगी ।
बतियाँन में आनँद घोरै लगी, दिन द्वै तें पियूष निचोरै लगी ॥१०८॥

★

अब तौ तिय बैठि इकंत सखीन सों, कांक-कथानि बिथोरै लगी ।
सुनि सौतिन के गुन की चरचा, 'द्विजजू' तिय भौंह मरोरै लगी ॥
नँनदी औ जिठानिन सों दुरिकै, रति-भौन मे जा, तन तोरै लगी ।
अभिलाष भरे पिय-स्रौननि में, दिन द्वै तें पियूष निचोरै लगी ॥१०९॥

★

खेलन कौ रस छाँडि दियौ, दिन द्वैक ते राति कहाँ बसती हौ ।
'मंडन' अंग सम्हारन कौं नित चंदन केसरि लै घसती हौ ॥
छाती निहारि-निहारि कछू, अपनी अँगिआ की तनी कसती हौ ।
तो तन कौ अचरा उघरौ, कहौ मो तन ताकि कहा हँसती हौ ॥११०॥

★

पौरि ते दौरि परै लरिकानि तें, त्यों कहि कानि कछू बहरावै ।
तारी दै-दै सब ही सों हँसै अरु, गारी दै-दै अंसुआँ ढहरावै ॥
आली के अंग अबीर लपेटति, दूरि दुरै न कहूँ ठहरावै ।
औरन के अचरा झकझोरि कै, झीन पटा अपनौ झहरावै ॥१११॥

★

चाव सों चटक रचि-रचि कै रुचिर चीर,
रुचि सों पहिरि कै बिनोद बरसति जाति ।
कमि-कमि कंचुकी विमल बँगला में बैठि,
सौतिन के सकल सुहाग करषति जाति ॥
निरखि-निरखि कर पाँइन की लागी 'हनु-
मान' तरुनाई की निकाई परखति जाति ।
बेरि-बेरि मुकुर बिलोकति धरति फेर,
आँचर उघारि हेरि-हेरि हरषति जाति ॥ ११२ ॥

★

करि चंदन कौ खौरि, दै बंदन बैंदी भाल ।
दरप भरी दिन द्वैक तें, दरपन देखति बाल ॥ ११३ ॥

ज्ञात यौवना के भेद

ज्ञात यौवना मुग्धा नायिका के दो भेद होते हैं¶—

(१) नबोढ़ा, (२) विश्रब्ध नबोढ़ा।

नबोढ़ा—भय और लज्जा के कारण जो नव विवाहिता नायिका रति के प्रति अरुचि प्रकट करे, उसे नबोढ़ा कहते हैं§।

राजि रही उलही छवि सों, दुलही दुरि देखत ही फुलबारी।
त्यों 'पदमाकर' बोलै, हँसै, हुलसै, बिलसै मुखचद उज्यारी॥
ऐसे समय कहुँ चातक की धुनि, कान परी डरपी वह प्यारी।
चौंकि चकी-चमकी चित मे, चुप ह्वै रही चचल अचल बारी॥११४॥

★

साथ सखी के नई दुलही को, भयो हरि को हियो हेरि हिमचल।
आइ गए 'मतिराम' तहाँ घर, जानि इकंत अनद नें चंचल॥
देखत ही नंदलाल को, बाल के पूरि रहे अँसुआँन दृगचल।
बात कही न गई, सु रही गहि हाथ दुहूँ सों महली को अंचल॥११५॥

★

ननदीन्ह कौ भावै प्रसंग नहीं, उत सासु के संग लजाति सी है।
अथये दिन के मन ही मन 'भानु', सु कजमुखी सकुचाति सी है॥
सखियाँ कहुँ आवें नजीक, भरैं अँखिआँ तुरतै भरमाति सी है।
पिय-अंक की कौन कहै नवला, परजंक लखै जकि जाति सी है॥११६॥

★

ज्यों-ज्यों परसत लाल तन, त्यों-त्यों राखति गोइ।
नवल बधू डर-लाज तें, इंदुबधू सी होइ $॥११७॥

★

करि चतुरैया चाहत पकरन बाँह।
छुवै नहिं सकत छइलबा पै तनु छाँह†॥११८॥

¶ दास ने "शृंगार निर्णय" मे इन दो भेदो के अतिरिक्त एक तीसरा भेद 'अविश्रब्ध नबोढा' भी लिखा है।

§ मुग्धा जो भय-लाज युत, रति न चहत पति संग।
ताहि नबोढ़ा कहत है, जो प्रवीन रस रंग॥
—"रसराज"

$ मतिराम ने हरिआँख

विश्रब्ध नवोढ़ा—भय और लज्जा का भाव कुछ कम होने पर जब विवाहित नायिका निज पति की ओर किंचित आकर्षित हो, तब उसे विश्रब्ध नवोढ़ा कहते हैं§ ।

प्रीतम कौ गुन जानै नहीं, तब हू सुनि नाम लजान लगी है ।
कानन कों 'हरिऔध' कही रस की बतिया हू सुहान लगी है ॥
राखति काम कौ चाव नहीं, तऊ काम की ऐसी सु बान लगी है ।
संक समेत मयंक-मुखी, पिय मंजुल अंक मे जान लगी है ॥११९॥

★

जाहि न चाह कछू रति की सु कछू पति का पतियान लगी है ।
त्यों 'पद्माकर' आनन मे रुचि, कानन भौंह-कमान लगी है ॥
देति पिया न छुवै छतियाँ, बतियाँन मे तौ मुसक्यान लगी है ।
प्रीतमै पान खवाइवे कों, परजंक के पास लौं जान लगी है ॥१२०॥

★

केलि की रैनि अघाने नहीं, दिन ही में लला पुनि घात लगाई ।
प्यास लगी कोऊ पानी दै जाइयो, भीतर बैठि कै बात सुनाई ॥
जिठानी पठाई गई दुलही, हँसि हेरि हरैं 'मतिराम' बुलाई ।
कान्ह के बोल पै कान दियौ नहीं, गेह की देहरी पै धरि आई ॥१२१॥

★

कान्ह चतुराई करि द्वार में बिछाई सेज,
जानि मनि-मंदिर मे मनभाई बाम कों ।
'कालिदास' रसिकाई जानि कै चुपाइ रहे,
आई जब सुंदरि सिधाई निज धाम कों ॥
चंचल चतुर छरकायल छबीली बाम
अंचल छुवै न दीनौ स्याम अभिराम कों ।
पाटी पग धरि गई, चेटक सौं करि गई,
नटी लौं उछरि गई, छरि गई स्याम कों ॥१२२॥

★

चौंकति चकित बनति बिहँसि, बितरति बहु आनंद ।
चंदमुखी अब चाव सों, चितवति पिय मुखचंद* ॥१२३॥

---

§ पति कौ कछु परतीत उर, धरे नबोढा नारि ।
सो विस्रब्ध नबोढ़ तिय, बरनत विबुध विचारि ॥

* हरिऔध —"जगद्विनोद"

मध्या नायिका

(२) **मध्या**—जिस नायिका में लज्जा और काम दोनों समान रूप से हों, उसे मध्या कहते हैं* ।

देख्यौ चहै पिय कौ मुख, पै अँखियाँ न करैं जिय की अभिलाखी ।
चाहति 'संभु' कहै मन में, बतियौन सों सो नहिं जाति है भाखी ॥
भेटिबे कों फरकैं भुज, पै कहि जीभ तें जाइ नहीं–नहीं भाखी ।
काम सँकोच दुहून बहू बलि, आज दुराज-प्रजा करि राखी ॥१२४॥

★

लाज बिलोकन देत नहीं, रतिराज बिलोकन ही की दई मति ।
लाज कहै मिलिऐ न कहूँ, रतिराज कहै हित सों मिलिऐ पति ॥
लाजहु की रतिराजहु की, कहै 'तोष' कछू कहि जाति नहीं गति ।
लाल तिहारिऐ सौंह करौं, यह बाल भई है दुराज की रैयति ॥१२५॥

★

मदन-लाज बस तिय-नयन देखत बनत इकंत ।
इतै-उतै खिंचवत फिरैं, ज्यों दुनारि के कंत† ॥१२६॥

---

(१) मध्या सो, जामैं दुहू लज्जा मदन समान ।
—"भाषाभूषण"

(२) मतिराम और पद्माकर ने मध्या का कोई भेद नहीं लिखा है । दास ने परकीया मध्या लिखा है ।

(३) केशवदास और चिंतामणि ने मध्या के ४ भेद किये हैं—
१–आरूढ यौवना, २–प्रगल्भ वचना,
३ प्रादुर्भूत मनोभवा, ४–सुरति विचित्रा ।

(४) देव ने भी निम्न लिखित चार भेद किये हैं और उनको वयक्रमानुसार इस प्रकार विभाजित किया है—
१–रूढ यौवना (१७ वर्ष)
२–प्रादुर्भूत मनोभवा (१८ वर्ष)
३–प्रगल्भ वचना (१९ वर्ष)
४–विचित्र सुरता (२० वर्ष)

(५) रसलीन ने निम्न लिखित ४ भेद किये हैं—
१–उन्नत यौवना, २–उन्नत कामा,
३–प्रगल्भ वचना ४–सुरति विचित्रा ।
रसलीन ने 'लघुलज्जा' नामक एक अन्य भेद का भी कथन किया है ।

† पद्माकर

पीतम सों हैं हँसौहैं चितै, सुख दै पट तें मुख खोलन लागी ।
नींद हिनू न उनीदिऐ नैनन, चैन न चित्त कलोलन लागी ॥
लाज हिलोरि-हिलोरि हियौ, बँधि प्रेम की डोरि सों डोलन लागी ।
बालम कौ मन मोल लै बाल, अमोल सुबोलन बोलन लागी ॥१२७॥

★

सौने की सी बेली अति सुंदर नवेली बाल,
ठाडी ही अकेली अलबेली द्वार मँहियाँ ।
'मतिराम' अँखियाँ सुधा सी बरसा सी भई,
गई जब दीठि वाके मुखचंद पहियाँ ॥
नेंक नेरे जाइ करि, बातन लगाइ करि,
कछू मन पाइ, हरि बाकी गही बहियाँ ।
सैंननि चरच गई, गौननि थकित भई,
नैनन में चाह करै, बैनन मे नहियाँ ॥ १२८ ॥

★

आई जु चालै गुपाल घरैं, ब्रजबाल बिसाल मृनाल सी बाँही ।
त्यों 'पदमाकर' सूरति में रति, छूवै न सकै कितहूँ परछाँही ॥
सोभित संभु मनों उर ऊपर, मौज मनोभव की मन माँही ।
लाज बिराजि रही अँखियॉन में, प्रान मे कान्ह जुबान मे नाँही ॥१२९॥

★

ललना लजीली उर काम ही तें कीली,
नीली सारी मे लसै ज्यों घटा कारी बिच दामिनी ।
कहै 'ब्रजचंद' दुती संग मे सहेलिन के,
हेरति हँसति बतराति हंस-गामिनी ॥
तौ लौं तहाँ गेह मे सु नाह आयौ नेह भरौ,
बैठ गयौ, ताको लखि बैठि गई भामिनी ।
कंत हेरै सोंहैं, तब अंत हेरै इंदुमुखी,
अंत हेरै कंत, तौ न अंत हेरै कामिनी ॥१३०॥

★

विधि कौनहु बासर ही बितवै, मन नाह की चाह लगी है नई ।
कवि 'भानु' सजाय समेंटति सेज, सजावति फेर सुगंध मई ॥
कभु दीप-कपूर जरावै बुझाइ कै, फेर जरावत रंग रई ।
परि लाज-मनोज के मोह तिया, जुग चुंबक बीच की लोह भई ॥१३१॥

बैठी हुती सखिआँन मे बाल, बड़ी अँखिआँन मे अंजन लाइकै ।
चारु कपोलन पै छिटकी अलकैं, छवि देत हुतीं छहराइ कै ॥
बात रसीली सुनाइ रसै 'हरिआँय' हँसे, इतने हि में आइकै ।
नार नवाइ सकाइ रही, मुसकाइ रही, दृग मोरि लजाइ कै ॥१३२॥

★

मुख सों लगत मुख सों हैं न करत रुख,
लाज-काम समता बपुष में पगी रहैं ।
रति के बिलास उर अंतर बसावै,
पै प्रकास न करत रंग प्रेम के रँगी रहैं ॥
केलि-कथा कंत कहै ऊतर न देत ताकों,
फूटें नैन मूँदें हौस सुने की जगी रहैं ।
प्यारे कों जगौहैं जानि, पाँड़ै पट तानि-तानि,
लगी रहै उर जौलौं पलक लगी रहैं ॥ १३३ ॥

★

पेख्यौ चहै पिय को बिन ओट, बनें न कछू बिन घूँघट खोलैं ।
भावै न संग छुट्यौ पति कों, सकुचै, न करैं कछु काम-कलोलैं ॥
चाहति बात कह्यौ, न कह्यौ, पर जात रह्यौ न रहैं अनबोलैं ।
झूलत ह्वै मन प्रान-पियारी कौ, लाज-मनोज के बीच हिंडोलैं ॥१३४॥

★

बैठी सीस-मंदिर मे सुंदरि सबार ही कौ,
मूँदि कै किंवार 'देव' छवि सों छकति है ।
पीत पट, मुकुट, लकुट, बनमाल धरि,
भेस करि पी को प्रतिबिंब मे तकति है ॥
होति न निसंक उर अंक भरि भेटिबे कों,
भुजनि पसारति, समेटति, जकति है ॥
चौंकति, चकति, उचकति, चितवति चहूँ,
झूमि ललचाति, मुख चूमि ना सकति है ॥ १३५ ॥

★

देखत बनैं न देखिबौ, अनदेखे अकुलाहिं ।
इन दुखियाँ अँखियान कों, सुख सिरज्यौ ही नाहिं ॥ १३६ ॥

---

1 बिहारी

प्रौढ़ा नायिका

(३) प्रौढ़ा—जिस नायिका मे लज्जा न्यून और काम अधिक हो तथा जो रति-कला में परम प्रवीण हो, उसे प्रौढ़ा कहते हैं ।

केसरिया निज सारी रंगै, लखि केसरि खौरि गुपाल के गातनि ।
'दास' चितै चित कुंजबिहारी, बिछावति सेज नए तरु-पातनि ॥
आवत जानि कै आपने भौन, मिलै पहिले लै बिरी अबदातनि ।
बीतै बिचारते भामनी कौ दिन, भामते की मनभावती बातनि ॥१३७॥

*

देखी है गुपाल एक गोपिका अनूप रूप,
सौने तें सलौनी बास सौधे नें सुहाई है ।
सोभाई सुभाव अवतार लियौ घनस्याम,
किधौं दामिनी के काम कामिनी ह्वै आई है ॥
देवी कोऊ दानवी न, मानवी न होइ ऐसी,
भानवी न हाव-भाव भारती पठाई है ।
'केसौदास' सब सुख–साधन की सिद्धि जे,
मेरे जान मैंन ही सो मैनका की जाई है ॥१३८॥

*

केलि मे केतिक कौतुक कै, रस हास-हुलास बिलासनि सोहै ।
कोमल नाद कथा रस-बादन, काम-कला करिकै मन मोहै ॥
छेदि कटाछ की कोरनि सों, गुन सों पति कौ मन-मानिक पोहै ।
जानति तू रति की सिगरी गति, तो सी बधू रति-कोविद को है ॥१३९॥

*

प्रानप्रिया मन भावन संग, अनंग–तरंगनि रंग पसारे ।
सारी निसा 'मतिराम' मनोहर, केलि के पुंज हजार उघारे ॥
होत प्रभात चल्यौ चहै प्रीतम, सुंदरि के हिय में दुख भारे ।
चंद्र सौ आनन, दीप सी दीपति, स्याम सरोज से नैंन निहारे ॥१४०॥

---

* केलि–कला में चतुर अति, प्रीतम सो अति प्रीति ।
लाज तजै ह्वै मदन–बस, प्रौढ़ा की यह रीति ॥
—"कविकुलकल्पतरु"

प्रौढ़ा के भेद

प्रौढ़ा नायिका के दो भेद होते हैं[1]—

१—रति प्रीता, २—आनंद संमोहिता।

(१) **रतिप्रीता**—जो प्रौढ़ा नायिका पति के साथ रति-केलि में अत्यंत रुचि प्रदर्शित करे, उसे 'रतिप्रीता' कहते हैं।

दीपक-जोति मलीन भई, मनि-भूषन-जोति की आँतुरियाँ हैं।
'दास' न कौल-कली बिकसीं, निज मेरी गईं मिलि आँतुरियाँ हैं॥
सीरी लगै मुकतावलि तेऊ, कपूर की धूरनि सों पुरियाँ हैं।
पौढ़े रहौ पट ओढ़ें इती निसि, बोलैं नहीं चिरियाँ चुरियाँ हैं॥१४१॥

★

केसर रंग चुकै जगही, तब लैकर ताही में नीर मिलावै।
धूम पटात सी जानत ही, तब लाल के गाल गुलाल लगावै॥
'माखन' गारि कै, गीतन गाइकै, गेंद चलाइ कै, बाद बढ़ावै।
छाँड़ि कै लाड़िली होरी को औसर, जान घरै छिन एक न आवै॥१४२॥

---

(१) मतिराम और दास ने प्रौढा का कोई भेद नहीं लिखा है। दास ने परकीया प्रौढ़ा लिखी है।

(२) केशवदास ने प्रौढा के निम्न लिखित ४ भेद किये है—

१—समस्त रस कोविदा, २—विचित्र विभ्रमा,
३—आत्त मति, ४—लुब्धापति।

(३) चिंतामणि ने प्रौढा के निम्न लिखित चार भेद किये है—

१—प्रौढ़ यौवना प्रगल्भा, २—मदनमत्ता,
३—रतिप्रीतिमती, ४—सुरति मोद परवशा।

(४) देव ने भी प्रायः इन्हीं चारो भेदों को निम्न लिखित नामों से मान कर उनको वयक्रमानुसार इस प्रकार विभाजित किया है—

१—लब्धापति (२१ वर्ष) २—रति कोविदा (२२ वर्ष)
३—आक्रांता (२३ वर्ष) ४—सविभ्रमा (२४ वर्ष)

(५) रसलीन ने रतिप्रिया' और 'आनंदातिसंमोहा' के अतिरिक्त निम्न लिखित भेदों को भी लिखा है—

१—उद्भट यौवना, २—मदनमत्ता, ३—लुब्धापति, ४—रतिकोविदा।

प्रियतम सँग रति-रमन मे, रुचि राखै अत्यंत।
ताहि रतिःप्रीता कहत, जे कवि बुद्धि अनंत॥ —"साहित्यसागर"

कोक की कलन वारी, सोक की दलन,
निसि कीन्हीं सब बातें घातें सौति गरदन की ।
आनँद-मगन सो 'प्रवीन वेनी' प्यारे पास,
भूलि गई बिपदा मनोज-करदन की ॥
बिलखी विकल ऐसी नभ में ललाई लखि,
आवन सुरति लागी दिन-दरदन की ।
मीत सों सभीत सी, समीर के बहाने गोरि,
छोरि दीन्हीं डोरी वेग दौरि परदन की ॥ १४३ ॥

★

लै पट पीतम के पहिरै पहिराय पिऐं चुनि चूनरी स्यामी ।
त्यों 'पदमाकर' साँझ ही तें, सिगरी निसि केलि-कला परगामी ॥
फूलत फूल गुलाबन के, चटकाहट चौंकि चली चपला सी ।
कान्ह के काननि आँगुरी नाइ, रही लपटाइ लबंग-लता सी ॥१४४॥

★

अरसौंहैं नैंन करि, सरसौंहैं मुसकराति,
त्यों-त्यों अकुलाति ज्यों-ज्यों होत आली प्रात री ।
दोऊ वे परसपर पीवत अधर-रस,
चूमि-चूमि चटकीलौ मुख-जलजात री ॥
भनत 'कबिंद' भरि-भरि अंक ह्वै निसंक,
नेह भरे फिरि-फिरि दोऊ बतरात री ।
बिछुर न करत दुहूँ कें गात ही तें दुवौ,
लपटि-लपटि जात, नैंक न अघात री ॥१४५॥

★

आज रतिराज 'प्रेम' प्यारे नँदनद मोहि,
मिले बड़ भागनि तें, सुंदर अनंदकद ।
कोक की कलानि सो रिझावौं, औ बुझावौं ताप—
हीतम कौ, प्रीतम सों ठानि रति-केलि-फंद ॥
जौलौं हौं न कहौं, तौलौं जाइयो न रैन छोरि,
चाँदनी मे मैंन-चैन पाहौं, गाढ़ छंद-बंद ।
चंद द्विजराज ! तोसों कहौं कर जोरि-जोरि,
भोर ना करैयो हो, चलियो गति मंद-मंद ॥ १४६ ॥

(२) आनंद संमोहिता—जो प्रौढ़ा नायिका अपने पति के रति-सुखजनित प्रेमानंद मे सदा निमग्न रहे, उसे 'आनंद संमोहिता' कहते हैं† ।

सीसफूल सरकि सुहावने लिलार लाग्यौ,
लाँमी लटैं लटकि परी हैं कटि-छाम पर ।
'द्विजदेव' त्यों ही कछु हुलसि हिये तें हेलि,
फैलि गयौ राग मुख-पंकज ललाम पर ॥
स्वेद-सीकरन सराबोर ह्वै सुरंग चीर,
लाल दुति दै रही सु हीरन के दाम पर ।
केलि-रस साने दोऊ, थकित बिकाने तऊ,
हाँ की होत कुमुक, सु ना की धूम-धाम पर ॥१४७॥

*

कुंदन की छरी आबनूस की छरी सों मिली,
सौनजुही-माल किधौं कुवलय-हार सों ।
कैधौं चंद्र-चंद्रिका कलंक सों कलित भई,
कैधौं रति ललित बलित भई मार सों ॥
कालिदास' मेघ माँहि दामिनी मिली है कैधौं,
अनल की ज्वाल मिली कैधौं धूम-धार सों ।
केलि समै कामिनी कन्हैया सों लपटि रही,
कैधौं लपटानी है जुन्हैया अंधकार सों ॥१४८॥

*

काम की कलान की कुसलता सों चारो जाम,
सुरति-सुरस सों छकाइ-छकी पिय सो ।
भई मोदमई, लई अंगन सिथिलतई,
तऊ न अनंग की उमंग घटै जिय सो ॥
'गोकुल' कहत उमहत भाँति-भाँतिन सों,
चाब चढ़े वैस के सुभाव सब तिय सों ।
साँझ तें लै भोर लों निहारी मोद-मतवारी,
नैंकऊ न न्यारी होत भामते के हिय सों ॥१४९॥

† प्रियतम-प्रीति-अनंद मे, जिहि निमग्न मन होह ।
मोहै सम्यक् भाँति सो आनंदासंमोह ॥
—"साहित्यसागर"

मध्या–प्रौढ़ा के धीरादि भेद

स्वकीया नायिका के अंतर्गत निज पति को अन्य स्त्री पर आसक्त जानकर कुपित होने वाली मध्या और प्रौढ़ा नायिकाओं के धीरा, अधीरा और धीराधीरा नामक तीन भेद होते हैं§ ।

गुप्त कोप करने वाली नायिका को धीरा, प्रकट रूप से कोप करने वाली को अधीरा और कुछ गुप्त एवं कुछ प्रकट कोप करने वाली नायिका को धीराधीरा कहते हैं‡ । धीरा व्यंग्योक्ति और रति से उदासीनता द्वारा, अधीरा कटु वचन और ताड़ना द्वारा तथा धीराधीरा रुदन और उपालंभ द्वारा अपना कोप प्रकट करती हैं* ।

धीरादि नायिकाएँ ६ प्रकार की होती हैं –

१–मध्याधीरा, २–मध्या अधीरा, ३–मध्या धीराधीरा,
४–प्रौढ़ाधीरा, ५–प्रौढ़ा अधीरा, ६–प्रौढ़ा धीराधीरा ।

---

§ (१) संस्कृत साहित्य के आधार पर कुछ कवियों ने धीरादि भेद को ज्येष्ठा-कनिष्ठा के अंतर्गत लिखा है । उनका मत है कि नायक जब ज्येष्ठा के पास से होकर कनिष्ठा के पास जाता है, तभी धीरादि भेदों की उत्पत्ति होती है ।

(२) केशवदास ने मध्या और प्रौढ़ा के वर्णन के साथ-साथ धीरादि भेद लिखे हैं ।

(३) देव ने मान-भेद लिख कर उसी के अंतर्गत मध्या और प्रौढ़ा के धीरादि भेदों को लिखा है ।

(४) दास ने खंडिता के अंतर्गत धीरादि भेद माने हैं ।

(५) चिंतामणि, मतिराम, रसलीन और पद्माकर आदि ने धीरादि भेद पृथक कहकर मध्या और प्रौढ़ा के अनुसार उनके ६ भेद किये हैं । यही मत अधिकांश कवियों को भी मान्य है ।

‡ गोप कोप धीरा करै प्रगट अधीरा कोप ।
लच्छन धीर अधीर को, कोप प्रगट औ गोप ॥ —"भाषाभूषण"

* वक्र उक्ति पति सों कहै, मध्या धीरा नारि ।
धीराधीर उराहनो, वचन अधीरा गारि ॥
उदासीन अति कोप तें, पति सों प्रौढ़ा धीर ।
तजै अधीराधीर अरु, ताडन करै अधीर ॥ —"भवानीविलास"

(१) मध्या धीरा—जो नायिका अपने पति को अन्य स्त्री पर आसक्त जान कर प्रकट रूप से उसका आदर करती हुई, व्यंगोक्ति द्वारा अपना कोप करे, उसे 'मध्याधीरा' कहते हैं*।

गुंजरत भौंरन के पुंजन निकुंजन तें-
आए हो, भयो है स्रम आवत औ जात कौ।
आँखिन ते उलटी ललाइ परें आलस की,
अंगन ते उँमगै थके लौं अगरात कौ॥
भनत 'कविद' घाम ग्रीषम-दुपहरी की,
तीखन लग्यो है तन परिमित बात कौ।
पंकज के पातन कौ पौन करौ प्रानप्यारे!
पौढौ परजंक पै, पसीना मिटै गात कौ॥ १५०॥

*

क्यों घनस्याम! अबै दु-चितै भए, मो तन दीठि करो सुखदाई।
कंज-गुलाबहु की अरुनाई, न लाल गुलालन की सरसाई॥
एतेहु पै इतनौ गहिरो रग, धनि है रँगरेजिन की चतुराई।
साँची कहौ इन नैननि-रंग कौ, दीन्ही कहा तुम लाल रँगाई॥१५१॥

*

भाल पै लाल गुलाल गुलाब सौं, गेरि गरें गजरा अलबेलौ।
यों बनि बानिक सो 'पदमाकर', आए जु खेलन फाग, तौ खेलौ॥
पै इक या छवि देखिवे के लिऐं, मो बिनती कै न झोरिन झेलौ।
रावरे रग रंगी अँखिआँन मे ए बलबीर! अबीर न मेलौ॥१५२॥

*

साँझ तें चंद कलंक उयौ, मन मेरौ लै साथ रहे तुम न्यारे।
बैठ बची मनि-मंदिर बीच, लगे तब दीप-प्रकास अँध्यारे॥
प्रातहि पाइ सुधामय पारनौ, नैन-चकोर छके, भे सुखारे।
क्यों न अनूप-कला प्रगटौ अकलंक कलानिधि मोहन प्यारे॥१५३॥

---

* कोप जनावै व्यंग सों, तजै न पति-सनमान।
मध्याधीरा कहत हैं, ताकों सुकवि सुजान॥
—"जगद्विनोद"

स्वारथ में रत हैं सब ही, परमारथ साधत नाहिंन कोऊ ।
हैं परमारथ में रत लोय, 'गुलाब' कहै बिरलै जस जोऊ ॥
जो परमारथ-स्वारथ हीन सु, आलस लोभित कीरति-खोऊ ।
हौ तुम नीति-निधान लला !, परमारथ, स्वारथ साधत दोऊ ॥१२४॥

★

झिलि-मिलि वृंदन गुलाब-अरबिंदन के,
कुंदन-कुमोदनि के मोद अनुहूले हौ ।
कहूँ अनुकूले, कहूँ डोले हौ सुबास बस,
कहूँ रस लोभ के सुभाय लगि झूले हौ ॥
सौरभ सुजाति अधराति मालतीन मिलि,
सरस सुहाग अनुराग अंग फूले हौ ।
कैसें वह सेवन-सुगंध तजि सेवती कौ,
कौन भ्रम बेलिन भँवर आजु भूले हौ ॥ १२५ ॥

★

मिलि-मिलि मोद-वारी मुकुलित मल्लिका सो,
कुंज-पुंज क्यारिन कलोल करि फूले हौ ।
पान कै प्रकाम-रस आम-मंजरीन हू के,
उर अभिराम कौ अराम उनमूले हौ ॥
'हरिऔध' ठौर-ठौर झौर झुकि झूमि-झूमि,
चूमि-चूमि कज की कलीन को कबूले हौ ।
तजि महमही मंजु मालती चमेलिन को,
कौन भ्रम बेलिन भँमर आज भूले हौ ॥ १२६ ॥

★

मालती मंजु चमेलिन के, बन-बाग तें हेरि प्रसून मँगाए ।
बैठि सहेलिन के गन में, रुचि सों रचि भूषन-वेस बनाए ॥
ताहि समैं मनभावन देखि, उठी गहि चाँह बिलोकि सुहाए ।
प्यार सों प्रीतम के उर मे हँसि, गुंजन के गजरा पहिराए ॥१२७॥

★

तड़पैं तड़िता चहुँ ओरन तें, छिति छाई समीरन की लहरैं ।
मदमाते महा गिरि-सृंगन पै, गन मंजु मयूरन के कहरैं ॥
इनकी करनी बरनी न परै, सु गरूर-गुमानन सों गहरैं ।
घन ये नभ-मंडल में छहरैं, घहरैं कहुँ जाइ, कहूँ ठहरैं ॥१२८॥

तुम कहा करौ, काहू काम तें अटक रहे,
तुम्हें कहा दोस, सो तौ आपनौई भाग है ।
आपु मेरे भौन, बडे भोर उठि प्यार ही तें,
अति हरबरन बनाइ बाँधी पाग है ॥
मेरे ही बियोग रहे जागति सकल रात,
गाति अलसात मेरौ परम सुहाग है ।
मन हू की जानी प्रान-प्यारे 'मतिराम' यहै,
नैंनन हू माहिं पाइयतु अनुराग है ॥ १५९ ॥

★

कालिह न इकादासी ही, तातें कहूँ जागे आप,
जाप लागै कैधौं काहू काम के उमाहे सों ।
कैधौं दिग भूल भूले, घुमरी न पायौ घर,
कैधौं कहूँ ठुमरी सुनत रहे लाहे सों ॥
'ग्वाल' कवि कैधौं रहे चौसर के खेलन में,
औसर बन्यौ न किधौं काहू मीत चाहे सों ।
मेरे प्रान-प्रान, स्याम परम सुजान सुनौ,
आज अलसान अँगरान कहौ काहे सों ॥ १६० ॥

★

मगरजे हार बेसुमार बारुनी के बस,
आधे-आधे आँखर सु एहू भाँति जपने ।
कहै 'पदमाकर' सु जैसिऐ रसीले अंग,
तैसिऐ सुगंध की झकोरन को झपने ॥
जैसे बनि आए आपु, तैसिऐ बनावौ मोहि,
मेरौ अभिलाख लाख एहू भाँति खपने ।
लाल दृग-कोरन में मेरे नैंन बोरौ लाल!
कै तौ इन नैंनन निचोरौ नैन अपने ॥ १६१ ॥

★

खेलि लई उत होरी भलैं, यह फागुन मास विचार सोहायौ ।
पाइऐ सो तौ बस्याइ कै औसर, यों रँग नीकौ तरा बगरायौ ॥
'माखन' भाग खुले जिनके, तिनके घर प्रीतम आपु तें आयौ ।
साँवरे गात गुलाल खुलो, हम आपकों देखत ही सुख पायौ ॥१६२॥

(२) **मध्या अधीरा**—जो नायिका कटूक्ति द्वारा पति का अनादर करती हुई अपना कोप प्रकट करे, उसे 'मध्या अधीरा' कहते हैं* ।

आए पास कौन के हौ, भूले कौन भौन के हौ,
डगमग गौन के हौ, देह मौज–माँची है
पाग-पेच ढीले भए, दृग उनमीले भए,
तऊ न लजीले भए, पाठा भली बाँची है ॥
'ग्वाल' कवि और न उपाय ब्रजराज अब,
जाउ–जाउ जहाँ चाउ, मैं तौ यह जाँची है ।
घर की जो मिसरी सो फीकी सी लगन लागै,
मीठी गुड़ चोरी कौ, कहन यह साँची है ॥१६३॥

★

भूले से, भ्रमे से, काहि सोचत स्रमे से,
अकुलाने से, बिकाने से, ठगे से ठीक ठाए हौ ।
कहै 'पद्माकर' सु गोरे रंग बोरे दृग,
थोरे-थोरे अजब कुसुंभी करि लाए हौ ॥
आगें कौं धरत डग, पाछें कौ परत पग,
भोरई तें आजु कछु और छवि छाए हौ ।
कहाँ आए ? तेरे धाम, कौन काम ? घर जानि,
उहाँ जाओ, कहाँ ? जहाँ मन धरि आए हौ ॥१६४॥

★

औरन के ढिग तें न टरौ, नित बातन ही हमें राखत टारे ।
औरन के सँग राति बिताय, हमैं सुख देत हौ आन सकारे ॥
औरन सों तुम साँचइ हौ, हम सों रहौ झूठई ब्यौंत बिचारे ।
लागत औरन की छतियाँ, तुम पाँयन लागत आन हमारे ॥१६५॥

---

* करै अनादर कंत कौ, प्रगट जनावै कोप ।
मध्य अधीरा नाइका, ताहि कहत करि चोप ॥
—"जगद्विनोद"

साँची कहौ जाकी मानत मोह जू, कौन के नेह रहे सरसे हौ ।
रैनि जगी अँखियाँ तरजी, बिरुझी अँग-अंगन सों परसे हौ ॥
जैहौ जहाँ, मिलि आए तहाँ, हमको इन बातन सों पर से हौ ।
चंद ह्वै के किन हू सरसे, हमकों रवि ह्वै करिकै दरसे हौ ॥१६६॥

★

तन मे रहि आलस जेहै कहूँ, अँखियाँन तें नींद नहीं टरि है ।
बनिहै न कछू तब प्यारी मिलैं, जब बात चलै रस की अरि है ॥
'रघुनाथ' कहा अँगरात, जँभात हौ, नाम न कोऊ तुम्हैं धरि है ।
पल सोय रहौ मुख गोय पिछौरी सों, फेरि तुम्हैं जगिबै परि है ॥१६७॥

★

कोऊ नहीं बरजै 'मतिराम', रह्यौ जितई, तितई मन भायौ ।
काहे को सौंहै हजार करौ, तुम तौ कबहू अपराध न ठायौ ॥
सोवन दीजै, न दीजै हमे दुख, यों ही कहा रसबाद बढ़ायौ ।
मान रह्यौई नहीं मनमोहन ! मानिनी होइ, सो मानैं मनायौ ॥१६८॥

★

नीकी नई निपुनाई करी, अखियाँन को लागति है अति प्यारी ।
भोरई भाग सों भाव भरी, यह आज भली करतूति निहारी ॥
रीझि रही तजि खीझि सबै, 'हरिऔध' छकी मति हेरि हमारी ।
कौन सी बाल है लाल ! कहौ, यह माल बिना-गुन गूँथन हारी ॥१६९॥

★

भोरई भौन में भावतौ आवत, प्यारी चितै कै इतै दृग फेरे ।
बाल बिलोकि कै लाल कह्यौ, कहु काहे तें लाल विलोचन तेरे ?
बोलि उठी सुनिकै तिय बोल, सु 'देव' कहै अति कोप करेरे ।
काहू के रंग रँगे दृग रावरे, रावरे रंग रँगे दृग मेरे ॥१७०॥

★

लाल एक दृग अगिन तें, जारि दियौ सिव मैंन ।
करि लाए भो दहन कों, तुम द्वै पावक नैंन § ॥ १७१ ॥

§ रसलीन

(३) मध्या धीराधीरा—जो नायिका मुख से अप्रिय वचन न कह कर रोदन द्वारा अपना कोप प्रकट करे, उसे 'मध्या धीराधीरा' कहते हैं ‡।

आजु कहा तजि बैठी हौ भूषन ? ऐसेंहि, अंग कछू अरसीले ।
बोलत बोल रुखाई लिएँ, 'मतिराम' सुने ते सनेह सुसीले ॥
कौन कहौ दुख प्रान-प्रिया ! अँसुआँन रहे भरि नैंन लजीले ।
कौन तिन्हें दुख है, जिनके तुम से मनभावन छैल छबीले ॥१७२॥

★

'देव जु पै चित चाहिऐ नाह, तौ नेह निबाहिऐ, देह मरयौ परै ।
ज्यों समुझाइ सुझाइऐ राह, अमारग ज्यों पग धोखै धरयौ परै ॥
नीके में फीके ह्वै आँसू भरौ,कत ऊँची उसास,गरौ क्यौ भरयौ परै ।
रावरे रूप भरयौ अँखिआँन,भरयौ सु भरयौ, उमड्यौ सु ढरयौ परै ॥१७३॥

★

आँखिन के जल की जु है रीति, सदाँ तुम साँझ-हू-भोर निहारत ।
तैं 'द्विजदेव' जू क्यों कहि जाय, परे छत जे हिय कों करें आरत ॥
बात बिचारिवे की यह लाल ! कहा बकबाद कै मो तन जारत ।
मान रहैगौ कितै बलि जाउँ, सो मानिनी-मानिनी काहि पुकारत ॥१७४॥

★

भोर भए पै पधारे, कहा भयौ, मेरी सदाँ सुख ही की घरी है ।
एरी कछू 'हरिऔध' करैं, हमैं तौ उनकी परतीति खरी है ॥
बूझि बिचारि कहै किन बाबरी ! बीचहिं मे कत जाति मरी है ।
साँबरे-प्रेम पसीजि परी, नहिं मो अँखियाँ अँसुआँन भरी है ॥१७५॥

★

तुम सों कीजै मान क्यों, बहु नाइक मनरंज ।
बात कहत यों बाल के, भर आए दृग-कंज* ॥ १७६ ॥

---

‡ धीर वचन कहि जो तिया, रोइ जनावै रोष ।
मध्या धीराधीर तिय, ताहि कहत निरदोष ॥
—"जगद्विनोद"

* मतिराम

(४) **प्रौढ़ा धीरा**—जो नायिका प्रकट रूप से अपने कोप का प्रदर्शन न कर, रति-कला में उदासीन रहे, उसे 'प्रौढ़ा धीरा' कहते हैं†।

आवत देखि, लियौ उठि आगे ह्वै, आपु ही 'केसव' आसन दीनौ।
आपु ही पाँइ पखारि भले जल, पानी कौ भाजन लाइ नबीनौ॥
बीरी बनाइ कैं आगें धरी, जब बैहर कों कर बीजन लीनौ।
बाँह गही हरि ऐसें कही हँसि, मैं नौ इतौ अपराध न कीनौ॥१७७॥

*

वैसेई चितै कै मेरे चित्त को चुरावती हौ,
बोलत हौ वैसेंई मधुर मृदु बानि सों।
कवि 'मतिराम' अब भरत मयकमुखी,
वैसेई रहति गहि भुज-लतिकान सों॥
चूमति कपोल, पान करत अधर-रस,
वैसेई निहारी रीति सकल-कलानि सों।
कहा चतुराई ठानियत प्रानप्यारी, तेरौ—
मान जानियत रूखी मुख-मुसकानि सों॥१७८॥

*

बोलत काहे न बोल सुनैं, मधुरी बतियाँ मनमोहन भाखें।
बोलै कहा, कछु चित्त में ह्वै दुख, पित्त बढ़े कटु लागतीं दाखें॥
ठाढे हैं लाल, बिलोकै न बाल क्यों, तेरी बिलोकनि को अभिलाखें।
लाल भई बिन काजहि आजु ए, देखौ कहा, मेरी दूखती आँखें॥१७९॥

*

कंचन-से गातन सलौनी रंग-राउटी में,
हिल-मिल प्रेम रस बातनि पगति है।
वचन विचित्र अति केलि के प्रसंगन के,
कानन सुनति, सब जामनि जगति है॥
कहै 'परताप' उर अधिक उमंगन तें,
मदन-तरंग अंग-अंग उँमगति है।
ह्वै करि निसंक क्यों मयंकमुखी बाल,
परजंक पर जाति, पिय अंक न लगति है॥१८०॥

---

† पिय सों प्रगट न रिस करै, रति ते रहै उदास।
प्रौढा धीरा जानिऐ, सो निज सुमति विकास॥—"रसराज"

जगर-मगर दुति दूनी केलि-मंदिर में,
बगर-बगर धूप अगर बगारयौ तू।
कहै 'पदमाकर' त्यों चंद तें चटकदार,
चुंबन में चारु मुखचंद अनुसारयौ तू॥
नैनन में, बैनन मे, सखी और सैनन में,
जहाँ देखौ तहाँ प्रेम पूरन पसारयौ तू।
छिपत छिपाएँ तऊ, छलन छबीली अब,
उर लगिबे की बार हार न उतारयौ तू॥१८१॥

*

बहु नायक हौं, सब लायक हौं, सब प्यारिन के रस को लहिऐ।
'रघुनाथ' मनै नहि कीजै, तुम्हे जिय बात जु है, सु सही कहिऐ॥
यह माँगनि हौ पिय प्यारे सदाँ, सुख देखिबे ही कौं हमे चहिऐ।
इतने के लिऐं इत आइये प्रात, रुचै जहाँ रात तहाँ रहिऐ॥१८२॥

*

केसर रंग गुलाल भरे तन, होरी को खेलन आए बिहारी।
राधिका बैठी सिंगार करैं, तहाँ आइकै घालि दई पिचकारी॥
'माखन' ओट कै घूँघट कौं कछु नैन चलाइ कै चोट निवारी।
जानि परयौ तब मान छबीली कौं, डीठि मिलै मुसुक्यात न प्यारी॥१८३॥

*

आवत ही बिकसौंहे मिली, अलसौंहे बिलोकि नहीं बदल्यौ रुख।
बैन हरैं-हरैं बोलि सुधा-सने, वैसई बाल दियौ पिय कौं सुख॥
पै रचै केलि-क्रिया 'हरिऔध' के, दाबि सकी नहीं अंतर कौ दुख।
छोरन देति न कंचुकी के बँद, जोरन देत नहीं मुख सों मुख॥१८४॥

*

चितवनि रूखे दृगनि की, हाँसी बिन मुसकानि।
मान जनायौ मानिनी, जानि लियौ पिय जानि॥१८५॥

*

ढीली बाहन सों मिली, बोली कछू न बोल।
सुंदरि मान जनाइ कै, लियौ प्रानपति मोल॥१८६॥

*

याही तें हिय जानियौ, मान हिये कौ लाल।
अरसीली ढीली मिलनि, मिली रसीली बाल॥१८७॥

---

† बिहारी † मतिराम § दास

(५) **प्रौढ़ा अधीरा**—जो नायिका कटु भाषण और ताड़ना पूर्वक अपना रोष प्रकट करे, उसे 'प्रौढ़ा अधीरा' कहते है †।

जावक रंजित भाल किऐं, मनभावन भामती-गेह सिधारे।
दूरि तें भौंह कमान चढ़ाइ कै, सुंदरि नैंन-कटाच्छ तें डारे॥
आइकै बालम-बाँह गहीं ढिग, चंदमुखी झुकिकै झझकारे।
चंपक-माल सी कोमल बाल सु, लाल चमेली की माल सों मारे॥१८८॥

★

रोष करि पकरि परौंस तें लियाई घरैं,
पी कों प्रानप्यारी भुजलतनि भरैं–भरैं।
कहै 'पदमाकर' न ऐसौ दोष कीजो फेरि,
सखिन समीप यों सुनावति खरैं-खरैं॥
ज्यौं छल छपावै बात, हँसि बहिरावै तिय
गद्-गद् कंठ दृग आँसुन झरैं–झरैं।
ऐसी धन धन्य, धनी धन्य है सु ऐसौ जाहि–
फूल की छुरी सो खरी हनति हरैं-हरैं॥१८९॥

★

रोष कै काँपति क्यों इतनी, भला काहु की यों पत कोऊ उतारै।
कौन सी चूक है ऐसी परी, मुख जो अजौं तू अपनौ न सम्हारै॥
ऐसी न लालिमा है अँखियाँन की जो 'हरिऔध' पै आँखिन पारै।
सूल सी सालति ऐसिऐ भूल, अरी पिय कों मति फूल सो मारै॥१९०॥

★

खेल न खेलिऐ ऐसौ भटू, सु परौसिनि कोऊ कहूँ लखि लैहैं।
मानहु ना बरजी हमरी, अब काहे कों कोऊ सिखावन दैहै॥
नंदकुमार महा सुकुमार, विचार कै फेरि हिऐं पछितैहैं।
घालिऐ ना, इन फूलन की पँखुरी कहुँ अंगनि मे गड़ि जैहै॥१९१॥

★

पाग दुरी, पीरी खरी, पिय-मुख परी निहारि।
फूल-छुरी कर मे धरी, अनख भरी झझकारि॥ १९२॥

---

† कछु तरजन, ताडन कछु, करि जु जनावै रोष।
प्रौढ़ अधीरा नाइका, निरखि नाह कौ दोष॥
—"जगद्विनोद"

(६) प्रौढ़ा धीराधीरा—वक्रोक्ति तथा भय-प्रदर्शन द्वारा पति को दुखित करने वाली और मान पूर्वक रति-कला से उदासीन रहने वाली नायिका को 'प्रौढ़ा धीराधीरा' कहते हैं* ।

बदन विचित्र बन्यौ प्रथमई ताकों जोइ,
सोइ पलका पै रहौ नीके नहीं दरसौ ।
करेंगी प्रतीत वेई, जासों हौ सरस तुम,
'रघुनाथ' तासों ए बनाइ बातैं बरसौ ॥
सौंह करिवे कों अब पाँइन की ओर पानि,
तुम जो चलावनि हौ, बेर-बेर सर सौ ।
मानौगे अनैसौ जो कहौंगी कछु, कह्यौ मानों,
परैगौ अन्हैवौ मोहि, मोहि मत परसौ ॥१९३॥

★

बनि आन बनाएँ नहीं बनि है, ढिग आवौ नहीं खरे दूर रहौ ।
अपने मन ही की करी तौ करी, कत काहु के बैन अनैसे सहौ ॥
'हरिऔध' तुमैं हम जानती हैं, हक-नाहक ही हमकों न दहौ ।
चले जाउ गुनाह भई सो भई, तुम नाँह ! न बाँह हमारी गहौ ॥१९४॥

★

आवतई न बिलोकी, न बोली, रही परजंकहि में तिय बैठी ।
'बेनीप्रवीन' गए ढिग भोरहिं, सौंहन खात नऊ नहिं ऐंठी ॥
ज्यों परसे कुच कामिनि के, अपमाननि मानिनी कोप में पैठी ।
चेढ़ी चितौनि, धरे अधरारद, लोचन लाल कै भौंह अमैठी ॥१९५॥

★

आए कहूँ अनत बिहार करि मंदिर में,
सामुहैं झमकि छवि दामिनी की छोरै है ।
आरस-बलित बागौ, मरगजी ढीली पाग,
बदन प्रस्वेद भाल-भौंहन के कोरै है ॥
मरम खुल्यौ न अंग परसत मोहिनी कौ,
'लछिराम' सान संग भौंहन मरोरै है ।
लोचन सुरंग हेरि बाल के सरोष मानौं,
रंगसाज मदन मजीठ रंग बोरै है ॥१९६॥

---

* रति उदास ह्वै नाह सों, डर दिखरावै बाम ।
प्रौढ़ अधीराधीर तिय, बरनत कवि मतिराम ॥
—"रसराज"

स्वकीया के अन्य भेद

ज्येष्ठा-कनिष्ठा—पति-प्रेम के परिमाणानुसार स्वकीया नायिका के ज्येष्ठा-कनिष्ठा नामक दो भेद और होते हैं। एक पुरुष की कई विवाहिता स्त्रियाँ होने पर, जिस पत्नी पर पति का अधिक प्रेम हो, उसे ज्येष्ठा और जिस पर न्यून हो, उसको कनिष्ठा कहते हैं‡।

स्पष्टीकरण—यहाँ पर अवस्था में बड़ी अथवा पूर्व विवाहिता पत्नी को ज्येष्ठा और अवस्था में छोटी अथवा बाद की विवाहिता पत्नी को कनिष्ठा नहीं समझनी चाहिये। कनिष्ठत्व और ज्येष्ठत्व का संबंध पति-प्रेम के न्यूनाधिक्य पर निर्भर है, वयक्रम अथवा विवाह-काल पर नहीं। प्रायः नव विवाहिता स्त्रियाँ ज्येष्ठा और पूर्व विवाहिता कनिष्ठा होती हैं।

(ज्येष्ठा)

हौऊँ हुती सग-संग, अंग-अंग रंग-रंग,
भूषन-बसन आज गोपिन सँवारी री।
महल सराइ में निहारत सबन तन,
ऊपर अटारी गए लाल गिरधारी री॥
'दास' तिहि औसर पठाइ कै सहेली कों,
अकेलीऐ बुलाई बृषभानु की दुलारी री।
लाल-मन बूड़िबे कों देवसरि सोती भई,
सौतिन चुनौती भई, बाकी सेत सारी री॥ १६७॥

---

‡ (१) जासो पति अति हित करै, सुतिय ज्येष्ठा आहि।
जासों घटि हित नाह कौं, कहै कनिष्ठा ताहि॥
—"सुंदरशृंगार"

(२) केशवदास आदि कवियों ने ये भेद नहीं लिखे है।

(३) चिंतामणि, मतिराम, देव, रसलीन, पद्माकर आदि कवियों ने ज्येष्ठा कनिष्ठा को पृथक्-पृथक् न लिख कर एक ही उदाहरण में दोनों को सम्मिलित कर दिया है।

(४) दास ने ज्येष्ठा-कनिष्ठा को पृथक्-पृथक् लिखा है और दक्षिण, शठ और धृष्ट नायक भेदानुसार उनके निम्न लिखित ६ भेद किये है—
१—दक्षिण की ज्येष्ठा, २—शठ की ज्येष्ठा ३—धृष्ट की ज्येष्ठा,
४—दक्षिण की कनिष्ठा ३—शठ की कनिष्ठा ६—धृष्ट की कनिष्ठा।

(कनिष्ठा)

नैंनन को तरसैऐ कहाँ लौं, कहाँ लौं हियौ बिरहाग मे तैऐ ।
एक घरी ना कहूँ कल पैऐ, कहाँ लगि प्रानन कों कलपैऐ ॥
आवै यहै अब 'दास' बिचार, सखी चल सौतिउ के घर जैऐ ।
मान घटे तें कहा घटि है, जु पै प्रान-पियारे कों देखन पैऐ ॥१९८॥

*

रोज न आइऐ जो मनमोहन, तौ यह नैंक मतौ सुनि लीजिऐ ।
प्रान हमारे तुम्हारे अधीन, तुम्हें बिन देखें सु कैसे कै जीजिऐ ॥
'ठाकुर' लालन प्यारे सुनौ, बिनती इतनी पै अहो चित दीजिऐ ।
दूसरे, तीसरें, पाँचएँ, सातएँ, आठएँ तौ भला आइबौ कीजिऐ ॥१९९॥

*

(ज्येष्ठा-कनिष्ठा)

खेतल फाग खिलार खरे, अनुराग भरे बड़ भाग कन्हाई ॥
एकई भौन मे दोउन देखि कैं, 'देव' करी इक चातुरताई ॥
लाल गुलाल सों लीनी मुठी भरि, बाल के भाल की ओर चलाई ।
वो दृग मूँदि उतै चितई, इन भेंटी इतै बृषभान की जाई ॥२००॥

*

दोऊ छवि छाजती छबीली मिलि आसन पै,
जिनहिं बिलोक रह्यौ जात न जितै-जितै ।
कहै 'पदमाकर' पिछौ हैं आइ आदर सों,
छलिया छबीलौ छैल बासर बितै-बितै ॥
मूँदे तहाँ एक अलबेली के अनोखे दृग,
सु दृग-मिचावनी के ख्यालनि हितै-हितै ।
नैसुक नवाइ ग्रीवा धन्य-धन्य दूसरी कों,
औचक अचूक मुख चूमत चितै चितै ॥ २०१ ॥

*

केलि के मदिर बैठी हुतीं, दुइ प्रेम भरी, तहँ प्रीतम आयौ ।
दोउन सों करिकै मधुरी बतियाँ, अपने ढिंग में बिठरायौ ॥
'भानु' सुगंध सुंघाइवे के मिस, एक के नैंन कपूर लगायौ ।
मींजन जौलौं लगी तब लौं हँसि, दूजी कों आपुने अंक लगायौ ॥२०२॥

परकीया नायिका

परकीया—जो नायिका पर-पुरुष से प्रीति करे, उसे परकीया कहते हैं†।

आलिन आगें न बात कहै, न बहै उठि ओंठनि तें मुसुकानि है।
रोस सुभाइ कटाच्छ के घाइन, पाँइ कौ आहट जात न जानि है॥
'दास' न कोऊ कहै कबहूँ कहै, कान्ह तें यातें कछू पहिचान है।
देखि परै दुनियाई में दूजी न, तो सी तिया चतुराई की खानि है॥२०३॥

★

ऐसेई चाहिं चबाइ चहूँ कहि, एक की बात हजार-बखानी।
औस छै-सातक सों चरचा, ब्रज मंडल में अति ही अधिकानी॥
सो न कछू समुझै 'द्विजदेव', रही धौं कहा हिय में अब ठानी।
वादि ही मोहिं दहै दिन-राति, सखी! यह जारिबे जोग जवानी॥२०४॥

★

वे बस मंत्र मदाँई रहैं, इनकें न है जंत्र, न मंत्र, न है मुनि।
वे डसि भाजति एक ही बार, इन्हें नहिं तोष बिनाहिं डसै पुनि॥
भेद चबाइन सों औ भुजंगन सों, 'द्विजदेव' रहै धौं कितौ गुनि।
आँखिन देखि डसैं वे कहूँ, सखि! ए नित ही डसैं कानन सों सुनि॥२०५॥

★

रैंन-दिना घुटिबौ करें प्रान, झरें अँखियाँ दुखियाँ झरना सी।
प्रीतम की सुधि अंतर मैं, कसकै सखि! ज्यों पँसुरीनि में गाँसी॥
चौचँद चार चबाइन के चहुँ ओर मचै, बिरचै करि हाँसी।
यों मरियै भलयै कहि क्यों, सु परौ जनि कोऊ सनेह की फाँसी॥२०६॥

---

† (१) प्रेम करै पर-पुरुष सों, परकीया सो जान।
—"रसराज"

(२) निज पति-बंचन जो करै पर-पति पै अनुराग।
तासों परकीया कहै, कविवर सकल अदाग॥
—"शृंगार दर्पण"

(३) केशवदास ने परकीया को पर-पुरुष-रत न कह कर परमब्रह्म परमात्मा की प्रिया कहा है—
सबतें पर परसिद्ध जो, ताकी प्रिया जु होय।
परकीया तासौं कहै, परम पुराने लोय॥ —"रसिकप्रिया"

जा दिन तें निरख्यौ नँदनंदन, कानि तजी घर-बंधन छूट्यौ ।
चारु बिलोकनि कीनीं सु नारि, सम्हार गई मन मार नें लूट्यौ ॥
सागर कों सरिता जिमि धाइ, न रोकी रहै, कुल कौ पुल टूट्यौ ।
मत्त भयौ मन संग फिरै, 'रसखान' सरूप अमी-रस घूँट्यौ ॥२०७॥

★

लाज के लेप चढ़ाइ कै अंग, पची सब सीख कौ मंत्र सुनाइ कै ।
गाढ़रू ह्वै ब्रज लोग थके, करि औषद बेसक सौंह दिवाइ कै ॥
ऊधौ सों कौ 'रसखान' कहै, जिन चित्त धरौ तुम ऐते उपाइ कै ।
कारे बिसारे कों चाहै उतारयौ, अरे बिस बावरे ! राख लगाइ कै ॥२०८॥

★

मेरौ सुभाव चितैबे कों माइ री, लाल निहारि कै बंसी बजाई ।
वा दिन तें मोहि लागी ठगी री, लोग कहैं कोउ बावरी आई ॥
यों 'रसखान' घिरयौ सिगरौ ब्रज, जानत वै, कै मेरौ जियराई ।
जो कोउ चाहै भलौ अपनौ, तौ सनेह न काहू सों कीजिऐ माई ॥२०९॥

★

छवि सों छबीलौ छैल आज भोर याही गैल,
अति ही रँगीली भाँति औचक ही आइगौ ।
चटक-मटक भरि लटकि चलन नीकी,
मृदु मुसक्यानि देखें, मो मन बिकाइगौ ॥
प्रेम सों लपेटी कोऊ निपट अनूठी तान,
मो मन चिताइ गाइ लोचन दुराइगौ ।
तब तें रही हौं घूमि, झूमि जकि बावरी ह्वै,
सुर की तरंगनि में रंग बरसाइगौ ॥ २१० ॥

★

जाकें लगै सोई जानैं विथा, पर पीर में कोउ उपहास करै ना ।
'सागर' जो चुभि जात है चित्त में, कोटि उपाइ करौ पै टरै ना ॥
नैंकसी काँकरी जाकें परै, सु तौ पीर तें नैंकहु धीर धरै ना ।
कैसैं परै कल ए री भटू ! जब आँखि में आँख परै, निकरै ना ॥२११॥

★

का कहिऐ किहि सों कहिऐ, तन छीजत है, पै न छीजतु है ।
तन कौ बिसराम अराम घनौ, करि दीजतु है, पै न दीजतु है ॥
कवि 'ठाकुर' भोग-सँजोग सबै, सुख कीजतु है, पै न कीजतु है ।
मनभावन प्यारे गोपाल बिना, जग जीजतु है, पै न जीजतु है ॥२१२॥

कबहूँ मिलिबो, कबहूँ मिलिबो, यह धीरज ही में धरैबो करै ।
उर तें कढ़ि आवै गरैं तें फिरै, मन की मन ही में सिरैबो करै ॥
कवि 'बोधा' न चाव सरी कबहूँ, निन ही हरबा सौ हिरैबो करै ।
सहतेई बनै, कहते न बनै, मन ही मन पीर पिरैबो करै ॥२१३॥

★

अति लोक की लाज समूह में घेरि कैं, राखि थकी भव-संकट सों ।
पल में कुल-कानि की मेंड नखी, नहिं रोकी रुकी, पल के पट सों ॥
'रसखान' सों केनौ उचाटि रही, उचटी न सँकोच की औचट सों ।
अलि कोटि कियौ, हटकी न रही, अटकी अँखियाँ लटकी लट सों ॥२१४॥

★

उनहीं के सनेहन सानी रहैं, उनहीं के जु नेह दिवानी रहैं ।
उनहीं की सुनैं न औ बैन त्यों सैन, सों चैन अनेकन ठानी रहैं ॥
उनहीं संग डोलत में 'रसखान', सबै सुख-सिंधु अघानी रहैं ।
उनहीं बिन ज्यों जल मीन ह्वै मीन सी, आँखि मेरी अँसुआँनी रहैं ॥२१५॥

★

नंद कौ नवेलौ अलबेलौ रंग छैल भरयौ,
कालि मेरे द्वार है कै गावत इतै गयौ ।
बड़े बाँके नैंन, महा सोभा के सु ऐंन आली !
मृदु मुसुक्याय मुरि, मो तन चितै गयौ ॥
तब तें न मेरे चित चैंन कहूँ रंचक हू,
धीरज न धरै, सो न जानै धौं कितै गयौ ।
नैंकु ही में मेरौ कछु मोपै न रहन पायौ,
औचक ही आइ भटू ! लूट सी वितै गयौ ॥ २१६ ॥

★

घेरी घिरी घर में न घरीक, सु कुंजन में कहि काहि गनैं री ।
ठाढ़ी अकेली सहेली सों रूठति, पाँइ अंगूठन भूमि खनैं री ॥
'देव' कहै कोऊ ल्यावै उन्हैं गहि, तौलौं घनी तरु छाँह तनैं री ।
आज लौं पावन, वा बनमाली मिलै बिन, आली न मोहि बनैं री ॥२१७॥

★

मोपै न मंत्र प्रयोग भयौ कोउ, मोहि डस्यौ न भुअंगम कारौ ।
भूत की बाधा न मोपै भई, नहिं बावरौ सौ भयौ चित्त हमारौ ॥
तू उपचार के ब्यौंत करै कहा, जानै कहा 'हरिऔध' बेचारौ ।
बान सी मारि गयौ उर में, अरी बीर ! बड़ी-बड़ी आँखिन वारौ ॥२१८॥

करि मंजनि ठाढ़ी हुती सुख सों अति, आज कलिंदजा-कूल अली ।
'द्विजदेव जू' औचक ताही समैं, तहाँ आँनि कढ़े कहूँ कान्ह छली ॥
बिसरी सिगरी सुधि ता छिन तें, कछु ऐसिएँ डीठि की फाँसी घली ।
कढ़ी केसन के सुरझाइबे कों, मनमोहन सों उरझाइ चली ॥२१९॥

★

खंजन नैंन फँदैं छवि-पिंजर, नाहि रहै थिर कैसेउ माई ।
छूटि गई कुल-कानि सखी, 'रसखान' लखी मुसिकानि सुहाई ॥
चित्र लिखी सी भई सब देह, न बैन कढ़ैं, सुख दीन दुहाई ।
कैसि करौं, जित जाउँ तितें, सब बोलि उठैं, जे बावरी आई ॥२२०॥

★

कहिवे कों बिथा, सुनिवे कों हँसी, को दया सुनि कै उर आननु है ।
अरु पीर घटै तजि धीर सखी ! दुख को नहीं कापै बखाननु है ॥
कवि 'बोधा' कहे में सबाद कहा, को हमारी कही पुनि माननु है ।
हमैं पूरी लगी, कै अधूरी लगी, यह जीव हमारोई जाननु है ॥२२१॥

★

सूखी सी, सर्मा सी, भ्रमी व्याकुल सी बैठी कहा,
नजर लगी है, तृन तोरि-तोरि नाख्यौ मैं ।
'बैनी' कवि भोरई तें भोरी भई दौरति हौं,
राज करौ जाइ, गृह-काज अभिलाख्यौ मैं ॥
ललकैं हमारौ जिय बोलै न विलोकै काहे,
मुख आँखें मूँद रही, यातें दीन भाख्यौ मैं ।
पलकैं उघारौ कैसें, कढ़ि जाइ आँखिन तें,
मोर जिन करौ, चितचोर मूंदि राख्यौ मैं ॥ २२२ ॥

★

जा जिय कौ दुख कासों कहौं कहिवे को न जीभहू डोलत डाही ।
कौ लौं छिपाइए छातो के घाइन, होत चबाइन कें चित चाही ॥
मेरो ही गैल लग्यौ रहै लंगरु, जो न लखौं, तौ मरौ छिन ताही ।
लाज निबाहन मोहि परी, जे बैरिन लाज परै न निबाही ॥२२३॥

★

चैहट कौ मिलिबो तौ रह्यौ, मिलिबो रह्यौ औचक साँझ सबेरो ।
और इतौ विनती तुमसों हरि, आइ अगीत-पछीत न घेरौ ॥
'ठाकुर' जो मिलि जैऐ कहूँ मग, तौ जहँलौं इक ही टक हेरौ ।
या ब्रज कें ब्रजबासी सबै, बदनाम करैं तुम्हरौ अरु मेरौ ॥२२४॥

डगमगी डगनि धरनि छवि ही के भार,
डरनि छबीले डर आछी बनमाल की ।
सुंदर बदन पर कोटिन मदन वारौं,
चित चुभी चितवन लोचन विसाल की ॥
काल्ह इहि गली अली ! निकस्यौ अचानक ह्वै,
कहा कहौं अटक मटक तिहिं काल की ।
भिजई हौं रोम-रोम आनँद के घन छाई,
बसी मेरी आँखिन में आवनि गुपाल की ॥२२५॥

★

हाँसी भई सापनौं, अबा सी भई देह यह,
दासी भईं बैरिनें, बिसासी भईं सखियाँ ।
'द्विजदेव' त्यौं ही कछु फूले-फूले किंसुकन,
ज्वाल-जाल लागी सी चहूँघाँ दिसि लखियो ॥
चोप चटबारौ चित चंचल चकोर मेरौ,
कैसी करें बावरी ! परिंद बिन पखियाँ ।
जा छिन ते जाइ अति उँमगि अघाइ,
मनमोहन सों हाय ! मिलि आईं मेरी अँखियाँ॥२२६॥

★

मोही मे रहत, रहै मोही सों उदास सदा,
सीखत न सीख, तन सीख निरधारौ है ।
चौंकौ सौ, चकौ सौ कहूँ, जक सौ, जक्यौ सौ,
कैहूँ पायन थक्यौ सौ, भाँत-भाँतिन निहारौ है ॥
ठाकुर ' कहत चित चोज बारी बातन मे,
जानतु न हरि सों कहाँ धौं बोल हारौ है ।
ऐसौ चित्त चतुर सयानौ सावधान मेरौ,
एरी ! इन आँखिन अयानौ करि डारौ है ॥२२७॥

★

पहिलैं बिन जानें पिछानें बिना, मिलीं धाइ कै आगें बिचारे बिना ।
अपने सों जुदी ह्वै गईं तुरतै, निज लाभ औ हानि बिचारे बिना ॥
'हरिचंदजू' दोष सबै इनकौ, जो कियौ सब पूँछि हमारे बिना ।
घरिआई लखौ इनकी उलटी, अब रोवहिं आप निहारे बिना ॥२२८॥

भाइकै आगें मिलीं पहिलें, तुम कौन सों पूछिकै, सो मोहिं भाखौ ।
त्यों तुमहीं तजिकै सब लाज, केहि के कहें एतौ कियौ अभिलाखौ ॥
काज बिगारि सबै अपनौ, 'हरिचंदजू' धीरज क्यों नहिं राखौ ।
क्यों अब रोइकै प्रान तजौ, अपने किए कौ फल क्यों नहिं चाखौ ॥२२६॥

★

हरि जू की गैल यह, मेरी पौर अगवा सों,
ह्यौं ह्वै कढ़्यौ चाहे मोहि काम घर कौ ।
ताकौ घरहौंई दुखहाई सोर पारती हैं,
बास छोड़ दीजै, कै निकरिबौ डगर कौ ॥
'ठाकुर' कहति हौं कराहिन भई हौं सुनि,
सकल उराहनों जु ह्वै रहौ अधर कौ ।
घरी-पहर होइ तौ बचाऐं रहौं मेरी बीर !
देहरी-दुआर-दुख आठ हू पहर कौ ॥२३०॥

★

लहि जीवन-मूरि कौ लाहु अली ! नै भली जुग चारि लौं जीवौ करें ।
'द्विजदेवजू' त्यों हरखाइ हिऐं, बर बैन-सुधा-मधु पीवौ करें ॥
कछु घूँघट खोलि चितै हरि-ओरन, चौथ-ससी-दुति लीवौ करें ।
हम तौ ब्रज कौ बसिबौई तज्यौ, अब चाव चबाइनें कीवौ करें ॥२३१॥

★

गोकुल के, कुल के, गली के, गोप गाँमन के,
जौं लगि कछू कौ कछू भारत भनैं नहीं ।
कहै 'पदमाकर' परोस पिछवारन के,
द्वारन के दौरि गुन-औगुन गनैं नहीं ॥
तौलौं चलि चातुर सहेली याहि कोऊ कहूँ,
नीकै कें निचोरै ताहि करति मनैं नहीं ।
हौं तौ स्याम रंग में चुराइ चित चोराचोर,
बोरत तौ बोरयौ, पै निचोरत बनैं नहीं ॥२३२॥

★

एक ही बार अयानपने महँ, है गयौ सो, जु हुतौ कछु हौनों ।
ताहू पै वा विष-बेलि सी मूरति, नाँहक पाइ, परौ फिरि रौनों ॥
बूझती बारहिं बार तुम्हैं, 'द्विजदेव' कहौ न अहो दृग दौनों ।
पावक-पुंज पियौई हुतौ, फिरि चाख्यौ कहा हरि-रूप सलौनों ॥२३३॥

का कहिऐ कोई पीरक नाँहिनैं, तातें हिए की जतैयत नाँहीं ।
भागन भेंट भई कबहूँ, सु घरीक बिलौकैं अछैयत नाँहीं ॥
'ठाकुर' या घर चौचँद कौ डरु, तातें घरी-घरी ऐयत नाँहीं ।
भेंटन पैयत कैसैं तिन्हैं, जिन्हैं आँखिन देखत पैयत नाँहीं ॥२३४॥

★

देखि हमैं सब आपसु मे, जो कछू मन भावै सोई कहती हैं ।
ए घरहाई लुगाई सबैं, निसि-द्यौस 'नेबाज' हमें दहती हैं ॥
बातैं चबाइ भरी सुनिकै, रिस आवतु, पै चुप ह्वै रहती हैं ।
कान्ह पियारे तिहारे लिऐं, सिगरे ब्रज कौ हँसिबौ सहती हैं ॥२३५॥

★

हम एक कुराह चलीं तौ चली, हटकौ इन्हे ए ना कुराह चलैं ।
इहि तौ बलि आपुनौ सूझती हैं, प्रन पालिऐ सोई, जो पालै पलैं ॥
कवि 'ठाकुर' प्रीति करी है गुपाल सों, टेरैं कहों, सुनौ ऊँचे गलैं ।
हमैं नीकी लगी सो करी हमनें, तुम्है नीकी लगौ, न लगौ तौ भलैं ॥२३६॥

★

ब्रज-बीथिन में फिरिबे के लिऐं, गुरुलोगन हू मिलि कीन्ही खई ।
पर मान्यौ नहीं उन हूँ को कह्यौ, जिय ऐसी कछू मनि आनि ठई ॥
तुम हू अब का समुझावती हौ, विधि नें 'हनूमान' लिखी सो भई ।
अब तौ मनमोहन हाथ सखी, कुल-कानि दई, बदनामी लई ॥२३७॥

★

प्रेम पगे जु रगे रँग साँवरे, मानैं मनाइ न लालचि नैंना ।
धावत हैं उतही जित मोहन, रोकै रुकैं नहिं घूँघट ऐना ॥
कानन लों कल ना हियरे सखि ! प्रीति सों भीजि सुने मृदु बैना ।
ह्वै 'रसखान' मधू मखिआँ, अब नेह सु बंधन क्यों हु छुटैं ना ॥२३८॥

★

हम हू सब जातनी लोक की चालनि, क्यों इतनौ बतरावती हौ ।
हित जामैं हमारौ बनै सो करौ, सखियाँ तुम मेरी कहावती हौ ॥
'हरिचंदजू' जामैं न लाभ कछू, हमैं बातनि क्यों बहरावती हौ ।
सजनी ! मन हाथ हमारे नहीं, तुम कौन कों का समुझावती हौ ॥२३९॥

(दृढ़ानुरागिनी परकीया)

जब तें दरसे मनमोहन जू, तब तें अँखियाएँ लगी सो लगी ।
कुल कानि गई सखि ! वाही घरी, जब प्रेम के फंद पगी सो पगी ॥
कहि 'ठाकुर' नेह के नेजन की, उर में अनी आनि खगी सो खगी ।
तुम गाँवरे, नाँवरे कोऊ धरौ, हम साँवरे-रंग रँगी सो रँगी ॥२४०॥

★

मधुरी मुसुक्यानि मनोहर में, मति मेरी जु आनि ठगी सो ठगी ।
गरुए-गहबीले गुलाब के पात से, गातन दीठि लगी सो लगी ॥
सजनी ! यह नेह मई बतियाँन तें, काम की जोति जगी सो जगी ।
अब कोऊ कितौऊ कहै किन री, जु हौं स्याम के रंग रँगी सो रँगी ॥२४१॥

★

बावरी ! तू तौ बकै बहुतेरौ, लग्यौ नहिं तोहि कहूँ यह घाव री ।
घाव री, घाइल जानत है, जिनकौ निसि-बासर प्रेम सुभाव री ॥
भावरी भोजन, भौंन न नींद, हिऐं उरझी वह मूरत साँवरी ।
साँवरे रंग में हौं तौ रँगी, न चढ़ै अब दूसरौ रंग सो बावरी ॥२४२॥

★

जरि है कब लौं बिरहा-झर तें, तिनके डर तें कब लौं डरि हैं ।
'द्विजदेवजू' ए दुखहाईं लुगाईं, न या ब्रज तें कितहूँ टरि हैं ॥
जल-केलि में छींट छुई सो छुई, उर त्रास न याकौ कछू धरि हैं ।
लखि मो मुख-चंद मे पंक लग्यौ, वे कलंक लगाइ कहा करि है ॥२४३॥

★

अब तौ जो भई सो भई, सो भई, हम वाही में आनँद लीवौ करें ।
इन काननि की यह बानि परी, बतरानि-सुधा-मधु पीवौ करें ॥
कवि 'राम' कहै अभिराम-सरूप, चितै चित वाही में दीवौ करें ।
सखि हौं वा रँगीले के रंग रँगी, ए चबाइनें चौचँद कीवौ करें ॥२४४॥

★

जब रीझि-सबाद भरीं अँखियाँ, तब रूप भलौ अरु पोच कहा ?
अपने अँग ब्याधि अगाधि उठी, तब वैदन ही सों सँकोच कहा ?
रस-रासि-मिलाप-सुधा अँचयौ, तब जाति औ पाँति कौ सोच कहा ?
छकि लौंड़ी भई हित-डौंड़ी बजाइ, कनौंड़ी भऐं, अब लोच कहा ? ॥२४५॥

परकीया नायिका भेद

परकीया नायिका के सर्व प्रथम दो भेद होते हैं—१-अनूढ़ा, २-ऊढ़ा। इनके उपरांत परकीया के अवस्थाअनुसार छै भेद और होते है*—

१-मुदिता, २-विदग्धा, ३-अनुशयना,
४-गुप्ता, ५-लक्षिता, ६-कुलटा।

---

(१) केशवदास ने ऊढा और अनूढ़ा केवल दो भेद ही लिखे हैं।

(२) चिंतामणि और देव ने ऊढ़ा के अंतर्गत पिछले छै भेद लिखे है।

(३) दास ने पहले प्रगल्भा और धीरा नामक दो भेदों का कथन किया है। इनके उपरांत अनूढा और ऊढ़ा का कथन कर उनके दो उपभेद उद्बुद्धा और उद्बोधिता लिखे है, फिर उद्बुद्धा के अनुरागिनी और प्रेमासक्ता नामक दो उपभेदों का कथन किया है। दास ने उनके असाध्या, दुःखसाध्या और साध्या नामक तीन उपभेद और भी लिखे है। अवस्थानुसार छै भेदों मे से उन्होंने विदग्धा,लक्षिता,मुदिता और अनुशयना इन ४ भेदो का कथन किया है। पाँचवे भेद गुप्ता को क्रिया विदग्धा के अंतर्गत लिखा है, और छटे भेद कुलटा का उल्लेख नहीं किया है।

(४) रसलीन ने अनूढा और ऊढा दोनो के उद्बुद्धा और उद्बोधिता नामक दो-दो भेद किये हैं। इनके उपरांत उन्होंने, असाध्या के ५ और सुखसाध्या के १० उपभेदों का कथन किया है। यथा—

असाध्या—१. सभीता, २. गुरुजन सभीता, ३. दूती वर्जिता, ४. अतिकाता, ५. खल पृष्ठ।

सुखसाध्या—१. वृद्ध बधू, २ बाल बधू, ३. नपुंसक बधू, ४. विधवा बधू, ५. गुनी बधू, ६. गुन रिझवती, ७. सेवक बधू, ८. निरंकुश, ९.परतियासक्त पति की स्त्री, १०.अति रोगी की स्त्री।

(५) मतिराम और पद्माकर ने उपर्युक्त दोनों भेदों को पृथक्-पृथक् लिखा है।

(६) परकीया के अवस्थानुसार छै भेदो का क्रम—गुप्ता, विदग्धा, लक्षिता, कुलटा,मुदिता और अनुशयना—प्राय इसी प्रकार सभी आचार्योंने लिखा है, किंतु इसका कोई वैज्ञानिक आधार ज्ञात नहीं होता; बल्कि परकीयत्व की अवस्था के अनुसार यह प्रचलित क्रम दूषित ज्ञात होता है। ऐसा अनुमान होता है कि परंपरा से चले आये हुए इस क्रम को सभी आचार्यो ने रूढ़ मान लिया है, किसी ने परकीयत्व के क्रमशः विकास पर दृष्टि रख कर उसका वैज्ञानिक क्रम स्थिर करने की चेष्टा नहीं की!

अनूढ़ा—अविवाहित अवस्था मे ही किसी पुरुष से प्रीति करने वाली नायिका को अनूढ़ा कहते हैं‡।

स्पष्टीकरण—प्रायः बाल्यावस्था से ही लड़के-लड़की खेल-कूद मे एक दूसरे की ओर आकर्षित हो जाते हैं। उनके इस शुद्ध प्रेम की प्रतीक अनूढ़ा नायिका है। इसमें किसी प्रकार का दोषारोपण करना व्यर्थ है।

सिसिर के सीत में अनहाइ जमुना के तीर,
मूरति बनाइ धरै ध्यान बैठि गौरी मे।
माता वरदायनि हौ, दीन सुख-दायनि हौ,
गिरिजा गोसाँइनि हौ पग पै निछौरी मैं॥
'नंदराम' दीजै वर, घर-वर नंदलाल,
मात-पितु मत्त घूमै भाग भरी भौंरी मे।
आपुनै सुतंत्र ह्वै कै बोलौं मनमौहन सों,
नूपुर पहरि डोलौं नंदजू की पौरी में॥२४६॥

*

खेल मिहींचिनि कौ मचायौ नंद-मंदिर में,
लुकिवे कों कोठनि-अटारिनि में धँसि जाति।
नूपुर की धुनि सुनि रीझत है महरेठी,
खोलति न यातें जब-तब आपु गसि जाति॥
'रघुनाथ' दौरत में दामिनी-सी लसति है,
घाँघरी सों फँसति लरखराति खसि जाति।
घेरि-घेरि आनँद सों हिय में सनेह सनी,
बेर-बेर मौहन की ओर हेर हँसि जाति॥२४७॥

---

‡ (१) अनब्याही पितु-गेह मे, कै काहू सों नेह।
ताही सों ब्याहौ चहै, सो अनूढ मति-गेह॥
—"रसिक विनोद"

(२) विन परनै तिय पुरुष सो, अनुरागी जो होइ।
ताहि अनूढा कहत हैं, कवि-कोविद सब कोइ॥
—"शृंगार दर्पण"

सुनती बतियाँ सखियाँन हूँ की, गुरु लोगन हूँ की कहीं करती ।
नहिं बारि बहावती आँखिन सो, अपने उर धीरज हू धरती ॥
हक-नाहक ही हठ कै ' हरिओध ', हितून हूँ सों ना कबौं अरती ।
अरी ! वा मनभावन साँवरे के सँग, कैसहू भाँवरैं जो भरती ॥२४८॥

*

जामैं कछू मन सोच-सँकोच न, आछिऐ सो तौ कछू लरिकाई ।
आवत ही इन नैंनन कें रस, मोहन के बस कौं ललचाई ॥
देखे बिना कल नैंक नहीं, अरु देखै तौ गोकुल गाँम चबाई ।
जामैं हँसे हू कलंक लगै, जे कौन धौं बैस बिसासिनि आई ॥२४९॥

*

मौहन-रूप चढ़ौ चित मे, हित भोजन-भूषन भाँति न भावति ।
देखन कों खिन खीनहि खीन, सखीन सों 'देव' न जी की जनावति ॥
भूलि गयौ गुड़ियान कौ खेल, झरोखनि झाँकति द्यौस गँवावति ।
बाल गनै न अबार सबारक, बारहि बार किंबार लौं आवति ॥२५०॥

*

को हौ ? जोतिषी हौ, कछु आगम बखानत हौ ?
धाम-धाम नाम जग जाहिर हमारौ नौ ।
आओ बैठ जाओ, पग छ्वाइ पान खाओ,
फेर सुचितै सुचित ह्वै कै गनित निकारौ तौ ॥
' ठाकुर ' कहत यह प्रेम की परिच्छा छान,
इच्छा कौ प्रमान भली भांति निरधारौ तौ ।
मेरौ मन मौहन तें लागत है बार-बार,
मौहन कौ मोतें मन लागि है बिचारौ तौ ॥ २५१॥

*

खेलत ही सखियाँन के संग में, प्रेम-रसै अबरेखन लागी ।
आए तहीं ' ससिनाथ ' सुजान मनोभव मूरति पेखन लागी ॥
आपनी छाँहि हूँ सों डरपै, यों कलंक अलंकहि लेखन लागी ।
नोऊ रह्यौ न गयौ, छल सों दृग-कोरनि ह्वै दुरि देखन लागी ॥२५२॥

*

मूरति जो मनमौहन की, मनमौहिनी के मन ह्वै थिरकी सी ।
'देव' गुपाल कौ बोल सुनैं, छतियाँ सियराति सुधा छिरकी सी ॥
नीकैं झरोखा ह्वै झाँकि सकै नहि, नैननि लाज घटा थिरकी सी ।
पूरन प्रीति हिऐं हिरकी, खिरकी-खिरकीनि फिरै फिरकी सी ॥२५३॥

(२) ऊढ़ा—अपने पति के अतिरिक्त किसी अन्य पुरुष से प्रेम करने वाली विवाहिता स्त्री को 'ऊढ़ा' कहते हैं* ।

स्पष्टीकरण—बाल्यावस्था से ही जिन लड़के-लड़कियों मे परस्पर आकर्षण हो जाता है, उनका वयस्क होने पर विवाह-बंधन में बँधने की इच्छा रखना स्वाभाविक है । यदि संयोग वश उनका आपसमें विवाह होगया, तब तो वह पुराना आकर्षण सुखपूर्ण दाम्पत्य प्रेम में परिणित हो जाता है; किंतु जाति, कुल और समाज के बंधन के कारण प्रायः इस प्रकार के विवाह नहीं हो पाते, और इस विवशता के कारण वह बाल-स्वभावजनित आकर्षण भी समय पाकर स्वतः दूर हो जाता है । कभी-कभी यह आकर्षण इतना अधिक होता है कि वह विवाह के पश्चात् भी बना रहता है और उस पुरुष की चाह स्त्री को सदा जलाया करती है । पुराने प्रेमी के अतिरिक्त उक्त स्त्री का आकर्षण विवाह के पश्चात् किसी अन्य पुरुष की ओर भी हो सकता है, किंतु कुल-धर्म और सामाजिक मर्यादा का विचार करती हुई वह अपने मन को सावधान करने की चेष्टा करती रहती है । इस प्रकार प्रेम और मर्यादा के अपार पारावार में डूबती-उतराती हुई इन भिन्न-भिन्न स्थितियों की नायिकाओं को 'ऊढ़ा'कहते हैं।

औचक दीठ परे कहुँ कान्हजू, तामैं कहै ननँदी अनुरागी ।
सो सुनि सासु रही मुख मोरि, जिठानी फिरै जिय मे रिस पागी ॥
नीके निहारि कै देखे न आँखिन, हौं कबहूँ सँग रैनि न जागी ।
है पछितैवौ यही सजनी ! कै कलंक लग्यौ, पर अंक न लागी ॥२५४॥

★

मुख तें न मौहन की चरचा चलावै कहूँ,
मनैं-मन राखि हिय दीपक दिपावै है ।
नैंनन में ह्वै कै कोऊ नैंक न पिछानैं कान्ह,
नीची करि दीठि सौति-मद कौ खपावै है ॥
लोक-लाज अंबर की ओट धरि अंगन कों,
सबै गुरुलोगन के भ्रम कों लिपावै है ।
ऐसें हित प्रीतम कौ चित में छिपावै, जैसैं-
रंक बित पाइ कर, छिति में छिपावै है ॥२५५॥

---

* जो ब्याही तिय और की, करत और सों प्रीति ।
ऊढा तासों कहत हैं, हिएं राखि रस-रीति ॥
—"जगद्विनोद"

समझीं न कछू अजहूँ हरि सों, ब्रज नैंन नँचाइ–नँचाइ हमैं।
नित सास की सारी उसाँसनि सों, दिनई दिन माइ की कांति नमैं॥
चहुँ ओर बबा की सों सोर सुनैं, मन मेरेउ आवति रीस कमैं।
पै कहा करौं वा 'रसखान' बिलोकि, हियौ हुलसै, हुलसै, हुलसै॥२५६॥

★

बारिध विरहै बढ़ी वेदन की बाडबागि,
बडे-बडे बूडे, पार परे प्रेम-पुल नें।
छूटि गुन गरुवौ गरब गिरि गयौ दृग,
पवन तरंग बुद्धि नाँउ नैंक उलते॥
मेरे मन! तेरी भूल, मरि हौ हिये के सूल,
'देव' तृन तूल तूल कीन्ही हौ अतुल ते।
भामते तें भोंडी करी मानिन तें मोंड़ी करी,
कौड़ी करी हीरा तें, कनौडी करी कुल ते॥२५७॥

★

पाख हू न बीत्यौ चलि आएँ हमैं पीहर तें,
नीकें कै न जानी सासु, नँनद, जिठानी है।
कहै 'सिवराम' ऐसैं कैसैं निबहैगी बीर!
घर-घर झूँठई चबाइ रीति ठानी है॥
कौन मिली आँखे-आँख, काकौ तन-मन मिल्यौ,
कौनें काहि मोह्यौ, कौन काके मन मानी है।
ब्रज की बधून मिलि चौचँद मचायौ,
हम कान हू सुनी न कहूँ कान्ह की कहानी है॥२५८॥

★

बीर अधीर भई तो कहा, परी पीर भरी छतियाँ अब चाँपनी।
प्रीति रतीक न जा 'हरिऔध' मे, ताकी प्रतीत करी, बनी पापिनी॥
जा अपकीरति की बतियाँ, निज हाथन मोइ परी सखि थापनी।
मो पतिआँन पै गाज परै पति-आन के हाथ गई पति आपनी २५९।

★

कंत चौक सीमंत की, बैठी गाँठ दुराइ।
देख परौसी को प्रिया, घूँघट मे मुसक्याइ‡॥२६०॥
निसु दिन सासु नँनदिआ, मुहिं घर घेर।
सुनन न देत मुरलिया, ना धुनि टेर†॥२६१॥

‡ मतिराम † रहीम

(१) **मुदिता**—पर-पुरुष-मिलन विषयक मनोभिलाषा की अकस्मात पूर्ति होते देख कर जो नायिका मुदित होती है, उसे मुदिता कहते हैं †।

साँझ की कारी घटा घिरि आई, महा झर सों बरसै भरि सावन ।
धौरिऊ कारिऐ आइ गईं, सु रम्हाइ कै, धाइ कै लागीं चुखावन ॥
माइ कह्यौ कोउ जाइ कहै किनि, मोहू सों आज कह्यौ उन आवन ।
यों सुनि आनँद तें उठि धाई अकेलिऐ बाल गुपाल बुलावन ॥२६२॥

★

बैठी यह सोच करि, सुंदरि सँकोच भरि,
कैसे कें बिलोको हरि, करौं कौन छल छंद ।
दूबरी भई है देह, कल न परत गेह,
सहित सनेह तौलौ बोली यों जिठानी-नंद ॥
आज दधि बेचन तू जाइ नदगाँम मधि,
सुनत 'प्रबीन बेनी' उमग्यौ अनंद-कंद ।
कसि आई कंचुकी, उकसि आए दोऊ कुच,
गमि आई बहियाँ, सु फँमि आए भुजबद ॥२६३॥

★

मोहन तें कछु द्यौसन मे, 'मतिराम' बढ्यौ अनुराग सुहायौ ।
बैठी हुती तिय माइके में, सुसरारि कौ काहू सँदेसौ सुनायौ ॥
नाह के ब्याह की चाह सुनी, हिय माँहि उछाह छबीली कें आयौ ।
पौढ़ि रही पट ओढ़ि अटा, दुख के मिस कै सुख बाल छिपायौ ॥२६४॥

★

द्वै दिन कौ पथ तीरथ न्हान कौ, लोग चल्यौ मिलकै सिगरौई ।
सासु बहू सों कह्यौ यों, रहौ घर, और रहै नहिं राखिऐ कोई ॥
सुंदरि आनँद सो उँमगी, जे चाहत ही जु भयौ अब सोई ।
प्रेम सो पूरन दोऊ जने, घर आपु रही, कै रह्यौ नँनदोई ॥२६५॥

---

† (१) उहै बात बनि आवई, जो चित चाहत होइ ।
तातें आनंदित महा, मुदिता कहिऐ सोइ ॥
—"शृंगार निर्णय"

(२) दास ने मुदिता में विदग्धत्व स्थापित कर 'मुदिता विदग्धा' का भी वर्णन किया है ।

नंद कें न्यौती हौं भोर भटू ! कह्यौ राधे सों एक सखी सुख माहीं ।
यों सुनिकै चुनि चीर धरयौ, चुपरयौ मुख, चोप चढ़ी चित चाहीं ॥
साँझहि तें मन माँझ मलीन न्यों, छीन न होत छपाकर छाहीं ।
न्यों पलना हू लगै पल ना उर आनँद की कलना कल नाहीं ॥२६६॥

★

गरबीली गोरटी लजीली अँखिआँन बारी,
लूटी सी फिरति छूटी सखिआँन संग तें ।
कुंज-पुंज क्यो हूँ लखि पाई गुंज-माल बारी,
जाकी सुघराई है सबाई सो अनंग तें ॥
'हरिऔध' हेरैं भई बेसुध बिकी सी बाल,
भाव-भंगी ह्वै गई छगूनी भंग-रंग तें ।
तरकत मैंन की तरंग तें तनी के बंद,
फरकत अंग अंग आनँद-उमंग तें ॥२६७॥

★

अब पीहर को दिबरानी चली, रही सासुल, सो अँधिरानी फिरै ।
पति हू सिवरानी की जात चल्यौ, दिन द्वैक तें दासी रुसानी फिरै ॥
कवि 'ग्वाल' यों जानी तिया जब तें, तब तें छतिया सियरानी फिरै ।
तन ही तन फूलि समानी फिरै, मन ही मन में मुसिक्यानी फिरै ॥२६८॥

★

जा सँग नेह निरंतर हौ, अति हास-बिलासन मोद बढ़ायौ ।
खेलत खेल 'गुलाब' कहै, नित ही नित चाह कियौ मन भायौ ॥
सास रिसाति रही तबहू, कबहू सपनेहु न कोप जनायौ ।
सो नँनदी ससुरारि सिधारत, कारन कौन बधू सुख पायौ ॥२६९॥

★

बधू रहैं घर, हम चलें, चलत बात रसलीन ।
भरकी कदली-पत्र लौं, हिय-कंचुकी नवीन* ॥ २७० ॥

★

परखि प्रेम बस पर पुरुष, हरषि रही मन मैंन ।
तब लगि झुकि आई घटा, अधिक अँधेरी रैंन§ ॥ २७१ ॥

★

बिछुरत रोवत दुहुँनि की, सखि ! ये बात लखैं न ।
दुख-अँसुआँ पिय-नैंन में, सुख-अँसुआँ तिय-नैन† ॥ २७२ ॥

---

* रसलीन § पद्माकर † मतिराम

(२) विदग्धा—चतुरता पूर्वक पर-पुरुषानुराग का संकेत करने वाली नायिका को 'विदग्धा' कहते हैं।

विदग्धा के २ भेद होते है—१. वचन विदग्धा, २. क्रिया विदग्धा।

१-वचन विदग्धा—जो नायिका वचनों की चतुरता से पर-पुरुषानुराग विषयक कार्य को सम्पन्न करना चाहे, उसे 'वचन विदग्धा' कहते हैं[1]।

ठाड़ी बतरात इतरात ही परौसिन तें,
जैसी तिय दूसरी न पूरब-पछाँह मे।
दीठि परि गए तहाँ सुंदर सुजान कान्ह,
औचक ही प्रकट पुछति परछाँह मे॥
'सोमनाथ' त्यों ही प्रानप्यारे कों सुनाइ कह्यौ,
तिय नें सखी सों तरुनाई के उछाँह मे।
बंसीबट निकट हमें तू मिलियोरी काल्हि,
कातिक मैं न्हाऊँगी तरैयन की छाँह मे॥ २७३॥

★

जब लों घर कौ धनी आवै घरै, तब लौं तौ कहू चित दैवौ करौ।
'पदमाकर' जे बछरा अपने, बछरान के संग चरैवौ करौ॥
अरु औरन के घर तें हम सों तुम, दूनी दुहावनी लैवौ करौ।
नित साँझ सबेरै हमारी हहा हरि, गैया भला दुहि जैवौ करौ॥२७४॥

★

ननँद हठाई उन सोवत उठाई सास,
पेलि कै पठाई अधरातक अँध्यारेई।
दैहौं ना बिठाई, हौं ही जाऊँगी पठाई तुमैं,
उत वै हठीली हठ मोहीं सो पसारेई॥
पीतंबर खोलौं, मुख देखिहौं तिहारौ नैंक,
देखौ भोर भयौ जू बनैगौ पगु धारेई।
चोखी जाति गैया, कोऊ और ना दुहैया 'देव',
देबर कन्हैया! कहा सोवत सबारेई॥ २७५॥

---

1 वचनन की रचनान सों, जो साधै निज काज।
वचन विदग्धा नाइका, ताहि कहत कविराज॥ —"जगद्विनोद"

यह लात चलावनी हाय दैया, हर एक कों नाहिं छुहावनी है ।
सुनी तेरी तरीफ मिलावनी की, हित तेरे सु माल पुहावनी है ॥
कवि 'ग्वाल' चराइ लै आवनी ह्याँ, फिर बाँधनी पौरि सुहावनी है ।
मनभावनी दैहौं दुहावनी मैं, यह गाय तुहा पै दुहावनी है ॥२७६॥

★

आई ह्वै निपट साँझ, गैया गईं घर माँझ,
ह्याँ तें दौरि आई, कहै मेरौ काम कीजिऐ ।
हौं तौ हौं अकेली और दूसरौ न देखियत,
बन की अँध्यारी सों अधिक भय भीजिऐ ॥
कवि 'मतिराम' मनमोहन सों पुनि-पुनि,
राधिका कहति बात साँची कै पतीजिऐ ।
कब की हौं हेरति, न हेरैं हरि पावत हौ,
बछरा हिरान्यौ, सो हिराइ नैक दीजिऐ ॥ २७७ ॥

★

ननँद जिठानी अनखानी रहे आठो जाम,
बरबस बातन बनाइ आइ अरती ।
रचि-रचि वचन अलीक बहु भाँतिन के,
करि-करि अनख पिया के कान भरती ॥
कहै 'परताप' कैसे बसिऐ निकसिऐ क्यों,
मौन गहि रहिऐ तऊ न नैक टरती ।
निज-निज मंदिर मे साँझ तें सबेरे दीप,
मेरे केलि मंदिर मे दीपकौ न धरती ॥ २७८ ॥

★

पास परिचारिका न कोऊ जो करै बयारि,
महल टहल मेरी कहल मिटाउ रे ।
'राव' कहै बात न सुहाती तेऊ हौंनी करी,
छाती तें छुवाइ अति आनँद बढाउ रे ॥
एरे मीत पौंन ! तू परसि मेरौ अंग आइ,
तेरें इतें आइवे कों मेरें चित चाउ रे ।
राखे बड़ी बेर तें किंवारि खोलि तेरे काज,
एरे मेरे मंदिर में मंद-मंद आउ रे ॥ २७९ ॥

(स्वयंदूती†)

ननँद निनारी, सासु माइकै सिधारी,
अहै रैन अँधियारी भारी, सूझत न कर है ।
पीतम कौ गौन, 'कविराज' न सुहात भौन,
दारुन बहत पौन, लाग्यौ मेघ झर है ॥
सग ना सहेली, बैस नवल, अकेली, तन–
परी तलाबेली महा, लाग्यौ मैंन-सर है ।
भई अधरात, मेरौ जियरा डरात,
जागु-जागु रे बटोही ! इहाँ चोरन कौ डर है ॥ २८०॥

★

मारग बीच पयोधर पेखि कें, कौन कौ धीरज जो न गयौ है ।
'भजनजू' नदिया बहै रूप की, नाउ नहीं, रवि हू अथयौ है ॥
पथिक रैन बसौ इहि देस, भलौ तुमको उपदेस दयौ है ।
या मग बीच मिलैं वह नीच, जो पावक मे जरि प्रेत भयौ है ॥२८१॥

★

एहो तुम को हौ, नैक घरैं क्यों न रहौ,
देखा 'चिंतामनि' बागन मे कौंपैं लहलही हैं ।
तुमकौं धरम ह्वै है देव-अरचन–काज,
सुंदरि चमेली की कली कछूक चही हैं ॥
बाग मे अँध्यारौ, डर लागतु है जानै उत,
तातैं हौं कहति इहाँ जो लोग और नही है ।
कैपैं करि जाउँ फूल लैंन हौं अकेली,
ह्याँ नौ आछे-आछे फूलन की बेली फूल रही हैं ॥२८२॥

★

घाम घरीक निवारिये, कलित ललित अलि पुंज ।
जमुना तीर तमाल तरु, मिलत मालती कुंज† ॥ २८३ ॥
रे रँगिया ! करि रखियो, सकल रंग कौ साज ।
साँझ परे हौं आइहौं, स्याम बसन के काज* ॥ २८४ ॥

---

† 'स्वयंदूती' भी 'वचन विदग्धा' ही है, अंतर केवल इतना है कि वचन-विदग्धा अन्योक्ति द्वारा अस्पष्ट शब्दों मे और स्वयंदूती कुछ स्पष्ट शब्दों मे अपना अभिप्राय प्रकट करती है ।

† 'बिहारी * रसलीन ।

२–क्रिया विदग्धा—जो नायिका क्रिया की चतुरता से पर-पुरुषानुराराग विषयक कार्य को सम्पन्न करना चाहे, उसे 'क्रिया विदग्धा' कहते हैं†।

बैठी तिया गुरु-लोगन मे, रति तें अति सुदर रूप बिसेखी।
आयौ तहाँ 'मतिराम' सो जामैं, मनोभव तें बढि कांति उरेखी॥
लोचन रूप पियाँई चहै, अरु लाजनि जात नहीं छवि पेखी।
नैंन नबाइ रही हिय-माल मे, लाल की मूरति लाल में देखी॥२८५॥

★

बैठी हुती गुरु मंडली मे, मन मे मनमोहन को ना बिसारति।
त्यों 'नदरामजू' आइ गए बन तें, तहँ मोरपखा सिर धारत॥
लाज तें पीठ दै बैठी बहू, पति-मातु की आँख तें आँख न टारत।
सासु की नैनन को पुतरीन में, प्रीतम को प्रतिबिंब निहारत॥२८६॥

★

बैठी तिया गुरु-लोगन मे, रति ते रमनीय-सी रूप सुहाई।
आयौ तहाँ मनमोहन त्यों, सय की अँखिआँन उहें छवि छाई॥
कैसें लखै पिय 'बैनी प्रबीन', नवीन सनेह सकोचि समाई।
पीठ दै भामते को सजनी, सजनीन की दीठि सो दीठि लगाई॥२८७॥

★

बजुल निकुजन मे मजुल महल मध्य,
मोतिन की झालरै किनारिन मे कुरबिद।
आइगे तहाँ ही 'पदमाकर' पियारे कान्ह,
आनि जुरे चौचँद चबाइन के वृद-वृद॥
बैठी फिरि पूतरी अनूतरी फिरंग कैसी,
पीठ दै प्रवीनी दृग दृगन मिलै अनंद।
आछै अवलोकि रही आइ रस-मंदिर मे,
इन्दीवर सुंदर गुविंद कौ मुखारविंद॥२८८॥

---

† जो तिय साधै काज निज, करि कछु क्रिया सुजान।
क्रिया विदग्धा नाइका, ताहि लीजिये जान॥
—"जगद्विनोद"

मनिमय मंदिर के आँगन अनौखी बाल,
बैठी गुरु-लोगन में सोभा सरसाइ कै।
गरक गुलाब-नीर, अरक उसीरन के,
राखेउ औरन सुगंध बगराइ कै॥
कहैं 'परताप' पिय नैंन के इसारतनि,
सारति जनाई मुख मृदु मुसक्याइ कै।
बोली नहिं बोल कछु, सुंदरि सुजान रही,
पुंडरीक-सुमन सोहायौ दिखराइ कै॥२८९॥

★

दोऊ अटान चढे 'पदमाकर', देखि दुहूँ कों दुग्रौ छवि छाई।
त्यों ब्रजबालैं गुपाल तहाँ, बनमाल तमालहिं की दरसाई॥
चंद्रमुखी चतुराई करी तब, ऐसी कछू अपने मन भाई।
अंचल खेंचि उरोजन तें, नंदलाल कों मालती-माल दिखाई॥२९०॥

★

बैठी हुती ढिंग सास कें लाड़िली, ओढ़िकै झीनी नई अति सारी।
कचन तें दुति देह की दूनी, जु चंद्रहि तें मुख चद्र उज्यारी॥
मौहन आए तहाँ 'रसिकेस' तिन्हैं लखिकै पट घूँघट डारी।
देखि रही भरि नैंनन सों, निज लाड़िले के मुख की छवि प्यारी॥२९१॥

★

पीछे आलिन के खड़ी, आयौ मदन गोपाल।
घूँघट झीने चीर मग, लखति अनोखी चाल†॥ २९२॥

★

करि गुलाल-सों धुंधरित, सकल ग्वालिनी ग्वाल।
गोरी-मींडन के सु मिस, गोरी गह्यौ गोपाल*॥ २९३॥

★

न्हाइ, पहिरि पट, उठि कियौ, बैंदी मिस परनाम।
दृग चलाइ घर को चली, बिदा किए घनस्याम§॥ २९४॥

★

बाहेर लैकैं दियवा, बारन जाइ।
सासु-ननँद ढिंग पहुँचत, देति बुताइ†॥ २९५॥

★

चढ़ी अटारी बाम वह, कियौ प्रनाम अखोट।
तरुन किरन तें दृगन कों, कर सरोज की ओट‡॥ २९६॥

---

‡ लछिराम * पद्माकर § बिहारी † रहीम ‡ मतिराम।

(३) **अनुशयना**—पर पुरुष से मिलने के स्थान अथवा अवसर को नष्ट होते देख कर, जो नायिका दुखित होती है, उसे 'अनुशयना' कहते हैं* ।

अनुशयना के ३ भेद होते हैं---

१. प्रथम अनुशयना, २. द्वितीय अनुशयना ३ तृतीय अनुशयना ।

१–**प्रथम अनुशयना**—पर पुरुष–मिलन के संकेत स्थान को नष्ट होते देख कर जो नायिका दुखित होती है, उसे 'प्रथम अनुशयना' कहते हैं† ।

आई रितु पावस अकास आठौं दिसन में,
सोहत सरूप जलधरन की भीर कौ ।
'मतिराम' सुकवि कदंबन की बास जुत,
सरस बढ़ावै रस परस समीर कौ ॥
भौन तें निकसि बृषभान की कुमारि देख्यौ,
ता समय सहेट कौ निकुंज गिर्‌यौ तीर कौ ।
नागरि कै नैंनन में नीर कौ प्रवाह बाढ्यौ,
देखत प्रवाह बाढ्यौ जमुना के नीर कौ ॥ २१७ ॥

---

* बिनसै ठौर सहेट का, आगे होइ न होइ ।
जाइ सकै न सहेट में, अनुसयना है सोइ ॥
—"भाषाभूषण"

† (१) दास ने इनका नामोल्लेख निम्न प्रकार से किया है—
१. केलिस्थान विनाशिता, २. भावी स्थान अभाव ३ संकोच निःप्राप्य ।
इनके अतिरिक्त उन्होंने "अनुशयना विदग्धा" नामक एक अन्य भेद का भी उल्लेख किया है ।
(२) रसलीन ने इनका नामोल्लेख क्रमशः इस प्रकार किया है—
१. स्थान विघटना, २ भावी स्थान साधन ३. संकेत स्थल विनिष्ठा ।
(३) चिंतामणि और देव ने अनुशयना के भेद नहीं लिखे हैं ।

‡ केलि करैं जहँ कंथ सों, सो थल मिट्यौ निहारि ।
कही अनूसयना सु यों सोच करैं वर नारि ॥
—"रसराज"

'दासजू' वाकी तौ द्वार की सूनी कुटी जरै, यातें करै दुख थोरै ।
भारी दुखारी अटारी चढ़ी, उहै रोवै, हनै छतिआँ, सिर फोरै ॥
हाइ भरै, कहै लोगनि देखि, अरे निरदइ ! कोऊ पानी लै दौरै ।
आग लगी लखि मालिनी कें, लगी आग है ग्वालिनी के उर औरै ॥२९८॥

*

रितु आई सुहाई नई वरषा, बढ़्यौ मोद मयूरन के हिय कौ ।
हरिआई चहूँ दिसि फैलि रही, अनुराग जगावत है जिय कौ ॥
चढ़ि ऊँचे अँटानि बिलोकै घटा, कर कंज सो हाथ गहै पिय कौ ।
लखि कंज कलीन तड़ागन में, मुख मंजु मलीन भयौ तिय कौ ॥२९९॥

*

जरि जाती उजारत ऊखन के, गिरि जाती सुनै सन की गतियाँ ।
हरियारी सु क्यों रहती 'द्विजदेव', सुनैं तृन सूखन की बतियाँ ॥
रहि जाती सु क्यों वह प्रीति-लता, सहि जाती विथा कब धौं छतियाँ ।
पति राखती जो न दया करिकै, पति पूरी पलासन की पतियाँ ॥३००॥

*

गोरी गज-चाल की सुताल की तरफ चली,
बगिया रसाल की ह्वौं छोरन के ग्याल की ।
पंचलरी लाल की औ मुकतामाल की,
सुहावनि उताल की कहा का छवि जाल की ॥
'ग्वाल कवि' बरषा अकाल की कराल की तें,
गढ़ी ग्राम पाल की, गिरी निरखि हाल की ।
बेदन दुसाल की सी, मानों डसी व्याल की सी,
जारी हौं विसाल की सी, देखी दसा बाल की ॥ ३०१ ॥

*

गेंदा गुलदाउदी गुलाब आबदार चारु,
चंपक चमेलिन की न्यारी करी बारी मैं ।
हौसन बँधाइ रौस-रौसन की रौसैं जहाँ,
सकल सिंचाइ सीरे नीर हू सम्हारी में ॥
कहै 'परताप' जिन्हैं दूसरे मुकाम राखि,
दीन्हे प्रति जाम-जाम जन रखवारी में ।
मेरौ उर अधिक जरावन लग्यौ है कौन,
आवन लग्यौ है नित मेरी फुलवारी में ॥ ३०२ ॥

द्वितीय अनुशयना—पर-पुरुष-मिलन के भविष्यत् संकेत स्थान के लिए चिंताकुल नायिका को 'द्वितीय अनुशयना' कहते हैं†।

बेलिन सों लपटाइ रही है, तमालन की अवली अति कारी।
कोकिल, केकी, कपोतन के कुल, केलि करें जहाँ आनँद भारी॥
सोच करै जिन, होउ सुखी, 'मतिराम' प्रबीन सबै नर-नारी।
मंजुल बंजुल कुंजन में घनपुंज, सखी! ससुरार निहारी॥३०३॥

★

छाय रही बहु फूलनि की रज, मानों मनोज बितान तने हैं।
सीरे समीर सुधा हू तें माँगुने, डोलत मंद सुगंध सने हैं॥
गुंजत पुंज हैं भौंरन के तहाँ, होत कपोत के घोस घने हैं।
सोच कहा जु न ज्वार जमीं, ये तमाल के कुंज तौ वेई बने हैं॥३०४॥

★

चालै क्यों न चंद्रमुखी चित मे सु चैन करि,
नित बन-बागन घनेरे अलि घूमि रहे।
कहै 'पद्माकर' मयूर मंजु नाँचत हैं,
चाब सौ चकोरिन-चकोर चूमि-चूमि रहे॥
कदम, अनार, आम, अगर असोक थोक,
लवन समेत लौंने-लौंने लगि भूमि रहे।
फूलि रहे, फलि रहे, फैल रहे, फबि रहे,
झपि रहे, झालि रहे, झुकि रहे, झूमि रहे॥३०५॥

★

सन सूक्यौ, बीत्यौ बनौ, ऊखौ लई उखारि।
हरी-हरी अरहर अजौ, धर धरहर हिय नारि॥३०६॥

★

जनि मरु रोइ दुलहिया करि मन ऊन।
सघन-कुंज ससुररिया, और घर सून‡॥३०७॥

केलि करें मधु मत्त जहँ, घन मधुपन के पुंज।
सोच न कर तुव सासुरे, सखी सघन बन-पुंज॥३०८॥

---

† होनहार संकेत की, परि अभाव उर माहि।
दुखित होत जो, दूसरी कह अनुसयना ताहि॥—"जगद्विनोद"

‡ बिहारी ‡ रहीम ‡ मतिराम

३–तृतीय अनुशयना—निश्चित सकेत स्थान पर किसी कारण वश न जा सकने से दुखित होने वाली नायिका को 'तृतीय-अनुशयना' कहते हैं‡ ।

सुनि–सुनि आनँद भयौ है सब ही कैं, तेरे–
क्यों मुख प्रसेद–बुंद मोती से छरकि परे ।
'सेवक' भनत हौं ही जान्यौ, पै न जान्यौ भेद,
खेद कैसे कै, ओठ–अधर फरकि परे ॥
तैसेई करेरे कुच कलस तरेरे त्यों ही,
तेरेई तुरंत तनी तारऊ तरकि परे ।
साँसुरी न मान, जिय साँचरी कहै री, काहै–
बाँसुरी सुनत आँगी आँसुरी ढरकि परे ॥ ३०९ ॥

★

आपुने मीत परौसी सो सुंदरि, सूने चौबारे सहेट बखानी ।
ह्वाँ उन बोलि कपोत कै बानि, अटा पै आनि इमारत ठानी ॥
जागतु है भरता जे जानि, मनोज कै बान लगे थहरानी ।
आइ गयौ तन में परसेद, परी पति-संग खरी अकुलानी ॥३१०॥

★

आप अंग–अंग रंग, रीझ भरी सखी संग,
बारिज बदन कटि लचकन बारि सी ।
बैठी पान खात ही सखी सों मुसकात ही,
सु बाँसुरी बजाई 'सेख' मोहन महा रसी ॥
चित चल्यौ नानन कों, आँखें चलीं कानन को,
चपलाई आनन कों, रही ना सम्हार सी ।
लागी देह काँपन, रही न सुध आपन,
सु ढाँपन कों देखै मुख, भूलि गई आरसी ॥ ३११॥

★

कल करील की कुंज तें, उठत अतर की बोइ ।
भयौ तोहि भाभी ! कहा, उठी अचानक रोइ ॥ ३१२ ॥

---

‡ जो तिय सुरति–सकेत कों, रमन–गमन अनुमान ।
व्याकुल होति सु, तीसरी अनुसयना पहिचान ॥ —"जगद्विनोद"

(४) **गुप्ता**—पर-पुरुष-प्रेम को छिपाने की चेष्टा करने वाली नायिका को 'गुप्ता' कहते हैं[1]।
इसके ३ भेद हैं—१. भूत गुप्ता, २. भविष्यत् गुप्ता, ३ वर्तमान गुप्ता।

१—भूत गुप्ता—पर-पुरुष प्रेम-विषयक बीती हुई घटना को छिपाने वाली नायिका 'भूत गुप्ता' कहलाती है।

आली ! हौं गई ही आज भूलि बरसाने कहूँ,
ता पै तू परै है 'पद्माकर' तनैंनी क्यों।
ब्रज-बनिता बै बनितान पै रची है फाग,
तिनमें जु ऊधमिनि राधा मृगनैंनी यों॥
घोरि डारी केसरि, सु बेसरि बिलोरि डारी,
बोरि डारी चूनरि चुचात रंग-रैनी ज्यों।
मोहि झकझोरि डारी, कंचुकी मरोरि डारी,
तोरि डारी कसनि, बिथोरि डारी बैंनी त्यों॥३१३॥

★

जानि झुकाझुकी भेस छपाइ कै, गागरि लै घर ते निकरी ती।
जानें कहाँ तें कबै केहि बेर ते, आइ जुरे जितै होरी धरी ती॥
'ठाकुर' दौरि परे मोहि देखत, भाग बची जु कछू सु धरी ती।
बीर ! जो द्वार न देउँ किंवार तौ, हौं दुरिहारन हाथ परी ती॥३१४॥

★

तुम कैसें आई, मैं तौ दधि बेचि आवत ही,
नाहर निकसि आयौ बन बजमारे तें।
वानें मै न देखी, मैं अचक भजी चपकी सी,
धँसी मैं करीर की कुटी में डर भारे तें॥
'ग्वाल' कवि बेंदी गई, छुरा फँस्यौ, आँगी चली,
छिदे ये कपोल, देखौ अति उरझारे तें।
आम ही न जीवन की, राम ने बचाय राखी,
मरु कै बची हो सास ! धरम तिहारे तें॥३१५॥

---

[1] जब निय सुरति छिपावई, करि विदग्धता बाम।
भूत, भविस, वर्तमान सो, गुप्ता ताको नाम॥
—"शृंगार निर्णय"

२–भविष्यत् गुप्ता—पर-पुरुष प्रेम-विषयक होने वाली घटना को पहले से ही छिपाने की चेष्टा करने वाली नायिका 'भविष्यत गुप्ता', कहलाती है‡ ।

आजु तें न जैहौ दधि बेचन, दुहाई खाउँ–
भैया की, कन्हैया उत ठाढोई रहत है ।
कहै 'पद्माकर' त्यों साँकरी गली है अति,
इत–उत भाजिबे कौ दाउ ना लहत है ॥
दौरि दधि–दान–काज ऐसौ अमनैक तहाँ,
आली ! बनमाली आइ बहियाँ गहत है ।
भादौं सुदी चौथ कौ लख्यौ री मृग-अंक या तें,
झूठऊ कलंक मोहिं लागिबौ चहत है ॥३१६॥

★

राति है अँधेरी, फेरि द्वारन किंवार दैया,
हेरी बहु बेरी, वह राह अति बंक री ।
सासु ! तू पठावै लैन जामन सितावै अब,
जाऐं बनि आवै, पर काँपत है अंक री ॥
'ग्वाल कवि' गैयन की भीर माँहि जैबो–ऐबो,
दौरिकै उठैबौ पग, लागत है संक री ।
अँगियाँ मसकि जैहै, बिदुली खसकि जैहै,
तब तू दुखैहै देहै नाहक कलंक री ॥३१७॥

★

जाति हौं गोरस बेचन कों, ब्रज-बीथिन धूम मची चहुँघा ते ।
बाल गोपाल सबै अमनैक है, फागुन मे बचिहौ कहाँ ते ॥
छींट हू जो परी 'बेनीप्रबीन', कहूँ पट मे रँग की बरषा ते ।
नेह कै जोही पठावती हैं, करि हैं फिर नेह भरी बिधु-बाते ॥३१८॥

★

कीच भरी कल क्यारिन मे, सुक-सारिक ते न कछू भय पावौ ।
कंटक-बेलि बिलासन सों, तर-जाल बितान जहाँ अरुझावौ ॥
संग न मोर सखी चलि है, निज हाथन तें चुनि नेम निभावौ ।
प्रात प्रसून गिरीस चढावन, आज भटू ! मोहि बागहि जावौ ॥३१९॥

---

‡ होनहार हित गोपात, यह अनुमानि ।
ज्यों बरषा सुख हेतु, ग्रीषम छानि ॥ —"नवरसतरंग"

३–**वर्तमान गुप्ता**—पर-पुरुष-प्रेम विषयक उपस्थित घटना को छिपाने की चेष्टा करने वाली नायिका 'वर्तमान गुप्ता' कहलाती है‡।

अब ही की है बात हौं न्हात हुती, अचका गहिरे पग जात भयौ।
मोहि ग्राह अथाह कों लै ही चल्यौ, मनमोहन दूरि ही तें चितयौ॥
द्रुति दौरि कै पौरि कै 'दास' बरोरि कै, छोरि कै मोहि बचाइ लयौ।
इन्हे भेटनी भेटिहौ तोहि अली, भयौ आजु तौ मो अवतार नयौ॥३२०॥

★

अलि! हौं तौ गई जमुना जल को, सु कहा कहौ वीर! विपत्ति परी।
घहराइ कै कारी घटा उनई, इतने ही मे गागरि सीस धरी॥
रपट्यौ पग घाट चढ्यौ न गयौ, कवि 'मंडन' ह्वै कै बिहाल गिरी।
चिरजीवहि नंद कौ बारौ अरी, गहि बाँह गुबिंद नें ठाढी करी॥३२१॥

★

गेंद मै न लई गिरिधर की तुम्हारी सौंह,
योही रारि ठानति हमे न ऐसी भावती।
छोडत न ढीठ माइ लाडिलौ कियौ है जाइ,
हँसती कहा हौ, दई आइ न छुडावती॥
फटि गई आँगी, छुटि गई चूर-चूर ह्वै कै,
लटि गई हौ तौ, नाँ तौ लालहि रिझावती।
देखती जो और ऐसे, लेखती कहा धौं हिए,
भागन तें भटू! तुम जो न इतें आवती॥३२२॥

★

जान्यौ न मै ललिता अली ताहि, जु सोवत माँहि गई करि हाँसी।
लाए हिये नख केहरि के सम, मेरी तऊ नहीं नींद बिनासी॥
लै गई अंबर 'बेनीप्रवीन', उठाइ लटी दुपटी दुखरासी।
तोरि तनी तन छोरि अभूषन, भूलि गई गल दैन को फाँसी॥३२३॥

★

फागुन मास बड़ौ उतपात रहै, निसि-बासर नींद न आवै।
आपस माँझि सबै नर-नारि, निरंतर चौगुन फाग रचावै॥
जो कुल-नारि कहूँ सरमाइ दुरै, तबहू गुरु-नारि बतावै।
या ब्रज में यह रीति बुरी, घर मे धँसि लोग लुगाइन लावैं॥३२४॥

---

‡ करति सुरति परतच्छ सो, सब सों दुरति गोइ।
वर्तमान गुप्ता' सोई, अति प्रवान तिय होय॥ —'रसिक विनोद'

(५) **लक्षिता**—जिस नायिका का पर-पुरुष-प्रेम सब पर प्रकट हो जावे, उसे 'लक्षिता' कहते हैं* ।

चाख्यौ कै पियूष अभिलाख्यौ कै आनंद उर,
भाख्यौ ना बनत 'ईस' औरै जो कपट में ।
धरत कहूँ कों पाँइ, परत कहूँ कों जाइ
करत कला तू भाइ जैसी नाँहीं नट मे ॥
जान न दुराब तू अजानन दुराब भलैं,
मेरे जान आई आजु कारे की झपट मे ।
कालिंदी के तीर तू अकेली तजि भीर बीर !
लैंन गई नीर, भरि ल्याई नेह घट में ॥३२५॥

★

आई हौ पाँइ दिवाइ महावर, कुंजन ने कर कै सुख सैनी ।
साँवरे आज सँवार्यौ दै अंजन, नैनन कों लख लाजत पैनी ॥
बात के बूझत ही 'मतिराम', कहा करिऐ यह भौंह तनैनी ।
मूंदि न राखन प्रीति भटू ! यह गूंदी गुपाल के हाथ की बैनी ॥३२६॥

★

यह भीगि गई धौं कितै अँगिया छुनियाँ धौं कितै यहि रंग रँगी ।
उबटैं हू न छूटत दाग हहा ! कब की हौं छुडावती ठाढ़ी ठगी ॥
सुनि बात इती मुख नाइनि के, अति सूधी सयानपने सों पगी ।
मुख मोरि उतै मुसुक्यानी तिया, इत नाइनि हू मुसुक्यानि लगी ॥३२७॥

---

* (१) जहाँ प्रीति पर-पुरुष की, प्रगटित जग मे होइ ।
ताहि 'लक्षिता' कहत है, चिंतामनि कवि लोइ ॥
—"कविकुलकल्पतरु"

प्रीति लखाई होइ जिहिं, ताहि लक्षिता जानि ।
—"बृहद व्यंग्यार्थ चन्द्रिका"

(२) दास ने लक्षिता के तीन भेद किये हैं:—
१—पुरति लक्षिता, २—हेतु लक्षिता, ३—धीरा ।

(३) रसलीन ने भी लक्षिता के तीन भेद किये हैं । उन्होंने तीसरे भेद 'धीरा' को 'प्रकाश लक्षिता' नाम से लिखा है ।

काकरेजी कंचुकी सु केती कसि बाँधी तऊ,
म्यानत ही अंग-रंग भवकि सखी परैं।
ओठन अँगोछि लाली उठत अनूप ऐसी,
ललित कपोल लोल दलित चखी परैं॥
नूतन नवेली बेली फूलन सों गुही बैनी,
नूतन चमेली-हार दलित नखी परैं।
केती चतुराई सों दुराई प्रीनि प्यारे की, पै-
नैंन करुवाई जमुहाई सों लखी परैं॥३२८॥

★

भूली सी, भ्रमी सी चौंकी, जकी सी, थकी सी गोपी,
दुखी सी रहत कछु नाँही सुधि देह की।
मोही सी लुभाई, कछु मोदक सी खाई,
सदा बिसरी सी रहै, नैंक खबरि न गेह की॥
रिस भरी रहै, कबौं फूली न समाति अंग,
हँसि-हँसि कहै बात अधिक उमेह की।
पूछे तें खिसानी होइ, ऊतर न आवै तोइ,
जानीं, हम जानी है निसानी या सनेह की॥३२९॥

★

लैकर सुबास-बारि विमल सुबासित कै,
मंजन कियौ है तन अधिक उँमाहे तें।
केसर, कपूर, कसतूरी औ अतर लै कै,
अंगराग, अंगन लगायौ चित चाहे तें॥
कहै 'परताप' साजि सकल सिंगार तन,
भूषन-विभूषन सकल अवगाहे तें।
*कब की निहारति हौं नैननि सों कंज नैनि!
बेसरि बनै न आज पहरति काहे तें॥३३०॥

★

सतरौंही भौंहन नहीं, दुरै दुरायौ नेह।
होत नाम बेदलाख के, तो मृनाल सी देह§॥३३१॥
मोहि करत कत बावरी, किऐ दुराव दुरै न।
कहे देत रँग रात के, रँग निचुरत से नैन§॥३३२॥

---

* मतिराम § बिहारी

(६) कुलटा—अनेक पुरुषों से प्रीति करने वाली कामासक्ता व्यभिचारिणी स्त्री को 'कुलटा' कहते हैं*।

एकन बैनन ही ललचाइ, लचाए हैं एकन सैनन कै कै।
है गुलचाइ नचाए लला, सु बचाए हैं ओठनि कौ रस लैकै॥
एकहि भेटि दुहूँ भुज 'देव', हियौ दृग अंजन रंग उन्है कै।
चंचल नैंनी दृगंचल मोरि, हँसै मुख रंचक अंचल दैकै॥३३३॥

★

अंजन दै निकसै नित नैनन, मंजन कै अति अंग सँवारै।
रूप गुमान भरी मग मे, पग ही के अँगूठा अनौट सुधारै॥
जोबन के मद सो 'मतिराम' भई मतिबारिन लोग निहारै।
जाति चली इहि भाँति गली, बिथुरी अलकैं अँचरा न सम्हारै॥३३४॥

★

एक को भौंह मरोरि लख्यौ, कह्यौ एक सों हौं तुम तौ निरमोही।
एक सों नैन मिलाइ कै बोली, लखौ नभ कारी घटा किमि सोही॥
चाउ सों एक कों आइ गह्यौ, उमड़े घन कों झर लावत जोही।
एक सों भाख्यौ विलासिनि यों, किन भींजन आइ बचावत मोही॥३३५॥

★

यों अलबेली अकेली कहूँ सुकुमार सिंगारनि कै चलै, कै चलै।
त्यों 'पद्माकर' एकन के उर मे, रस-बीजन ह्वै चलै, ह्वै चलै॥
एकन सो बतराइ कछू छिन, एकन को मन लै चलै, लै चलै।
एकन को तकि घूघट मे, मुख मोरि अनेखिन दै चलै, दै चलै॥३३६॥

एक ब्रह्म मय सब जगत, ऐसें कहत जु वेद।
कौन देत, को लेत सखि! रति-सुख समुझि अभेद॥३३७॥

जस मदमातल हथिया, हुमकत जाइ।
चितवत छैल तरुनियाँ, मुँह मुसुकाय†॥३३८॥

---

* (१) निस-दिन जाकी रति-कथा, सदा काम सो काम।
मीत अनेकन सों रमै, कुलटा ताकौ नाम॥
—"सुंदर शृंगार"

(२) दास ने कुलटा नायिका का उल्लेख नहीं किया है।

(३) कुलटा और सामान्या दोनों ही अनेक नायकों से संबंध रखती हैं। उनमें केवल इतना भेद है कि कुलटा का उद्देश्य काम-वासना को तृप्त करना होता है, जब कि सामान्या का धन प्राप्त करना।

† कृपाराम | रहीम

सामान्या नायिका

सामान्या—केवल धन के कारण पर-पुरुष से प्रेम का पाखंड करने वाली स्त्री को 'सामान्या' या 'गणिका' नायिका कहते हैं†।

स्पष्टीकरण—नायिका के जिन आठ गुणों—'भूषन, जोबन, रूप, गुन, विभव, सील, कुल, प्रेम' का पहले वर्णन हो चुका है, उनमें से चार गुण—शील, कुल, प्रेम और वैभव का सामान्या नायिका में सर्वथा अभाव होता है‡; इसलिए कई मान्य आचार्यों ने सामान्या को उल्लेख योग्य नहीं माना है§। जिन आचार्यों ने उसका उल्लेख किया है, उन्होंने उसका विस्तार न करते हुए केवल उसका नाम मात्र लिख दिया है। उन्होंने उसके वर्णन में भी उसकी धन-लोलुपता और स्वार्थ बुद्धि को ही दिखलाया है¶।

वास्तव में सामान्या स्त्री को नायक के रूप, गुण, प्रेम आदि से कोई प्रयोजन नहीं होता, वह तो अपने रूप और गुण की मोहिनी डाल कर धनी पुरुषों के धन को लूटा करती है‖।

---

† करै और सों रति-रमन, इक धन हो के हेत।
गनिका ताहि बखानई, जो कवि सुरति निकेत॥
—"जगद्विनोद"

‡ सामन्या बिन साल कुल, प्रेम, बिभौ पहिचानि।
—"भवानीविलास"

§ केशवदास के अतिरिक्त दास जैसे मान्य आचार्य ने, जिन्होंने नायिकाभेद के विस्तार करने में अधिक रुचि दिखलायी है सामान्या का नामोल्लेख नहीं किया है।

¶ देव ने नायिकाभेद का बड़ा विस्तार किया है, किंतु सामान्या का केवल नामोल्लेख मात्र किया है। मतिराम और पद्माकर ने भी सामान्या का केवल एक भेद लिख कर उसका संक्षिप्त कथन किया है।

‖ नायिकाभेद के प्रधान आचार्यों में एक रसलीन ही ऐसा व्यक्ति है जिसने अपने सुप्रसिद्ध 'रस प्रबोध' में सामान्या नायिका के भेदों का भी कथन किया है। उनके मतानुसार सामान्या के चार भेद होते हैं—

१. स्वतंत्रा, २. जननी-आधीना, ३ नेमता, ४. प्रेम-दुःखिता।

नाँचति है, गावति है, रीझति, रिझावति है,
लीवे ही की घात, बात सुनति न विय की ।
तन कों सिंगारै, नैंन कज्जल सुधारै अति,
बार-बार वारै प्रान, ऐसी रीति तिय की ॥
'भूधर' सुकवि हेतु धन ही के बार-बधू,
और न बिचारै कछू, चहै बात जिय की ।
लाल चाहै जिय सों, कै बाल मेरे हिय लागै,
बाल चाहै हिय सों, कै माल लीजै पिय की ॥३३६॥

★

मंद-मंद मीठे बैंन बोलि मन औरैं करै,
नैंन-सैंन ही सों मैंन जू कों उर थान दै ।
दीनता दिखावै हाव-भाव परिपाटी माँहि,
रमन-प्रनाली[1] में प्रबीनता प्रदान दै ॥
'हरिऔध' सुधा ही सों स्वबत कहै जो कबौं,
प्रान-प्यारे मोकों मंजु माल मुकतान दै ।
मान दै-दै सहित सनेह अपनावै,
प्रान हरति अपान हू कों हँसि कर पान दै ॥३४०॥

★

आजु मिले बहुतै दिन भामते, भेंटत भेंट कछू मुख भाखौ ।
जे भुजभूषन मो भुज बाँधि, भुजा भरिकें अधरा-रस चाखौ ॥
दीजिऐ मोह उढ़ाइ जरी-पट, कीजिऐ जू मन कौ अभिलाखौ ।
'देव' हमैं-तुमैं अंतर पारत, हार उतारि इनै धरि राखौ ॥३४१॥

★

लाए पाइल हौ भली, परी रहैगी पाँइ ।
लाल ! दीजिऐ माल जो, राखौं हिय में लाइ ॥ ३४२ ॥
मुकत-माल लखि धनि कह्यौ, ए अजुगत है नाह ।
गंग तिहारे उर बसै, सिव मेरे उर माह ॥ ३४३ ॥
पर हथ बसिऐ निरदई, धन-भोजन के चाइ ।
धनी प्रान पच्छीन कों, हनत कुही लों धाइ ॥ ३४४ ॥
पिय के नित चित दैन लों, चित-हित बढ़त बनाइ ।
हेम-नेम घटि जात ही, प्रेम-नेम घटि जाइ ॥ ३४५ ॥

---

[1] रसलीन

चतुर्थ परिच्छेद

दशानुसार नायिकाएँ

नायिकाओं की दशा-अनुसार उनके ३ भेद होते हैं*—

१–गर्विता, २–अन्यसंभोगदुःखिता, ३–मानवती।

(१) **गर्विता**—जो स्त्री अपने प्रियतम के प्रेम और अपने रूप का गर्व करे, उसे 'गर्विता' नायिका कहते हैं।

'गर्विता' नायिका के दो भेद होते हैं† —

१–प्रेम गर्विता, २–रूप गर्विता।

---

* (१) केशवदास और चिंतामणि ने इन भेदों का कथन नहीं किया है।

(२) दास ने इनको स्वतंत्र रूप से न लिखकर स्वाधीनपतिका के अंतर्गत गर्विता, विप्रलब्धा के अंतर्गत अन्यसंभोगदुःखिता और खंडिता के अंतर्गत मानवती नायिकाओं का वर्णन किया है।

(३) ये तीनों नायिकाएं शुद्ध रूप से स्वकीया के अंतर्गत मध्या और प्रौढा में ही बनती है। कुछ कवियों ने परकीया और सामान्या में भी इनका वर्णन किया है, जो अधिकांश आचार्यों के मतानुसार समीचीन नहीं है। कुछ कवियों ने खींचतान कर मुग्धा में भी इन भेदों का कथन किया है, जो सर्वथा अग्राह्य है।

† (१) दास ने प्रेम गर्विता और रूप गर्विता के अतिरिक्त 'गुन गर्विता' का भी उल्लेख किया है।

(२) रसलीन ने प्रेम गर्विता, वक्रोक्ति प्रेम गर्विता, रूप गर्विता, वक्रोक्ति रूप गर्विता, गुन गर्विता, वक्रोक्ति गुन गर्विता—इस प्रकार ६ भेदों का कथन किया है।

(३) देव ने 'कुल गर्विता' भी लिखा है।

१—प्रेमगर्विता—अपने प्रियतम के प्रेम का गर्व करने वाली नायिका 'प्रेम गर्विता' कहलाती है†।

मो बिन माइ न खाइ कछू, 'पदमाकर' त्यों भई भाभी अचेत है।
बीरन आए लिवाइबे कों, तिन की मृदु बानि हू मान न लेत हैं॥
प्रीतम कों समझावति क्यों नहिं, ए सखि! तू जु पै राखत हेत है।
और तौ मोह सबै सुख री, दुख री यहै माइके जान न देत है॥३४६॥

★

सामुहे सुमन बरसाई सुघराई संग
'लछिराम' रंग सारदा हू कौ रितै रहैं।
छाती में लगाइ मृम-थाती सौ कमल-कर,
सुकुमारताई को सराहि दुचितै रहैं॥
अलक लँबाई, चारु चख चपलाई,
अधरान की ललाई पर हरष हितै रहैं।
माई! मनमोहन, गोराई मुखमंडल पै,
राई-नौंन बारि घरी चारि लौं चितै रहैं॥३४७॥

★

आँखिन मे पुतरी ह्वै रहै, हियरा में हरा ह्वै सबै सुख लूटैं।
अंगन संग बसै अँगराग ह्वै जीव ते जीवनमूरि न फूटैं॥
'देवजू' प्यारे के न्यारेन पै गुन मो मन मानिक तें नहिं टूटैं।
और तिया सों तनौ बतियाँ करैं, मो छतियाँ सों छिनौ जब छूटैं॥३४८॥

★

न्हान-समै जब मेरो लखैं, तब साज लै बैठत आनि अगाऊँ।
नाइक हौं, जे न राउरे लाइक, यो कहि हौं कितनौ समझाऊँ॥
दास' कहा कहौं पै निज हाथहि देत, न हौंहूँ सम्हारन पाऊँ।
मोह तौ साध महा उर मे, जो महाउर नाइन! तोसों दिवाऊँ॥३४९॥

★

मंत्र और जत्रादि कछु, हौं नहिं जानति बीर।
नँनद-पासु फूँकै बकति, बधू परम मति धीर॥३५०॥

---

† जाके पिय की प्रीति कौं, जिय मे होइ गुमान।
प्रेम गर्विता नारि कौ सुंदर यहै बखान॥
—'सुंदर शृंगार'

* कृपाराम

२–रूपगर्विता—जिस नायिका को अपने रूप का गर्व हो, उसे 'रूप गर्विता' कहते हैं†।

अंग-अंग भूषन विभूषन विरचि जोति,
जोबन जवाहिर की जाहिर जगाई तैं।
चहचहे चोबा चारु चंदन अरगजा औ,
अंगराग हेत कल केसर मँगाई मैं॥
कहै 'परताप' दुति देह की दुरंग होत,
सुरँग कुपुंभी ऐसी चूनरी रँगाई तैं।
रीझि बारी पुरी सुनि सुंदरि सुजान बारी,
भाल क्यों न बेंदी मृगमद की लगाई ते‡॥३५१॥

★

फूल घने चहुँ ओर सरोज, प्रसून महा बन कुंज न हेरैं।
तीर तरोवर के मँडरात न, जात सरोवर के नहिं नेरैं॥
कारे, कुबेस, उराउने, क्रूर, दिखाइ परै दृग साँझ-सबेरैं।
छाँडि सबै अरबिंद मलिंद, रहै निसि-बासर मो घर घेरैं॥३५२॥

★

मेरौ मुख चाह एक चुनरी चुगत आगे,
धावै एक पीछें बैनी गहन के दाउ री।
एकन के सासन उसास लैन पावत ना,
गुंजै आस-पास हौं न जानौं गुन-चाउ री॥
तू तौ परी गौहन, कै बेगि चल मौहन पै,
मानि मेरी बात एती अधिक उपाय री।
बावरे चकोरन कों, दई मारे मोरन कों,
मदमति भौरन कों दूरि करि आउ री॥३५३॥

---

† जाके अपने रूप कौ अति ही होइ गुमान।
रूप गर्विता कहत है ताको चतुर सुजान॥
—"रसराज"

‡ नायिका अपनी सखी से कस्तूरी की काली बिंदी लगाने का आग्रह इसलिए करती है कि काले डिठौना से उसके सुंदर रूप पर किसी की दृष्टि न लग सकेगी, इसलिए व्यंग्यार्थ से 'रूप गर्विता' है।

छोरि-छोरि आम की रसीली मंजरीन काहिं,
निकसि गुलाब के प्रसून रसबारे में ।
गुंजरत याही ओर देख वह आवतु है,
अति कमनीय कंज-बन के किनारे में ॥
'हरिऔध' की सौं आइ अबई मचैहै धूम,
गूँजि-गूँजि आनन-सुबास के सहारे में ।
भूलि अब भौन तें न बाहर कढ़ौंगी कबौं,
ऊबि हौं गई री, या मलिंद मतवारे में ॥३५४॥

★

नैंक जो हँसौं तौ लाल माल होत हीरन की,
नैंक जो मुरौं तौ मेरी नील मनि झलकी ।
अजुरी भरी है मुख धोइबे कों झारी लैकै,
सखिन निहारी दुति रानी होति जल की ॥
जो मैं रचौ चीर तौ कुचील जुरे जोबन न,
देखिबे को आँखे गुनधर हू की ललकी ।
आँगन कढ़ौं तौ भौंर भीरन अँधेरौ होत,
पाँय जो धरौं तौ महि होत मखमल की ॥३५५॥

★

मंदिर की दुति यों दरसी, जनु रूप के पत्र अलेखन लागे ।
हों गई चाँदनी हेरन कों, तहँ क्यों हूँ घरीक निमेष न लागे ॥
डीठ परयौ नयौ कौतुक ह्वौं, 'मसिनाथ जू' यातें बडे खन लागे ।
पीठि दै चंद की ओर चकोर, सबै मिलि मो मुख देखन लागे ॥३५६॥

★

फूलन की माल मोसों कहत 'गुलाब' ऐसी,
फूलन की माल मेलि राखत न क्यों गरैं ।
मेरे दृग रोज ही बतावत सरोज ऐसे,
लै-लै कै सरोज रोज मन मे न क्यों भरैं ॥
हौं तौ री न जैहौं आज पास बनमाली, वोई—
आइ प्रिय पास, पाँइ इतको न क्यों धरैं ।
मेरौ मुख चंद सौ बतावै ब्रजचंद रोज,
कहौ ब्रजचंदजू सों चंद देखिबौ करैं ॥३५७॥

चौथ तें चकोर चारों ओर जान चंद्रमुखी,
रही बचि डरनि दसन-दुति दंपा के।
लील जाते बरही बिलोकि बैनी बनिता की,
गुही जो न होती तौ कुसुंभ सर कंपा के॥
'पूखी' कहै जो पै डिग भौंह ना धनुष होते,
कीर कैसे छाँडते अधर बिंब झंपा के।
दास के से भौंर जे झलक जोति जोबन की,
चाटि जाते भौंर, जो न होती रंग चंपा के॥३५८॥

★

रंग घने पति-प्रेम सने, सब रैंन गने मन मैंन हिलोरन।
अंगन मोरति भोर उठी, छिति पूरति अंग सुगंध झकोरन॥
रूप अनूप निहारि-निहारि, गुमान जनाइ कह्यौ दृग-कोरन।
नंदकिसोर अहो चितचोर, न जाउँ मैं न्हान सरोबर ओरन†॥३५९॥

★

न्हातई न्हात तिहारई स्याम, कलिंदि यों स्याम भई बहुतै है।
धोखेउ धोइ हौं याजैं कहूँ, तौ यहै रंग सारिन में सरसै है॥
साँबरे अंग कौ रंग कहूँ यह, मेरे सुअंगन में लगि जैहै।
छैल छबीले छुओगे जु मोहि, तौ गातन मेरे गुराई न रैहै॥३६०॥

★

बरुनी के उघारत वे सिसिकें, चहुँघाँ मुख-जोवती आलि चलैं।
कनखैयन ताकि रहैं नँनदी, वे बदी करि सौति कुचालि चलैं॥
'द्विजदेव' इते पर बावरे लोग, सो डीठि जितै-तित डालि चलैं।
बसिवौ तौ भयौ नित ही ब्रज मैं, कब लौं अलि! घूँघट घालि चलैं॥३६१

★

चंद, अरबिंद, बिंब, बिद्रुम, फनिंद, सुक,
कुंदन, गयंद, कुंदकली निदरति है।
चंपा, संपा, संपुट, कदलि 'घनस्याम' कहाँ
कुंकुम कौ अंगराग अंगना करति है॥
केहरी, कपोत, पिक, पल्लब, कलिंदी, घन,
दर कै निरखि दास्यौ छतिया बरति है।
मेरे इन अंगन की नकल बनाई बिधि,
नकल बिलोकै मोहिं न कल परति है॥३६२॥

---

† सरोवर पर जाने से मुखचंद्र को देख कर फूले हुए कमल संकुचित हो जावेंगे, इसलिए व्यंग्यार्थ से 'रूप गर्विता' है।

(२) **अन्यसंभोगदुःखिता**—अन्य स्त्री के तन पर अपने प्रियतम के प्रीति-चिह्न देख कर दुःखित होने वाली नायिका को 'अन्यसंभोगदुःखिता' कहते हैं‡।

अलि दसे अधर सुगंध पाइ आनन कौ,
कानन में ऐसे चारु चरन चलाए हैं।
फाटि गई कंचुकी लगे तें कंट कुंजन के,
बैनी बरहीन खोली बार छवि छाए हैं॥
बेग तैं गमन कीनों, धकधक होत सीनों,
ऊरध उसासैं तन स्वेद सरसाए हैं।
भली प्रीति पाली बनमाली के बुलाइवे कों,
मेरे हेत आली! बहुतेरे दुःख पाए हैं॥३६३॥

★

कंटक तें अटकि-अटकि सब आप ही तें,
फटिगे बसन तिन्हैं नीके कै बनाइ लै।
बैनी के बिचित्र बार हारन में आय-आय,
अरुझे अनौखे नेतौ बैठि सुरझाइ लै॥
कहै 'सिव' कवि दबि काहे कों रही है बाम!
घाम तें पसीना बह्यौ, ताकों सियराइ लै।
बात कहिवे में नंदलाल की उताल कहा,
हाल तौ हरिन-नैनी हफनि मिटाइ लै॥३६४॥

★

आई अनमनी ह्वै बदन पिअराई छाई,
सुधि न रही है कहूँ आपने-पराये की।
कहति कछू है, मुख कढ़त कछू कौ कछू,
देखति हौं आज तेरी गति मतवारे की॥
नैंक थिर ह्वै कै बैठि, राई-नौंन बारौ तो पै,
तू तौ 'हनुमान' मेरी साथिन है बारे की।
बजर परौ री मोपै, पठई कहाँ तैं, तहाँ—
नजर लगी री तोहि जुलफन वारे की॥३६५॥

---

‡ प्रीतम-प्रीति-प्रतीत जो, और तिया तन पाइ।
दुखित होइ सो जानिए, अन्यसुरतदुखताइ॥—'जगद्विनोद'

ल्याई बाटिका ही सों सिंगार हार जानती हौं,
कंटन कौ लाग्यौ है उरोजन में घाव री ।
दौरि-दौरि टहल कै महल ह्वै कै बादि ही,
बिगारयौ उर चंदन दृगंजन बनाव री ॥
तेरौ कहा दोष 'दास' बात जनि बूझि लीनीं,
आपनी ही सूझि तू तौ भरि आई भाव री ।
पीत पट वारे कों बुलावन पठाई मैं तौ
पीत पट काहे कों रँगाइ ल्याई बावरी ॥३६६॥

*

पहिरैं परोसिन कों पहिलैं-पहिल देखि,
एहो 'रघुनाथ' छाँड़ि पास गुरु-तिय कौं ।
घूँघट में नैंन-सैंन दैकर लिवाइ गई,
प्यारी चित्रसारी में छिपाएँ कांप जिय कौं ॥
आइ पास बैठि, लागी बूझन अमैठि भौंह,
साँची कहौ मोसों कै कपट दूर हिय कौं ।
आई है कहाँ तें, को है, कौन तू कहावति है,
कहाँ पायौ, कैसे पायौ हार मेरे पिय कौं ॥३६७॥

*

आई आज कित अकुलाई अलसाई प्रात,
रीसै मति पूछैं बात, रंग कित ढरिगौ ।
सौने से या गात छुवै कै सौनौ भयौ आप,
कै वा आतप प्रभात ही कौ प्रगट पसरिगौ ॥
'हरीचंद' सौतिन की सुख-दुति छीनी कै,
या आपनी बरन कहूँ पाइ धाइ ररिगौ ।
नील पट तेरौ आज औरै रंग भयौ काहे,
मेरे जानि बिछुरि पिया ते पीरौ परिगौ ॥३६८॥

*

तन स्वेद कढ्यौ, अति स्वाँस बढ्यौ, छिन ही छिन आइबे-जाइबे मे ।
अरी ! मो हित तू बहु खिन्न भई, पिय मेरे कों एतौ मनाइबे में ॥
कछु दोष न हौं सिर तेरे मढ़ौं, अब का घनी बात बनाइबे में ।
सब तेरे ही जोग कियौ सखि ! तू, त्रुटि राखी न नेह निभाइबे मे ॥३६९॥

(३) मानवती—अपने प्रियतम को अन्य स्त्री की ओर आकर्षित जानकर, ईर्ष्या पूर्वक मान करने वाली नायिका 'मानवती' कहलाती है* ।

नाम कढ़्यौ पिय के मुख तें तिय और कौ, सो सुनि कै उर ऐंठी ।
'देवजू' ऊ हँसि सौं हैं करी, रिस की सिसकी भरि भौंह अमैठी ॥
नीठऊ डीठि सों डीठि लगी, इत ईठ सों रूठि कै पीठ दै बैठी ।
लीजिऐ बोलि हिए पट खोलि कै, सुंदरि मान के मंदिर पैठी ॥३७०॥

*

एकई रैन मिली पिय कों तिय, दूसरी रैन खरी खरकौ हैं ।
यों उत बालम बाल लखे कहुँ, सौतिन के ढिग कों ढरकौ हैं ॥
लाज-लची मृगलोचनि कौ चित, सोच-सँकोच भयौ सरकौ हैं ।
आँखिन तें खिसके अँसुआ रिस के, अधरा सिसके फरकौ हैं ॥३७१॥

---

* (१) लखि नायक-औगुन, करै जो इरषा करि मान ।
मानवती ताकों कहै, जे कवि बुद्धि-निधान ॥

—"रसिकविनोद"

(२) मानवती का मान तीन प्रकार का होता है—१. लघु, २. मध्यम और ३. गुरु । अपने प्रियतम द्वारा पर-स्त्री की ओर देखने से 'लघु' मान होता है, जो हँसी-विनोद अथवा मनोरंजक बातों से दूर हो जाता है । अपने प्रियतम के मुख से पर-स्त्री की चर्चा आदर और प्रशंसा पूर्ण शब्दों में सुनने से 'मध्यम' मान होता है, जो प्रियतम द्वारा विनयपूर्ण वचन अथवा शपथ आदि से दूर हो जाता है; किंतु पर-स्त्री-गमन का विश्वास होने पर 'गुरु' मान होता है, जो प्रियतम द्वारा अन्य चेष्टाओं के विफल होने पर आधीनता पूर्वक प्रियतमा के पैर पकड़ने पर ही दूर होता है । यथा—

अपर तिया के दरस तें, नाम कहे तें जोइ ।
संगमादि करि, मान तें मानवती तिय होइ ॥

—"बृहद् व्यंग्यार्थचंद्रिका"

सहजै हाँसी-खेल में, विनय-वचन सुनि कान ।
पाँय परैं तिय के मिटै, लघु-मध्यम-गुरु मान ॥

—"भाषाभूषण"

मन ही मसूसि, मन-भामते सों रूसि,
सखी-दासिन सो दूसि, रही रंभा झुकि झंझा सी।
आरसी महल, चित्रसारी सो चहल बिन,
आनँद टहल 'देव' मंद विधि बंझा सी॥
सोचै, सुख मोचै, सुक-सारिका लचापै चौंचै,
रोचै न रुचिर बानि, मानि रही अंझा सी।
संग कौ सकल अंग आलस-उछाह भर्यौ,
ओज बिन सूझति सरोज-बन संझा सी॥३७२॥

★

गहरी गुराई तें प्रथम चूर चामीकर,
चंपक कें ऊपरि बहुरि पाँम रोप्यौ है।
नीसरै अखिल अरबिंद आभा बस करि,
हँसै तड़िता कों हाड़ तोपद में तोप्यौ है॥
भनत 'कविंद' तेरे मान समैं सौतें कहा
सुर-बनितान कौ गुमान जात लोप्यौ है।
आली! आज मेरे जानि, ऐंठ भरौ तेरौ मुख,
भौं हैं तान सौं हैं री, कलानिधि पै कोप्यौ है॥३७३॥

★

जोरत न दीठि रूँसि बैठी हँसि पीठि दैकै
कौन यह 'देव' स्याम सामुनैं चहन दै।
जोबन नबेली अलबेली तू समुझि-सोच,
सौतिन गुमान भरी बातैं न कहन दै॥
ठाढ़ौ पिय पास, मन मिलिबे की आस धरै,
ताहि रुख रूखौ ना बियोग तें दहन दै।
होय कै निसंक, भरि अंक मनमौहन कों,
आज रात मान कों अमानत रहन दै॥३७४॥

★

बैठी कहा धरि मौन भटू!, रँगभौन तुम्हे बिन लागत सून्यौ।
चातक कों तुमही रटि 'देव', चकोर भयौ चिनुगी करि चून्यौ॥
साँझ सुहाग की माँझ उदौ करि, सौत सरोजन कौ बन लून्यौ।
पावस तें उठि कीजिऐ चैत, अमावस तें उठि कीजिऐ पून्यौ॥३७५॥

राधे सुजान इतैं चित दै, हित में कित कोजत मान मरोर है।
माखन तें मन कोवरो ह्वै यह, बानि न जानति कैसे कठोर है॥
साँवरे सों मिलि सोहती जैसी, कहा कहिऐ कहिवे कों न जोर है।
तेरो पपीहा जु है 'घनआनद', है ब्रजचंद, पै तेरो चकोर है॥३७३॥

★

चकई बिछुरि मिलो, तू न मिली मोहन सों,
'सेख' कहै एतौ मान कीनों क्यों अठान री।
अथऐ नछत्र-ससि, अथई न रीस तेरी,
तू न भई मुदित, उदित भयौ भान री॥
तैं न खोल्यौ मुख, खिली पंकज की कली भली,
तू न चली, चली निसि, भयौ है बिहान री।
कैसी बुद्धि-आगरी, न जानैं हानि-लाभ री,
भौ दीपक मलीन, न मलीन तेरो मान री॥३७७॥

★

ये घन घोर उठे चहुँ ओर, इन्हें लखि का करिहै रिस ह्वै तू।
सौति पै जाइ हैं जो 'कमलापति' पाइ है छाँह छिनेक न छ्वै तू॥
जानि लई अब ही सिगरी, कलपैहै सु हाथ के हीर कों ख्वै तू।
पाँय परे हू न मानती री, अब जा जनि! ऐसी मिजाजिनि है तू॥३७८॥

★

लोचन लहे कों फल सफल हमारो करु,
रूप प्रानपति को सनेह-रस लीन करु।
तेंई पाई परम निकाई की अवधि,
वृषभान की किसोरी! तू तौ एती अरबीन करु॥
हा हा! तू उघारि मुख, टारि पट घूँघट कौ,
निज नन पानिप में पी कौ मन मीन करु।
कज-छवि छीन करु, ससि को मलीन करु,
सौतिन कों दीन करु, प्यारे को अधीन करु॥३७९॥

★

न चली कछु लालची लोचन सों, हठ-सोचन के चहिनोंई परयौ।
'रतनाकर' बंक बिलोकनि-बानि, सहाए बिना सहिनोंई परयौ॥
उत तें वे गात छुवाइ चले, तब तौ प्रन कों दहिनोंई परयौ।
भरि आहि-कराहि सुनौ जू सुनौ, नंदलाल सों यों कहिनोंई परयौ॥३८०॥

पंचम परिच्छेद

अवस्थानुसार नायिकाएँ

★

नायिकाओं की अवस्था-अनुसार उनके दस भेद होते हैं†—

---

† (१) संस्कृत साहित्य के प्राचीन आचार्य भरतादि के मतानुसार केशवदास ने निम्न लिखित आठ भेद लिखे हैं—

१—स्वाधीनपतिका, २—उक्का, ३—वासकसज्जा, ४—अभिसंधिता,
५—खंडिता, ६—प्रोषितपतिका, ७—विप्रलब्धा, ८—अभिसारिका।

(२) चिंतामणि और देव ने भी यही आठ भेद माने हैं, किंतु उनके नाम केशवदास से भिन्न, आजकल के प्रचलित नामों के अनुसार हैं, जैसे उक्का के स्थान पर उत्कंठिता और अभिसंधिता के स्थान पर कलहांतरिता।

(३) दास ने भी आठ ही भेद माने हैं और उनको संयोग और वियोग शृंगार के अंतर्गत लिखा है, किंतु स्वाधीनपतिका के अंतर्गत गर्विता, वासकसज्जा में आगतपतिका, खंडिता में धीरादि भेद, मानिनी और लघु, मध्यम, गुरु मान लिख कर विप्रलब्धा के अंतर्गत अन्यसंभोगदुःखिता और प्रोषितभर्तृका के अंतर्गत प्रवत्स्यत्प्रेयसी, प्रोषितपतिका, आगच्छत्पतिका और आगतपतिका का वर्णन किया है।

(४) रसलीन ने पहले 'अष्ट नायिका' के शीर्षक से आठ नायिकाएँ लिखी हैं। उनके उपरांत निम्न लिखित चार नायिकाओं का भी कथन किया है—

१—गमष्यतपतिका, २—गच्छतपतिका, ३—आगमष्यतपतिका, ४—आगतपतिका।

इनमें 'गच्छतपतिका' तो पूर्वोक्त अष्ट नायिकाओं में वर्णित 'प्रोषितपतिका' ही है, शेष तीन नायिकाएँ नवीन हैं। इस प्रकार उनकी कुल संख्या ११ हुई।

(५) मतिराम और पद्माकर ने दस नायिकाओं का ही उल्लेख किया है। उन्होंने ग्यारहवीं 'आगमष्यतपतिका' को नहीं लिखा है।

(६) भिन्न-भिन्न आचार्यों ने अपनी-अपनी रुचि-अनुसार आठ, दस और ग्यारह नायिकाओं का वर्णन कर उनको किसी निश्चित क्रम के अनुसार नहीं लिखा है। ऐसा ज्ञात होता है कि इन नायिकाओं की मनोदशा का अत्यंत सूक्ष्म विवेचन करते हुए भी उनका कोई वैज्ञानिक क्रम निश्चित करने की चेष्टा नहीं की गयी,

१–स्वाधीनपतिका, २–वासकसज्जा, ३–उत्कंठिता, ४–अभिसारिका, ५–विप्रलब्धा, ६–खंडिता, ७–कलहांतरिता, ८–प्रवत्स्यत्प्रेयसी, ९–प्रोषितपतिका, १०–आगतपतिका।

उपर्युक्त दसों नायिकाओं में से प्रत्येक के १–मुग्धा, २–मध्या, ३–प्रौढ़ा, ४–परकीया और ५–सामान्या—उपभेद और होते हैं†।

इसीलिए चाहे जिस नायिका का आगे-पीछे उल्लेख कर दिया गया है। हमने इन नायिकाओं को जिस क्रम से रखा है, वह उनकी क्रमशः विकसित मनोदशा के अनुसार है, जिसका विस्तृत वर्णन गत पृष्ठों में किया गया है। हमारा यह क्रम नायिकाभेद के मान्य आचार्य 'रसलीन' से मिलता है। संभव है उनका ध्यान सबसे पहले ऐसा क्रम निर्धारित करने की ओर गया हो, यद्यपि उन्होंने अपने ग्रंथ में इसका कोई उल्लेख नहीं किया है। किसी निश्चित क्रम का विचार किये बिना अनायास ही ऐसे वैज्ञानिक क्रम के अनुसार नायिकाओं का कथन हो गया हो, ऐसा भी संभव ज्ञात नहीं होता, अतः यह मानना चाहिए कि रसलीन ने ही सर्व प्रथम इन नायिकाओं का क्रम निश्चित किया था, किंतु उनके परवर्ती आचार्यों ने फिर भी उनका अनुकरण नहीं किया। उदाहरणार्थ नायिकाभेद के परवर्ती प्रधान विवेचनकर्ता पद्माकर ने रसलीन के सुंदर क्रम को न अपनाकर मतिराम के पुराने क्रम को ही पसंद किया है। नवीन शैली की आधुनिक पुस्तकों में भी इसका ध्यान नहीं रखा गया, इसीलिए 'हरिऔध' जी के 'रस-कलस' में भी वही पुराना क्रम दिखलाई देता है। आधुनिक पुस्तकों में पं० बिहारीलाल भट्ट कृत 'साहित्य सागर' का क्रम ही ठीक है, किंतु उक्त ग्रंथ की भूमिका में इस क्रम के आविष्कार का श्रेय भट्टजी को दिया गया है, वह ठीक नहीं है। हमारे विचार से यह श्रेय रसलीन को देना सर्वथा प्रमाण सिद्ध है।

† (१) केशवदास ने इन नायिकाओं के 'मुग्धा' आदि भेद न लिख कर 'प्रच्छन्न' और 'प्रकाश' नामक दो-दो उपभेद लिखे हैं।

(२) दास ने इनको केवल स्वकाया और परकाया में ही लिखा है। सामान्या नायिका तो उन्होंने मानी ही नहीं है, अतः उनके द्वारा इन नायिकाओं को सामान्या में कथन करने का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता।

(३) प्रायः सभी अन्य आचार्यों ने मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा, परकीया और सामान्या—इन पाँचों नायिकाओं में इनका कथन किया है।

(४) हरिऔध जी ने भी सामान्या में इनका कथन नहीं किया है।

(१) **स्वाधीनपतिका**—जिस नायिका का नायक सदा उसके वशीभूत रहे, उसे 'स्वाधीनपतिका' कहते हैं*—

मुग्धा स्वाधीनपतिका

आपुने हाथ सों देत महाबर, आपही बार सँवारत नीके।
आपुन ही पहिरावन आनिकै, हार सेंवारिकै मौरसिरी के॥
हौं सखि! लाजन जात मरी, 'मतिराम' सुभाव कहा कहौं पी के।
लोग मिलै, घर घेर कहै, अबई ते ए चेरे भए दुलही के॥३८१॥

*

दिन-दिन दूनी दुति लखि ललचाने रहैं,
दिन मे 'प्रवीनबैनी' चलैं कछु बल ना।
साँझ ही महल पाँहि पाइ मनभाई वह,
जाके बिन देखे तें परत कल पल ना॥
अचल उघारि मुख चाहत सिंगारन कों,
राखति है चंचल सो अंचल अचल ना।
अंजन ललन लीनें ललकत आँगुरीन,
पलक न खोलति है लाजनि ते ललना॥३८२॥

*

केलि-कोठरी ते कढ़ै बाहिर घरीक हू न,
छोड खेल संग के सखान कौं दियौ है री।
गेह के उचित जन हास-परिहास करे,
नऊ चित्त मे न नैंक सकुच छियौ है री॥
परिपूर जोबन न झलक सरीर आई,
उर अब ही ते यहि भावहि लियौ है री।
जा दिन तें आई गौनिहाई बाल, ता दिन ते,
साँवरे सलौने पर टौना सौ कियौ है री॥३८३॥

*

नहिं पराग नहीं मधुर मधु, नहिं विकास यहि काल।
अली कली ही सों बँध्यौ, आगे कौन हवाल†॥३८४॥

---

* केसव जाके गुन बँध्यौ, सदा रहै पति संग।
'स्वाधीनपतिका' तासु कों बरनत प्रेम प्रसंग॥

† बिहारी —"रसिकप्रिया"

मध्या स्वाधीनपतिका

लै परजंक धरै भरि अंक, निसंक ह्वै स्वागत प्रेम उपाइन ।
चौंकि परै तौ परै उर लागि, हिये सों हियौ अनुरागि सुभाइन ॥
लाजत हौं लरजौं गहिरी, बरजौं गहिरी कहिरी किंहि दाइन ।
जागति जानि कहानी कहै, अरु सोवत 'देव' पलोटति पाँइन ॥३८५॥

★

जगमगे जोबन अनूप रूप तेरौ चाहि,
रति ऐसी रंभा सी रमा सी बिसराइऐ ।
देखिबे कों प्रानप्यारी पास ठाढ़ौ प्रानप्यारौ,
घूँघट उघारि नेक बदन दिखाइऐ ॥
तेरे अंग-अंग मे मिठाई औ लुनाई भरी,
'मतिराम' कहत प्रगट यह पाइऐ ।
नायक के नैंनन मे नाइऐ सुधा सी, सब-
सौंतिन के लोचननि लौंन सौ लगाइऐ ॥ ३८६ ॥

★

सरसाए दुकूल सुगंध सों सानि, सबै रति मंदिर बास रह्यौ ।
रँग-रंग के अंग अनूप सिंगार, सिंगार निहारि कै मोद लह्यौ ॥
पुनि बीरी खवावत हू 'ससिनाथ', सुजान सो प्यारी कछू न कह्यौ ।
जब लागन लागे महावर पाँइ, तबै मुसिक्याइ कै हाथ गह्यौ ॥३८७॥

★

वे तौ तजि मीतन कों, गीतन कोहौंसी ख्याल,
साँझ ही ललकि आवै केलि के महल में ।
तू तौ इत लाजनि लपेटी बेटी बडेन की,
कैसे कै सिंगारै अंग चहल-पहल में ॥
डारि राखे केसरि 'प्रवीनबेनी' मृगमद,
अगर-तगर सार चंदन सहल में ।
जौलौ मनभावती न आवती, अनेक भाँति,
तौलौ लगे रहैं लाल रावरी टहल में ॥ ३८८ ॥

★

लाज मरौं गुरु-लोगन में, इनके मन मे सु न आवत है घिन ।
'देव' कहा कहौं, सेवक ह्वै रहे, कैसऊ कोउ चबाब करौ किन ॥
चौंर डुलावत, दावत पाँइ, खवासिन ठाढी हँसै बिसवासिन ।
देव बधू-बर जोरी घनी, बरज्यौ री इन्हें, बरजोरी करै किन ॥३८९॥

इंदीवर-नैनी इंदु-मुखी सुधाबिंदु हास,
इंदिरा-सी सुंदरि गुबिंद चित चाह सी ।
नैननि उनैंसी लाज सैननि सुनैंसी काज,
चैननि उनैंसी नाह सौंहै कहूँ ना हँसी ॥
प्रीति-भीति प्रगट, प्रतीत रीति गुपति,
दिपति पति दीपति छिपनि छवि माह सी ।
आगें-आगें आनन अनूप कौ उज्यारौ रूप,
पाछे-पाछे प्यारौ लग्यौ डोलै परछाँह सी ॥ ३९० ॥

★

ता छिन तें रहे औरनि भूल, सु भूली कदंबन की परछोंही ।
त्यों 'पद्माकर' संग सखान के, भूलि भुलाइ कला अबगाही ॥
जा छिन ते तू बसीकर मंत्र सी, मेलि सु कान्ह के कानन माँही ।
दै गलबाहीं जु नाँहीं करी, वो नाँहीं गुपाल को भूलत नाँही ॥३९१॥

★

लोचन लचाइ लचि लाजनि चलति त्यों-
त्यों लाल लचे जात चित लागी ललचई है ।
'देव' दृग दोऊ भरि, हियौ भरि हौंसनि कै,
भुजा भरि भाग-अनुराग भरि लई है ॥
सौ है सुखदानि तौ सुखद मुख देखि पल-
आध, न अघात देखै, साध नित नई है ।
धनि-धनि रूप, गुन साधन अनूप धन,
या गृहै-धनी को निधि कौ धन भई है ॥ ३९२ ॥

★

तेरिऐ कीरति कान सुनै, अरु तेरोंई रूप सदा दृग देखै ।
तेरिऐ बात कहै रसना, अरु भूलि हू और की ओर न पेखैं ॥
तू जिय मे, हिय मे पिय के, पिय तो बिन जात घरी जुग लेखैं ।
जानि 'दिनेस' किये बस तै, कै भये हरि आपु ही हाथ की रेखैं ॥३९३॥

★

आधे-आध दृगनि रति, आधे दृगन सु लाज ।
राधे आधे बचन कहि, सुबस किए ब्रजराज† ॥ ३९४ ॥

---

† पद्माकर

प्रौढ़ा स्वाधीनपतिका

आपु ही पाँइन देत महावर, बैनी गुहै और बैनी डुलावै ।
आपु ही बीरी बनाइ खवावै, अनेक बिलासन रीझि-रिझावै ॥
तेरी सखी अरु आपने मित्र सों, तेरे ही प्रेम की बातैं चलावै ।
तो सी त्रिलोक में को बड़ भागिनि, जो तिय यों पीय कौ बस पावै ॥३९५॥

*

मालिनी ह्वै हरि माल गुहै, चितवै मुख, चेरि भयौ चितचाइनि ।
पान खबावै खबासिनि ह्वै कै, सबासिन ह्वै सिखवै सुख भाइनि ॥
बैंदी दै 'देव' दिखाइ कै दर्पन, जाबक देत भयौ अब नाइनि ।
प्रेम पगौ पिय पीत पिछौरी सों, प्यारी के पौंछि पमारी-से पाँइनि ॥३९६॥

*

पीत पटी लौ कटी लपटी रहै, छैल छरी लौ खरी पकरी रहै ।
कान्ह के कंठ की कंठी भई, बनमाल ह्वै बाल हिए पसरी रहै ॥
'देव जू' कान लरै लुरकी लौ, भई बँसुरी अधरान धरी रहै ।
पाग ही पाग ह्वै मूड़ चढ़ी, गहनौ सब ग्वाल गुपाल करी है ॥३९७॥

*

माँग सँवारत काँघई लै, कच-भार भिजावत अंग समेत हौ ।
रोम उठावत कुंकुम लेइकै, 'दास' मिलाइ मनों लिऐं रेत हौ ॥
बीरी खबावत, अंजन देत, बनावत आड़ कँपौ बिन हेत हौ ।
या सुघराई भरौसै क्यों दौरिकै, छोरि सखीन कौ काजर लेत हौ ॥३९८॥

*

फूलन सों बाल की बनाय गुही बैनी लाल,
भाल दई बैंदी मृदमद की असति है ।
भाँति-भाँति भूषन बनाए ब्रजभूषन,
सु बीरी निज कर सों खवाई करि हित है ॥
ह्वै कै रस-बस जब दीवे कों महावर के,
'सेनापति' लाल गह्यौ चरन ललित है ।
चूमि हाथ नाह के, लगाइ रही आँखिन सों,
एहो प्राननाथ ! यह अति अनुचित है ॥ ३९९ ॥

*

अंगराग औरैं अँगन करत, कछू बरजी न ।
पै मँहदी न दिवाइ हौं, तुम सों पगन प्रवीन§ ॥४००॥

§ पद्माकर

परकीया स्वाधीनपतिका

न्हाइवे जाइ तौ संग सखी बनि, पाँमरे पाँमरी के करिवौ करै।
केसर खाइ सँवारि कै आइ, निहारि कै नेह-नदी तरिवौ करै॥
जो 'ससिनाथ' न डीठि परै, कुल-कानि तें नारि कछू डरिवौ करै।
तो निसि-बासर साँवरिया, घर की नित भाँमरिया भरिवौ करै॥४०१॥

★

देखैं न क्यों सुख मानि घनौ मन, जा सुख-मान कौ मोर भयौ है।
साँवरौ सुंदर जो सिगरी ब्रज-नारिन कौ चित चोर लयौ है॥
आपुने आइ अटा में भटू, घनघोर घटान कौ मोर भयौ है।
नंद-किसोर झरोखे की ओर सु, तो मुख-चंद चकोर भयौ है॥४०२॥

★

मलिन ह्वै हरवा गुहि देत, चुरी पहिरावै बनैं चुरिहेरी।
नाइनि ह्वै कै निखारत केस, हमेस करै बनि जोगिनि फेरी॥
'बेनीप्रबीन' बनाइ बिरी बरहैनि, बने रहै राधिका के री।
नंद-किसोर सदा वृषभानु की, पौरि पै ठाढे बिकैं बने चेरी॥४०३॥

★

अरी और तियान तें सौंहे परे हू, कबौ अपने दृग जोरै नहीं।
अनखाइ नहीं अपमान किएँ, रस हू मे कबौ बिष घोरै नहीं॥
'हरिऔध' हमारौ हजारन मे, हमरे हित ते मुख मोरै नहीं।
छकि मो छवि ऊपर छाँह की भाँति, छबीलौ हमै छिन छोरै नहीं॥४०४॥

सामान्या स्वाधीनपतिका

बड़े-बड़े खंजन से नैंन, मुख चद्रमा सौ,
उरज उतग रोम अवली उड़ी सी भौंर।
त्रिबली जघन नाभि उरू लौं बिलोकि मानौं,
भ्रम भूलि जाइवे कौं बिधि नें बनायौ ठौर॥
पकज मे पानि पाँइ, स्वाँस स्वेद सौरभ सौ,
मत्त मधुकर रातौ-दिन भए रहैं चौर।
लाखन की बकसीस क्यो न करै प्रान-प्यारौ,
रसिया न ऐसी बार-बधू मैं बिलोकी और॥४०५॥

★

तेरे तान-तरग की, लगति करेजैं चोट।
मनि-गन वारत ही बनै, लुटत सखन की मोट‡॥४०६॥

---

‡ लठिराम

(२) **बासकसज्जा**—अपने प्रियतम का निश्चित मिलन जानकर उससे मिलने के लिये साज-शृंगार और संभोग सामग्री एकत्रित करने वाली नायिका 'बासकसज्जा' कहलाती है[1] ।

मुग्धा बासकसज्जा

सखिअन सिंगार सिंगारे सबै, बिहँसै रति की दुति धारति है ।
मन माँझि नई बतिआँ सुनिबे को, कछूक विनोद विचारति है ॥
'रसिनाथ' सुजान को आगम जानि, बनी फुलदी को सम्हारति है ।
तिय नार नबाइ बिहारति है, दुरिकै पिय-पथ निहारति है ॥४०७॥

★

कुंजन ते कंत की तयारी आयवे की जानि,
धारी जरतारी, कोर कलित किनारी की ।
सखिन सुधारी सेज, मेज मंजु मौजकारी,
लखत लजारी होत ओट में किवारी की ॥
'ग्वाल' कवि चंद की उज्यारी लखि हारी ताहि,
बीजुका बिचारी सर करै चमकारी की ।
आँख झपकारी, चढ़ी नींद की खुमारी भारी,
नऊ बैस वारी बाट जोवै बनवारी की ॥४०८॥

★

छूट्यौ डर भौंमती को जानि परयौ पुरी भट्ट ।
देखि चोराचोरी आज लागी है टहल मे ।
माइके की सखी सों मँगाइ फूल मालती के,
चादर सों ढांपे छाइ नौसक पहल मे ॥
'रघुनाथ' भौंमते को पानदान भर बीरी-
भरी, धरी पोथी कोऊ कथा की रहल मे ।
अतर गुलाब को छिरकि हेत सौरभ कै,
चहल-पहल कीन्हे रति के महल मे ॥४०९॥

★

हरुए गबन नबेलिया, दीठि बचाइ ।
पौढ़ी जाइ पलँगिया, सेज बिछाइ ॥ ४१० ॥

---

[1] पिय-आगमन जानि वर बाला । सुरति-सामग्री रचै रसाला ।
दूती पूछ, सखि सो हँस । कर मनोरथ, बिकसै लसै ॥
नैनान निपट चटपटी लहिऐ । सो तिय 'बासकसज्जा' कहिऐ ॥
रहीम —नंददास कृत "रसमंजरी"

मध्या बासकसज्जा

खोलिकै कपाट दीन्हे अंतर कपट रँग-
राउटी मे ओट ह्वै सुगंध सुबटतई ।
पौंछनि कपोलनि, अँगोछनि उरोजनि,
तिलोछति सुदेस केस चोबा चुबटतई ॥
मैहदी रचाइ कर, पाँइनि महाउर दै,
देखति कनैखनि सखीन खुबटतई ।
केली सुख संग की उमंगनि अकेली 'देव',
दिवस गँमावै अंग रंग उबटतई ॥४११॥

★

ग्वालन की राम ते, गऊन के निवास ते जु,
ऐहै अब कंत तंत आसते-ही-आसते ।
ऐसे जिय भासतै जु लाज के खवास ते सु,
कहै न खवास ते कि उठि जाउ पास ते ॥
'ग्वाल' कवि काम के उकास तें, विकास तें जु,
पलँग सुवास ते, सज्यौरी रतिवास ते ।
आनत उजास तें, विकास ते, हुलास ते जु,
बातन विलास ते, सु बैठी पिय-आस ते ॥४१२॥

★

सुख-सेजहि साजि, सिंगार सजे, गृहि बार सुगंध सबै बसिकै ।
चुनि चूनरी लाल खरी पहिरी, कवि 'देव' सुवेस रह्यौ लसिकै ॥
पिय भेटिवे कों उमही छतिआँ, सु छिपावति हेरि हियौ हँसिकै ।
अँगिया की तनी खुलि जात घनी, सु बनी फिरि बाँधति है कसिकै॥४१३॥

★

झुकि-झुकि झपकौं है पलन, फिरि-फिरि जुरि-जमुहाइ ।
जानि पियागम नींद मिस, दी सब सखी उठाइ† ॥ ४१४ ॥

★

लाल-मिलन-गुन तनु सजति, बाल बदन की जोति ।
खिनक कमल सी मलिन, खिन अमल चंद सी होति‡ ॥ ४१५ ॥

★

सुभग बिछाय पलँगिया, अंग सिंगार ।
चितवति चौंकि तरुनिआँ, दै दृग द्वार§ ॥ ४१६ ॥

---

† बिहारी । ‡ रसलीन § रहीम

प्रौढ़ा वासकसज्जा

बारनि धूपि अँगारिन धूपिकै, धूम अँध्यारी पसारी महा है ।
आनन चंद समान उगौ, मृदु मंद हँसी जनों जोन्ह कहा है ॥
फैलि रही 'मतिराम' जहाँ-तहाँ, दीपति दीपन की परभा है ।
लाल ! तिहारे मिलाप कों बाल नें, आजु करी दिन ही में निसा है ॥४१७

★

लाइ कै फुलेल करी कँघई सँवारि पाटी,
मोतिन सों पोइ आछे अग्र अलकन के ।
बडे-बड़े नैंन तैसे कठिन उरोज सोहैं,
बीर मानो कुंभ कोटि सोभा लच्छन के ॥
उज्जल जुन्हाई मे बिछाइ सेज, कामिनी कें–
उठत तरंग, अग-अग ललकनि के ।
चित्र की सी लिखी प्यारी, प्रीतम की बाट हेरै,
एक टक पाँमरे पसारैं पलकन के ॥ ४१८ ॥

★

सेज सजी औ सिंगार सजे, रचिकै रति-केलि कौ मदिर नीकौ ।
आयौ हिएँ बढ़ि चौगुनौ चाव ज्यों भाव भयौ सब जाहिर जी कौ ॥
आनन आन धरयौ कर ऊपर, कौल मे मडल मानों ससी कौ ।
द्वार की ओर दिएँ दृग दोऊ, निहारिति प्यारी प्रिया मग पी कौ ॥४१९॥

★

पामरी के पाँमरे परे हैं पुर पौरि लागि,
घाम-घाम धूपनि के धूम धुनियत हैं ।
कस्तूरी, अतर-सार, चोबा, रस घनसार,
दीपक हजारन अँध्यार लुनियतु है ॥
मधुर मृदंग राग-रग के तरगन में,
अंग–अंग गोपिन के गुन गुनियतु है ।
'देव' सुखसाज महाराज ब्रजराज आज,
राधिका के सदन सिधारे सुनियतु हैं ॥ ४२०॥

★

चौसई मे कल केलि-निकुंज कियौ मनि-मडित, सो मन भावै ।
'सेखर' सीचि सुगंधन सों, मुकुतान की बंदनबार बँधावै ॥
सेज बिछाइ कै बैठि रही, सब अंग उमंगन की छवि छावै ।
आवतई रजनी सजनीनि लगी पति-प्रीति की रीति सिखावै ॥४२१॥

परकीया वासकसज्जा

औधि आधी रानि की दै, आपनौ बताइ गेह,
देखि अभिलाखि मिलिबे कों सुखदाइ के ।
भूमि ही में कैयौ डारि नोपक बिछौना कीन्हे,
आप-पास धरि दीन्हे चौसर बनाइ के ॥
पानी पान, अतर नजीक सब राखे लाइ,
गुजरैटी 'रघुनाथ' औरौ चित्त चाइ के ।
खोलि राखी खिरकी, बुझाइ राखे दीप, द्वार-
लाइ राखे नैंन, कान आहटे में पाँइ के ॥४२२॥

★

साँझ ही ते करि राखे सबै, करिबे के जे काज हुते रजनी के ।
पौढ़ि रही उमँगी अति ही, 'मतिराम' अनंद अमात न जी के ॥
सोवत जानि कै लोग सबै, अधिकाने मिलाप मनोरथ पी के ।
सेज तें बाल उठी हरुए, हरुए पट खोल दिए खिरकी के ॥४२३॥

★

मेला की बहार कर, इतई पधार कर,
देहैं सुख सार कर, प्रीतम बिहार कर ।
ऐसें जी बिचार कर, नँनद सों रार कर,
सासु सों उचार कर, माँदी हौं अपार कर ॥
'ग्वाल' कवि पौरिऐ बुहार कर, चारु कर,
साँकर उतार कर, मूंदे से किंवार कर ।
पाइल उतार कर, दीपक निबार कर,
मौनी सेज डार कर, बैठी दृग द्वार कर ॥४२४॥

★

सामान्या वासकसज्जा

चंद सो बदन, चंद्रिका सी चारु सेत सारी,
तैसिऐ गुराई गसी उरज उतग की ।
हेरि कै हिए कौ हार-हारिनी हरिन-नैंनी,
हेरै हिए हरषै सखी त्यो सैन संग की ॥
भनत 'कबिंद' सोहै बासक नबेली नारि,
बाढी चित्त चाह, जाकें आगम उमंग की ।
जगर-मगर बैठी सेज पै नगर-बाल,
आली लाल मोहिबे कों बाला ज्यों अनंग की ॥४२५॥

(३) **उत्कंठिता**—केलि स्थान में नायक की उत्सुकता पूर्वक प्रतीक्षा करने वाली नायिका को 'उत्कंठिता' कहते हैं* ।

मुग्धा उत्कंठिता‡

बीत गई जुग जाम निसा, 'मतिराम' मिटी तम की सरसाई ।
जानति ही कहूँ और तिया सें, रहे रस मे रमिकै रसराई ॥
सोचत सेज परी यों नवेली, सहेली सो जात न बात सुनाई ।
चंद चढ्यौ उदयाचल पै, मुखचंद पै आन चढी पियराई ॥४२६॥

★

जामिनि कौ पहिलौ जब जाम, बितीत भयौ, पिय गेह न आयौ ।
लाजन बोलि सकै न सखीन सो, बाम कौ काम-हियौ अकुलायौ ॥
यों मन बीच बिचारि करै, उन कैहू न मोहि वियोग दिखायौ ।
जानति हौं न कहा गति ह्वै, मेरे प्रानन कौ पति कै बिलमायौ ॥४२७॥

★

लाज तें बूझि सखी हू सकै न, बिचारनि सी कछू एई विचारि है ।
कै तो रिझाय लयौ कहूँ काहू, खिझायौ कतौ अति ही सुकुमार है ॥
रे मन ! तू तौ रहै प्रिय-पास, कहै किन काहे तें कीन्हीं अबार है ।
प्यारी ह्वै पीरी गई इहि सोच, मनो पतझार लवंग की डार है ॥४२८॥

★

खरी दुपहरी, हरी भरी फरी कुंज मंजु,
गुंज अलि-पुंजन की 'देव' हिएँ हरि जाति ।
सीर नद-नीर तरु तीरनि गहीर छाँह,
सोवैं परे पथिक पुकारैं पिकी करि जाति ॥
ऐसे मे किसोरी भोरी कौ री कुम्हिलानौ मुख,
पंकज से पाँइ धरा धीरज सों धरि जाति ।
सौंहै धाम स्याम-मग हेरति हथेरी-ओट,
ऊँचे धाम बाम चढ़ि आवति उतरि जाति ॥४२९॥

---

* प्रिय सहेट आयौ नहीं, चिंता मन मे आनि ।
सोच करै संताप सो, 'उत्कंठिता' बखानि ॥
—"भाषाभूषण"

‡ कुछ विद्वानों के विचारानुसार 'उत्कंठिता' का मुग्धा भेद नहीं होता है ।

ज्यों-ज्यों चलैं सजनी अपने घर, त्यों-त्यों मनों सुख-सिंधु में पैठै ।
ज्यों ज्यों बितीतति है रजनी, उठि त्यों-त्यों उनींदे से आँगनि पैठै ॥
आवत बात न कोऊ हिएँ, चित कैसे तजै कुल-कानि अकैठै ।
ज्यों-ज्यों सुनै मग पाँहन की धुनि, सेज पै त्यों-त्यों सखी उठि बैठै ॥ ४३० ॥

★

भोरी सी, भ्रमी सी, सकी, सूखी सी बिलोकै गैल,
बावरी सी मदन ममूसैं मन मारि-मारि ।
'द्विज जू' कहत भई बिकल बिसूरैं सुख,
रखवाए दूर रति-साज सब टारि-टारि ॥
लाजि तें न बोलिबौ कहति, बीती आँधि जानि,
ऊबि-ऊबि भामती उसासैं लेति हारि-हारि ।
हेरि चारौं ओर घेरे घन की घुमड, देत—
बड़ी-बड़ी आँखिन तें आँसू बूँद डारि-डारि ॥४३१॥

★

कहा भयौ आए न क्यों, मुख तें कहत न बैन ।
चित-चंचलता कहत है, चंचल-नैनी नैन † ॥ ४३२ ॥

★

मध्या उत्कंठिता

आधे अकास मे आयौ ससी, चुपचाप चहूँ दिसि माँझ भई अति ।
नींद सों नाहिं झुकैं अँखियाँ, 'ससिनाथ' सनेह बिहाल करी मति ॥
भूलि गए घर की सुधि कै, कै कहूँ रस-बातन मे बिरमे पति ।
क्यों नहिं आए, कहा करिऐ, तिय नार नबाइ सखीन सों बूझति ॥४३३॥

★

पलँग बिछाए छाए फूलनि सों मन भाए,
हार मँगवाए धरवाए चँगेरन मे ।
सारी सरसावन किनारी बारी पैन्हीं आइ,
भूषन जवाहिर के भूषे सब तन मे ॥
'रघुनाथ' भाँमतौ न आयो केलि-मंदिर मे,
बीती जाम जामिनी अधिक आँधिपन मे ।
कहति सँकोचति है सखी सों बुलाइबे को,
लोचति है भटू, बैठी सोचति है मन मे ॥४३४॥

† हरिऔध

प्रौढ़ा उत्कंठिता

आए न 'देव' सु आन दसा भई, आनँद साहस की मति मूँदी ।
खंजन-नैनी उठी अकुलाइ, धरै अँगुरीन सुअंजन बूँदी ॥
पौरि लौ दौरिकै देखौरी देखौ कहै, कर दावै रहै पट फूँदी ।
आली अँगोछत अंग छुटी, गजमोतिन माँग छुटी अधगूँदी ॥४३५॥

*

काहू रूपवती मे रमे हैं लोभी आलसी ह्वै,
ललकत डोलैं बोलैं तजत सुभाए ना ।
काहू संग सखिन के रंग मढ़ि रहे कैधौं,
कैधौं उर उडिकै अनंग-बान लाए ना ॥
कौन असमंजस 'प्रवीनबेनी' यातें और,
भोर होत आली ! नभ लाली तैं बताए ना ।
अथवत इंदु, अरबिंद बन बिकसत,
गुंजत मलिंद हैं, गुबिंद गेह आए ना ॥ ४३६ ॥

*

बार न देति किंबार अबार हू, तोसों मैं बार हजार कही री ।
फूल बिथोरि, दुकूलहि छोरि लै, भावति मोहि बयारि न सीरी ॥
'देव' कहालौं गनौं उनके गुन, सीस धुनो, न सुनौं रँग रीरी ।
डारि दै सौधि, बिडारि दै चेरिनि, गारी दै बोलै बगारि दै बीरी ॥४३७॥

*

क्यों न आये कंत अलबेल में अलेल मे ह्वै,
रहे रिस-रेल में, कै बैठे भूप-मेल में ।
अमल अमेल में, कै प्यालिन उझेल में,
कै रहे झुकि झेलि में, कै झूलों की झमेल मे ॥
'ग्वाल कवि' बाहन की पेल में, पहेल मे,
कै बातन उचेल में, कै इलम सफेल में ।
काहू मीत मेल में, कै हितुन के हेल में,
कै चौसर के खेल में, कै लागे कहूँ केल मे ॥ ४३८ ॥

*

नभ लाली, चाली निसा, चटकाली धुनि कीन ।
रति पाली आली अनत, आए बनमाली न‡ ॥ ४३९ ॥

---

‡ बिहारी

परकीया उत्कंठिता

भूलि गए इतकी सुधि कै, चित में कछु औरहि बानि बसाई ।
खेलत ग्वालन संग रहे हैं, किधौं 'ससिनाथ' लई निठुराई ॥
प्रीति करी कहूँ अंत किधौं, डरपे अपलोक नें लाल कन्हाई ;
क्यों नहिं आए अजौं सजनी कहि, मोहि भई रजनी दुखदाई ॥४४०॥

★

तनिकौं तिनकै खिरकै खरकौं, तिनके तन कों ठहरैवौ करै ।
लखि बोलत बोल तमाल के डोलत, चाउ सों चौंकि चितैवौ करै ॥
यह जानती पीतम आवहिगे अधरात लौं, ज्यों नित ऐवौ करै ।
अँखिआँन कौ 'दास' कहा, कहिऐ, बिन कारन ही अकुलैवौ करै ॥४४१॥

★

सकुची न सखीन सो, सौतिन सों, सपने हू न सासु की काँन कहूँ ।
कुनवान की तीयन सों किहुँ भांति, डराए तें हौं न डरी कबहूँ ॥
कहि 'सुंदर' नदकुमार लिएँ, तन कौ तनकौ नहिं चैंन कहूँ ।
हरि के हित मे तौ करी इतनी, हरि कीन्ही जु आए नही अजहूँ ॥४४२॥

★

फागुन मे का गुन बिचारि ना दिखाई देत,
एती बार लाई, उन कानन मे नाँइ आउ ।
कहै 'पदमाकर' हितू जो हमारी है तौ,
हमारे कहे बीर ! उहि धाम लगि धाइ आउ ॥
जोरि जो धरी है बेदरद के दुआरे होरी,
मेरी बिरहागि की उलूकन लौ खाइ आउ ।
एरी ! इन नैंननि के नीर में अबीर घोरि,
बोरि पिचकारी चितचोर पै चलाइ आउ ॥ ४४३ ॥

★

सामान्या उत्कठिता

आवत बन्यौ न काहू काम कों सिधारयौ,
किधौं और बारबधू सों सनेह सरसाई की ।
परम विचित्र काहू मित्र नें सिखायौ किधौं,
मानी है अटक लोक-लाज अधिकाई की ॥
काहे तें न आयौ, सो न जानियत बात रच,
कहाँ लौं बड़ाई कीजै वाकी चतुराई की ।
खाली ह्याँ न आवतौ, कछू पै धन ल्यावतौ री,
योही गई रैन आली ! आजु की जुन्हाई की ॥ ४४४ ॥

(४) **अभिसारिका**—कामार्त्ता होकर स्वयं नायक के पास जाने वाली, अथवा उसे अपने पास बुलाने वाली नायिका 'अभिसारिका' कहलाती है[1]।

मुग्धा अभिसारिका

किंकिनी छोरि छपाई कहूँ, कहूँ बाजनी पाइल पाँइ तें नाई।
त्यों 'पदमाकर' पातहू के खरकै, कहूँ काँपि उठै छवि छाई॥
लाजहिं तें गड़ि जाति कहूँ, अड़ि जाति कहूँ, गज की गति भाई।
बैस की थोरी किसोरी हरैं-हरैं, या विधि नंदकिसोर पै आई॥४४५॥

★

नीके न्हवाइ गुलाब के नीर, सरीर सिंगारे सखी बियनें सब।
भीत भई हहरै हिय माँझ, कहौ यह रंग लख्यौ पिय नें कब।
लाख जिठानी की सौंह सुनैं, अति ही पतियारौ कियौ जिय नें जब॥
भौंह चढ़ाइ, ममूकरि कै, पति पास को पाँइ दियौ तिय नें तब॥४४६॥

★

दाबि-दाबि दंतन अधर छतबंत करैं,
आपने ही पाँइन कौं आहट सुनति स्वौंन।
'द्विजदेव' लेति भरि गातन प्रसेद अलि,
पातहू की खरक जु होती कहूँ काहू भौंन॥
कटकित होत अति उसमि उसासनि तें,
सहज सुबासन सरीर मंजु लागैं पौंन।
पथ ही में कंत के जु होत यह हाल तौ पै,
लाल की मिलनि ह्वै है बाल की दसा धौं कौंन॥४४७॥

★

चली अली नवलाहि लै, पिय पै साज सिँगार।
ज्यों मतंग अडदार को, लिए जात गडदार॥४४८॥

---

[1] केलि-हेत पिय-थल गवन, करै विलम्बन कोइ।
पियहि बुलावै आपु थल, 'अभिसारिका' सु होइ॥
—"हिततरंगिनी"

* मतिराम

मध्या अभिसारिका

कीन्हौं है सिँगार नख-सिख लौं कुरंग-नैंनी,
अंगना अनूप अंगराग अंग घसिकै।
कंचन की बेली सी अकेली चली केलि-भौंन,
करिकै मनोरथ रसीले रस रसिकै॥
मंद-मंद चोरी सी करन जात चंदमुखी,
'नददास' कोठे के समीप गई लसिकै।
एक पाँइ सीढ़ी पै मनोज मजबूत गहैं,
एक पाँइ भूतल पै लाज गहै कसिकै॥४४६॥

★

चीर चिनोटिया चाइन सों, चुनिकै पहिरयौ दुति चारु लसाति है।
ताहि निहारति ही सु भली विधि सौतिन की मुख-ज्योति बिलाति है॥
चाहति बूझौ सखीनि कछू रसरीति, हिएँ-मन माँझ लजाति है।
नाथ सुजान समीप कों बाल, चलै ठटुकै, मुरकै मुसकाति है॥४५०॥

★

पाइलनि डारै, कटि-किंकनी उतारै कढ़,
हाथन तें मारि भीर टारति मलिंद की॥
भूषन-चमक तें चमक लगै पाँइन में,
'द्विजदेव' आँखिन बचाइ अलि-वृंद की॥
भौन तें दमकि दामिनी लौं दुरै दूजे भौंन,
त्यागि गरबीली गति गौरव-गयंद की।
या विधि तें जाति चली साँवरी उँमाहैं सखी,
आज भई चाहै भाग उदित गुविंद की॥४५१॥

★

पैंजनी-कंकन की झनकार सों, नासिका मोरि मरोरति भौंहैं।
ठाढ़ी रहै पग द्वैक चलै, सने स्वेद कपोल कछू उघरौंहैं॥
यों 'लछिराम' सनेह के संगन, साँकरे मे परी प्यारी लजौंहैं।
छाकि रह्यौ रस रंग अमी, मनमौहन ताकि रह्यौ तिरछौंहैं॥४५२॥

★

जोबन मद-गज मंद गति, चली बाल पिय-गेह।
पगनि लाज आँदू परी, चढ्यौ महावत नेह॥४५३॥
पिय पहँ जात लजाति बहु, लंक लचै बल खानि।
तजति उताइल भाव तिय, जो पाइल बज जाति§॥४५४॥

मतिराम § हरिऔध

प्रौढ़ा अभिसारिका

सहज सुभाइन सों भामती सहेलिन में,
सोहत सरूप-रासि कंचन सौ गात है।
सकल सिंगार साज, रहित उमंग भरी,
जोबन-तरंग सील सोभा सरसात है॥
गुरुजन गेह के सोवाय कै सिधारी प्यारी,
बैठी जहाँ 'सेखर' पियारौ सुखदात है।
बाढ़ी अति प्रेम कौ पयोनिधि अथाह,
तामैं लाज भरौ मदन-जहाज चलौ जात है॥ ४५५॥

*

नौसत सिंगार साजि, कीन्हौ अभिसार आइ
जोबन-बहार रोम-रोम सरसत जात।
'लछिराम' तैसी झनकार पैंजनी की,
कर-कंकन खनक चूरी चारु परसत जात॥
झरत प्रस्वेद, मुख चूनर सुरंग बीच,
विहँसत मन सारदा कौ तरसत जात।
दामिनी अमद सौहैं बस रस फद चंद,
मानों लाल बादर मे मोती बरसत जात॥ ४५६॥

*

घूँघर की घूम कै सुझूम, कै जवाहिर,
झिलमिल झालर की भूमि लो झुलत जात।
कहै 'पदमाकर' सुधाकर-मुखी के हीर-
हारन मे तारन के तोम से तुलत जात॥
मद-मद मैकल मतंग लौं चलैई भले
भुजन समेत भुजभूषन डुलत जात।
घाँघरे झकोरन चहूँघा खोर-खोरन मे,
खूब खसबोई के खजाने से खुलत जात॥ ४५७॥

*

सजि सिंगार सेजहि चली, बाल प्रानपति प्रान।
चढ़त अटारी की सिढ़ी, भई कोस परमान*॥ ४५८॥
जेठ-दुपहरी मे बधू, तजि गुरुजन की लाज।
सूने तहखाने गई, सुनि सोए जदुराज॥ ४५९॥

---

* मतिराम † कृपाराम

परकीया अभिसारिका

सूझत न गात, बीत आई अधरात, अरु–
सोए सब जानि गुरुजन जे बगर के।
छिपकै छबीली अभिसार कों किंवार खोलि,
छुटिगे सुगंध चारु चंदन अगर के॥
'देव' कहै भौंर गुंजि आए कुंज-कुंजन सों,
पूछि-पूछि पाछैं परे पाहरू डगर के।
देवता कै दामिनी, मसाल किधौं जोति-ज्वाल,
झगरे परत जागे सिगरे नगर के॥४६०॥

★

सोए लोग घर के, बगर के किंवार खोलि,
जानि मन माँहि निज गई जुग जामिनी।
चुपचाप चोरा-चोरी चौंकन चकित चली,
पीतम के पास चित चाह भरी भामिनी॥
पहुँचि सकेत के निकेत 'संभु' सोभा देति,
ऐसी बन-बीथिन बिराज रही कामिनी।
चामीकर चोर जान्यौ, चंपलता भौंर जान्यौ,
चद्रमा चकोर जान्यौ, मोर जान्यौ दामिनी॥४६१॥

★

केतिकि चमेली चंपा कुटज कदंब मली,
आम कुल बकुल परागन सों नाधी सी।
संभा तें अबंभा प्रेम झंझानल झुकी झीनी,
झनकै रसन, बलै नूपुर समाधी सी॥
ऊषमा बिषम बिष मेख स्वेद बिंदु चुवै,
अधरन आबरे सुमन-सर साधी सी।
धूली मधु अध अलिबंधुन मदंध करि,
आधी रात उमही सुगंध-धुंधि आँधी सी॥४६२॥

★

कौन है तू? कित जात चली बलि! बीती निसा अधरात प्रमानैं?
हौं 'पदमाकर' भाँमती हौं, मन भाँमते पै अबई मुहिं जानैं॥
तौ अलबेली अकेली डरै किन? क्यों डरौं? मेरी सहाइ कै लानैं।
है सखि संग, मनोभव सौ भट, कान लौं बान-सरासन तानैं॥४६३॥

वृषभान-मंदिर तें सुंदरि अकेली कढ़ी,
चढ़ी ज्यों अँधेरी अध ऊरधहि अधराति ।
बाग लौं बगर ही तें आई बगरावति,
अगर-सार कस्तूरी सुबास 'देव' सरसाति ॥
भौंर भहराने, लहराने बन-कुंज,
हहराने प्रेत-पुंज, छहराने छवि अधिकाति ।
बोलै बन-देवता निसंक कोऊ संकौ मति,
कुँवरि मयंकमुखी संकेत-सदन जाति ॥४६४॥

★

घटा घहराति, बिज्जु-छटा छहराति,
आधी रात हहराति, कोटि कीट-रव रुज लौं ।
हूकत उलूक बन कूकत फिरत, फेर—
भूकत जु भैरौं-भूत, गावै अलि-पुंज लौं ॥
झिल्ली मुख मूंद तहाँ बीछीगन गूंद, बिष-
ब्यालन कौं रूंद कै मृनालन के पुंज लौं ।
जाई वृषभान की कन्हाई के सनेह-बस,
आई उठि ऐसे मे अकेली केलि-कुंज लौं ॥४६५॥

★

सोभा पाई कुंज-भौन, जहाँ-तहाँ कीन्हौं गौन,
सरस सुगंध पौन पाये मधुबन हैं ।
बीथिन बिथोर, मुकताहल मराल पाये,
आलिन दुसाल-साल पाये अनगन हैं ॥
रैन पाई चाँदनी फटक सी चटक रुख,
सुख पाये पीतम 'प्रबीन बेनी' धनि हैं ।
बैन पाये सारिका, पढ़न लागी कारिका सी,
आई अभिसारिका, कै चारु चिंतामनि हैं ॥४६६॥

★

गोप अथाइन ते उठे, गोरज छाई गैल ।
चलि बलि अलि अभिसार की, भली सँझोखैं सैल† ॥४६७॥

† बिहारी

परकीया अभिसारिका के भेद

परकीया अभिसारिका के तीन भेद होते हैं*—

१-शुक्लाभिसारिका, २-कृष्णाभिसारिका, ३-दिवाभिसारिका।

शुक्लाभिसारिका

सजि ब्रजचंद पै चली यों मुख चंद जाकौ,
चंद-चाँदनी कौ मुख मंद सौ करत जात।
कहै 'पद्माकर' त्यों सहज सुगंध ही के-
पुंज, बन कुंजन मे कंज से भरत जात॥
धरत जहाँई जहाँ, पग ह्वै सु प्यारी तहाँ,
मंजुल मजीठ ही कौ माठ सौ ढुरत जात।
हारन ते हीरे ढरैं, सारी के किनारन तें-
बारन तें मुकता हजारन झरत जात॥४६८॥

★

कनक बरन बाल नगन-जटित माल,
मोतिन की माल उर सोहै भली भाँति है।
चदन चढ़ाऐ चारु, चंद्रमुखी चाँदनी सी,
निकसि अबास तें सिधारी मुसकानि है॥
चूनरी विचित्र स्याम सजि कै 'ममारख जू',
ढाँपि नख-सिख लौं, अधिक सकुचाति है।
चद्र मे लपेटि कै, समेटि कै नछत्र मानो,
व्योम को प्रनाम किऐं राति चली जाति है॥४६९॥

★

जुबति जोन्ह मे मिल गई, नैंक न परति लखाइ।
सौंधे के डोरन लगी, अली चली सँग जाइ‡॥ ४७०॥

---

(१) केशवदास ने अभिसारिका के निम्न लिखित भेद लिखे है—
१-स्वकीया अभिसारिका, २-परकीया अभिसारिका, ३-सामान्या अभिसारिका
४-प्रेमाभिसारिका, ५-गर्वाभिसारिका, ६-कामाभिसारिका। उन्होंने पिछले तीन भेदों मे से प्रत्येक के प्रच्छन्न और प्रकाश नामक उपभेद भी लिखे हैं।

(२) चिंतामणि ने इनके नाम निम्न प्रकार से लिखे हैं—
१-ज्योत्स्ना अभिसारिका, २-तमोभिसारिका ३-दिव्याभिसारिका।

‡ बिहारी

कृष्णाभिसारिका

कारौ नभ, कारी निसि, कारीऐ डरारी घटा,
झूकन बहत पौंन आनँद कौ कंद री ।
'द्विजदेव' साँवरी सलौनी सजि स्यामजू पै,
कीन्हौं अभिसार लखि पावस-अनंद री ॥
नागरी गुनागरी सु कैसै डरै रैंन-डर,
जाके सग सोहैं ए सहायक अमंद री ।
बाहन मनोरथ, उमाहैं संगवारी सखी,
मैंन-मद सुभट, मसाल मुखचंद री ॥ ४७१॥

★

घूँघट के घेर मे दवायौ मुख जेर करि,
दसन उजेरे कों दवायौ रद-छद सों ।
बाजनू विभूषन दबाए गति मंद करि,
मँहक दबाई बन-कुंजन की हद सों ॥
आहट को 'सेवक' दबाऊँ कौन भाँति कैसै,
घेरयौ भौंर भीतर अँधेरौ करि नद सों ।
गहने जवाहिर के दाबे पट अंबरी मे,
संबरी अराति दुति दाबी मृग-मद सों ॥ ४७२॥

★

सजल जलद-घन उमडि घुमड़ि आए,
तैसिऐ अँधेरी घेरी सूझत न संग कौ ।
प्यारी बनवारी पै सिधारी पनवारी माँहि,
सालें उर बान पंचबान के निषंग कौ ॥
पाँइ तरै दब्यौ अहि, अहि रह्यौ पाँइ गहि,
कह्यौ न परत जहाँ कौतुक भुजंग कौ ।
लिऐं लोह-लंगर ज्यों साँकर सहित छूट्यौ,
जात है मतंग मानो नृपति अनंग कौ ॥ ४७३॥

★

सघन कुंज-घन, घन तिमिर, अधिक अँधेरी राति ।
तऊ न दुरिहै स्याम यह, दीप-सिखा सी जाति ‡ ॥ ४७४॥

★

स्याम बसन मे स्याम निसि, दुरी न तिय की देह ।
पहुँचाई चहुँ ओर घिरि, भौंर-भीर पिय-गेह* ॥ ४७५॥

---

‡ बिहारी * मतिराम

दिवाभिसारिका

दिन कों किंवार खोलि, कीन्हौ अभिसार,
पै न जानि परी काहू, कहाँ जाति चली छल सी।
कहै 'पदमाकर' न नाँक री निकोरै, जाहि-
काँकरी पगन लगैं पंकज के दल सी॥
कामद सौ कानन, कपूर ऐसी धूरि लगै,
पर से पहार, नदी लागति है नल सी।
घाम चाँदनी सी लगै, चंद सौ लगत रवि,
मग मखतूल सौ, मही हू मखमल सी॥ ४७६॥

★

केसर-रंग रँगे पट धारि, चली वृषभानु-लली त्रिमला सी।
ग्रीषम में जुग जाम गऐं दिन, दीर दवानल काम-कला सी॥
घाम छली झर पावक सी, अमली कर कौल-कली, कमला सी।
लोयन-कोयन सें लखती भय, लोयन में चलती चपला सी॥४७७॥

★

ग्रीषम-रितु की दुपहरी, चली बाल बन-कुंज।
अंग-लपट तीछन लुएँ, मलय-पवन के पुंज§॥ ४७८॥

★

दूर करन कामिनि चली, मदन जनित संताप।
तप-रितु तीखे तपन के, ताप कौ न गिनि ताप‡॥ ४७९॥

★

सामान्या अभिसारिका

कुंदन से अंग, साजे बसन सुरंग सदा,
घरऊ में धरनी पै चरन धरयौ ना मैं।
अतर-तमोर बिन ठहरी घरी ना सखी!
नैंक मुसक्याइ कौन हियरा हरयौ ना मैं॥
'सोमनाथ' प्यारे पै चली यों बतरात बात,
पन ऐसौ काहू संग अबलौं करयौ ना मैं।
टेढ़ी अलकनि सों लपेटि मन प्रीतम कौ,
ल्याउँगी जराब जरे सुंदर तरयौना मैं॥ ४८०॥

---

§ मतिराम ‡ हरिऔध

(५) विप्रलब्धा—केलि-स्थान पर नायक को न पाकर व्याकुल होने वाली नायिका 'विप्रलब्धा' कहलाती है* ।

मुग्धा विप्रलब्धा

ह्वै रसलीन प्रबीन सखीं बस, नाह सों नेह नबीन सँजोयौ ।
छुवावै न छाँह, छिपी चित चाह, सु दूती की बाँह उठै मगु जोयौ ॥
'देव' सँकेत मिले न इतै पै, चित्त मे सोच-सँकोच समोयौ ।
लाज कस्यौ हियरा उकस्यौ, कछु चाहै हँस्यौ, कछु आवत रोयौ ॥४८१॥

*

खेल की दहानों के सहेलिन के संग बाल,
आई केलि-मंदिर लौं सुंदर मजेज पर ।
कहै 'पदमाकर' तहाँ न पिय पायौ तिय,
त्यों ही तन तें रही, तमीपति के तेज पर ॥
बाहत बिथा की कथा काहू सों कछू न कही,
लचकि लता लौं गई, लाज बारी लेज पर ।
बीरी परी बिथुरि, कपोलन पै पीरी परी,
धीरी परी, धाइ गिरी, सीरी परी सेज पर ॥ ४८२ ॥

*

खेलि हैं लाल के सग चलौं, कहिकै उर मे मति औरई ठानी ।
यों बहिकाइ कै नेह बढाइ, मयंकमुखी रति मंदिर-आनी ॥
ह्वाँ न लखे 'समिनाथ' सुजान, कछूक नहीं ठठकी ठकुरानी ।
है न सयान रती भर हू, अलबेली तऊ हिय मे अकुलानी ॥४८३॥

*

ल्याई लिवाइ सखी सब साथ की, सौंहन खाइ कै सुंदरि कोहैं ।
कुंज के भीतर सूनौ चितै करि, बैठि रही है नवाइ कै भौंहैं ॥
लाल भई दुति कोयन की, चमकै पुतरी अति दीठि लजौंहैं ।
लोहित कंजन मध्य मनों, रस चाखत लोल मधुव्रत सोहैं ॥४८४॥

*

मिलेउ न कंत सहेटवा, लखेउ डेराइ ।
भनियाँ कमल बदनियाँ, गइ कुम्हिलाइ‡ ॥ ४८५ ॥

मिलन-आस कर जाइ तिय मिलै न पिय संकेत ।
विप्रलब्धा सो जानिऐ, रहै-विकल चित चेत ॥

‡ रहाम —"रसराज"

मध्या विप्रलब्धा

स्वाइ गुरु लोगन कों, सौंधे सों अन्हाइ, भूषे–
भूषन जराइन क, पहिरे बसन वर ।
मंद–मंद दावै पाँइ, आइ केलि मंदिर मे,
घूँघट मे हेरत उछाह भरी लाज भर ॥
'द्विज जू' बिलोक सूनी सेज ह्वै चकित रही,
चारो ओर चाहति मृगी सी भूरि भरी डर ।
ऐसी भई विकल बिसूरि बिथा बाढ़ी, जैसे–
पथिक निदाघ कौ पियासो देखै सूखो सर ॥ ४८६ ॥

★

प्रानप्यारी आलिनि, प्रधान प्यारी प्रीतम की,
ठानि न्यारी मिलन निकुंज–गेह मन में ।
साज सोहै सील में, समाज सोहै सजी संग,
लाज सोहै सरस, विलास सोहै तन मे ॥
आस भरी 'सेखर' हुलास भरी देखी तहाँ,
सेज परी सूनी ह्वै अचेत परी छन में ।
नीर छायो नैनन, अधीर छायो बैनन मे,
पीर छाई अंगन, समीर छायो बन मे ॥ ४८७ ॥

★

रात कौ तमासो सुनौ, सोए गुरुजन जब,
कीन्हे अभिसार तब साधिकै रमल सौ ।
'रघुनाथ' मन मे मनोरथ की सिद्धि जानि,
नूपुर बजन लागे पाँइ मे दमल सौ ॥
केलि के महल बीच प्यारे सों न भेंट भई,
ऐसी दसा भई मनों खायो है अमल सौ ।
भोर के समैं कौ ऐसो प्यारी कौ बदन रह्यो,
एरी भटू ! फेर भयो साँझ के कमल सौ ॥ ४८८ ॥

★

मौज मे आई इतै 'लछिराम', लग्यो मन साँबरो आनँद कद मे ।
सूनो सँकेत निहारतई, पर्‌यो साँबरो आनन घूघट बद में ॥
बोलिवे कौ अभिलाख रचै, पै न बोलै कछू दुख–रासि दुचद में ।
ह्वै रही रैंन-सरोज सी प्यारी, परी मनो लाज-मनोज के फंद में ॥ ४८९ ॥

प्रौढ़ा विप्रलब्धा

सकल सिंगार साज, संग लै सहेलिन कों,
सुंदरि मिलन चली आनँद के कंद कों।
कवि 'मतिराम' मग करत मनोरथनि,
पेख्यौ परजंक पै न प्यारे नँदनंद कों॥
नेह तें लगी है देह दाहन, दहत गेह,
बाग कों बिलोकि द्रुम-बेलिन के बृंद कों।
चंद कों हँसत तब आयौ मुखचंद,
अब चद लाग्यौ हँसाने तिया के मुखचंद कों॥ ४९०॥

★

उज्जल सरद-चंद-चंद्रिका अमंद दुति,
त्रिबिध समीर की झकोर आनि फहरै।
मुकता अनिंद मकरंद के से बिंदु चारु,
बदनारबिंद की छबीली छटा छहरैं॥
साजि रग-रंगनि के सुंदर सिंगार प्यारी,
गई केलि-धाम दूजी जामिनी की पहरै।
पेखि परजंक नँदनंद बिन 'सोमनाथ',
लागी अंग उठनि भुजंग की सी लहरैं॥ ४९१॥

★

चटपटी चाह अग उपटे अनंग करी
रंग-राटी तें काम-नट की कुमारी सी।
कवि 'लछिराम' राज-हंसनि सो मद-मंद,
पाम प्रकासमान चाँदनी सँवारी सी॥
नागरि निकुंज में न हेरयौ ब्रजचंद,
मुख रुख पै सहेली भई आँखें रतनारी सी।
भौंहन मरोरनि, विथोरनि मुकुत-हार,
छोरनि छरा के बद, रोष-मद ढारी सी॥ ४९२॥

★

जोबन-मदमाती चली, सजि सब अंग सिँगार।
सूनो थल विष सों लख्यो, विरह अनल की झार॥ ४९३॥

---

† लाछिराम

परकीया विप्रलब्धा

कैसी ही लगन, जामैं लगन लगाई तुम,
प्रेम की पगनि के परेखे हिएँ कसके ।
केतिकौ छपाइ के उपाय उपजाइ प्यारे !
तुम तें मिलाप के बहाए चोप चसके ॥
भनत 'कबिंद' हमैं कुंज में बुलाइ करि,
बसे कित जाय, दुख देकर अबस के ।
पगन मे छाले परे, नाँघिबे को नाले परे,
तऊ लाल ! लाले परे, राउरे दरस के ॥ ४९४ ॥

★

काले परे कोस, चलि-चलि थकि गए पाँइ,
सुख के कसाले परे, ताल परे नस के ।
रोइ-रोइ नैनन मे हाले परे, जाले परे,
मदन के पाले परे प्रान परबस के ॥
'हरिचंद' अगऊ हबाले परे रोगन के,
सोगन के भाले परे तन बल खुख के ।
पगन मे छाले परे, नाँघिबे को नाले परे,
तऊ लाल ! लाले परे, राउरे दरस के ॥ ४९५ ॥

★

गंजन सु गुंज लग्यौ, तैसौ पौन-पुंज लग्यौ,
दीप-मनि कुंज लग्यौ गुंजन सो गंजि कै ।
कहै 'पद्माकर' न खोज लग्यौ ख्यालन कौ,
घालन मनोज लग्यौ, बीर ! तीर सजि कै ॥
सूखन सु बिंब लग्यौ, दूषन कदंब लग्यौ,
मोहि न बिलंब लग्यौ, आई गेह तजि कै ।
मीजन मयंक लग्यौ, मीतऊ न अंक लग्यौ,
पंक लग्यौ पाँइनि, कलंक लग्यौ बजि कै ॥ ४९६ ॥

★

सुनि कै धुनि यों चित मे हुलसी, उत जैए घने सुख पावने री ।
ढिंग आनि लख्यौ उनकी उलटी, कहुँ ताल, कहूँ सुर गावने री ॥
कहि 'ठाकुर' भूल सु नैनन की, तिनसों कहा नेह बढ़ावने री ।
चल दूर भटू ! हौ वृथा भटकी, लगे दूर के ढोल सुहावने री ॥४९७॥

लीवे कों चली ती बहु भाँतिन कौ चैन बन,
ऊँची कै भुजान भरि अंचल लिपाई लाज।
छीवे कों चली ती वह पानिप-भरौई तन,
छ्वाइ-छ्वाइ आई हियौ पावक वियोग-साज॥
भभरि रही सी अभिलाषा मत ही की मन,
'द्विजदेव' की सौं कछु भूलि हू भयौ न काज।
पीवे कों चली ती व्रजचंद कौ अमंद हास,
पाइ चली प्यारी विष-विरह विथा कों आज॥ ४९८॥

*

प्यारी सँकेत सिधारी सखी सँग, स्याम के काम-सँदेसिन कै सुख।
सूनौ उतै रँगभौन चितै, चित मौन रही, चकि चौंकि चहूँ रुख॥
एकई बार रही जकि ज्यों कि त्यों, भौंहन तानिकै मानि महा दुख।
'देव' कछू रद बीरी दै बोरी, सु हाथ की हाथ, रही मुख की मुख॥४९९॥

*

सामान्या विप्रलब्धा

निसि अँधियारी, तऊ प्यारी परबीन, चढ़ि–
माल के मनोरथ के रथ पै चली गई।
कहै 'पदमाकर' तहाँ न मनमौहन सों–
भेंट भई, सटकि सहेट तें अली गई॥
चदन सों, चाँदनी सों, चंद सों, चमेलिन सों,
और बन-बेलिन के दलन दली गई।
आई हुती छैल के छलै कों छल-छंदन सों,
छैल तौ छल्यौ न, आप छैल सों छली गई॥ ५००॥

*

साजि कै सिंगार चली साँझई कमलनैनी,
न्हाइ कै अमल, बिदा होइ गुरुजन तें।
संग लै सहेलिन की अबली अनौखी प्यारी,
लीवैई की घात जात पूछति सबनि तें॥
कहै 'हनुमान' कुंज-भौन में मिल्यौ न लाल,
हालई मे जीती गई बाल वा अतन तें।
हीन भई धन तें, बिहीन भई पन तें,
सु छीन भई तन तें, मलीन भई मन तें॥ ५०१॥

(६) **खंडिता**—रात्रि में कहीं रम कर प्रात काल आने वाले अपने नायक के तन पर पर-स्त्री-ससर्ग के चिह्न देखकर ईर्ष्या करने वाली नायिका को 'खंडिता' कहते हैं†।

मुग्धा खंडिता

बैठी परजंक पै नवेली निरसंक जहाँ,
जागी जोति जाहर, जवाहर की जागै ज्यों।
कहै 'पदमाकर' कहूँ तें नंदनंदन हू,
औचकई आइ अलसाइ प्रेम पागे यों॥
झपकौंहैं पलक पिया के पीक-लीक लखि,
झुकि झहराइ हू न नैक अनुरागै त्यों:
वैसेई मयंकमुखी लागत न अंक हुती,
देखिकै कलंक अब एरी 'अंक लागै क्यों॥ ४०२॥

★

निसि अंत हैं आए प्रभात भऐं, गति पाँइन औरई पाइ लई।
'रसिनाथ' उनींदी झुकैं अँखिआँ, पगिया उन फेरि बनाइ लई॥
रति-चिह्न पूछति जानि-सुजान, हँसी मिस बाल भुलाइ लई।
कर चाब अमोल कपोलन चूमि, भुजा भरि कंठ लगाइ लई॥४०३॥

---

† (१) रमि कर निसि जाइ कहु, प्रात मिले पति आइ।
नारि 'खंडिता' सौति के, चिह्न लखै बिलखाइ॥
—"रसविलास"

(२) अनत रमे रति-चिन्ह लखि, प्रीतम के सुभ गात।
दुखित होइ सो 'खंडिता', बरनत मति अवदात॥
—"शृंगारनिर्णय"

(३) धीरादि भेद और खंडिता में अंतर करना बड़ा कठिन है। नायिकाभेद के बड़े-बड़े आचार्यों के उदाहरण भी तत्संबंधी मत-भेद से खाली नहीं हैं। कदाचित इसीलिए दास ने खंडिता के अंतर्गत धीरादि भेद का कथन कर इस बखेड़े को ही दूर करने की चेष्टा की थी, किंतु उनका यह मत प्रचलित नहीं हुआ और दोनों प्रकार की नायिकाओं का पूर्ववत पृथक्-पृथक् ही वर्णन होता रहा। खंडिता और धीरादि भेद के सूक्ष्म अंतर का उल्लेख गत पृष्ठों में विस्तार पूर्वक किया जा चुका है। दास ने 'मानिनी' और मान-भेद का उल्लेख भी खंडिता के अंतर्गत किया है।

मध्या खंडिता

आए रति मान काहू बाम सों प्रभात घर,
पीक की बिराज रही लीक लौनी दृग-कोर ।
अंजन अधर देखि जावक लिलार, भए-
बाल के सु नैन महा लाल रंग सराबोर ॥
'गोकुल' लखति, कछु कहति न आनन सों,
लाज ललना कों आनि गही दौरि बरजोरि ।
अनख सों भरी, पीठ दैकै बैठी भौंनते सों,
करति मही मे रेखा, चाहति सखी की ओर ॥ ५०४ ॥

जावक लिलार, ओठ अंजन की लीक सोहै,
खैयन अलीक लोक-लीक न बिसारिऐ ।
कवि 'मतिराम' छाती नख-छत जगमगै,
डगमगै पग सूधे मग मे न धारिऐ ॥
कसमै उचारत हौ पलक पलक यातै,
पलका पै पौढ सम राति कौ निबारिऐ ।
अटपटे बैंन, कछु बात न कहत बनै,
लटपटे पेच सिर पाग के सुधारिऐ ॥ ५०५ ॥

भोर दृग लाल भऐं, लाल घर आए, भाल-
जावक लग्यौरी, ओठ अंजन के दागे री ।
पेच अलबेले, हार उबटे नबेले, छाकि-
छाकि रमरेले करि, केलि अनुरागे री ॥
घूमि-घूमि परैं, सोभ भूमैं पग धरैं, झूमि-
झूमि बतरात, पर प्यारी प्रेम पागे री ।
नाखि न सकति, उर राखि न सकति, बड़ी-
आँखिन मे अँसुआँ झलमलान लागे री ॥ ५०६ ॥

भोर स्याम-सिर पैं लखी, उहि ओढ़नी सुरंग ।
बरसति आँसू लाल दृग, करति न मनमुख संग ॥ ५०७ ॥
अधर लग्यौ अंजनि निरखि, चितवति दृग भर लेति ।
उससि कछू चाहति कहन, लाज कहन नहिं देति ॥ ५०८ ॥

---

‡ लछिराम † हरिऔध

प्रौढ़ा खंडिता

उनई है मन, यातें सूधे न परत पग,
अंग अरसात भुरहरें उठि आए हौं।
रेगमगी अँखियाँ अनूप रूप चोरे लेत,
'सोमनाथ' आछैं यहि रूप लखि पाए हौं॥
हम सों लौं बिहँसि बिलोकिबो बिसारयौ पिय,
सबै बिधि उनई के हाथन बिकाए हौं।
काहे कों नटत, देई बैनन प्रकट होत,
अनुराग जिनकौ लिलार धरि आए हौं॥२०९॥

★

परचि गई हौ पेच-पाच वारे नैनन सों,
परपंच कीने मोहि मिलत सहारौ ना।
काट-छाँट वारी बानि काटत करेजौ अजौं,
कपट किएँ हू कृट बचन उचारौ ना॥
'हरिऔध' जादु, जागि जामिनी बिताई जिते,
जियरौ हू जावक लिलार लाइ जारौ ना।
टंग वारी सखिन पै डारौ ना हमारौ मन,
रंग वारी आँखिन कौ मोपै रग डारौ ना॥२१०॥

★

मेरे नैन अंजन, निहारें अधरन पर,
सोभा देखि गुमर बढ़ायौ सब सखियाँ।
मेरे अधरन पै ललाई पीक लाल, तैसे-
राउरे कपोल गोल नोखी लीक लखियाँ॥
कवि 'हरिजन' मेरें उर गुनमाल, तेरें-
बिन गुनमाल-रेख देखि-देखि झकियाँ।
देखौ लै मुकुर, दुति कौन की अधिक लाल!
मेरी लाल चूनरी, कै तेरी लाल अँखियाँ॥२११॥

★

पावक सौ नैनन लग्यौ, जावक लाग्यौ भाल।
मुकुर होउगे नैक मे, मुकुर बिलोकौ लाल॥ ॥ २१२ ॥

★

प्रान-प्रिया हिय मे बसै, नख-रेखा सखि भाल।
भलौ दिखायौ आनि ये, हरि! हर-रूप रसाल॥ ॥ २१३ ॥

---

† बिहारी

परकीया खंडिता

कहूँ रति मानि आनि भाँमतौ गली में कढ़्यौ,
भोर आज भाँमती सों भेंट औचका भई ।
नैन-सैन दैकै उन्हे बाहरई ठाढ़ौ कियौ,
आपु कै चपल गति दहलीज में गई ॥
कहा कहौं भटू ! नखसिख लौं निरखि चिह्न,
मन ही मे 'रघुनाथ' ऐसी कोप सों तई ।
मुख सों न कह्यौ कछु, हाथ की इसारति सों,
गारी दैकै आपनी किवारी दोनों दै लई ।।२१४॥

★

प्रीति रावरे सों करी, परम सुजान जानि,
अब तौ अजान बनि मिलत सवेरे पै ।
'लछिराम' नाहू पै सुरंग ओढ़नी लै सीस,
पीत पट देत गुजरैटिन के खेरे पै ॥
सराबोर छलकें प्रस्वेद-कन, लाल भाल,
मदन मसाल वारी बदन-उजेरे पै ।
आपुने कलक सों कलंकिनी बनी हौं, लूटि-
और हू को धरति कलंक सिर मेरे पै ॥२१५॥

★

सामान्या खंडिता

काम-कलोलनि मे अटक्यौ, सु बस्यौ निसि अंत वियोग निवारिकै ।
प्रातहि आइ गयौ अरमात, रचै कुल-कानि की ओट उघारि कै ॥
ए 'सखिनाथ जू' या छवि सो, निज पौरि निहारि रही मन गारि कै ।
भौंह चढ़ाइ कै बारबधू ने लियौ मुकता अबतंस उतारि कै ॥२१६॥

★

रमि रैन कह अनतै बितई, सु कियौ इत आवन भोर ही को ।
नहि छूटत छैल, छबीले लला !, जो सुभाव परयौ परि छोर ही को ॥
हित मान है सो हन बेनीप्रबीन', कहौ नित है इत और ही को ।
तरवा सहरावन मेरे चले, हरवा पहिराइ कै और ही को ॥२१७॥

★

मिसवा ओठ कजरवा, जावक भाल ।
लिहेसि काढि बरिअइया, तकि मनि-माल ॥ २१८ ॥

---

* रहीम

(७) **कलहांतरिता**—अपने नायक का अपमान कर पुनः पश्चात्ताप करने वाली नायिका को 'कलहांतरिता' कहते हैं‡ ।

मुग्धा कलहांतरिता

सखिन-सँकोच, गुरु-सोच, मृगलोचनि-
रिसानी पिय सों, जु उन नेंक हँसि छ्वीयौ गात ।
'देव' वै सुभाइ मुसकाइ उठि गए,
इन सिसकि-सिसकि निसि खोई, रोय पायौ प्रात ॥
को जानैरी बीर ! बिन बिरही बिरह-बिथा,
हाय-हाय करि पछिताऐ ना कछू सुहात ।
बड़े-बड़े नैनन सों आँसू भरि-भरि ढरि,
गोरौ-गोरौ मुख आज ओरौ सौ बिलानौ जात ॥५१६॥

★

लाज के अगोट कै-कै बैठती न ओट दै-दै,
घूँघट को काहे को कपट-पट तानती ।
डारि देती डर, कर ऐंचती न कोप करि,
दीठि चोरि, पीठ मोरि हौं न हठ ठानती ॥
'देव' सुख सोवती, न रोवती सुहाग रैन,
मेट ताप ही तें, आप ही तें हित मानती ।
हाय ! हाय !! काहे को तितेक दुख देखती,
जो पीतमै मिलै कौ, मैं इतेक सुख जानती ॥५२०॥

★

आई गौंने काल्हि ही, सीखी कहाँ सयान ?
अब ही तें रूँसन लगी, अब ही तें पछितान § ॥ ५२१ ॥

---

‡ (१) प्रथमहि पाय अनादर करै । पीछे ते पछितावै मरै ॥
साँस भरै कर अति संताप । अरुझै, सुरझै करै प्रलाप ॥
सोचति सीस धुनति जो लहिए । सो तिय 'कलहांतरिता' कहिए ॥
—नददास कृत "रसमंजरी"

(२) प्रथम कछू अपमान कर पिय कौ फिरि पछिताइ ।
'कलहांतरिता' नाइका तहि कहत कविराइ ॥
—"जगद्विनोद"

§ मतिराम

मध्या कलहांतरिता

हरि तौ मनुहार मनाइ गए जिनपै जियरा रति बारति है ।
'सभिनाथ' मनोज की ज्वालनि सौं, अब कुंदन सौं तन जारति है ॥
उठि लेटति सेज पै चंद्रमुखी, पछिताइ कै पौरि निहारति है ।
न कहै सुख तें दुख अंतर को, अँसुआँनि सो आँखि पखारति है ॥२२०॥

★

बैठी रति-मंदिर मे सुंदरि बनाएँ वेष,
जाके रूप मोहे रति-रूप हू निदरिगौ ।
आयौ तहाँ लाल, जासों बोली नहिं बाल नैक,
ऐसौ कछु अकस अखारो आनि अरिगौ ॥
एते मोहि रूसि 'हनुमान' मनभावन गौ,
लागी पछितान प्रेम-पुंज यों पसरिगौ ।
कानन तें पैठि हिये बस्यौ हौ जु मान, सोई—
हाय ! इन आँखिन तें ओझ ह्वै निकरिगौ ॥२२३॥

★

पाँयन आनि परे तौ परे रहे, केती करी मनुहार सु हेली ।
मान्यौ मनायौ न मैं 'मतिराम', गुमान मे ऐसी भई अलबेली ॥
प्यारौ गयौ दुख मान कहूँ, अब कैसे रहूँ यहि राति अकेली ।
आपने ल्याउ मनाय कन्हाई को, मेरौ न लीजियो नाम सहेली ॥२२४॥

★

प्रौढा कलहांतरिता

ए अलि ! इन आइ पाँयन परे हे आइ,
हौं न तब हेरी या गुमान बजमारे सों ।
कहै पदमाकर' वे रूठिगे, सु ऐसी भई—
नैनन ते नींद गई हाइ के दुबारे सों ॥
रैन-दिन चैन है न मैन है हमारे बस,
ऐन सुख सूखत उसास अनुसारे सों ।
प्रानन की हानि सी दिखान सी लगी है हाय !
कौन गुन जानि मान कीन्हौ प्रान-प्यारे सों ॥२२५॥

★

बैरिनि जीभहिं काटि करौं, मन द्रोही को मीजिऐ, मौन धरौंगी ।
जानै को 'देव' कहा भयौ मोहि, लरी कहैं लोक मे, लाज मरौं गी ॥
प्रानपती सुख-सर्वस वै उनसों गुन-रूप कौ गर्व करौंगी !
अंजुलि जोरि, निहोरि गरैं परि, हौं हरिप्यारे के पाँय परौंगी ॥२२६॥

परकीया कलहांतरिता

सासु के त्रास बिसारे सबै, उपहासन हू ते निसंकिन ह्वै भई ।
लीक-अलीक न जानी कछू, ठकुरानी कहाइ सु रंकिन ह्वै भई ॥
जा 'ससिनाथ' सुजान के काज, तजे सुख-साज अलंकिन ह्वै भई ।
री ! तिन सों हित तोरि कै हाय ! बृथा ब्रज माँहि कलंकिन ह्वै भई ॥५२७॥

★

जाके लिऐं गृह काज तज्यौ, न सखी-सखिआँन की सीख सिखाई ।
बैर कियौ सिगरे ब्रज गाँम सों, जाके लिऐं कुल-कानि गँमाई ॥
जाके लिऐं घर-बाहर हू, 'मतिराम' रहे हँसि लोग-लुगाई ।
ना हरि सों हित एकई बार, गँवारि मैं तोरनि बार न लाई ॥५२८॥

★

प्रेम-समुद्र पर्यौ गहिरे, अभिमान के फेन रह्यौ गहि रे मन !
कोप-तरंगनि तें बहि रे, अकुलाइ पुकारत क्यों बहिरे मन !
'देवजू' लाज-जहाज तें कूद, भज्यौ मुख मूंद अजौ रहि रे मन !
जोरत, तोरत प्रीति तुही, अब तेरी अनीत तुही सहि रे मन ॥५२९॥

★

जोरत हू सजनी बिपति, तोरत बिपति-समाज ।
नेह कियौ बिन काज, पुनि नेह कियौ बिन काज* ॥ ५३० ॥

★

सामान्या कलहांतरिता

कंचन के परजंकन पै सु, निसंक ह्वै आसव सग पियौ मैं ।
दौलत जाकी जबाहिर के गहिने सजि अंग प्रकास कियौ मैं ॥
जाके समान उदार अजौ, धनदादिक और लख्यौ न बियौ मैं ।
हाय ! कहा कहौं भूलि सखी, घर माँहि तें ताहि उठाइ दियौ मैं ॥५३१॥

★

ससकि-ससकि उठै कसकि-कसकि हिऐं,
चाही अपसोसन कढ़ौं न भौंन कौने सों ।
एक तान लागैं मुकतान के अनेक हार,
बकसत राज, काज रूपे सों, न सोने सों ॥
भनत 'कविंद' ऐसे नाह सों गुनाह बिना,
कियौ मैं बिगारि, रारि ठरै कौन टौने सों ।
ए री मो कुमति, तैंनैं कलह करायौ, अब-
सुलह करावै कौन साँवरे सलौने सों ॥ ५३२ ॥

---

* मतिराम

(८) **प्रवत्स्यत्प्रेयसी**—अपने प्रियतम के भविष्यत वियोग की आशंका से दुखित नायिका 'प्रवत्स्यत्प्रेयसी' कहलाती है* ।

मुग्धा प्रवत्स्यत्प्रेयसी

जा दिन तें चलिवे की चरचा चलाई तुम
ता दिन तें वाके पिअराई तन छाई है ।
कहै 'मतिराम' छोडे भूषन, बसन, पान,
सखिन सों खेलनि, हँसनि बिसराई है ॥
आई रितु सुरभ सुहाई, प्रीति वाके चित,
ऐसे मे चलौ, का लाल ! राउरी बडाई है ।
सोवत न रैन, दिन रोवत रहत बाल,
बूझे ते कहत माइके की सुधि आई है ॥ ५३३ ॥

★

उर गई बात, पिय पर-पुर जाइवे की,
मुर गई, जुर गई, बिरहागि पुर गई ।
घुर गई ही जो खेल उमँग सों दुर गई,
फुर गई पीर मुख, दुति ह्वै अउर गई ॥
ग्वाल कवि' अलि सों बिछुरि गई, लरि गई,
नारि हू निहुरि गई, नैन सो निचुरि गई ।
दुरि गई कोठरी में, मुरि गई सासै तकि,
जुरि गई लाज, लाजवंती सी सिकुरि गई ॥५३४ ॥

★

सेज परी सफरी सी पलोटति, ज्यों-ज्यों घटा घन की गरजै री ।
त्यो 'पदमाकर' लाजनि तें, न कहै दुलही हिय की हरजै री ॥
आली कछू कौ कछू उपचार करै, पै न पाइ सकै मरजै री ।
जाहिं न ऐसे समैं मथुरै, यह कोऊ न कान्हर कों बरजै री ॥५३५॥

★

परिगा कान सखियबा, पिय कर गौन ।
बैठी कनक-पलँगिआ, होइ कै मौन† ॥ ५३६ ॥

---

* होनहार पिय के विरह, विकल होइ जो बाल ।
ताहि 'प्रवच्छतिप्रेयसी', बरनत बुद्धि-बिसाल ॥

† रहीम —"रसराज"

मध्या प्रवत्स्यत्प्रेयसी

पी चलिवे की चली चरचा, सुनि चंदमुखी चितई दृग-कोरन ।
पीरी परी तुरतै मुख पै, बिलखी अति व्याकुल मैंन-मरोरन ॥
को बरजै अलि ! कामी कहै, मन भूलन नेह ज्यों लाज झकोरन ।
मोती से पोइ रहे अँसुआँ, न गिरैं, न फिरैं बरुनीन के कोरन ॥५३७॥

★

कल न परत, कहूँ ललन चलन कह्यौ,
दवा सौ दहै देह दहक दहक-दहक ।
लगी रहै हिलकी, हलक सूख्यौ, हालै हियौ,
'देव' कहै गरयौ भर्यौ आवत गहक-गहक ॥
दीरघ उसाँसैं लै-लै ससिमुखि सिसकनि,
सुलप सलौनौ लक लहक लहक लहक ।
मानत न बरज्यौं, सु बारिज से नैनन ते-
बारि कौ प्रवाह बह्यौ आवत बहक-बहक ॥ ५३८ ॥

★

गौने के द्यौस छै-सातक बीते न, चौथी कहा अबई चलि आई ।
लालन-बाल के ता छिन मे, 'मतिराम' परी मुख पै पियराई ॥
न्हन बहू को पठाइ अली ! यह देख दुहूँन की प्रीति सुहाई ।
रोए से, रोचन मोए से लोचन, सोए न सोचन रैन बिताई ॥५३९॥

★

पीतम चलन हलबली सी मची है गेह,
देह खलबली सी, तिया के त्यों रली सी है ।
दुति ही ससी सी, सरसी सी, सो खिसी सी भई,
सासु ने टली सी राखै नजर डली सी है ॥
'ग्वाल कवि' विरहै बरी सी, घबरी सी,
जऊ चितवै चपी सी, तऊ चूसी सी छली सी है ।
मैन की मली सी लाज लगर दली सी दीसी,
हेम की थली सी, गई मुरझि कली सी है ॥ ५४० ॥

★

नंद घरै बृषभान के भौन तें, जान कह्यौ हरि देव सु हाँसुनि ।
ताई घरी तें घरी पल लाज, घरी कैं घरी उघरी बतियाँ सुनि ॥
प्रात अरंभ ही खंभ लगी, निरदंभ निरंभ सम्हारैं न साँसुनि ।
ठाढ़ी बड़े खन की बरसै बदरी अँखिआँन बडे-बडे आँसुनि ॥५४१॥

प्रौढ़ा प्रवत्स्यत्प्रेयसी

मान कै मुरी न, दसा दुसहै दुरी न,
छिन एकौ बिछुरी न, रूठि हठि न हठाऊँगी।
पीठ देउँ जीही कों, न पी को पीठ देउँ नैक,
नीठ परदेस चले, डीठ न नठाऊँगी॥
प्रीतम सों प्रीति की प्रतीति मेरे और की न,
प्रेम-पीठि बैठि भौंह ऐंठि न बढ़ाऊँगी।
प्रानपति प्रात ही पयान करौ चाहैं 'देव',
सेवा करिवे कों संग प्रानन पठाऊँगी॥ ५४२॥

★

सौ दिन कौ मारग, तहाँ को बेगि माँगी बिदा,
प्यारे 'पदमाकर' प्रभात रात बीते पर।
सो सुनि पियारी पिय-गमन बराइबे कों,
आँसुनि अन्हाइ बोली आसन सु तीते पर॥
बालम बिदेस तुम जात हौ तौ जाउ, पर-
साँची कहि जाउ, कब ऐहौ भौन रीते पर।
पहर के भीतर, कै दुपहर ऊपर ही,
तीसरे पहर, कैधौं साँझई बितीते पर॥ ५४३॥

★

जो पै कहौ 'रहिऐ' तौ प्रभुता प्रगट होति,
'चलन' कहौ तौ हित-हानि नाँहि सहने।
भावै जो करहु' तौ उदास-भाव प्राननाथ!
'साथ ही चलौं' तौ कैसें लोक-लाज बहने॥
मोह है तिहारी नैंक सुनौ ए हो प्रानप्यारे!
चलै ही बनत, तो पै नाँहीं लाज रहने।
जैसिऐ सिखावौ सीख, तुम हौ सुजान पीय,
तुम हू चलत जैसी, जैसी मोहिं कहने॥ ५४४॥

★

रोकहिं जो तौ अमगल होइ, औ प्रेम नसै जो कहैं 'पिय जाइऐ'।
जो कहैं 'जाउ न' तौ प्रभुता, जो कछु न कहैं तौ सनेह नसाइऐ॥
जो 'हरिचंद' कहैं 'तुम्हरे बिन जी हैं न', तौ यह क्यों पतियाइऐ।
तासों पयान समैं तुम सों हम, का कहैं प्यारे! यहै समुझाइऐ॥५४५॥

परकीया प्रवत्स्यत्प्रेयसी

मोहन लला कौ सुन्यौ चलन बिदेस, भयौ–
बाल मौहनी कौ चित निपट उचाट मे ।
परी तलाबेली तन-मन में, छबीली राखै–
छिति पर छिनकु, छिनक पाँव खाट मे ॥
प्रीतम नयन–कुबलयन को चंद, धरी–
एक मे चलैगौ 'मतिराम' जिहिं बाट में ।
नागरि नवेली रूप आगरि अकेली, रीती–
गागरी लै ठाढ़ी भई बाट ही क घाट मे ॥५४६॥

★

प्रानपिया कहुँ गमनत लहै । रह्यो पाइ पिय सो इमि कहै ॥
पति-द्विजदेव-सेव सब तजी । रीति तजी, कुल–कान न लजी ॥
तिनके फल जे नरक बताए । ते सब मो कहँ जीवित आए ॥
तपन–जातना आई तन को । कुंभीपाक पराभव मन को ॥
महा घोर रौरव जु बतायौ । क्रोध-रूप ह्वै नैननि आयौ ॥
जु गति आहि पिय गमनत तोहि । क्यों न होहि ऐसी गति मोहि ॥
चलन कहत हैं कालि पिय का करिहौं मेरी आलि !
बिधना ऐसे करि कछू, जासे होइ न कालि ? ॥५४७॥

★

पहिले अपनाइ सुजान सनेह सो, क्यों फिर नेह को तोरिए जू ।
निरधार अधार ह्वै धार मँझार, दई गहि बाँह न बोरिए जू ॥
'घनआनँद' आपुने चातक को, गुन बाँधि कै मोह न छोरिए जू ।
रस प्याइ कै जाइ, बँधाइ कै आस, बिसास मे ना बिष घोरिए जू ॥५४८॥

★

जो उर-झार नहीं झरसी, मृदु मालती-माल उहै मग नाखैं ।
नेहवती जुवती 'पदमाकर', पानी न पान कछू अभिलाखैं ॥
झाँकि झरोखें रही कब की, दबकी वह बाल मनै–मन भाखैं ।
कोऊ न ऐसौ हितू हमरौ, जु परौसिन के पिय को गहि राखैं ॥५४९॥

★

करी देह जो चीकनी, हरि नित लाइ सनेह ।
बिरह-अगिन जरि छिनक में, होन चहति अब खेह* ॥५५०॥

---

* नंददास रासलीला

चलन चहत प्रान-प्यारौ परदेस आली !
आकुल ह्वै हियरौ हमारौ सुधि लेखै ना ।
चकि-चकि रहत चहूँकित चितै कै चित्त,
बेदन बिबस ह्वैकै सुरति सरेखै ना ॥
'हरिऔध' प्यारे संग करन पयान ही में,
आपनी भलाई पापी प्रान हू परेखै ना ।
बिलखि-बिलखि भरि-भरि बार-बार बारि,
नैंन हूँ निगोरे आज नैंन भरि देखै ना ॥५५१॥

★

सामान्या प्रवत्स्यत्प्रेयसी

फाटि गयौ हियरौ हमारौ ऐसे बैंन सुनि,
जाइहौ बिदेस ताहि लाख लाइ लाखै जाउ ।
पौढ़ि परजंक पै, उढाइ मोइ पीनपट,
मेरे अधरान कौ पियूष नैक चाखै जाउ ॥
'नंदराम' जात हौ, बसंत कंन आवत है,
मानिहौ न औधि कौ अधार धाम भाखै जाउ ।
राउरे बियोग मे बिहाल ह्वैहौं नदलाल,
प्रान राखिबे कौं मनि-माल लाल राखै जाउ ॥५५२॥

★

कीबे कौ बिदेस-गौन, आए बिदा होन मोसों,
'रघुनाथ' प्यारे सुनौ कहति मे नेति हौ ।
मेरे इन लोगनि कौं काहू सौंपे जाहु,
लेहु इनकी खबरि, सब तुम्हे सौंपे देति हौ ॥
बैठौ, इक-दोइ तान जाजबंती सुनि लेहु,
मेरे पै कृपा कै अब ही सुधि समेति हौ ।
आये फेरि साहेब कौ मिलौं कै न मिलौं,
है न जीव कौ भरोसौ, यातें आजु गाएँ लेति हौ॥५५३॥

★

पीतम इक सुमरनियाँ, मोहिं दइ जाहु ।
जेहि जप तोरि बिरहवा, करब निबाहु † ॥ ५५४ ॥

★

पहिलें बित है आपनौ, जो कीनौ चित हाथ ।
सो हित तोरि बिदेस कौ, कत चलियत अब नाथ ‡ ॥ ५५५ ॥

---

† रहीम ‡ मलोन

(६) **प्रोषितपतिका**—अपने प्रियतम के वियोग से दुखित विरहिणी नायिका 'प्रोषितपतिका' कहलाती है* ।

मुग्धा प्रोषितपतिका

जा दिन सों चले हैं बिदेस, भई ता दिन सों—
'रघुनाथ' ऐसी दसा लाज भरी तिय की ।
भूल्यौ खान-पान, भूल्यौ पट-परधान, भूल्यौ—
सुनिबौ सहेलिन सों तान प्यारी जिय की ॥
देकर किवारी चित्रसारी में विलोकै गैल,
ठाढ़ी खिरकी सों ओट करिकै सखिय की ।
पूजा करिबे कों देवी-देव की मनौती करै,
नित सुगनौती धरै, आइबे कों पिय की ॥५५६॥

★

माँगि सिख नौ दिन की न्यौते गे गुबिंद, तिय
सौ दिन समान छिन मानि अकुलावै है ।
कहै 'पदमाकर' छपाकर छपाकर तें,
बदन-छपाकर मलीन मुरझावै है ॥
बूझत जु कोऊ, कै 'कहा री भयौ तोहि', तब—
और ही की औरै कछु बेदन बतावै है ।
आँसू सकै मोचि न, सँकोच-बस आलिन में,
उलही बिरह-बेलि, दुलही दुरावै है ॥५५७॥

★

बोलत न काहू सों, बिलोकति न काहू ओर,
बैठी दिन-रैन गुन गनत पिया के री ।
आवन की को कहै न पाती हू पठाई आलि !
ऐसे कछू कान्ह भए कठिन हिया के री ॥
देखी 'द्विज' मैं हूँ तौ वियोगिनि बिकल केतीं,
पै न ऐसै हाल हेरे काहू स्वकिया के री ।
सोचन-सँकोचन कै मोचन करै न आँसू,
रोचन से ह्वै रहे विलोचन तिया के री ॥५५८॥

---

* जाकौ पति देसातर रहै । अति सताप बिरह-जुर सहै ॥
दुरबल तन मन व्याकुल होई । प्रोषितपतिका' कहिऐ सोई ॥
—"रसमंजरी"

मध्या प्रोषितपतिका

अब ह्वै है कहा, अरबिंद-सौ आनन इंदु के हाय ! हवाले परयौ ।
'पदमाकर' भाखैं न भाखैं बनै, जिय ऐसे कछूक कसाले परयौ ॥
इक मीन बिचारौ बिंध्यौ बनसी, पुनि जाल के जाइ दुमाले परयौ ।
मन तौ मनमोहन के सँग गौ, तन लाज-मनोज के पाले परयौ ॥५५९॥

★

बिछुरे जदुनंदन जा दिन तें, सखि ! ऐसौ कछू उदवेग परौ ।
छिन एकौ न जाती सही तलफैं, दुख एक के ठाँव अनेग परौ ॥
कमकै 'द्विजदेवजू' ऐसी बढ़ी उर अंतर मानौ परेग परौ ।
मन तौ मनमोहन के संग गौ, तन लाज-मनोज के नेग परौ ॥५६०॥

★

ऊबत हौं, डूबत हौं, उगत हौं, डोलत हौं,
बोलत न काहे प्रीति-रीतिन रितै चले ।
कहै 'पदमाकर' त्यों उमसि उसाँसन सों,
आँसू वै अपार आइ आँखिन इतै चले ॥
औधि ही के आगम लौं रहत बनै तौ रहौं,
बीच ही क्यों बैरी ! बंध-बेदनि बितै चले ।
एरे मेरे प्रान ! प्रानप्यारे की चलाचलि मे,
तब तौ चले न, अब चाहत कितै चले ॥५६१॥

★

जा दिन ते चरचा चहूँघाँ चलिबे की चली,
उमसि उसाँस अति आतुर नितै चले ।
प्रीतम प्रबास-साज साजे आसपास, लखि,
आँसू इन आँखिन तें उमहि इतै चले ॥
'द्विजदेव' की सौं प्रिय-प्रीतम इते पै उठि,
पगन चलाइ प्रीति-रीतिन रितै चले ।
ऐसी चलाचलि में न कीन्हीं कछु कौनि अब,
एरे मेरे प्रान ! तुम चाहत कितै चले ॥५६२॥

★

तिय-उसास पिय-बिरह तें, उमसि अधर लौं आइ ।
कछु बाहर निकसति, कछुक भीतर को फिरि जाइ ‡ ॥ ५६३ ॥

---

‡ रसलीन

आहि कै कराहि काँपि, कुस तन बैठी आइ,
चाहत सँदेसौ कहिवे कों, पै न कहि जात ।
फेरि मसि-भाजन मँगायौ लिखिवे कों कछू,
चाहन कलम गहिवे कों, पै न गहि जात ॥
ऐते में उमडि अँसुआँन कौ प्रवाह बह्यौ,
चाहे 'सभु' थाह लहिवे कों, पै न लहि जात ।
दहि जात गात, बात बूझे हू न कहि जात,
बहि जात, कागद, कलम हाथ रहि जात ॥ २६४ ॥

*

आहि कै काँपि कराहि उठी, दृग आँसुन मोचि सँकोचि घरी द्वै ।
लै कर कागद कों री, लला लिखिवे कहँ बैठी वियोग-कथा स्वै ॥
ऐसे मे आन कहूँ 'द्विजदेव', बसंत-बयारि कढ़ी तितही ह्वै ।
बात की बात मे बौरी तिया, अरु पीत ह्वै पाती परी कर तें च्वै ॥२६५॥

*

आवति चली है यह विषम बयारि देखि,
दबे-दबे पाँइन किवारनि लरजि दै ।
कैलिया कलंकिनि कों दै री समुझाइ,
मधु-माँती मधु-पालिनि कुचालिनि तरजि दै ॥
आज ब्रजरानी के वियोग कौ दिवस, तातें-
हरैं-हरैं कीर बकबादिन हरजि दै ।
पी-पी कै पुकारिवे कों खोलैं ज्यों न जोहन,
पपीहन के जोहन त्यों बावरी बरजि दै ॥ २६६ ॥

*

भ्रमे-झूले मलिंदनि देखि नितै, तन भूलि रहै किन भामिनियाँ ।
'द्विजदेव' जू डोली-लतान चितै, हिऐं धीर धरैं किमि कामिनियाँ ॥
हरि हाइ ! विदेस मे जाइ बसे, तजि ऐसे समै गज-गामिनियाँ ।
मन बौरै न क्यों सजनी ! अबतौ, बन बौरी बिसासिनि आमिनियाँ ॥२६७॥

*

विरह घरी बीतत नहीं, जुग सम दिवस सिराहि ।
सखियन कों लखि कै, रुकत अँखियन कौ जल नाहिं† ॥ २६८ ॥

*

बिंदु लसत अँसुआँन के, लाल भए दृग-कोर ।
देखै बिन पिय चंद-मुख, चिनगी चुगत चकोर‡ ॥ २६९ ॥

---

† हरिऔध ‡ मातरान

प्रौढ़ा प्रोषितपतिका

बालम-बिरह जिन जान्यौ न जनम भरि,
बरि-बरि उठै, ज्यों-ज्यों बरसै बरफ राति ।
बीजन डुलावति सखी जन त्यों सीत हू में,
सौति के सराप तन-तापन तरफराति ॥
'देव' कहै साँसनि ही श्रँसुआँ सुखान मुख,
निकसै न बात, ऐसी बिसकी सरफराति ।
लोटि-लोटि परति करौंट खटपाटी लै-लै,
सूखे जल सफरी ज्यों सेज पै फरफराति ॥ ५७० ॥

★

कंचन में आँच गई, चूनी चिनगारी भई,
भूषन भए हैं सब दूषन, उतारि लै ।
बालम बिदेस, ऐसी बैस, मैन लागी आग,
बरि-बरि हियौ उठै, बिरह-बयारि लै ॥
एरी ! पर-घर कित माँगन को जैहै आली !
आँगन में चंदा तें अँगारी चार झारि लै ।
साँझ भए भौन संझाबाती क्यों न देत आली!
छाती तें छिवाइ दिया-बाती क्यों न बारि लै ॥५७१॥

★

थाकी गति अंगन की, मति परि गई मंद,
सूख झाँझरी सी ह्वै कै देह लागी पियरान ।
बावरी सी बुद्धि भई, हाँसी काहू छीन लई,
सुख के समाज जित-तित लागे दूर जान ॥
'हरीचंद' राउरे बिरह में जग दुख मयी-
भयौ, कछू और होनहार लागे दिखरान ।
नैंन कुम्हिलान लागे, बैंन हूँ अथान लागे,
आओ प्राननाथ ! अब प्रान लागे मुरझान ॥ ५७२ ॥

★

लखि कै या कपूत कलानिधि कों, सिगरौ कल आपुनौ खोवती हैं ।
नभ के इन तारन की अबली, निज नैंन के तारन पोवती हैं ॥
'हरिऔध' न आँख लगै कबहूँ, दुख सों पल हू नहिं सोवती हैं ।
पतिआँ पढ़ि कै सिगरी रतियाँ, पकरैं छतियाँ हम रोवती हैं ॥५७३॥

पीउ–पीउ पातकी पपीहा करै बार–बार,
सहज सुभायन ही पावक पसारै है ।
पादप पलास के प्रसूननि–अंगारनि सों,
लसि–लसि डारनि अंगारनि से झारै है ॥
'भुवनेस' ऐसिऐ परी तौ बिरहानल में,
बावरे अनंग ! अंग विष क्यों वगारै है ।
आपु तौ जरे कौ दुख जानत भली ही भाँति
काहे जरे अंगनि कों फेरि अब जारै है ॥ २७४ ॥

★

पावक–पुंजनि खाइ–अघाइ, घने घने घाइन अंग सँवारत ।
ऐसैंहे दीन–मलीन हुतौ, मन मेरौ भयौ अब तौ अति आरत ॥
ए मनमोहन-मीत-मनोज ! दया-दृग तें किन नैंकु निहारत ।
जानत पीर जरे की तऊ, अबला जिय जानि कहा अब जारत ॥२७५॥

★

भरी अग अनंग की दीह बिथा सो, खरी ही अटा पै अलीन घिरी ।
मग जोवत ही मन-भावन कौ, धरि ध्यान में पाइ सरोज सिरी ॥
कवि 'गोकुल' बोले कलापी इते मैं, चितै चहुँधा अकुलाइ थिरी ।
कहि हाय, गए परि ढीले से गात, अबाइ तिया थहराइ गिरी ॥२७६॥

★

बैठी बिसूरति ही पिय आगम, एते मे कोयल की सुनि बानी ।
जागि उठी बिरहागि महा लखि मैं रघुनाथ' की सौंह सँकानी ॥
चंदन लाइ मिलाइ कपूर, निसा भरि सींची गुलाब के पानी ।
कौन कहै बतियाँ निसि की, न तिया की तऊ छतियाँ सियरानी ॥२७७॥

★

जल भरे झूमैं, मनो भूमैं परमत आइ,
दस हू दिसान घूमैं, दामिनी लए–लए ।
धूम धारे, धूसर से, धुरवा धुँधारे, कारे,
पूरवान धारे धावैं छवि सों छए–छए ॥
'श्रीपति' सुजान कहैं घरी–घरी घहरात,
तापत अतन तन ताप सों तए–तए ।
लाल बिन कैसे लाज–चादर रहैगी बीर !
कादर करत मोहि बादर नए–नए ॥ २७८ ॥

कारी कूर कोकिल कहाँ कौ बैर काढ़ति री,
कूकि-कूकि अब ही करेजौ किन कोरि लै ।
पैंड़ परे पापी ये कलापी निस द्यौस ज्यों हीं,
चातक घातक त्यों ही तुहूँ कान फोरि लै ॥
'आनंद के घन' प्रान-जीवन सुजान बिना,
जानि कें अकेली सब घेरौ दल जोरि लै ।
जौलौं करै आवन, विनोद-बरसावन वे,
तौलौं रे डरारे बजमारे घन घोरि लै ॥ ५७६ ॥

★

घूँमि कै चहूँघा धाइ आवैं जलधर-धार,
तड़ित-पताके बाँके नभ मे पसरिगे ।
'द्विजदेव' कालिंदी समीपन के, नीपन के,
पात-पात जुगनू-जमातनि तें भरिगे ॥
चातक, चकोर, मोर, दादुर सुभट जोर,
निज-निज दाँव ठाँव-ठाँवन में अरिगे ।
बिन जदुराइ अब कीजै कहा माइ हाइ !
पावस महीप के चहूँघाँ घेरे परिगे ॥ ५८० ॥

★

घहरि-घहरि घन ! सघन चहूँघाँ घेरि,
छहरि-छहरि बिष-बूँद बरसावै ना ।
'द्विजदेव' की सौं अब चूकि मत दाँव अरे,
पातकी पपीहा तू पिया की धुनि गावै ना ॥
फेरि ऐसौ औसर न ऐहै तेरे हाथ अरे,
मटकि-मटकि मोर सोर तू मचावै ना ।
हौं तौ बिन-प्रान, प्रान चाहति तज्यौई अब,
कत नभचंद ! तू अकास चढ़ि धावै ना ॥ ५८१ ॥

★

कैसें हु सीत के द्यौस टरे, बहुरै सुधि कीन्हैं सुधि हू बिसरैगी ।
ग्रीषम में बहराइ कै राखी, इतौ कोऊ धीरज और धरैगी ॥
आए न लाल अजौं कवि 'बीर', सु याकौ उपाइ कहा धौं करैगी ।
खाइ दरार रही छतियाँ, अब पानी परैं अरराइ परैगी ॥५८२॥

चंचला चमंकै चहूँ ओरन तें चाह भरी,
चरजि गई ती, फेरि चरजन लागी री ।
कहै 'पद्माकर' लवंगन की लौनी लता,
लरजि गई ती, फेरि लरजन लागी री ॥
कैसें धरौं धीर बीर ! त्रिविधि समीर तब,
तरजि गई ती फेरि तरजन लागी री ।
घुँमडि घमंड-घटा-घन की घनेरी अवै,
गरजि गई ती, फेरि गरजन लागी री ॥५८३॥

★

मेरे मन भावन न आए सखि ! सावन मे,
तावन लगी है, लता लरजि-लरजि कै ।
बूँदैं कबौं रूदै, कबौं धारैं हिय फारैं दैया !
बीजरी हू बारै, हारी बरजि-बरजि कै ॥
'ग्वाल कवि' चातकी परम पातकी सों मिलि,
मोर हू करत सोर तरजि-तरजि कै ।
गरजि गए जे घन, गरजि गए हैं भला,
फेर ए कसाई आए गरजि-गरजि कै ॥५८४॥

★

सरद-ससी तें अधससी ह्वै बची हौं, कवि-
'चिंतामनि' तिमि हिमि-सिसिर झमक तें ।
मारत मरूके बची बधिक बसंत हू तें,
पावक-प्रचार बची, ग्रीषम-तमक तें ॥
आयौ पापी पावस ये, प्रान अकुलान लाग्यौ,
भयौ री असान घोर घन के घमक तें ।
ताप तें तचौंगी, जो पै अमिय अचौंगी आली !
अब ना बचौंगी चपलान की चमक तें ॥५८५॥

★

बन गाजन दै री चकोरन-मोरन, आज इन्हें गजिवौई परौ ।
छिति छाजन दै री लवंग-लतान कों, जौ पै तिन्हैं छजिवौई परौ ॥
सब आज लौं गाहक जाके हुते, वह स्वाँग हमैं सजिवौई परौ ।
प्रिय-प्रान के नेह लगालगी में, अब प्रान हमें तजिवौई परौ ॥५८६॥

पावस । प्रथम पिय ऐबे की अवधि सो जो,
आवत ही आवै तौ बुलाऊँ अति आदरनि ।
नाहीं तौ न हील होन दै री झील झावरनि,
ग्रीषमहि राख, खाली भाख खल खादरनि ॥
बीजुरी बरज, कहुँ मेघ न गरज, इन-
गाज मारे मोर-मुख मोरि री निगादरनि ।
कठ रोकि कोकिलनि, चौंच नौंचि चातकनि,
दूर कर दादुर, बिदा कर री बादरनि ॥२८७॥

★

कैधौं मोर सोर तजि अनत गए री भाजि,
कैधौं उत दादुर न बोलत हैं ए दई !
कैधौं पिक-चातक बधिक काहू मारि डारे,
कैधौं बक-पाँति उत अतगनि ह्वै गई ॥
'आलम' कहत आली आज हू न आए कत,
कैधौं उत रीत बिपरीत बिधि नें छई ।
मदन महीप की दुहाई फिरवै तें रही,
जूझि गए मेघ, कैधौं बीजुरी सती भई ॥२८८॥

★

दूरि जदुराई 'सेनापति' सुखदाई देखौ,
आई रितु पावस, न पाई प्रेम-पतियाँ ।
धीर जलधर की सुनति धुनि, धरकी सु-
दरकी सुहागिनि की छोह भरी छतियाँ ॥
आई सुधि वर की, हिए मे आनि खरकी,
सुमिरि प्रानप्यारी वह प्रीतम की बतियाँ ।
बीती औधि आवन की, लाल मनभावन की,
डग भईं बामन की सामन की रतियाँ ॥२८९॥

★

दै कहि बीर ! सिकारिन कों, इहि बाग न कोकिल आवन पावै ।
मूँदि झरोखनि मंदिर के, मलयानिल आइ न छावन पावै ॥
आए बिना 'रघुनाथ', बसत कौ ऐबौ न कोऊ सुनावन पावै ।
प्यारी कों चाहौ जिवाओ, धमार तौ गाँव कौ कोऊ न गावन पावै ॥२९०॥

लागत बसंत के सु पाती लिखी पीतम कों,
प्यारी परबीन कै हमारी सुधि आनिबी ।
कहै 'पदमाकर' इहाँ कौ यों हवाल, बिर-
हानल की ज्वाल, सो दावानल तें मानिबी ॥
उबकी उसासन कौ पूरौ परकास, सो तौ-
निपट उदास पौंन ही तें पहिचानिबी ।
नैंनन कौ ढंग सो अभंग पिचकारिन तें,
गातन कौ रंग पोरे पातन तें जानिबी ॥५९१॥

★

कूकि-कूकि कोकिल चलाइ हैं अचूक चोट,
पातकी पपीहा ए बिथा के गीत गाइ हैं ।
'द्विजदेव' तैसेंई सरस सुख पाऐं वायु,
जम के पठाए छिति-छोर लगि छाइ हैं ॥
ऊधौ ! देखि ऊधम इते पर पलासन कौ,
बापुरी बियोगिनैं सु कैसैं कल पाइ हैं ।
ऐसे मधु मास के समागम-समैं में न जो,
प्यारे मधुसूदन हमारे घर आइ हैं ॥५९२॥

★

मंजुल मलिंद गुंजैं मंजरीन मंजु-मंजु,
मुदित मुरैली अलबेली डोलैं पात-पात ।
तैसोई समीर सुभ सौभै कवि 'द्विजदेव',
सरस असम-सर बेधन बियोगी-गात ॥
चौंथतीं चकोरनी चहूँघाँ चारु चाँदनीनि,
चारयौं घाँईं चतुर चकोर तैं चहचहात ।
धीर ना धरात, चित्त चौगुनौं पिरात आली !
कंत बिनु हाय ! दिन ऐसैंई सिरात जात ॥५९३॥

★

सोंधे की बास उसासहिं रोकत, चंदन दाहक गाहक जी कौ ।
नैंननि बैरी सो ह्वै री गुलाल, अबीर उड़ावत धीरज ही कौ ॥
राग बिराग, धमार त्यों धार सी, लौटि परयौ ढंग यों सब ही कौ ।
रंग रचावन जान बिना 'घनआनँद' लागत फागुन फीकौ ॥५९४॥

भूले-भूले भौंर बन भाँवरैं भरेंगे चहूँ,
फूलि-फूलि किंसुक जके से रहि जाइ है ।
'द्विजदेव' की सौं वह कूँजनि बिसारि कूर,
कोकिल कलंकी ठौर-ठौर पछिताइ है ॥
आवत बसंत के न ऐहैं जो पै स्याम तौ पै,
बावरी ! बलाइ सौं, हमारें हू उपाइ है ।
पी हैं पहिलेई ते हलाहल मँगाइ, या—
कलानिधि की एकौ कला चलन न पाइ है ॥५९५॥

★

फूले घने तरु-जाल विलोकि, हुते कछु सूधे सुभाइ ससे री ।
आगि सी लागि पलासन देखि, तऊ भय सों कहूँ भागि बचे री ॥
छूटे सँचान से ए अब तौ, 'द्विजदेव' चहूँ दिसि कोकिल बैरी ।
ह्वै है कहा सजनी ! अबधौं, बचिहै केहि भाँति सों प्रान-पखेरी ॥५९६॥

★

सग सखी के गई अलबेली, महा सुख सों बन-बाग बिहारन ।
बाढ़े वियोग विलास गए द्रव, देखत ही वै पलास की डारन ॥
जानि बसंत औ कत बिदेस, सखी लगी बावरी-सी ह्वै पुकारन ।
च्वै चलि हैं चुरियाँ चलि आउ री, आँगुरियाँ जन लाउ अँगारन ॥५९७॥

★

किंसुक झार, कुसुमित डारि दै, झार बयारि बहै जो रँबारन ।
आग लगी है कहूँ बिन काज, न मैं हूँ सुनी-समुझी रितुराजन ॥
तेरी सौं तोहि डरौं मैं 'मुबारक', सीरी करौं सखी पै जलधारन ।
च्वै चलि हैं चुरियाँ चलि आउ री, आँगुरियाँ जन लाउ अँगारन ॥५९८॥

★

आयौ बसंत दहंत सखी, घर आए न नाह, न पाए सँदेसे ।
कोकिल कूँकि उठी चहुँ ओरि ते, हूँकि उठी हिय कूक सो लेसे ॥
याही तें जीय डरै 'मधुसूदन', जाति नही बन वाही अँदेसे ।
फूलि पलास रहे जित-ही-तित, लोहू भरे नख नाहर जैसे ॥५९९॥

★

झूरि से कौनैं लए बन-बाग, ऐ कौनैं जु आँवन की हरिआई ।
कोइल काहैं कराहति है बन, कौनैं चहूँ दिसि धूरि उड़ाई ॥
कैसी 'नरेस' बयारि बहै यह, कौन धौं कौन सों माहुर नाई ।
हाय ! न कोऊ तलास करै, ए पलासन कौनैं दबारि लगाई ॥६००॥

परकीया प्रोषितपतिका

कहा कहिऐ कहिवे की नहीं, मग जोवत-जोवत ज्वै गयौ है ।
उन तोरत बार न लाई कछू, तन तें वृथा जोबन ख्वै गयौ है ॥
कहि 'ठाकुर' कूबरी के बस ह्वै, रस मे बिष बावरौ ब्वै गयौ है ।
मनमोहन कौ हिलिबौ-मिलिबौ, दिन चारिक चैत सौ ह्व गयौ है ॥६०१॥

★

पर काजहिं देह को धारै फिरौ, परजन्य जथारथ ह्वै दरसौ ।
निधि-नीर सुधा के समान करौ, सबई विधि सज्जनता सरसौ ॥
'घनआनँद' जीवनदाइक हौ, कछु मेरीउ पीर हियें परसौ ।
कबऊ वा बिसासी सुजान के आँगन, मो अँसुआँन कौं लै बरसौ ॥६०२॥

★

ए ! बीर पौन ! तेरौ चहुँ ओर गौन,
तो सौ और कौन, मनै ढरकौंही बानि दै ।
जगत के प्रान, ओछे-बड़े सो समान,
'घनआनँद' निधान सुख-दान दुखियान दै ॥
रूप उजियारे, गुन वारे, वे सुजान प्यारे,
अब ह्वै अमोही बैठे पीठि पतियान दै ।
बिरह-बिथा की मूरि, आँखिन मे राखौं पूरि,
धूरि तिन पाँइन की हा ! हा ! नेंक आन दै ॥६०३॥

★

वे बतियाँ छतियाँ लहकैं, दहकैं बिरहागिन की उर आँचैं ।
वा बँसुरी कौ परयौ रसु री, इन कानन मौहन मंत्र से माँचैं ॥
कौलगि ध्यान धरैं मुनि लौं रहिऐ, कहिऐ गुन वेद से वाँचैं ।
सूझत ना सखि ! आन कछू, निमि-दोस वेई अँखिआँन मे नाँचैं ॥६०४॥

★

काऊ सो माई कहा कहिऐ, सहिऐ जु सोई 'रसखान' सहावैं ।
नैम कहा, जब प्रेम कियौ, तब नाँचिऐ सोई, जो नाँच नचावैं ॥
चाहत हैं हम और कहा सखि ! क्यों हू कहूं पिय देखन पावैं ।
चेरीय सो जु गुपाल रच्यौ, तौ चलौ री, सबै मिलि चेरि कहावैं ॥६०५॥

★

जिन बोल सुबोल अमोल सबै, अँग केलि कलोलन मोल लिए ।
जिनको चित लालची लोचन रूप, अनूप पियूष सु पीय जिए ॥
जिनके पद 'केसव' पानि हिए, सुख मानि सबै दुख दूर किए ।
तिनको सँग फूटत ही फिट रे ! फटि कोटिक टूक भयौ न हिए ॥६०६॥

लगी अंतर में, करै बाहर को, बिन जाहर कोऊ न मानतु है ।
दुख औ सुख, हानि औ लाभ सबै, घर की कोउ बाहर भानतु है ॥
कवि 'ठाकुर' आपनी चातुरी सों, सब ही सब भाँति बखानतु है ।
पर बीर ! मिलै-बिछुरै की बिथा, मिलिकै बिछुरै सोई जानतु है ॥६०७॥

*

बाढ्यौ करै दिनई छिनई-छिन, कोटि उपाउ करौं न बुझाई ।
दाहन लाज, समाज-सुखै, गुरु की भय, नींद सबै सँग लाई ॥
छीजन देहके संग मे प्रान हू, हा ! 'हरिचद' करौं का उपाई ।
क्यों हू दुझै नहिं आँसू के नीरन, लालन ! कैसी दबारि लगाई ॥६०८॥

इन दुखियान को न चैन सपनेहु मिल्यौ
तासों सदा व्याकुल बिकल अकुलाँयगी ।
प्यारे 'हरिचंदजू' जी की बीती जानि औधि,
प्रान चाहत चलै पै एतौ संग ना समाँयगी ॥
देख्यौ एक बार हू न नैंन भरि तोहि, याते -
जौन- तौन लोक जैहैं, तहाँ पछिताँयगी ।
बिना प्रानप्यारे भए दरस तुम्हारे, हाय !
मरे हू पै आँखैं ए खुली ही रह जाँयगी ॥ ६०९ ॥

*

ब्रजबासी बियोगिन के घर में, जग छोड़ि कै क्यों जनमाई हवै ।
मिलिबौ बड़ी दूरि रह्यौ 'हरिचद', दई इक नाम-धराई हमै ॥
जग के सिगरे सुख सो ठगि कै, सहिबे को यही है जिवाई हमै ।
केहि बैर सो हाय दई बिधिना ! दुख देखिबे ही कों बनाई हमैं ॥६१०॥

*

रोवै सदा नित की दुखियाँ, बलि ! ए अँखियाँ जिहि द्यौस सो लागी ।
रूप दिखाओ इन्हैं कबहू, 'हरिचंदजू' जानि महा अनुरागी ॥
मानि हैं औरन सों नहिं ए, तुम रग रँगी, कुल-लाजहि त्यागी ।
आँसुन कों अपने अँचरान सो, लालन ! पौंछि करौ बड़ भागी ॥६११॥

*

बरुनीन में नैंन झुकैं-उझकैं, मनों खजन प्रेम के जाले परे ।
दिन औधि के कैसे गनौं सजनी ! अँगुरीन के पोरन छाले परे ॥
कवि 'ठाकुर' ऐसौ कहा कहिऐ, निज प्रीति किए के कसाले परे ।
जिन लालन चाह करी इतनी, तिन्हैं देखिबे के अब लाले परे ॥६१२॥

अंतर हौ, किधौं अंत रहौ, दृग फारि फिरौं कै अभागिन भीरौं ।
आगि जरौं अकि पानि परौं, अब कैसी करौं, हिय का विधि धीरौं ॥
जो 'घनआनंद' ऐसी रुची, तौ कहा बस है अहा ! प्राननि पीरौं ।
पाऊँ कहाँ हरि हाय ! तुम्हें, धरनी मे धँसौं, कै अकासहि चीरौं ॥६१३॥

★

जकि-जकि जात गात लेखनी लखत नैंन,
थकि-थकि जात पेखि पंकज के पात री ।
भरि-भरि आवै देह नेह क झकोर जोर,
करि-करि आवत न क्यों हूँ मुख बात री ॥
ए री मेरी बीर ! पीर बिरह-बिथा की अंग,
कैसैं हू न काहू सों कछूक कहि जात री ।
कीनै कहा राम ! काम बैरी की अकस मोहिं,
झूठैं हू संजोग की न जोग दरसात री ॥६१४॥

★

लाखनि भाँति भरे अभिलाषनि, कैं पल पाँवडे पंथ निहारे ।
लाडिली आवनि लालसा लागि, न लागत है मन मे पन धारें ॥
यों रस भीजे रहे 'घनआनंद', रीझे सुजान सुरूप तिहारे ।
चायनि बावरे नैंन कबै, अँसुआँनि सो रावरे पाँय पखारे ॥६१५॥

★

धूँधुरित धूरि धुरवाँन की सु छाई नभ,
जलधर-धारा धरा परसन लागी री ।
'द्विजदेव' हरी भरी ललित कछारै ह्वै,
कदंबन की डारैं रस-बरसन लागी री ॥
कालि ही ते देखि बन-बेलिन की बनक,
नवेलिन की मति अति अरसन लागी री ।
बेगि लिखि पाती, वा सँघाती मनमोहन कों,
पावस-अवाती ब्रज दरसन लागी री ॥६१६॥

★

वा मुसकानि पै प्रान दियौ, जिय-जान दियौ वह तान पै प्यारी ।
मान दियौ मन-मानिक के सग, वा मुख मंजु पै जोबन वारी ॥
बातन की 'रसखान' पै री, तन ताहि दियौ नहिं आनि विचारी ।
सो मुख मोड़ि करी अब का, हहा लाल ! लै आज समाज मे ख्वारी॥६१७॥

बहुत दिनानि की अवधि आस-पास परे,
खरे अबरनि भरे हैं उड़ि जान कौं ।
कहि-कहि आवन संदेसौ मन-भावन कौ,
गहि-गहि राखत हौं दै-दै सनमान कौं ॥
झूठी बतियान के पत्यान तें उदास ह्वै कै,
अब न धिरत 'घनआनँद' निदान कौं ।
अधर लगे है आनि, करकै पयान प्रान,
चाहत चलन ये संदेसौ लै सुजान कौं ॥६१८॥

★

अब मति दै री कान, कान्ह की बसीठिन पै,
झूठे-झूठे प्रेम के पतौवन को फेरि दै ।
उरझि रही ती जो अनेक पुरखा तें सोऊ,
नाते की गिरह मूँदि नैननि निवेरि दै ॥
मरन चहनि काहू छैल पै छबीली कोऊ,
हाथन उँचाइ ब्रज-बीथिन मे टेरि दै ।
नेह री कहाँ कौ, जरि खेह री भई तौ मेरी,
देह री उठाइ, बाकी देहरी पै गेरि दै ॥६१९॥

★

तेरी बाट हेरत हिराने औ पिराने पल,
थाके ये बिकल नैना ताहि नपि-नपि रे ।
हिए मे उदेग-आगि लागि रही रात-द्यौस,
तोहि को अराधौं, जोग साधौं तपि-तपि रे ॥
जान 'घनआनंद' यों दुसह दुहेली दसा,
बीच परि-परि प्रान पिसे चपि-चपि रे ।
जीव तें भई उदास, तऊ है मिलन आस,
जीवहिं जिवाऊँ नाम तेरौ जपि-जपि रे ॥६२०॥

★

राधे कही है कि तैं छमियौ ब्रजनाथ ! कितै अपराध किए मैं ।
कानन तानन भूलत ना छिन, आँखिन रूप अनूप पिए मैं ॥
आपने ओछे हिए में दुराइ, 'दयानिधि' देव बसाइ लिए मैं ।
हौं ही असाध बसी न कहूँ, पल आध अगाध तिहारे हिए मैं ॥६२१॥

तब तौ छवि पीवत जीवत हे, अब सोचनि लोचन जात जरे ।
हिन पोषकै तोष ु प्रान पले, बिललात महा दुख-दोष भरे ॥
'घनआनंद' मीत सुजान बिना, सब ही सुख-साज-समाज टरे ।
तब हार पहार से लागत हे, अब आनिकै बीच पहार परे ॥६२२॥

★

जा थल कीन्हे बिहार अनेकन, ता थल काँकरी बैठि चुन्यौ करैं ।
जा रसना तें करी बहु बातन, ता रसना सों चरित्र गुन्यौ करैं ॥
'आलम' जौन से कुंजन में करी केलि, तहाँ अब सीस धुन्यौ करैं ।
नैंनन में जे सदा रहते, तिनकी अब कान कहानी सुन्यौ करैं ॥६२३॥

★

जिय सूधी चितौन की साध रही, सदा बातन में अनखाइ रहे ।
हँसिकै 'हरिचंद' न बोले कबौं, मन दूर ही सों ललचाइ रहे ॥
नहिं नैंक दया उर आवत क्यों, करिकै कहा ऐसे सुभाइ रहे ।
सुख कौन सौ प्यारे ! दियौ पहिलै, जेहि के बदले यों सताइ रहे ॥६२४॥

★

बावरी ह्वै जाती बार-बार कहि वेदन कों,
बिलखि-बिलखि जो बिहार-थल रोती ना ।
पीर उठै हियरौ हमारौ टूक-टूक होत,
ध्याइ प्राननाथ जो कसक निज खोती ना ॥
'हरिऔध' प्यारे के पधारि गए परदेस,
नैंन नमि जात, जो सपन सँग सोती ना ।
तन जरि जातौ, जो न अँसुआँ ढरत आली !
प्रान कढ़ि जातौ, जो प्रतीत उर होती ना ॥ ६२५ ॥

★

सामान्या प्रोषितपतिका

आवत अनेक और आवेंगे घनेई, वैसौ-
कौन धौं रिझावेगौ, सुधा सी तान गावेगौ ।
'सोमनाथ' फूलन के गहने बनाइ चारु,
अंग, सरसावेगौ, अनंग उपजावेगौ ॥
रात परजंक पै निसंक नित चाँदनी में,
छतियाँ लगावेगौ, बियोगहि बुझावेगौ ।
सुख कौ दिवैया वह प्यारौ परदेसन तें,
फेर कब आवेगौ री सखि ! धन लावेगौ ॥ ६२६ ॥

(१०) **आगतपतिका**—अपने प्रियतम के आगमन पर प्रसन्न होने वाली नायिका 'आगतपतिका' कहलाती है* ।

मुग्धा आगतपतिका

चारक दिना तें रीति नई उनई है कछू,
कौन यह वेदन भई है तन-मई है ।
आँख बाँहि बाईं लई फरकनि-बानि दई !
कई घरी बीत जात येकें ठीक ठई है ॥
'ग्वाल कवि' सुनई सखी नें सुगुनई सब,
आवई विदेस तें, बलम सुखदाई है ।
सुनत सिकुर गई, गरे सों निहुर गई,
तरें को नजर भई, चुप परि गई है ॥६७॥

---

* (१) बहु दिन बिते बिदेस तें, जाको आवै कंत ।
'आगतपतिका' नाइका, ताहि कहत मतिवंत ॥
—"रसिकविनोद"

(२) केशवदास और चिंतामणि ने 'आगतपतिका' का कथन नहीं किया है ।

(३) देव, दास और रसलीन ने अन्य नायिकाओं में 'आगतपतिका' का उल्लेख न कर उसका पृथक् वर्णन किया है ।

(४) दास ने संयोग शृंगार के अंतर्गत वासकसज्जा' में 'आगतपतिका' का उल्लेख किया है । यथा—

पिय-आगम परदेस तें, 'आगतपतिका' भाउ ।
है वासकसज्जादि मे उहै, बढ़ै चित चाउ ॥
—"शृंगारनिर्णय"

(५) दास और रसलीन आदि कई आचार्यों ने 'आगतपतिका' से पृथक् 'आगमिष्यत्पतिका' का भी उल्लेख किया है । जिसका नायक आने वाला हो, उसे 'आगमिष्यत्पतिका' और जिसका नायक आ गया हो, उसे 'आगतपतिका' लिखा गया है, किंतु मतिराम, पद्माकर आदि ने दोनों प्रकार की नायिकाओं को 'आगतपतिका' ही माना है ।

(६) रसलीन ने 'आगतपतिका' के अंतर्गत 'संयोग गर्विता' भी लिखी है ।

आए, कह्यौ काहू आइ कहूँ तें, उहीं चितवै चित चाहि बिमेखै ।
आनँद के अँसुआँ ढरकैं, फरकै सु हियौ, सु कछू लखि लेखै ॥
औचकई चित चौंकि चहूँ दिसि, आगम सों उमगी अवरेखै ।
घूँघट ओट किऐं दृग-कोरन, द्वार की ओट दुरै-दुरै देखै ॥६२८॥

★

रचि भूषन आइ अलीन के संग तें, सासु के पास बिराजि गई ।
मुखचंद-मऊपनि सों 'ससिनाथ', सबै घर में छवि छाजि गई ॥
इनकौ पति ऐहै सबार, सखी कह्यौ, यों सुनि कै हिय लाजि गई ।
सुख पाइकै, नार नबाइ तिया, मुसक्याइ कै भौंन मे भाजि गई ॥६२९॥

★

आयौ बिदेस तें प्रानपिया, 'मतिराम' अनद बढाइ अलेखै ।
लोगन सो मिलि आँगन बैठि, घरी ही घरी सिगरौ घर देखै ॥
भीतर भौंन के द्वार खरी, सुकुमार तिया न१ कंप बिसेखै ।
घूँघट कौ पट ओट दिऐं, पट-ओट किऐं, पिय कौ मुख देखै ॥६३०॥

★

मध्या आगतपतिका

दूरि भई कमिकैं कवि 'बीर', जे जी मे तबै नटसाल सी साली ।
मैन-बियोग तगीर कह्यौ, अबला यों लिखाइ संयोग-बिहाली ॥
आवत ही बनमाली बिदेस तें, बाल की ओर लखैं सब आली ।
वा पिअराई में आइकै आज, चढी कछु और ही भाँति की लाली ॥६३१॥

★

आँगन बैठी सुन्यौ पिय-आवन, चित्त झरोखन में लरक्यौ परै ।
'देवजू' घूँघट के पट हू मे, समाति न फूल्यौ हियौ फरक्यौ परै ॥
नैनन तें सुख के अँसुआँ मनो भौंर सरोरुह तें सरक्यौ परै ।
मंद हँसै, दुति दंत लसै, मुख सुंदर दाडिम सौ दरक्यौ परै ॥६३२॥

★

नँदगाँम तें आइगौ नदलला, लखि लाडिली ताहि रिझाइ रही ।
मुख घूँघट घालि सकै नहिं माइकें, माइ के पीछैं दुराइ रही ॥
उचकैं कुच-कोरन की 'पदमाकर', ऐसी कछू छवि छाइ रही ।
ललचाइ रही, सकुचाइ रही, सिर नाइ रही, मुसुक्याइ रही ॥६३३॥

★

बिछुरैं जिए सँकोच यह, मुख तें कहत न बैंन ।
दोऊ दौरि लागे हिऐं, किऐं निचौहैं नैंन† ॥ ६३४ ॥

---

† बिहारी

प्रौढ़ा और तपतिका

रास-बियोग की ताप, मलीन महा, दुति देह सु छीन तिया की ।
पंकज-सौ मुख गौ मुरझाइ, लगैं लपटैं बिरहागि हिया की ॥
तैसई आवत कान्ह सुने, हुलसी सु तनो नरकी अँगिया की ।
यों जगि जोति उठी तन की, उकसाइ दई मानौ बाति दिया की ॥६३५॥

★

आवन सुन्यौ है मनभावन कौ भामिनी,
सु नैनन अनंद-आँसू ढरकि-ढरकि उठे ।
'देव' दृग दोऊ दौरि जाति द्वार देहरी लौं,
बारी सी साँसें खरी खरकि-खरकि उठे ॥
टहलै करत, टहलैं न हाथ-पाँइ,
रंग महलै हू निहारि, तनी तरकि-तरकि उठे ।
सरकि-सरकि सारी, ढरकि-ढरकि आँगी,
औचक उचौ हैं कुचि फरकि-फरकि उठैं ॥ ६३६ ॥

★

ललित लजीली आउ ललिता-बिसाखा हू सों,
नैनन कों मूँदि कर सैनन करत फिरैं ।
आए ब्रजचंद चंद्रावलि के सुनाए सुनि,
चंदमुखी धाइ प्रीति-पाँउडे धरत फिरैं ॥
'देव' ब्रज-देवी-देव-देवता मनाइ,
मन ही मन निछावरि ह्वै भाँवरी भरत फिरैं ।
गोकुल-गुसाँइन कुँवरि ठकुराइन सों-
गोपी-गोप-राइन के पाँइन परनि फिरैं ॥ ६३७ ॥

★

धाई खोरि-खोरि तें बधाई पिय-आगम की,
सुनि-सुनि कोरि-कोरि भाँवरैं भरति है ।
मोरि-मोरि बदन निहारनि बिहार-भूमि,
घोरि-घोरि आनंद घरी-सी उघरति है ॥
'देव' कर जोरि-जोरि बंदत सुरन, गुर-
लोगन के लोरि-लोरि पाँइन परति है ।
तोरि-तोरि मोतिन के हार पूर चौकन,
निछावरि कों छोरि-छोरि भषन धरति है ॥ ६३८ ॥

बादि ही चंदन चारु घसै, घनसार घनौं घिसि पंक बनावत ।
बादि उसीर समीर चहैं, दिन-रैनि पुरैनि के पात बिछावत ॥
आप ही ताप मिटी 'द्विजदेव', सुदाघ-निदाघ की कौन कहावत ।
बावरी ! तू नहिं जानति आजु, मयंक लजावत मौहन आवत ॥६३९॥

*

आजु दिन कान्ह-आगमन के बधाए सुनि
छाए मग फूलनि, सुहाए थल-थल के ।
कहै 'पदमाकर' त्यों आरती उतारिबे कों,
थारन में दीप हीरा-हारन के छलके ॥
कंचन के कलस भराए भूरि पन्नन के,
ताने तुंग तोरन तहाँई झलाझल के ।
पौरि के दुवारे तें, लगाइ केलि-मंदिर लौं,
पदमिनी पाँवड़े पसारे मखमल के ॥ ६४० ॥

*

छाई रही अबला-मन में, धुरवान कौ धावन देख उदासी ।
'श्री हरिऔध' हू आए विदेस सों, आइ कही इतने हि में दासी ॥
आनँद के अँसुआँन बहे, अकुलाइ कै दौरि चली चपला सी ।
लाल के अंग-तमाल सों जाइ, रही लपटाइ लबंगलता सी ॥६४१॥

*

पैंजनी गढ़ाय, चौंच सौने सों मढ़ाय हौं
कर पर लाय, पर रुचि सों सुधरि हौं ।
कहै कवि 'तोष' छिन अटक न लैहौ कबौं,
कंचन कटोरे अटा खीर भरि धरि हौं ॥
ए रे कारे काग ! तेरे सगुन सजोग आजु,
मेरे पति आवैं, तौ बचन तें न टरि हौं ।
करती करार, तौन पहिलें करौंगी सब,
आपने पिया को फिरि पाछैं अंक भरि हौं ॥६४२॥

*

दाम बाहु फरकत मिलैं, जो हरि जीवन-मूरि ।
तौ तोहें सो भेंटि हौं, राखि दाहिनी दूरि† ॥ ६४३ ॥

† बिहारी

परकीया आगतपतिका

आली ! बहु बासर बिताए ध्यान धरि-धरि,
तिनकौ सुफल नैंन दरसन पावेंगे ।
होत हैं री सगुन सुहावने प्रभात ही तें,
अंगन में अधिक विनोद सरसावेंगे ॥
'सोमनाथ' हरैं-हरैं बतियाँ अनूठी कहि,
गूढ़ बिरहानल की तपनि बुझावेंगे ।
सबही तें प्यारे प्रान, प्रानन तें प्यारे पति,
पति हू तें प्यारे ब्रजपति आज आवेंगे ॥६४४॥

★

एकै चले रस-गोरस लै, अरु एकै चले मग फूल बिछावत ।
त्यों 'पदमाकर' गावत गीत, सु एकै चले उर आनँद छावत ॥
यों नँदनंद निहारिवे कों, नँदगाँव के लोग चले सब धावत ।
आवत कान्ह बने बन तें, वर प्रान परे-से परौसिन पावत ॥६४५॥

★

सामान्या आगतपतिका

नागर विदेस में बिताइ बहु द्यौस आयौ,
नागरी के हिय मे हुलासन की खान की ।
कवि 'मतिराम' अंक भरत मयंकमुखी,
नेहै सरसाइ मति मोही सुखदानि की ॥
सु बरन बोलिकै बतावति है सुबरन,
हीरन बतावति है छवि मुसकान की ।
आँखिन तें आनँद के आँसू उमगाइ प्यारी,
प्यारे कों दिवावति सुरति मुकतान की ॥६४६॥

★

उज्जल अनूप नीर न्हाइ कै नगर-नारि,
पहरे दुकूल सरसानी रति-बेस तें ।
'सोमनाथ' कहै आछौ अतर लगायौ तैसौ,
छहरी सुगंध चारु चंपक सुदेस तें ॥
प्रातई तें और रसिकन कों जवाब दीनौं,
हँसति कहत बात, निबरी कलेस तें ।
संक तजि सुंदरी बिछाएँ परजंक आजु,
धन कौ दिवैया सुनि आवत विदेस तें ॥६४७॥

षष्ठम परिच्छेद

गुणानुसार नायिकाएँ

★

नायिकाओं के गुणानुसार तीन भेद होते है—

१–उत्तमा, २–मध्यमा, ३–अधमा † ।

(१) **उत्तमा नायिका**—अपने प्रियतम का दोष जान कर भी रुष्ट न होने वाली और अपने प्रति उसका अहित देख कर भी उसका हित करने वाली नायिका को 'उत्तमा' कहते है* ।

जाकौ जावक सिर धरयौ, प्यारे सहित सनेह ।
हमकौं अंजन उचित है, तिन चरनन की खेह ॥ ६४८ ॥

---

† (१) अनहित सों हित उत्तमा', सम सों सम 'मधि' जानि ।
'अधमा' हित हू सों न हित, तानों तिय पहिचानि ॥
—"रसविलास"

(२) 'उत्तम' मान बिहीन है, लघु-मध्यम मधि' मान ।
बिनऽपराधई करत है, 'अधम' नारि गुरु मान ॥
—"शृंगारनिर्णय"

(३) प्रायः सभी आचार्यों ने अन्य नायिकाओं का कथन कर सब के अंत मे गुणानुसार उत्तमादि नायिकाओ का वर्णन किया है किंतु 'हरिऔधजी' ने अपने आधुनिक ग्रंथ 'रस-कलस' मे नायिकाभेद का वर्णन करते हुए आरभ मे ही, केवल 'जाति अनुसार' वर्ग के उपरांत इनका वर्णन 'प्रकृति अनुसार' वर्ग के अंतर्गत किया है । इसके साथ ही उत्तमा और मध्यमा के नवीन उपभेदों के रूप मे 'देशप्रेमिका' आदि नवीनतम नायिकाएँ, उनकी उद्भावनाएँ है ।

(१) पिय-औगुन लखि, सपनेउ रचइ न रोष ।
सुभग 'उत्तमा' तिय, तन–मन निरदोष ॥
— 'महेश्वरविलास"

(२) हरिऔध जी ने अपने 'रसकलस' मे उत्तमा नायिका के अंतर्गत निम्न-लिखित नवीन नायिकाओं का कथन किया है –

१–पति-प्रेमिका, २–परिवार-प्रेमिका, ३–जाति-प्रेमिका, ४–देश-प्रेमिका, ५–जन्मभूमि-प्रेमिका, ६–निजतानुरागिनी ७–लोक-सेविका, ८–धर्म-प्रेमिका।

हमकों तुम एक, अनेक तुम्हैं, उनहीं के विवेक बनाइ बहौ ।
इत चाह तिहारी बिहारी, उतै सरसाइ कै नेह सदा निबहौ ॥
अब कीवौ 'मुबारक' सोई करौ, अनुराग-लता जिन बोइ दहौ ।
घनस्याम ! सुखी रहौ आनँद सों, तुम नीके रहौ, उनही के रहौ ॥६४९॥

*

रस में विवस ह्वै कै 'सेखर' बिताई रात,
लागे रति-चिह्न चारु अंगन अछेह सों ।
परत न सूधे पग, आलस-बलित बेस,
आवत विलोकि और भाँमती के गेह सों ॥
आदर सों उठिकै सहेलिन सों आगें जाइ,
लागे उर-दागन दुराए निज देह सो ।
धूर भरे प्रीतम के चरन-सरोज प्यारी-
पौंछै निज अंचल के छोरन सनेह सों ॥ ६५० ॥

*

केसरि सों उबटौ सब अंग, बडे मुकतान सों माँग सम्हारी ।
चारु सुचंपक हार हिऐं, उर ओछे उरोजन की छवि न्यारी ॥
हाथ सों हाथ गहैं कवि 'देव', सु साथ तिहारेई नाथ ! निहारी ।
हा हा ! हमारी सौं साँची कहौ, वह कौन ती छोहरी छीबर वारी ॥६५१॥

*

चंदमुख की ही बनी रहति चकोरिका है
सरस सनेह स्वाँति बूँद की है चातकी ।
प्यारौ तन-कारौ करि राखति नयन-तारौ,
बारति गोराई वा पै गोरे-गोरे गात की ॥
'हरिऔध' औगुनी कौ औगुन हू गुन होत,
देति है कुब्ज त हू कों उपमा नवात की ।
पात लौं हिलति, पवि-पात सिर पै है होत,
पातक-निरत पति हू कों कहे पातकी ॥ ६५२ ॥

*

माथैं महाबर पाँइ कौ देखि, महाबर पाइ सुढ़ार ढुरी ए ।
ओठन पै ठन वे अँखियाँ, पिय के हिय पैठ न पीक धुरी ए ॥
संग ही संग बसौ उनके, अँग-अँगन 'देव' तिहारें लुरी ए ।
साथ में राखिऐ नाथ ! उन्हैं, हम हाथ में चाहतीं चार चुरी ए ॥६५३॥

(२) मध्यमा नायिका—अपने प्रियतम का हित देख कर उसके साथ हित और उसका दोष देखकर मान करने वाली नायिका को 'मध्यमा' कहते हैं§ ।

अरुन उदोत आयौ करिकै बिहार, हेरि—
उपज्यौ हिए में हार, हारे रँग रति के ।
मान ठानि बैठी, तानि भृकुटी कमान चारु,
लाल भए लोचन लजीले बक गति के ॥
'सेखर' समीप जाइ सकुचि सँभारे स्याम,
रंग भरे बसन लली के प्रीति अति के ।
उमँगि अनंद अनुरागी अति प्रेम भरी,
लागी उर ललकि सलौनी प्रानपति के ॥ ६२४ ॥

★

साँझ समैं घर आए गुपाल, सो जाम के अंतर ही रतिया में ।
भारी बिनोदन सों भभरी, 'द्विजदेवजू' जौ लौं रची बतिया मे ॥
काम की जोति जगी कछु बीच ही, भूलि गई सिगरी घतिया मे ।
जैसी हुती रही वैसी धरी सखि ! नेह-भरी बतियाँ छतिया में ॥६२५॥

★

आयौ प्रानपति रात अनतैं बिताइ, बैठी—
भौंहन चढ़ाइ रँगी सुंदर सुहाग की ।
बातन बनाइ, परयौ प्यारी के चरन आइ,
छवि सों छिपाई छैल छवि रति-दाग की ।
छूटि गयौ मान, लगी आपुही सँबारन कों,
खिरकी सुकवि 'मतिराम' पिय-पाग की ॥
रिसई के आँसू रस-आँसू भए आँखिन में,
रोष की ललाई, सो ललाई अनुराग की ॥ ६२६ ॥

---

§ (१) पिय-अपराध लखैं, सुनै, करै मान जो कोइ ।
पुनि हित करति सु हित करै, नारि 'मध्यमा सोइ ॥
—"रसिकविनोद"

(२) 'हरिऔध जी' ने मध्यमा नायिका के दो भेद लिखे है—
१—व्यंग विदग्धा, २-मर्म पीड़िता ।

(३) अधमा नायिका—अपने प्रियतम के हित करने पर भी उसके साथ मान करने वाली नायिका को 'अधमा' कहते हैं‡।

हौं उरझाइ रिझाइवे कों, रसराग–कवित्तन की धुनि छाई।
त्यों 'पदमाकर' साहस कै, कबहू न विषाद की बात सुनाई॥
सापनेहु न कियौ अपराध, सु आपुने हाथन सेज बिछाई।
त्यों परि पाँइ मनाई जऊ, तऊ पापिनि कों कछु पीर न आई॥६५७॥

*

आयौ है सयानपन, गयौ है अयान, तऊ–
नित उठि मान करिवे की टेब पकरी।
घर–घर मानिनी हैं मानत मनाए तें वे,
तेरी ऐसी रीति और काहू मे न जकरी॥
कवि 'मतिराम' कामरूप घनस्याम लाल,
तेरे नैंन–कोर ओर चाहैं इक टक री।
हा हा कै निहोरे हू न हेरत हिरननैंनी!
काहे कों करत हठ हारिल की लकरी॥६५८॥

*

दबक्यौ रहै नाह गुनाह बिना, गुन गावै सदा मुख–आखर में।
अति सज्जन, साधु महा मन कौ, जु बिना अपराध धरै भरमें॥
सपनेहु न आन–प्रिया सुमिरै, तब हू नहिं सेज में नीकी रमें।
तरपै जिमि बिजुल सी पिय पै, झरपै झननाइ सबै घर में॥६५९॥

*

रही पकरि पाटी, सु रिस भरैं भौंह, चित, नैंन।
लखि सपने पिय आन–रति, जगतहु लगत हिऐं न*॥६६०॥

---

‡ तिय सों प्रीतम हित करै, तिय रिसाइ बे–काज।
सो वह 'अधमा नाइका', बरनत है कविराज॥
—"सुंदर शृंगार"

* बिहारी

तृतीय

परिशिष्ट-खंड

★

"शृंगार रस के मुक्तक पद्य यद्यपि अधिकतर अलंकारों और नायिकाओं के उदाहरण-स्वरूप ही लिखे गये और यद्यपि लिखने का लक्ष्य भी अधिकतर आश्रय-दाताओं को प्रसन्न करना था, तथापि कुछ कवियों की कृति में शुद्ध प्रेम के ऐसे सरस छंद मिलते है, ऐसे सौन्दर्य की पवित्र विभूति पाई जाती है कि सहसा यह विश्वास नहीं होता कि वे कवि शुद्ध आंतरिक प्रेरणा के अतिरिक्त अन्य किसी उद्देश से कविता करते थे। यह ठीक है कि अधिकांश कवियों ने सौन्दर्य को केवल उद्दीपन मान कर नायक-नायिका के रति-भाव की व्यंजना की है, पर कुछ कवि ऐसे भी हुए है, जिन्होंने रीति के प्रतिबंधों से बाहर जाकर स्वकीय सुंदर रीति से सौन्दर्य की वह सृष्टि की है, जो मनोमुग्धकारिणी है।

★

रीति-काल के कवियों का साहित्य में क्या स्थान है, इसका परीक्षा कवित्व की दृष्टि से भी की जा सकती है, और आचार्यत्व की दृष्टि से भी। कवित्व की दृष्टि से परीक्षा करने में हमारी कसौटी ऐसी होनी चाहिए, जिस पर संसार भर के साहित्य को कस कर परख सके और उसके उत्कर्षापकर्ष का निर्णय कर सकें। स्थायी साहित्य जीवन की चिरंतन समस्याओं का समाधान है। मनुष्य मात्र की मनोवृत्तियों, उनकी आशाओं, आकांक्षाओं और उनके भावों, विचारों का वह अक्षय भांडार है। साहित्य की इस व्यापक भावना को हम समन्वयवाद कह सकते है।

इस साहित्यिक समन्वय में रीति-काल के शृंगारी कवियों का अलग स्थान है, यह पहले ही स्वीकार करना पड़ेगा। उन कवियों का लक्ष्य भक्त कवियों की भाँति कुछ विशिष्ट उच्च आदर्शों पर नहीं था, परंतु गार्हस्थिक जीवन के सुख-सौन्दर्य आदि पर उनकी दृष्टि टिकी थी और स्त्री-पुरुष के मधुर संबंध की ओर उनका ध्यान खिंचा था। कुछ कवियों ने प्रेम के सूक्ष्म तत्वों का निरूपण भी किया है; केवल विभाव, अनुभाव आदि का अंतर्लक्षण रूप खड़ा करके रस-निष्पत्ति की चेष्टा ही नहीं की है। ऐसे कवियों का स्थान सौन्दर्य-स्रष्टा मौलिक साहित्यकारों के बीच में चिरकाल तक रहेगा।

★

भाषा और छंद आदि की दृष्टि से भी रीति-काल के कवियों का प्रयत्न प्रशंसनीय ही कहा जायगा। व्रजभाषा का जो साहित्यिक रूप निर्मित हुआ था उसमें अनुभूयमान कोमलता और सुकुमारता उन्हीं कवियों के प्रयास का फल था।...शृंगार रस का पल्ला पकड़ कर गार्हस्थ्य जीवन के जैसे सुंदर और सुकुमार चित्र उन्हें उतारने थे, उसके उपयुक्त भाषा का स्वरूप स्थिर करना कवियों की प्रतिभा का परिचायक है। इसके कारण छंदों में भी अच्छी प्रौढ़ता और परिष्कृति आई है।

—"हिंदी साहित्य"

परिशिष्ट

—१—

रहीम कृत 'नगर-शोभा' और देव कृत 'जाति-विलास' एवं 'रस-विलास' ग्रंथों में अनेक जातियों एवं देशों की नायिकाओं का बड़ा अद्भुत वर्णन हुआ है। पाठकों के मनोरंजन के लिए इनका संकलन किया गया है।

१—अनेक जातियों की नायिकाएँ

[रहीम कृत 'नगर शोभा' के अनुसार]

*

ब्राह्मणी

उत्तम जाती ब्राह्मणी, देखत चित्त लुभाय।
परम पाप पल में हरत परसत वाके पाय॥
परजापति परमेश्वरी, गंगारूप समान।
जाके अंग-तरंग में करत नैन असनान॥ ६६१॥

खतरानी

रूप-रंग रति-राग में, खतरानी इतरान।
मानो रची बिरंचि पचि, कुसुम कनक में सान॥
पारस पाहन की मनो, धरै पूतरी अंग।
क्यों न होइ कंचन वहू, जे बिलसैं तिहि संग॥ ६६२॥

---

* "महाकवि देव जी ने 'जाति-विलास' में जिस रीति से बहुत सी जातियों की तथा देशों की स्त्रियों का वर्णन किया है, उसी रीति से 'नगर-शोभा' में भी अनेक जातियों की स्त्रियों का वर्णन बड़ी सुंदरता से किया गया है। भाव शृंगार का है। दोहे की शब्द-योजना से वर्णित स्त्री जाति तथा कर्म का मनोहर चित्र नेत्रों के सम्मुख आ जाता है। यह ग्रंथ रहीम के सेलाना स्वभाव का परिचायक है। यह अनुमान किया जा सकता है कि देवजी ने 'जाति-विलास' कदाचित रहीम के इस ग्रंथ को देख कर बनाया हो और रहीम की इस ग्रंथ की रचना अकबर के मीनाबाजार से सूझी हो।"

—"रहीम-रत्नावली"

जौहरिन

कबहुँ दिखावै जौहरनि, हँसि-हँसि मानक-लाल ।
कबहूँ चख तें च्वै परै, टूटि मुकुत की माल ॥
जद्‌पि नैननि ओट है, बिरह चोट बिन घाइ ।
पिय-उर पीरा ना करै, हीरा सी गडि जाइ ॥ ६६३ ॥

कायस्थिन

कैथनि कथन न पारई, प्रेम-कथा मुख बैन ।
छाती ही पाती मनो, लिखै मैंन की सैन ॥
बरुनि बार लेखनि करै, मसि काजरि भरि लेइ ।
प्रेमाच्छर लिख नैंन ते, पिय बाँचन को देइ ॥ ६६४ ॥

चितेरिन

चतुर चितैरनि चित हरै, चख खंजन के भाइ ।
द्वै आधौ करि डारई, आधौ मुख दिखराइ ॥
पलक न टारैं बदन तें, पलक न मारैं नित्र ।
नेक न चित तें ऊतरै, ज्यों कागद मे चित्र ॥ ६६५ ॥

बरइन

सुरँग बरन बरनइ बनी, नैंन खवाऐं पान ।
निसि दिन फेरै पान ज्यो, विरही जन के प्रान ॥
पानी पीरी अति बनी, चंदन खौरे गात ।
परसत बीरी अधर की, पीरी कै ह्वै जात ॥ ६६६ ॥

सुनारिन

परम रूप कंचन बरन, सोभित नारि सुनारि ।
मानों साँचे ढारि कै, बिधिना गढ़ी सुनारि ॥
रहसनि बहसनि मन हरै, घोर घोर तन लेहि ।
औरन कौ चित चोरि कै, आपुन चित्त न देहि ॥ ६६७ ॥

बनियाँइन

बनियाँइन बनि आइकै, बैठि रूप की हाट ।
पेम पेक तन हेरि कै, गरुवे तोरत बाट ॥
गरब तराजू करत चख, भौंह मोर मुसिक्यात ।
डाँडी मारत विरह की, चित चिंता घटि जात ॥ ६६८ ॥

रंगरेजिन

रँगरेजनि के संग में, उठत अनंग-तरंग।
आनन ऊपर पायतु, सुरति अंत के रंग॥
मारत नैंन कुरंग तें, मो मन मार मरोर।
आपन अधर-सुरंग तें, कामी काढ़तु बोर॥ ६६९॥

देहातिन

गति गरूर गयंद जिमि, गोरे बरन गँवार।
जाके परसन पाइऐ, घनवा की उनहार॥
घरी भरी धरि सीस पर, विरही देखि लजाइ।
कूक कंठ ते बाँधि कै, लेजू लै ज्यो जाइ॥ ६७०॥

कूजड़िन

भाटा बरन सु कौंजरी, बेचै सोवा साग।
निलजु भई खेलत सदा, गारी दै-दै फाग॥
हरी भरी डलिया निरखि जो कोई नियराति।
झूठे हू गारी सुनति, साँचे हू ललचाति॥ ६७१॥

बनजारिन

बनजारी झुमकत चलत, जेहरि पहरैं पाइ।
वाके जेहरि के सबद, बिरही हर जिय जाइ॥
और बनज व्योपार कौ, भाव बिचारै कौन।
लोइन लौने होत हैं, देखत वाकौ लौन॥ ६७२॥

कुम्हारिन

डरवा के माँटी भरे, कौरी बैस कुहार।
ढ़ै उलटे सरवा मनो, दीसत कुच उनहार॥
निरखि प्रान घट ज्यों रहै, क्यो मुख आवै वाक।
उर मानो आवा दहै, चित्त भ्रमै जिमि चाक॥ ६७३॥

लुहारिन

बिरह-अगिनि निसि-दिन धवै, उठै चित्त चिनगार।
बिरही जियहि जराइ कै, करत लुहार लुहार॥
राखत मो मन लोह-सम, पर प्रेम घन टोर।
बिरह-अगिन मे ताइकै, नैंन नीर में बोर॥ ६७४॥

कलवारिन

कलवारी रस प्रेम कौ, नैननि भर-भर लेत ।
जोबन-मद माँती फिरै, छाती छुवन न देत ॥
नैंनन प्याला फेरि कै, अधर गजक जब देत ।
मतवारे की मति हरै, जो चाहै सो लेत ॥ ६७५ ॥

गूजरी

परम ऊजरी गूजरी, दही मीस रे लेइ ।
गोरस के मिसि डोलही, सो रस नैंक न देइ ॥
गाहक सों हँसि बिहँसि कै, करत बोल अरु कौल ।
पहिले आपुन मोल कहि, कहत दही कौ मोल ॥ ६७६ ॥

काछिन

काछिनि कछू न जानई, नैन बीच हित चित्त ।
जोबन-जल सींचत रहै, काम-कियारी नित्त ॥
कुच भाटा, गाजर अधर, मूरा से भुज भाइ ।
बैठी लौका बेचई, लेटी खीरा खाइ ॥ ६७७ ॥

कसाइन

हाथ लिएँ हत्या फिरै, जोबन गरब हुलास ।
धरै कसाइन रैंन-दिन, बिरही रकत पिपास ॥
नैंन कतरनी साजि कै, पलक सैन जब देइ ।
बरुनी की टेढ़ी छुरी, लेइ छुरी सों टेइ ॥ ६७८ ॥

तबाखिन

हियरा भरै तबाखिनी, हाथ न लावन देत ।
सुरवा नैंक चखाइ कै, हड्डी झारि सब देत ॥
अधर सुधर, चख चीकनै, वे भरहै तन गात ।
वाकौ परसौ खात ही, बिरही नहिंन अघात ॥ ६७९ ॥

तेलिन

बेलन तिली सुबास कै, तेलिन करै फुलैल ।
बिरही दृष्टि कियौ फिरै, ज्यों तेली कौ बैल ॥
कबहू मुख रूखौ किएँ, कहै जीय की बात ।
वाकौ करुवौ बचनि सुन, मुख मीठौ ह्वै जात ॥ ६८० ॥

पटवाइन

पाटंबर पटइन पहरि, सेंदुर भरे ललाट।
बिरही नेकु न छाँड़ई, वा पटवा की हाट॥
रस रेसम बेचत रहै, नेन सैन की सात।
फूँदी पर कौ फौंदना, करै कोटि जिय घात॥६८१॥

भटियारी

भटियारी अरु लच्छमी, दोऊ एकै घात।
आवत बहु आदर करै, जात न पूछै बात॥
भटियारी उर मुद करै, प्रेम पथिक कौ ठौर।
औरन दिखावै और कौं, रात दिखावै और॥६८२॥

कमागरी

करै गुमान कमागरी, भौंह कमान चढ़ाइ।
पिय कर गहि जब खैंचई, फिर कमान सी जाइ॥
जो गति है पिय रस परस, रहै रोष जिय टेक।
सूधी करत कमान ज्यों, बिरह-अगिन मे सेक॥६८३॥

तीरगरनी

हँसि-हँसि मारै नैंन सर, बारत जिय बहु पीर।
बेझा ह्वै उर जात हौ, तीरगरन के तीर॥
प्रान सरीकन साल दै, हेरि फेरि कर लेत।
दुख सकट पै काढिकै, सुख सरेस मे देत॥६८४॥

छीपिन

छीपिन छापौ अधर कौ, सुरँग पीक भर लेत।
हँसि-हँसि काम-कचोल में, पिय-मुख ऊपर देत॥
मानों मूरति मैंन की, धरै रंग सुर तंग।
नैंन रँगीले होत हैं, देखत वाकौ रग॥६८५॥

सिकलीगरनी

सकल अग सिकलीगरनि, करत प्रेम औसेर।
करै बदन दर्पन मनों, नैंन मुसकला फेरि॥
अंजन चख चंदन बदन, सोभित सेंदुर मंग।
अगनि रंग सुरंग कै, काढ़ै अग अनंग॥६८६॥

सक्किन

करै न काहू की सका, सक्किन जोबन रूप।
सदा सरम जल तें भरी, रहै चिबुक कै कूप॥
सजल नैंन वाके निरखि, चलत प्रेम-सर फूट।
लोक-लाज उर लाज तें, जात मसक सी छूट॥६८७॥

गाँधिन

सुरँग बसन तन गाँधिनी, देखत दृगन अघाय।
कुच माजू कुटली अधर, मोचन चरनन आय॥
कामेश्वर नैंननि धरै, करत प्रेम की केलि।
नैंन माँहिं चोवा भरै, छोरन माँहि फुलेल॥६८८॥

रजपूतनी

राज करत रजपूतई, देस रूप के दीप।
कर घूँघट पट ओट कै, आवत पियहिं समीप॥
सोभित मुख ऊपर धरै, सदा सुरति-मैदान।
छूटी लटैं बँदूकची, भौंहे रूप कमान॥६८९॥

तुरकनी

चतुर चपल कोमल बिमल, पग परसत सतराइ।
रस ही रस बस कीजिए, तुरकिन तरकि न जाइ॥
सीस चूँदरी निरखि मन, परत प्रेम के जार।
प्रान इजारै लेत है, वाकी लाल इजार॥६९०॥

जोगिन

जोगिन जोगि न जानई, परे प्रेम रस माँहि।
जोजत मुख ऊपर लिएँ, प्रेम-जटा की छाँहि॥
मुख पै बैरागी अलक, कुच सिंगी विष बैन।
मुद्रा धारै अधर कै, मूँद ध्यान सो नैंन॥६९१॥

भाटनी

भाटन भटकी प्रेम की, हटकी रहै न गेह।
जोबन पर लटकी फिरै, जोरत तरक सनेह॥
मुक्त-माल उर दोहरा, चौपाई मुख लान।
आपुन जोबन-रूप की, अस्तुति करै न कौन॥६९२॥

डोमनी

लेत चुराएँ डोमनी, मोहन रूप सुजान।
गाइ-गाइ कछु लेत है, बाँकी तिरछी तान॥
नैंकु न सूधे मुख रहै, झुकि हँसि मुरि मुसक्याइ।
उपपति की सुनि जात है, सरबस लेइ रिझाइ॥६६३॥

चेरी

चेरी माँती मैंन की, नैंन सैंन के भाइ।
संक-भरी जँभुवाइ कै, भुज उठाय अँगराइ॥
रंग रँगराती फिरै, चित्त न लावै गेह।
सब काहू तें कहि फिरै, आपुन सुरति-सनेह॥६६४॥

नटिनी

बाँस चढ़ी नट वंदनी, मन बाँधत लै बाँस।
नैंन मैंन की सैंन तें, कटत कटाछन साँस॥
अलबेली अद्भुत कला, सुध बुध लै बरजोर।
चोर-चोर मन लेत है, ठौर-ठौर तन तोर॥
बोलन पै पिय मन त्रिमल, चितवति चित्त समाय।
निम बासर हिंदू तुरकि, कौतुक देखि लुभाय॥
लटकि लेह कर दोहरौ, गावत अपनी ढाल।
सेत लाल छवि दीसियतु, ज्यों गुलाब की माल॥६६५॥

कंचिनी

कचन से तन कंचनी, स्याम कचुकी अंग।
भाना भावैं भोगही, रहै घटा के संग॥
नैंननि भीतर नृत्य के, सैंन देत सतराय।
छवि तें चित्त छुड़ावही, नट के भाइ दिखाय॥६६६॥

अहेरिन

हरि गुन आवज केसवा, हिंसा बाजत काम।
प्रथम बिभासै गाइकै, करत जीत संग्राम॥
प्रेम अहेरी साजि कै, बाँध परयौ रस-तान।
मन मृग क्यों रीझै नहीं, तोहि नैंन के बान॥६६७॥

मँगतिन

मिलत अंग सब माँगना, प्रथम माँग मन लेइ।
घेर घेर उर राखही, फेर फेर नहिं देइ॥
बहु पतंग जारत रहै, दीपक बारैं देह।
फिरत, न गेहन आवही, मन जु चेटुवा लेह॥६९८॥

पातुर

प्रान-पूतरी पातरी, पातर कला-निधान।
सुरति अंग चित चोरई, काय पाँच रस बान॥
उपजावै रस में बिरस, बिरस माहि रस नेम।
जो कीजै विपरीत रति, अतिहि बढ़ावै प्रेम॥
कहै आन की आन कछु, बिरह पीर तन ताप।
औरै गाइ सुनावई, औरै कछु अलाप॥६९९॥

जुकिहारिन

जुकिहारी जोबन लिएं, हाथ फिरै रस हेत।
आपुन मास चखाइ कै, रकत आन कौं लेत॥
बिरही के उर मे गड़ै, स्याम अलह की नोक।
बिरह पीर पर लावई, रकत-पियासी जोंक॥७००॥

खटीकिन

बिरह बिथा खटकनि कहै, पलक न लावै रैन।
करत कोप बहु भाँति ही, घाइ मैन की सैन॥
बिरह बिथा कोई कहै, समझै कछु न ताहि।
वाके जोबन रूप की, अकथ कथा कछु आहि॥७०१॥

सबनीगरनी

सबै अंग सबनीगरनि, दीसत मन न कलक।
सेत बसन कीने मनो, साबुन लाइ मतग॥
बिरह बिथा मन की हरै, महा बिमल ह्वै जाइ।
मन मलीन जो धोवई, दाखौं साबुन लाइ॥७०२॥

कुदीगरनी

कुदन सी कुदीगरनि, कामिनि कठिन कठोर।
और न काहू की सुनै, अपने पिय के सोर॥
पगहि मौगरी सी रहै, पैम छत्र बहु खाइ।
रंग रँग अंग अनग के, करै बनाइ बनाइ॥७०३॥

धुनियाइन

धुनियाइन धुनि रैंन-दिन, धरै सुरति की भाँति।
वाकौ राग न बूझही, कहा बजावै तांति॥
काम पराक्रम जब करै, छुवन नरम होइ जाइ।
रोम-रोम पिय के बदन, रूई सी लपटाइ॥७०४॥

कोलिन

कोरनि कूर न जानई, पेम नेम के भाइ।
विरही वाके भौंन में, ताना तनत भजाइ॥
बिरह भार पहुँचै नहीं, तानी बहै न पेम।
जोबन पानी मुख धरै, खैंचे पिय के नैंन॥७०५॥

नगारचिन

घेरत नगर नगारचिन, बदन रूप तन साजि।
घर घर वाके रूप कौ, रह्यौ नगारौ बाजि॥
पहनै जो बिछुवा खरी, पिय के सँग अँगरात।
रतिपति की नौबत मनो, बाजत आधी रात॥७०६॥

दलालनी

मन दलमलै दलालनी, रूप अंग के भाइ।
नैंन मटकि, मुख की चटकि, गाहक रूप दिखाइ॥
लोक-लाज कुल-काँनि तें, नहीं सुनावत बोल।
नैंननि-सैंननि में करै, बिरही जन कौ मोल॥७०७॥

ठठेरनी

निस दिन रहै ठठेरनी, झाजे माँजे गात।
मुकता वाके रूप कौ, थारी पै ठहरात॥
आभूषन बसतर पहिर, चितवत पिय-मुख ओर।
मानों गढे नितब कुच, गडुवा ढार कठोर॥७०८॥

कागदिन

कागद से तन कागदिन, रहै प्रेम के पाय।
रीझी भीजी मैंन-जल, कागद सी सिथलाइ॥
मानों कागद की गुही, चढी सु प्रेम-अकास।
सुरति दूर चित खैंचई, आइ रहै उर पास॥७०९॥

मसीकरिन

देखन के मिस मसिकरनि, पुनि भरमसि खिन देत।
चख टौना कछु डारई, सूझै स्याम न सेत॥
रूप जोति मुख पै धरै, छिनक मलीन न होत।
कच मानों काजर परै, मुख दीपक की जोति॥७१०॥

बाजदारनी

बाजदारनी बाज पिय, करै नही तन साज।
बिरह पीर तन यों रहै, जर झंकिनि जिमि बाज॥
नैंन अहेरी साजि कै, चित पंछी गहि लेत।
बिरही प्रान सँचान कों, अधर न चाखन देत॥७११॥

जिलोदारनी

जिलोदारनी श्रुति जलद, बिरह अगिन के तेज।
नाक न मोरै सेज पर, अति हाजर महि मेज॥
औरन कों धर सघन मन, चलै जु घूँघट माँहि।
वाके रंग सुरंग की, जुलोदार पर छाँहि॥७१२॥

भंगेरिन

सोभा अंग भँगेरनी, सोभित माल गुलाल।
पना पीसि पानी करै, चखन दिखावै लाल॥
काहू अधर सुरंग धरि, प्रेम पियालौ देत।
काहू की गति मति सुरत, हरुवैई हरि लेत॥७१३॥

बाजीगरनी

बाजागरनि बजार में, खेलत बाजी प्रेम।
देखत वाकौ रस रसन, तजत नैंन व्रत नेम॥
पीवत वाकौ प्रेम रस, जोई सो बस होइ।
एक खरे घूमत रहे, एक परे मति खोइ॥७१४॥

कठिहारिन

कठिहारी उर की कठिन, काठपूतरी आहि।
छिनक न पिय संग तें टरै, बिरह फँदै नहिं ताहि॥
करै न काहू कौ कह्यौ, रहै किऐं हिय साथ।
बिरही कौ कोमल हियौ, क्यों न होइ जिमि काठ॥७१५॥

डफालिनी

रीझी रहै डफालिनी, अपने पिय के राग।
ना जानै संजोग रस, ना जानै वैराग॥
अनमिल बतियां सब करै, नाहीं मलिन सनेह।
डफली बाजै बिरह की, निस-दिन वाके गेह॥७१६॥

गड़िबारिन

बिरही के उर में गड़ै, गड़िबारिन कौ नेह।
सिव-बाहन सेवा करै, पावै सिद्धि सनेह॥
पैम पीर वाकी जनौ, कंटक हू न गड़ाइ।
गाड़ी पर बैठै नहीं, नैननि सों गडि जाइ॥७१७॥

महावतनी

बैठी महत महावतनि, धरै जु आपुन अंग।
जोबन-मद में गलि चढ़ी, फिरै जु पिय के संग॥
पीत काँछ कंचुकि तियन, बाला गहै कलाव।
जाहि ताहि मारत फिरै, अपने पिय के ताव॥७१८॥

धोबिन

धोबन लुब्धी प्रेम की, ना घर रहै, न घाट।
देत फिरै घर-घर बगर, लुगरा धरै लिलाट॥
सुरति अंग मुख मोर कै, राखै अधर मरोरि।
चित्त गदहरा ना हरै, बिन देखें वा ओर॥७१९॥

चमारिन

चोरत चित्त चमारिनी, रूप रंग के साज।
लेत चलाएँ चाम के, दिन द्वै जोबन-राज॥
जाइ क्यों न व्रत नेम सब, होइ लाज-कुल हानि।
जो वाके मग पौढ़ई, प्रेम अघोरी तानि॥७२०॥

चूहरी

हरी भरी गुन चूहरी, देखत जीव कलंक।
वाके अधर कपोल कौ, चुवौ परै जिम रंग॥
परमलता सी लहलही, धरै प्रेम-संयोग।
कर गहि गरै लगाइऐ, हरै विरह कौ रोग॥७२१॥

२—विविध जातीय नायिकाएँ

[देव कृत 'जाति-विलास' और 'रस-विलास के अनुसार]

★

ब्राह्मणी

गंग-तरंग बीच बरंगन ठाढ़ी करै जप, रूप उदोती ।
'देव' दिवाकर की किरनैं, निकसैं-बिकसैं मनु पकंज-जोती ॥
नीर भरी अलकैं निचुरैं, छुटिकैं छलकैं मनों माँग के मोती ।
बिज्जुल सी लपटैं झलकैं, कन कज्जल सी, अँग उज्जल धोती ॥७२२॥

रजपूतनी

भाग भरी, अनुराग भरी, बड़ भागिन सुद्ध सुहागिन छाजै ।
अंग अनंग-तरंगनि जानि, इकंगनि ये सब संगनि साजै ॥
संचित कै रुचि बचि बधूनि, सु 'देव' बिरंचि रची सुनि लाजै ।
प्रेम भरी पुर-भूप-सुता, गुन-रूप रची रजपूतनि राजै ॥७२३॥

वैश्यनी

पीरे पीन कुचन पै कंचुकी बदन कसी,
निकसी निकाई परै सूहे की सुहाती मे ।
गोरे गरैं तरैं लरैं मोतिन की, तामे-
झमकत झुकझुकी, जैसैं दूलहै बराती मे ॥
'देव' चित चुभै, वैसै न छुवै बाजूबंद,
ललकत लाल लगिवे कों रंगराती मे ।
नवजोबनी की जोबनी की जोति जीति रही,
कैसी बनैंनी की बनी, नीकी छवि छाती में ॥ ७२४ ॥

शूद्रा

नेह सों निचौरैं, चित चोरैं, डीठ जोरैं, कौन-
डोरैं लागी ढोरैं डार सुरति अहार की ।
सौने के सरोज से उरोज उमगौहैं, गोरे-
अंग में सुहाई 'देव' सुही जरतार की ॥
कंठ सिरीकंठ, कटि किंकिनी, कँगन कर,
ऊजरे पगनि, गूजरी सु झमकार की ।
चंद सौ बदन, मंद हँसनि, गयंद गति,
कौंबरी कुरंग-नैंनी कुँवरि किरार की ॥ ७२५ ॥

खतरानी

ज्यों बिन ही गुन अंक लिखै, धुनि यों करिकै करता करि हारयौ ।
'देव' सु बानिक देखि अचानक, आन कहूँ को आन कुमारयौ ॥
लाज लचैं तिय ओर रचैं, बिन काज बिरंचि विचारि विचारयौ ।
बारिऐ कोटि सची–रतिरानी, इतौ खतरानी कौ रूप निहारयौ ॥७२६॥

जौहरिन

साँची सुधा बुंदन सी, कुंदन की बेलि किधौं–
साँचे भरि काढ़ी रूप–ओपन भरति है ।
पोखी पुखरागन बिमुख नख–सिख कर,
चरन–अधर बिद्रुमन ज्यों धरति है ॥
हीरा सी हँसनि, मोती–मानिक दसन,
सेत-स्यामता लसनि दृग, हीरा कों हरति है ।
जोबन जबाहिर सों जगमग होत जात,
जौहरी की जोइ, जग जौहर करति है ॥ ७२७ ॥

कायस्थिन

रीझै रिझवार इंदु–बदनी उदार सूर,
रूख की सी डार, डोलै रंक रखियाँन मे ।
साँबरी, सलौनी, गुनवंत, गजगौंनी महा,
सुंदर सुघर लाख–लाख लखियाँन में ॥
जागी सब रैंन, बड़ भागी पिय प्यारे संग,
प्रेम–रस पागी अनुरागी रखियाँन में ।
दारयौ से दसन, मंद हँसनि बिसद भरी,
सद भरी सोभा, मद भरी अँखियाँन मे ॥ ७२८ ॥

मोदिन

मदन के मोद भरी, जोबन प्रमोद भरी,
मोदी की बहू की दुति देखैं तिन दूनी सी ।
चाब रहै चित में, चितौत दारिदै न राखी,
बोल मोल मीठी खाँड़ घीउ तें न ऊनी सी ॥
राजबाट बीच, बाट पारति बटोहिन की,
बाट घाट तौलै, मनु आँखिन मे खूनी सी ।
चूनरी सुरंग, अंग ईंगुर के रंग 'देव',
बैठी परचूँनी की दुकान पर चूँनी सी ॥ ७२९ ॥

हलवाइन

मीठौ महा मृदु बोल कहै, लघु बोल कहै मुसुकाइ सुभाइनि ।
'देव' भुलाइ बटोहिन बाट, डुरावत चौंर लिऐं चित-चाइनि ॥
रूप अनूप भरी नख तें सिख, सुच्छ सुधार सही की रसाइनि ।
हाट के ऊपर हाटक-बेलि सी, बेचत है हलवा हलवाइनि ॥७३०॥

गंधिन

अरगजै भीजै मरगजै बागैं बनी-ठनी,
हाट पर बैठी आन ही सुघरपन सो ।
इंदु सौ बदन, मृगमद-बिंदु बेंदी भाल,
झलकैं कपोल गोल दूने दरपन सों ॥
मैंन-मद छाके नैंन, देखि 'देव' मुनि मोहैं,
सोहैं सटकारे बार कारे सरपन सों ।
बंधु कीए मधुप, मदंध कीए पुरजन, सु-
मोह्यौ मन गंधी की, सुगंध झरपन सों ॥ ७३१ ॥

अहीरिन

माखन सौ मन, दूध सौ जोवन, है दधि तें अधिकै उर ईठी ।
छैल-छबीली की छाछ के आगें, समेत सुधा बसुधा सब सीठी ॥
नैंनन नेह चुवै कवि 'देव', बुझावत चैंन बियोग अमीठी ।
ऐसी रसीली अहीरी अहै, कछु न लगै मनमौहनैं मीठी ॥७३२॥

सुनारिन

'देव' दिखावत कंचन सौ तन, औरन कौ मन तावै अगौंनी ।
सुंदर साँचे में दै भरि काढ़ी सी, आपुने हाथ गढ़ी विधि सौंनी ॥
सोभित चूनरी स्याम किसोरी कें, गोरी गुमान भरी गजगौंनी ।
कुंदन-लीक कसौटी में लेखी सी, देखी सुनारिन नारि सलौंनी ॥७३३॥

तमोलिन

रंगत चोली तें ढोली, खरी चुनि, चार सौ आछे उधेरि अमेंठी ।
गोरी गुलाब लैं-लै छिरकै छवि भाव सों, 'देव' सुभाव सों ऐंठी ॥
सौने से अंग, सुरंगन ओठनि, कौन कें जात हिए में न पैठी ।
ऊँची दुकान पैं बेचत पान, तमोलिन ऐंचत सींचत बैठी ॥७३४॥

छीपिन

सौने से सोहत गातन मोहै, सुहागिन की अति सौहैं सुहाई ।
'देवजू' आवै लगी अँखियाँन में, देखतई मुख की अरुनाई ॥
ज्यों-ज्यों रँगे पट रंग निचोरत, त्यों निचुरै अँग-अंग निकाई ।
दै छवि-छापैं करै मन छाप, सु छीपिन-बाल छिपै न छिपाई ॥७३५॥

दरजिन

अंतर पैंठि दुहूँ पट कै, कवि 'देव' निरंतरता उर आनैं ।
देत मिलाइ घने अपने गुन, सार सुई, किधौं दूती सुजानैं ॥
ताहि लिऐं कर में घर मे रहै, जाहि सिऐं भरमैं सोई छानैं ।
होत करेजन की दरजैं, दरजी की बहू बरजी नहिं मानैं ॥७३६॥

पटवाइन

रेसम के गुन छीन छरा करि, छोरति ऐंचि सनेह रचावै ।
'देव' दसौ अँगुरी उरझाइ कै, डोरी गुहै, रस-रंग लचावै ॥
मोहित सी, मन मोहत सी, जन जोहत सी, तनी भौंह लचावै ।
चंचल नैंनन-सैंनन सों, पटवा की बहू नटवा से नँचावै ॥७३७॥

कुम्हारिन

चंदमुखी मुरि मंद हँसै मुख-मोतिन कौ गहि खोल्यौ डवा सौ ।
'देव' सुधा भरे, ऐंठ उठे कुच, भेंटि अघात महीं मघवा सौ ॥
रूप-उभार कुम्हार की जाई के, जोबन कौन तचायौ तवा सौ ।
काम के चक्र चढ़ायौ न को, घट वाकौ न कीनों अवास अवा सौ ॥७३८॥

नाइन

घर-घर डोलत सुघर नर मोहिवे कों,
ऊघरी फिरत सब मुख सुखदैनियाँ ।
जावक के मिस काम-पावक जगावै 'देव',
हिय कों हरत यों करत कर-सैनियाँ ।
प्रेमी अनुरागिन कौ हियरौ रिझावै,
अरुझावै, सुरझावै, बिरुझावै नैंन पैनियाँ ।
बैनी गुहिवे कों पिकबैनी सी तनैंनी फिरै,
पैंनी चितवनि की चपलनैंनी नैनियाँ ॥ ७३९॥

मालिन

बीनत फिरत फूल, दारधौ-दल से दुकूल,
खुले भुज-मूल, लटैं घूमैं ज्यों अलतियाँ।
चौसर चमेली चारु पहिरैं सिंगारहार,
लची कुच-भार, जीत लीनी है फलनियाँ॥
जुही गुही माँग, आँख चंपक-पराग छुही,
'देव' लखैं लोचन लजावति नलनियाँ।
बाग में बिलोकी अनुराग की सी बौहनी सी,
मौहिनी सुघर जगमौहिनी मलनियाँ॥७४०॥

कहारिन

जगमग जोबन, जगी है रँगमगी जोति,
लाल लहँगा पै पीरी ओढ़नी बहार की।
झाँझ की झँबरिया मे, सफरी फरफरात-
बेचत फिरत, बोलै बानी मनुहार की॥
चाहे हू न चाहैं, चहु ओर तें गहत बाँहैं,
गावत उमाहैं रोकि रहै चितहार की।
देखतई मुख, बिष-लहर सी आवै लगी,
जहर से नैंन, करै कहर कहार की॥७४१॥

काछिन

राखै समाधान समाधान कै दिखैयन को,
ईंगुर से अंगनि, है आँगुरी गँबारि में।
'देव' लही जगमगी जोबन जुन्हाई ऐसी,
एते पै जुन्हाई पैठी सरोबर-बारि मे॥
बारन सुखावत, उघारे सीस गावत,
भुलावत सी लोगन, फिरत चहुपारि मे।
आँचर अँगोछ-औंछ, ओछ कुच पौंछ लिए,
कौछ मे कमल, डोलैं काछिन कछार में॥७४२॥

कलारिन

आपु पिऐ अरु औरन प्यावति, लाज के तूल ज्यो तूमति डोलैं।
जोबन जेब जकी सी कलारि, छकी मद सो झुकि झूमति डोलैं॥
गावत, रीझि-रिझावत त्यों, मतबारन कौ मुख चूमत डोलैं।
काम के बान हनी हिय में, घर-बाहर घाइल घूमत डोलैं॥७४३॥

बनजारिन

एड़िन ऊपर घूमत घाँघरौ, तैसिऐ सोहत सालू की सारी ।
हाथ हरी-हरी छाजै छरी, अरु जूती चढ़ी पग फूँद-फुँदारी ॥
ऊँचे उरोज, हरा घुँघुचीन के, हाँ कहि हाँकत बैल निहारी ।
गातनई दिखराइ बटोहिन, बातनई बनिजै बनिजारी ॥७४४॥

धोबिन

घाट पर ठाढ़ी बाट पारत बटोहिन की,
चेटक सी डीठ, मन काकौ ना हरति है ।
लटक पटक पट, छिओ कर मटकत,
'देव' भुज-मूलन तें फूल से झरत है ॥
जोबन की ऐंठ अठलागि सी, उठैहैं कुच,
ओठनि अमेंट पट ऐंठि कै धरति है ।
धोबिन अनौखी यह धोवत कहाँ धौं करि,
सुधा-मुख राखत न ऊधम करति है ॥ ७४५ ॥

नटनी

पातरे अंग, उड़ै बिनु पाँखन, कोमल भाखनि प्रेम झिरी की ।
जोबन रूप अनूप निहारिकै, लाज मरैं निधिराज सिरी की ॥
कौल से नैंन, कलानिधि सौ मुख, को गनै कोटि कला गहिरी की ।
बाँस के सीस अकास में नाँचत, को न छकै छवि सौनचिरी की ॥७४६॥

तेलिन

तिल है अमोल लोल-नैंनी के कपोल बीच,
कोटिक अनूप रूप वारि फेरियतु है ।
सोभा सुनैं जाकी कवि 'देव' कहै कौन कौ न-
होत चित चीकनौ, चतुर चेरियतु है ॥
घाट-बाट हू में घट निपट बटोहन कों,
नैंकहूँ निहारैं नेह भरे हेरियतु है ।
सरस निदान तकि, परस कै कौन कहै,
पौन हू के परस परौसी पेरियतु है ॥ ७४७ ॥

व्याधनी

है कर बीन लिऐं परबीन, बजावत गावत मोहिनी तानन ।
मोहि लिए मृग औ खग-मानुस, गान सुनैं समुहैं करि कानन ॥
सोर परयौ सिगरे बन बीचन, कोऊ रह्यौ तपसी थिर थान न ।
बंक बिलोकनि बेधि हियौ, सु कियौ बध व्याध-बधू बिन बानन ॥७४८॥

३—अनेक प्रदेशों की नायिकाएँ

[देव कृत 'जाति-विलास' और 'रस-विलास' के अनुसार*]

*

काश्मीरवधू

जोबन के रंग भरे ईंगुर से अंगन पै,
एड़िन लौं छवि छाजै केसन के भीर की ।
उचके उचौहैं कुच-भार झलकति, झीनी-
झिलमिली ओढ़नी किनारीदार चीर की ॥
गुलगुले गोरे-गोरे कोमल कपोल, सुधा-
बिंब बोल, इंदुमुखी, नासिका ज्यों कीर की ।
'देव' दुति लहरात, छूटे छहरात केस,
कोरी जैसी केसर, किसोरी कासमीर की ॥ ७४६ ॥

मालववधू

बोलन, चाल, बिलोकन सों, दिनई-दिन दूगुन नेह बढ़ावै ।
अंगई अंग अनंग तरंगनि, आदर सों उठ ओठन प्यावै ॥
मालब देस की बाल मनोहर, बालम के चित की गति पावै ।
जोग सबै, उपभोग भलै करि, भाँतिन भोग सुभोग करावै ॥७५०॥

---

* "देव जी अच्छे गुणज्ञ की खोज मे, अथवा तीर्थ-यात्रा के लिए या चाहे और ही किसी कारण से हो, देश भर मे बराबर घूमते रहे । यह महाराज जहाँ गये वहाँ के मनुष्यों की चाल-ढाल, रीतियों और अन्यान्य दर्शनीय पदार्थों पर पूरा ध्यान देते रहे । जान पड़ता है इन्होंने काश्मीर, पंजाब, बंगाल, उड़ीसा मदरास, बंबई, गुजरात, राजपूताना, बरार आदि सब देशों को घूम-घूम कर देखा । इन महाकवि ने अपने भ्रमण द्वारा प्राप्त अपूर्व ज्ञान को वृथा नहीं खोया, वरन अपनी रचनाओं मे स्थान-स्थान पर उसका उपयोग किया है । 'जाति विलास' नामक ग्रंथ रचकर इन्होंने सब देशों की स्त्रियों का बड़ा ही सच्चा वर्णन किया ।''' इसमें देवजी ने दिखा दिया है कि कवि की दृष्टि कितनी पैनी होती है और वह एक ही निगाह मे कितना देख सकता है । जिस जाति और जिस देश की नायिका का कथन है, उसमे उस जाति के कर्म एवं उस देश के स्वभावों और रीतियों का ऐसा सच्चा वर्णन है कि कुछ कहते नहीं बनता ।''

—"हिंदी-नवरत्न"

कुरुदेशबधू

नख-सिख नेह भरी मदन-तरंगन सों,
अंग-अंग 'देव' रंग-रंग रीझि रहिऐ ।
माचैं भरि काढ़ी मानों नाचैं दृग खंजन, सु-
देखैं बिरहागिन की आँचैं नहिं सहिऐ ॥
सोहै महासुंदरि, बिमोहै मन मुनिन के,
को है ऐसी दूसरी सलौनी नारि लहिऐ ।
गोरी सी किसोरी चितवनि बीच चोरी करै,
भोरी कुरुदेस की कुरंगनैंनी कहिऐ ॥ ७५१ ॥

सिंधुबधू

बसुधा को सोधिकै सुधारी बसु-धारन सों,
सरब सुधानिन सुधारन सुबेस की ।
धरम की धरनी, धरा सी धाम धरनी की,
धर धरनी की, धन्य धन्यता धनेस की ॥
सिद्धन की सिद्धा सी, असिद्धि असिद्धन की,
साधता की साधक, सुधाई सुधावेस की ।
सुधानिधि दानी, सुधानिधि की सुसुद्ध विधि,
सिंधुर-गवनि, गुनसिंधू सिंधुदेस की ॥ ७५२ ॥

मारवाड़बधू

चित्र की सी लिखी, चारु चित्रिनी विचित्र गति,
रची है बिरचि निज रचना बिचार की ।
रचकौ बची न रुचि रचनि बिरचि, बाच्यौ-
सचति सुचित सुचि सोभा सुख-सार की ॥
रूप की सी मुद्रिका, समुद्र गुन-सील की सी,
आदर उदारताई देबतरु-डार की ।
काम की निसैनी, कमला सी सुखदैनी, पिय-
प्यारी, पिकबैनी, मृगनैनी मारबार की ॥ ७५३ ॥

मध्यदेशबधू

कोकिल काम-कला सकलानि, कलानिधि सी, गुन-रूप निधानैं ।
गीत-सँगीत बिनीत सदा, सुभ कर्म पुनीत सबै सुख सानैं ॥
'देव' अचारि बिचारि रची, सुचि साँची सची, रचिकै पहिचानैं ।
अंतरवेद बिचच्छन नारि, निरंतर अंतर की गति जानैं ॥७५४॥

पर्वतबधू

पंकज से नैंन, बैंन मधुर पियूष जैसे,
अधरन धराधर सुधा सरबत की।
'देव' कोई वाके जोग भोगवै अखंड सुख,
भौंहन प्रकासी जोति कासो-करबत की॥
सील के सुभाइनि कहूँ न काहू कबहूँ,
कि जबहूँ की तबहूँ करत गरबत की।
इंदिरा सरूप, इंदुबदनी, अनूप रूप-
जोबन-उजारी, पिय प्यारी परबत की॥७५५॥

भुटतबधू

चेटक सी चाल, चटकीलो रंग अंगन को,
चोट सी चलावै डीठ, गति है मतंग की।
चुबन की हौंसै उपजावत मयकमुखी,
सारी सी पढ़त बैन, दारौं-दुति दंत की॥
सोहै 'देव' देवतन, मोहै मुनि हू को मन,
कन कों अखंड धन, मोही रतिकंत की।
बन बन-झारन में, सघन पहारन में,
दामिनि सी देखियत कामिनी भुटत की॥७५६॥

पाटलबधू

चंचल दृगचल चपल चितवति चोरि,
चितवति चारु चढ़ी चारुता प्रगटई।
हौंस भरी हँसति, लसति हुलसति हिऐं,
बिलसति बाल मनो नेह की निकटई॥
'देव' हरसत, बरसत मानों मैंन-रस,
सरस बचन रसना सो रचि रटई।
मोह की अँधियारी में उजारी ह्वै रमति रति,
प्यारी पटना की, पट लंपट निपटई॥७५७॥

कुरमीबधू

नासिका कीर, लकीर सी भौंहनि, तीर सी ताकनि, है पिकबैंनी।
भौंर अभीरनि भीतर भीर, सुभाइ भरी सु उभै रसदैंनी॥
धीरज 'देव' अधीरज होत, चितौन चितौति अधीरज पैंनी।
पीर हरै करबीर की कामिनि, छीरज से मुख, नीरजनैंनी॥७५८॥

बंगबधू

कंचन मंडित रूपभरी, पहिरें पट लाल प्रकास बिलासिनि।
सुंदर स्याम लची अभिराम, धरै सिर दाम गरें मृदु मालिन॥
संगर में न छुटै कटि सों, लपटी पिय-आनन आनन-पालिन।
'देव' रहै हियरें लगिकै, करबाल किधौं वर बाल बँगालिन॥७५६॥

मगधबधू

प्रेम-मद मगन, उछाह-उँमगन भरी,
मग न धरत पग, घूँमत ज्यों घनिऐ।
खोलै उर-दाहैं, रति पैरनि अथाहैं,
उपभोग सिंधु माहैं परिरंभ-सुख मनिऐ॥
सुंदर सरस, रस-बस कीनौं प्यारौ पिय,
न्यारौ हिय तें न होत 'देव' विधि बनिऐ।
रहँसि सिरावै काम-पावक-दगध पीर,
मगध की माननि अगाध गुन गनिऐ॥७६०॥

उत्कलबधू

बिरज बिराजै रज रंजन कियौ है, पोंछे-
गुंज अलि पुंजन लै कीनीं कुंजगली सी।
मूँदे मुख बाहर बिनत बिन बात डोलैं,
अंतर निरंतर उनींदी भाँति भली सी॥
रहत अबास ही सुबास सौ बसायौ बन,
'देव' अनकूली मन फूली तन फली सी।
खेलत सहेलिन नवल बाल चेलिन में,
देखी उत्कल-बधू अबुज की कली सी॥७६१॥

विन्ध्यबनबधू

ढूँढ़त फिरत रतिकंत के इकंत गृह,
पति की सुरति-मति मति भूली मन की।
डोलति अकेली अकुलानी तिय केली-रस,
बेली सी नबेली तलबेली अति तन की॥
डौंड़ी कों बजाइ, छोड़ी लाज, उपजाइ नेह,
गौंड़ी नारि टौंढ़ि के उरैनि प्रेमपन की।
झिलिमिली झाँई सी दिखाई पति-झार में-
महौषधि की बूँटी सी, बधूटी बिन्धबन की॥७६२॥

कामरूबधू

तीनिहुँ लोक नचावति फूँक में, मंत्र के सूत अभूत गती है।
आप महा गुनवंति गुसाँइनि, पाँइन पूजत प्रानपती है॥
पैंनी चितौनि चलावति चेटक, को न कियौ बस जोगि-जती है।
कामरू-कामिनि काम-कला जगमौहिनि भामिनि भानमती है॥७६३॥

कौशलबधू

सील रुचि-रुचि संच रुचिर बिरंचि रची,
रचक सी सर्चारूप-बचित सी दामिनी।
बिमल विचित्र विधि चित्र की सी लिखी चारु,
रचना चरित्र सो विचित्र गति गामिनी॥
भोग-उपभोग अंग संग सुख जोग जामैं,
प्रेम सो प्रसन्न लाज मनत बिरामिनी।
'देव' पति-देवता दिपति दुति देवता सी,
देखी जग में कुसल कौसल-कुल-कामिनी॥७६४॥

विराटबधू

अरुन बसन सदा सोहत तरुनि-तन,
कोमल करन चारु मार-सर मार की।
पिय के जियन जिम प्यारी हिय बसै प्रेम-
रस-बस छाकी वाकी थाकी रति-भार की॥
तीखे नखियात तन, अघात न अधर-पान,
मानत सुरति रुचि सुरतरु-डार की।
बारनगमनि, बड़े बारन की, ; वर तनु,
चंपक-वरनि, वरु बनिता बिरार की॥७६५॥

आभीरबधू

विधि की सी असिम असेष भेष भूषन,
बिसेष सिख-नख रची रेख सी सुहावती।
कर-पद पदम पदमनैंनी पदमिनी की,
पदम सी सोभा सबै देखन में आवती॥
रमा रूप अधम सुरंभा कौ प्रारंभन दै,
अतुल मनोज-ओज आगिन सिरावती।
अंगन अभूति अति आंभा अभिरामन की,
अभिराम-आभरन आभीरिन भावती॥७६६॥

गुजरातबधू

छित की सी छौनी, रूप-रासि सी इकौनी,
विधि चाइ सों रचौनी गोरी कुंदन से गात की।
'देव' दुति दूनी दिन-दिन और हूनी ऐसी,
अनहोनी कहूँ कोई गोरी दीप सात की॥
रति लागै बौनी, जाकी रंभा रुचि बौनी,
लोचननि ललचौनी, सुख-जोति अबदात की।
इंदिरा अगौनी, इदु-इदीबर औनी,
महा सुंदर, सलौनी, गजगौनी गुजरात की॥७६७॥

सौवीरबधू

अंभो बिधि कासु, तासों अभोजनि परदंभौ,
भोजन अदभौ, दित दुति है सरीर की।
आरंभित जोबन निदंभ करै रंभा रुचि,
रंभोरु सुगंभीर गुराई गुन-भीर की॥
चंद से बदन, मद हाँसी की अमच्छ विस्व,
स्याम मकरद बास चंदन के चीर की।
काम हय सुंदरा सी, 'देव' काम कंदरा सी,
इंदिरा कौ मंदिर सु, सुंदरि सुबीर की॥७६८॥

करनाटकबधू

सौंधैभरी, सूधी सी, सुधा निधि सुधारी बिधि,
सहज सुबासन की रासि लहियत है।
जगमगै बसन, सुरंग रँगमगे अंग,
मदन-तरंगन के रंग चहियत है॥
बोलन, बिलोकन, चलन चतुराई,
चारुताई सुघराई नीकी रीझ रहियत है।
प्रेम-परिपाटी, रूप-जोबन की पाटी पढ़ि,
'देव' दुति साटी करनाटी कहियत है॥७६९॥

तिलंगबधू

साँबरी सुघर नारि महा सुकुमारी सोहै,
मोहै मन मौहन कौ मदन-तरंगिनी।
अनगने गुनन के गरब गहीर मति,
निपुन सँगत-गीत सरस प्रसंगिनी॥

परम प्रबीन, बीन मधुर बजावै, गावै,
नेह उपजावै, यों रिझावै पति-संगिनी।
चातुर सुभाइ, बंक भौंहन दिखाइ 'देव',
बिंगन अलिंगन बनावति त्रिलंगिनी ॥ ७७० ॥

कलिंगवधू

मदन के मद मतवारी नव भूमि झाकै,
सदन थिरात न, मिरात रति-रंग ना।
प्रीतम के रूप कों मया सी अचवत तन,
प्यासीऐ रहत, जो लहत सुख-संग ना॥
प्रेम-रस बस प्यावै प्यार सों अधर-रस,
लागत नखच्छत रुचिर भूष भंग ना।
अंग-अंग उमँगि अनंग उपजावति,
अलिंगन अघात न, कलिंग की कुलगना ॥ ७७१॥

कुकलबधू

गोरी गजराजगति, गुनन गहीर मति,
भारे भाग ही रमति, सुरति सँकोचनी।
आलिंगन-चुंबन, अधर-पान, नख-दान,
मान सों, बचन-रचना सों रुचि-रोचनी॥
जानै रीति जी की, पहिचानै प्रीति नीकी,
सुखदानी सबही की, प्यारी पी की दुखमोचनी।
केसर करै न सरि को कनक जाकी दरि,
कोकनदरी की नारि कोकनद-लोचनी ॥ ७७२ ॥

द्राविड़वधू

देवता दरसियत, देवता सरस 'देव'
इह विधि और नहीं देखि, नरी, नागरी।
सहज सुभाइ सुचि संचि रचि सील मति,
कोमल विमल मन सोभा सुख-सागरी॥
सुंदर सुबास बास, कोमल कला-निधान,
जानत तहाँ न ताहि चाहि चित आगरी।
देवी देस द्राविड़ की सुंदरी निबिड़ नेह,
गुनन अनूप रूप ओपन उजागरी ॥ ७७३ ॥

४—आधुनिक नायिकाएँ

['हरिऔध' कृत 'रस-कलस' में उत्तमा नायिका के अंतर्गत]

★

पतिप्रेमिका

बैन कहे करुए पिय के, हरुए तिय बोलि सदा सनमानैं ।
दोष अनेकन देत लऊ, कबहूँ अपने मन दोष न आनैं ॥
ना करनी ही करै 'हरिऔध', पै बाल न नाकर-नूकर ठानैं ।
नाह के कीनैं गुनाहन हू, तिय आपुनौ नेह निबाहन जानैं ॥७७४॥

परिवारप्रेमिका

सुधा सने बैन के विधान में अविधि है न, सहज सनेह की न साधना अधूरी है ।
सबतें सरस रहि सरसति सौगुना है, भोरे-भोरे भावन ते भूरि भरी-पूरी है ॥
'हरिऔध' भाँति के सुहाग ते सुहागिनी है सास औ ससुर की सराहना तें रूरी है ।
पति-पूत-प्यार-मानसर की मरालिका है, परिवार-प्रेम-पयद मयूरी है ॥७७५॥

जातिप्रेमिका

सरसी समाज-सुख-सरसिज पंक की है,
सुरुचि सलिल की रुचिर सफरी सी है ।
नाना-कुल-कालिमा कलुष की कलिंदजा है,
कल-करतूत-मंजु-मालिका लरी सी है ॥
'हरिऔध' बहु भ्रम-भँमर समूह भरी,
सकल कुरीति-सरि सबल हरी सी है ।
जाति-हित-पादप-जमात नवजीवन है,
जाति-जन-जीवन सँजीवन-जरी सी है ॥ ७७६ ॥

देशप्रेमिका

गौरवित सतत अतीत गौरवों ते होति,
गुरुजन-गुरुता तें कहाती, कबूलती ।
मुदित बनति अवनीतल में फैलि-फैलि,
कीरति की कलित-लता कों देखि फूलती ॥
'हरिऔध' प्रकृति-अलौकिकता अवलोकि,
प्रेम के हिंडोले में है पुलकित झूलती ।
भारत की भारती-विभूति तें प्रभावित है,
भामिनी भली है, भारतीयता न भूलती ॥ ७७७ ॥

जन्मभूमिप्रेमिका

चकित बनति हेरि उच्चता हिमाचल की, चाहि कनकाचल की चारुता-चरमता ।
मुदित करति निधि-मानता है नीरधि की, मानस-मनोहरता सुरपुर की समता ॥
'हरिऔध' मोहकता हेरि मोहि-मोहि जाति, जनता-अमायकता में है मन रमता ।
महनीय-महिमा निहारि मातृ होति, ममतामई वा मातृमेदिनी की ममता ॥७७८॥

निजतानुरागिनी

सुंदर सिंदूर-बिंदु ही ते सुंदरी है होति,
पौडर कौ समझि असुंदर डरति है ।
सौंधे के सुबास तें सुबासित रहित भूरि,
साबुन के परसें उसानन भरति है ॥
'हरिऔध' पर के असन कों असनि कहं,
आपने बसन-बेष कों न बिसरति है ।
सारी असँवारी हू पहिरि पुलकति प्यारी,
साया परे साया के सबाया सिहरति है ॥ ७७९ ॥

लोकसेविका

रूखी-रूखी बातन तें रुख बदलति नाहिं,
रूखी ना परति है, रखाई देखि रूखे की ।
खोवति न साख, सीख देति है सखीन हू कों,
सुखी ना रहति, सूखी नयें देखि सूखे की ॥
'हरिऔध' खूखापन काहि अखरत नाँहि,
खूखी है बनति मूठी बात सुनि खूखे की ।
दुखित कों करिकै अदूखित सुखित होति,
भूखित न होति बाल, भूख देखि भूखे की ॥ ७८० ॥

धर्मप्रेमिका

भजनीनीय प्रभु के भजन किए भाव साथ,
यजनीय जन के यजन-काज तरसै ।
लोक अवलोकि परलोक-साधना में लगै,
बचै लोभ-मूल-लोक-लालसा-लहर सै ॥
'हरिऔध' परम पुनीत अंगना है होति,
बार-बार नैनन तें प्रेम-बारि बरसै ।
धरम-धुरीन की सहज धारना के धरे,
पग-धूरि धरम-धुरंधर की परसै ॥ ७८१ ॥

*

परिशिष्ट

—२—

संस्कृत साहित्य में नायिकाभेद का क्रम

★

१—भरतमुनि

["नाट्यशास्त्र" (प्रायः प्रथम शताब्दी) के अनुसार]

*

(१) नायिका की ८ अवस्थाएँ—

१. बासकसज्जा, २. विरहोत्कंठिता,
३. स्वाधीनभर्तृका, ४. कलहांतरिता,
५. खंडिता, ६. विप्रलब्धा,
७. प्रोषितपतिका ८. अभिसारिका।

(२) नायिका के ४ भेद—

१. दिव्या, २. नृपतिनी, ३. कुल स्त्री, ४. गणिका

(३) ३ प्रकार की स्त्रियाँ—

१. वेश्या, २. कुलजा, ३ प्रेष्या

(४) प्रकृत्ति के विचार से ३ प्रकार की स्त्रियाँ—

१. उत्तमा, २. मध्यमा, ३. अधमा

(५) स्त्रियो का ४ प्रकार का यौवन—

१. नवयौवना, २. द्वितीययौवना, ३. तृतीययौवना, ४. चतुर्थयौवना

(६) ४ प्रकार की नायिकाएँ—

१. धीर, २. ललित, ३. उदात्त, ४. निभृत

(७) राजाओं के आंतरिक गण—

१. महादेवी, २. देवी, ३. स्वामिनी, ४ स्थायनी, ५. भोगिनी,
६. शिल्पकारिणी, ७. नाटकी, ८. नर्तकी, ९. अनुचारिका,
१०. आयुक्ता, ११. परिचारिका, १२. संचारिणी, १३. प्रेषणकारिका
१४. सुमहत्तरा, १५ प्रतिहारी १६ कुमारी, १७ स्थविरा

२–धनंजय

["दशरूपक" (प्रायः १० वीं शताब्दी) के अनुसार]

(१) नायिका के ३ प्रकार—

१—स्वकीया (१) मुग्धा १. वयोमुग्धा
२. काममुग्धा
३. रतिवामा
४. कोपमृदु

(२) मध्या १. यौवनवती
२. कामवती

(३) प्रगल्भा १. गाढ़यौवना
२. भावप्रगल्भा
३. रतप्रगल्भा

धीरादिभेद—

१. मध्या धीरा २. मध्या अधीरा ३. मध्या धीराधीरा
४. प्रगल्भा धीरा ५. प्रगल्भा अधीरा ६. प्रगल्भा धीराधीरा

२—परकीया

३—सामान्या

(२) अष्टनायिकाएँ—

१–वासकसज्जा
२–उत्कंठिता
३–खंडिता
४–विप्रलब्धा
५–प्रोषितभर्तृका
६–स्वाधीनपतिका
७–कलहांतरिता
८–अभिसारिका

३–विश्वनाथ

["साहित्य-दर्पण" (प्रायः १४ वीं शताब्दी) के अनुसार]

*

(१) नायिका के ३ प्रकार—

१—स्वस्त्री (१) मुग्धा १. प्रथमावतीर्णयौवना
२. प्रथमावतीर्ण मदनविकारा
३. रतिदामा
४. मानमृदु
५. समधिक लज्जवती
(२) मध्या १. विचित्रसुरता
२. प्ररूढ़स्मरा
३. प्ररूढ़यौवना
४. ईषत्प्रगल्भवचना
५. मध्यमत्राड़िता
(३) प्रगल्भा १. स्मरान्धा
२. गाढ़तारुण्या
३. समस्तरतकोविदा
४. भावोन्नता
५. दरव्रीड़ा
६. आक्रान्ता

मध्या–प्रगल्भाभेद

१–मध्या धीरा, २–मध्या धीराधीरा, ३–मध्या अधीरा
४–प्रगल्भाधीरा, ५–प्रगल्भा धीराधीरा ६–प्रगल्भा अधीरा

२—परकीया १. परोढ़ा (कुलटा), २. कन्यका

३—सामान्या

(२) नायिका के ८ प्रकार—

१–स्वाधीनपतिका, २–खंडिता, ३–अभिसारिका,
४–कलहांतरिता, ५–विप्रलब्धा, ६–प्रोषितभर्तृका,
७–वासकसज्जा, ८–विरहोत्कंठिता

(३) नायिका के ३ प्रकार—

१–उत्तमा, २–मध्यमा ३–अधमा

४–भानुदत्त

["रसमंजरी" (प्रायः १४ वीं शताब्दी) के अनुसार]

(१) नायिका के ३ प्रकार—

१—स्वीया (१) मुग्धा [१] अंकुरितयौवना (१. ज्ञातयौवना २. अ०यौ०)
[२] नवोढ़ा [३] विश्रब्धनवोढ़ा
(२) मध्या
(३) प्रगल्भा [१] रतिप्रीता, [२] आनंदात्संमोहा

मध्या-प्रगल्भा भेद

१–मध्या धीरा, २–मध्या अधीरा, ३–मध्या धीराधीरा,
४–प्रगल्भाधीरा, ५–प्रगल्भाअधीरा, ६–प्रगल्भाधीराधीरा

प्रति प्रेमानुसार छै भेद

१–धीरा ज्येष्ठा, २–धीरा कनिष्ठा ३–अधीरा ज्येष्ठा,
४–अधीराकनिष्ठा, ५–धीराधीरा ज्येष्ठा, ६–धीराधीरा कनिष्ठा

२— परकीया [१] परोढ़ा १. गुप्ता (१. भूत, २. भविष्यत्, ३. वर्तमान)
२. विदग्धा (१ वाग्विदग्धा, २. क्रिया विदग्धा)
३. लक्षिता, ४. कुलटा, ५. अनुशयना (१. वर्त. स्थान विघट्टना २. भावीस्थान अभावशंका ३. संकेतस्थालनष्टा) ६. मुदिता
[२] कन्यका

३—सामान्या

(२) दशानुसार ३ प्रकार—

१–अन्य संभोगदुःखिता, २–वक्रोक्ति ग० [१] प्रेम ग० [२] सौंदर्य ग०
३–मानवती [१. लघु मान, २ मध्यम मान, ३. गुरु मान]

(३) अष्ट नायिकाएँ—

१–प्रोषितभर्तृका	(मुग्धा, मध्या, प्रगल्भा)	(परकीया)	(सामान्या)
२–खंडिता	(,, ,, ,,)	(,,)	(,,)
३–कलहांतरिता	(,, ,, ,,)	(,,)	(,,)
४–विप्रलब्धा	(,, ,, ,,)	(,,)	(,,)
५–उत्का	(,, ,, ,,)	(,,)	(,,)
६–वासकसज्जा	(,, ,, ,,)	(,,)	(,,)
७–स्वाधीनपतिका	(,, ,, ,,)	(,,)	(,,)
८–अभिसारिका	(,, ,, ,,)	(१. ज्यो. अभि.(,,)	
		(२. दिवा. अभि.(,,)	
		(३. तमो. अभि.(,,)	

(४) पुनः ३ प्रकार —
१–दिव्य, २–अदिव्य, ३–दिव्यादिव्य

(५) तीन प्रकार की नायिकाएँ— १–उत्तमा, २–मध्यमा, ३–अधमा

परिशिष्ट

—३—

ब्रजभाषा साहित्य में नायिकाभेद का क्रम

★

१—दूपराम

["हितरंगिनी" (सं० १५६८) के अनुसार]

★

(१) लौकिक मर्यादा के अनुसार ३ भेद —

१—स्वीया (१) मुग्धा [१] अज्ञातयौवना
[२] ज्ञातयौवना
[३] नवोढ़ा (१. ललिता,
२. वयःसंधि, ३. उदितयौवना)
[४] विश्रब्ध नवोढ़ा

(२) मध्या [१] साधारण मध्या
[२] अतिविश्रब्धनवोढ़ा मध्या

(३) प्रौढ़ा [१] रतिप्रिया
[२] आनंदमता

ज्येष्ठा—कनिष्ठा

२—परकीया (१) अनूढ़ा
(२) ऊढ़ा [१] परप्रिया
[२] परविवाहिता

परकीया के भेद—

(१) लक्षिता [१. क्रिया लक्षिता, २. वचन लक्षिता,
३. प्रत्यक्ष लक्षिता]
(२) विदग्धा [१. वाक्य विदग्धा, २. क्रिया विदग्धा]
(३) कुलटा

(४) मुदिता
(५) स्वयंदूति
(६) अनुशयना [१. प्रथम, २. द्वितीय, ३. तृतीय]
(७) सुरतिगोपना [१. भूत, २. भविष्यत, ३. मिश्रित]
३—सामान्या [१. मुग्धा (अज्ञात, ज्ञात, नवोढ़ा, विश्रब्ध नवोढ़ा),
२. मध्या, ३. प्रौढ़ा]

(२) प्रकृति के अनुसार ३ भेद --
१—उत्तमा (१-स्वीया, २-परकीया)
२—मध्यमा (स्वीया)
३—अधमा (स्वीया)

मानभेद--(मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा, परकीया और सामान्या में)
१. लघु, २. मध्यम, ३. गुरु

धीरादिभेद-(मध्या, प्रौढ़ा, परकीया और सामान्या में)
१. धीरा, २. अधीरा, ३. धीराधीरा

मानमोचन-(१. भेद, २ उपेक्षा, ३. साम, ४ दान, ५ प्रनति,
६ उद्दीपन, ७ ज्ञान, ८. आलंबन, ९. त्रास)

(३) अन्य भेद—
१-अन्यसंभोगदुःखिता (स्वीया, परकीया, सामान्या)
२-गर्विता (१) वक्रोक्ति [१. रूपगर्विता, २. गुणगर्विता ३. प्रेमगर्विता]
[१. स्वीया, २. परकीया, ३. सामान्या]
(२) सरलोक्ति [१. रूपगर्विता, २. गुणगर्विता, ३. प्रेमगर्विता]
[१. स्वीया, २. परकीया ३. सामान्या]

(४) अन्य भेद —

१. स्वाधीनपतिका	(१. स्वीया,	२. परकीया,	३ सामान्या)
२ वासकसज्जा	(,,	,,	,,)
३. उत्का	(,,	,	,,)
४. अभिसारिका	(,	,,	,,)
५. विप्रलब्धा	,,	,,	,,)
६. खंडिता	(,,	,,	,,)
७. कलहांतरिता	(,,	,,	,,)
८. प्रवत्स्यत्पतिका	(,,	,,	,,)
९. प्रोषितभर्तृका	(,,	,,	,,)
१०. स्वागतपतिका	(,,	,,	,,)

२-केशवदास

["रसिकप्रिया (सं १६४८) के अनुसार]

*

(१) जाति अनुसार—

१-पद्मिनी, २-चित्रिनी, ३-शंखनी, ४-हस्तिनी

(२) कर्मानुसार—

१—स्वकीया (१) मुग्धा [१. नवलवधू, २. नवजोबना,
३. नवलअनंगा, ४. लज्जाप्रायराते]
(२) मध्या [१. आरूढ़जोबना, २. प्रगल्भावचना,
३. प्रादुर्भूत मनोभवा, ४. सुरतिविचित्रा]
१. धीरा, २. अधीरा, ३. धीरा-अधीरा
(३) प्रौढ़ा [१. समस्तरसकोविदा २. विचित्रविभ्रमा
३. आक्रमित, ४. लुब्धापति]
१. धीरा (सादरा धीरा, धीरा आकृति गुप्ता)
२. अधीरा, ३. धीरा-अधीरा

२—परकीया (१) ऊढ़ा
(२) अनूढ़ा

(३) अष्ट प्रकार की नायिकाएँ—

१-स्वाधीनपतिका (प्रच्छन्न और प्रकाश)
२-उत्का (,, ,,)
३-बासकसज्जा (,, ,,)
४-अभिसंधिता (,, ,,)
५-खंडिता (,, ,,)
६-प्रोषितपतिका (,, ,,)
७-विप्रलब्धा (,, ,,)
८-अभिसारिका (,, ,,)
१. स्वकीया अभिसारिका, २. परकीया अभिसारिका
३. सामान्या अभिसारिका, ४. प्रेमाभिसारिका (प्रच्छन्न, प्रकाश)
५. गर्वाभिसारिका (प्रच्छन्न, प्रकाश) ६. कामाभिसारिका (प्र०. ,,)

(४) गुणानुसार—

१-उत्तमा, २-मध्यमा, ३-अधमा ।

३–चिंतामणि

["कविकुलकल्पतरु" (सं० १७०७) के अनुसार]

(१) नायिका के ३ प्रकार—

१–दिव्य २ – अदिव्य ३–दिव्यादिव्य ।

(२) कर्मानुसार—

१—स्वकीया (१) मुग्धा [१. वयःसंधि, २. अविदितयौवना,
३. अविदितकामा, ४. विदित मनो०यौव०
५. नवोढ़ा ६. विश्रब्ध नवोढ़ा]

(२) मध्या [१. आरूढ़यौवना, २ आरूढ़मदना,
३. विचित्रसुरता, ४. प्रगल्भ वचना]

(३) प्रौढ़ा [१. प्रौढ़यौवनाप्रगल्भा, २. मदनमत्ता,
३ रतिप्रीतिमती ४. सुरतिमोदपरवशा]

मध्या-प्रौढ़ा मानभेद

१. मध्या धीरा, २. मध्या अधीरा, ३. मध्या धीराधीरा
४. प्रौढ़ा धीरा, ५. प्रौढा अधीरा, ६ प्रौढ़ा धीराधीरा

ज्येष्ठा–कनिष्ठा

२—परकीया (१) ऊढ़ा (२) अनूढ़ा,

१ सुरतिगोपना २. चतुर (१. वचन, २. क्रिया)
३. कुलटा, ४. लक्षिता ५. अनुशयना ६. मुदिता

(३) आठ प्रकार की नायिकाएँ—

१–स्वाधीनपतिका (मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा) (परकीया) (सामान्या)
२–वासकसज्जा (,, ,, ,,)
३–विरह उत्कंठिता,
४–विप्रलब्धा
५ खंडिता,
६–कलहांतरिता
७–प्रोषितपतिका,
८–अभिसारिका (ज्योत्स्नाअभि०, तमोभिसारिका, दिव्याभिसारिका)

(४) गुणानुसार—

१–उत्तमा, २–मध्यमा, ३–अधमा

४-मतिराम

["रसराज" (सं० १७१० के लगभग) के अनुसार]

*

(१) कर्मानुसार—

१—स्वकीया (१) मुग्धा १. अज्ञातयौवना,
२. ज्ञातयौवना (१-नवोढ़ा २-विश्रब्धनवोढ़ा)
(२) मध्या,
(३) प्रौढ़ा.

मध्या-प्रौढ़ा भेद

१. मध्याधीरा, २. मध्या अधीरा, ३. मध्या धीराधीरा
४. प्रौढ़ा धीरा, ५. प्रौढ़ा अधीरा, ६. प्रौढ़ा धीराधीरा

ज्येष्ठा-कनिष्ठा

२—परकीया (१) ऊढ़ा, (२) अनूढ़ा,
१-गुप्ता, २-विदग्धा (१. वचन २. क्रिया) ३-लक्षिता,
४-कुलटा, ५-मुदिता, ६-अनुशयना (पहली, दूसरी, तीसरी)

३—गणिका

दशानुसार—

१-अन्यसंभोगदुःखिता, २-गर्विता (१. प्रेम गर्विता,
२. रूप गर्विता) ३-मानवती।

(२) दश नायिकाएँ—

१-प्रोषितपतिका	(मुग्धा मध्या, प्रौढ़ा)	(परकीया)	(सामान्या)
२-खंडिता	(,, ,, ,,)	(,,)	(,,)
३-कलहांतरिता	(,, ,, ,,)	(,,)	(,,)
४-विप्रलब्धा	(,, ,, ,,)	(,,)	(,,)
५-उत्कंठिता	(,, ,, ,,)	(,,)	(,,)
६-वासकसज्जा	(,, ,, ,,)	(,,)	(,,)
७-स्वाधीनपतिका	(,, ,, ,,)	(,,)	(,,)
८-अभिसारिका	(,, ,, ,,)	(कृ.,च. दि)	(,,)
९-प्रवत्स्यत्प्रेयसी	(,, ,, ,,)	(परकीया)	(,,)
१०-आगतपतिका	(,, ,, ,,)	(,,)	(,,)

(४) गुणानुसार—

१-उत्तमा, २-मध्यमा, ३-अधमा

५—देव

["रस-विलास*" (सं० १७८० के लगभग) के अनुसार]

*

(१) नागरी—

(१) देवल—१. देवी, २. पूजनहारी, ३. द्वारपालिका

(२) राबल—१. राजकुमारी, २. धाय, ३ सखी, ४. दूती, ५. दासी

(३) राजनगर—१. जौहरिन, २. छीपिन, ३. पटवाइन, ४ सुनारिन, ५. गंधिन, ६. तेलिन, ७. तमोलिन, ८. हलवाइन, ९. मोदिन, १०. कुम्हारिन, ११. दरजिन, १२. चूहरी, १३. गणिका।

(२) पुरबासिन—१. ब्राह्मणी, २. राजपूतनी, ३. खतरानी, ४. वैश्यानी, ५. कायस्थनी, ६. शूद्रा, ७ नाइन, ८. मालिन, ९. धोबिन

(३) ग्रामीणा—१. अहीरिन २ काछिन, ३. कलारिन, ४. कहारी, ५. नूनेरी

(४) बनबासिन—मुनितिय, २. ब्याधिनी, ३ भीलनी

(५) सेन्या—१. वृषली, २. वेश्या, ३. मुकेरिनी

(६) पथिकतिय—१. बनजारिन, २. जोगिन, ३ नटनी, ४. कुधेरनी

(१) जाति अनुसार—

१. पद्मिनी, २. चित्रिनी, ३ शंखिनी, ४. हस्तिनी

(२) कर्मानुसार—

१—स्वकीया

(१) अंशभेदानुसार—

१. देवी (७ वर्ष) २. देवगंधर्वी (१४ वर्ष) ३ गंधर्वी (२१ वर्ष) ४. गंधर्व मानुषी (२८ वर्ष) ५. मानुषी (३५ वर्ष)

(२) ज्येष्ठा—कनिष्ठा

२—परकीया (१) अनूढ़ा

(२) ऊढ़ा—१. गुप्ता, २. विदग्धा (वचन वि० क्रिया वि०) ३. लक्षिता, ४. कुलटा, ५. मुदिता, ६. अनुशयना

३—गणिका

* "रस विलास" के अतिरिक्त देव कृत नायिकाभेद के अन्य ग्रंथ "भाव विलास", "भवाना विलास" और "सुखसागर तरंग" आदि है, जिनमे नायिकाभेद का और भी विस्तार किया गया है। "रस विलास" मे वर्णित अनेक जाति और देश की नायिकाओं का वर्णन तो इन ग्रंथों मे नहीं है, किंतु नायिकाभेद की परंपरा के अनुसार प्रचलित नायिकाओं का ही विशेष रूप से वर्णन किया गया है। जैसे पररतिदुःखिता, प्रेमगर्विता, रूपगर्विता, गुनगर्विता, कुलगर्विता, मानिनी आदि अनेक नायिकाओं का कथन देव ने "रस विलास" में न कर अन्य ग्रंथों मे विस्तार पूर्वक किया है।

(३) गुणानुसार—१ सत् (उत्तमा), २. रज (मध्यमा) ३. तम (अधमा)

(४) देशानुसार—

१. मध्यदेशबधू, २. मगधबधू, ३. कौशलबधू, ४. पाटलबधू, ५. उत्कलबधू, ६. कलिंगबधू, ७. कामरूबधू, ८. बंगबधू, ९. विंध्यबनबधू, १०. मालवबधू, ११. आभीरबधू, १२. विराटबधू, १३. कुंकलबधू, १४. केरलबधू, १५. द्राविडबधू, १६ तिलंगबधू, १७. करनाटकबधू, १८. सिंधुबधू, १९. गुजरातबधू, २०. मारवाडबधू, २१. कुरुदेशबधू, २२. कुरमीबधू, २३. पर्वतबधू, २४. भुटंतबधू, २५. काश्मीरबधू, २६. सौबीरबधू।

(५) कालानुसार—

१. स्वाधीनपतिका, २. कलहांतरिता, ३. अभिसारिका, ४. विप्रलब्धा, ५. खंडिता, ६. उत्कंठिता, ७. बासकसज्जा, ८. प्रोषितपतिका।

(६) वयक्रमानुसार—

१—मुग्धा १. वयसंधि-१२ से १३ वर्ष (अज्ञात यौवना)
२. नवल बधू—१३ वर्ष
३. नवयौवना—१४ वर्ष (ज्ञात यौवना)
४. नवलअनंगा-१५ वर्ष (नवोढ़ा)
५ सलज्जरति- १६ वर्ष (विश्रब्ध नवोढ़ा)

२—मध्या १. रूढ़यौवना—१७ वर्ष
२. प्रगटमनोज—१८ वर्ष (प्रादुर्भूत मनोभवा)
३. प्रगल्भवचना-१९ वर्ष
४. विचित्रसुरता-२० वर्ष

३—प्रौढ़ा २. लब्धापति— २१ वर्ष
२. रतिकोविदा—२२ वर्ष
३ आक्रान्ता— २३ वर्ष
४. सविभ्रमा— २४ वर्ष

मध्या-प्रौढ़ा-मान

१. मध्या धीरा, २. मध्या मध्यमा, ३. मध्या अधीरा
४. प्रौढ़ा धीरा, ५. प्रौढ़ा मध्यमा, ६. प्रौढ़ा अधीरा

(७) प्रकृति अनुसार—

१. कफ प्रकृति, २. पित्त प्रकृति, ३. वात प्रकृति

(८) सत्वानुसार—

२. देव, २. मनुष्य, ३ गंधर्व, ४ यक्ष, ५. किन्नर, ६. पिशाच, ७ नाग, ८ कपि, ९. काक।

६--रसलीन

["रस प्रबोध" (सं० १७६६) के अनुसार]

★

(१) कर्मानुसार—

१—स्वकीया १-मुग्धा (१) अंकुरित यौवना,
(२) शैशव यौवना,
(३) नव यौवना (१-अज्ञात, २-ज्ञात)
(४) नवल अनंगा (१-अविदित २-विदित)
(५) नवलबधू (१-नवोढ़ा, २-विश्रब्ध नवोढ़ा,
३-लज्जासक्ता रतिकोविदा)

मुग्धा पतिदुःखिता (१) मूढ पतिदुःखिता,
(२) बाल पतिदुःखिता
(३) वृद्ध पतिदुःखिता,

२—मध्या (१) उन्नत यौवना
(२) उन्नत कामा
(३) प्रलभ वचना
(४) सुरति विचित्रा

इनके अतिरिक्त 'लघुलज्जा' नामक एक और भेद का भी कथन किया है

३—प्रौढ़ा (१) उद्भट यौवना
(२) मदनमत्ता
(३) लुब्धापति
(४) रतिकोविदा

(१) रतिप्रिया
(२) आनंदाति संमोहा

मध्या-प्रौढ़ा धीरादि भेद

(१) मध्या धीरा, (२) मध्या अधीरा (३) मध्या धीराधीरा
(१. आकूति गोपना, २. सादरा)
(४) प्रौढ़ा धीरा, (५) प्रौढ़ा अधीरा (६) प्रौढ़ा धीराधीरा।
ज्येष्ठा कनिष्ठा

२—परकीया (१) अनूढ़ा १. उद्बुद्धा [स्वयंदूती] २. उद्बोधिता
(२) ऊढ़ा [,, ,,]
१. असाध्या [१. सभीता, २. गुरुजनसभीता,
३. दूतीवर्जिता, ४. अतिक्रांता ५ खलपृष्ठ]
२. सुखसाध्या [१ वृद्धबधू २ बालबधू
३ नपुंसकबधू ४ विधवाबधू ५. गुनीबधू
६. गुनरिझवती, ७. सेवकबधू ८. निरंकुश
९. परतियासक्त पति की स्त्री, १०. अतिरोगी
की स्त्री]

अवस्था भेद से ६ प्रकार की परकीया—

१. गुप्ता [१. वर्तमान गुप्ता २. भूत गुप्ता ३. भविष्य गुप्ता]
२. विदग्धा (१) वचन विदग्धा [स्वयंदूती]
(२) क्रियाविदग्धा [१. पतिवंचिता २. दूतीवंचिता]
३. लक्षिता [१. हेतु लक्षिता २. सुरति ल० ३. प्रकाश ल०]
४. कुलटा [१. मूढ़ पतिदुःखिता, २. बाल पतिदुःखिता
३. वृद्ध पतिदुःखिता]
५. मुदिता,
६. अनुशयना [१. स्थान विघटना, २. भावी स्थान साधन,
३. संकेत स्थल नष्टा]

स्वकीया और परकीया के ३ भेद—
१. कामवती, २. अनुरागिनी, ३. प्रेमासक्ता।

३—सामान्या, १-स्वतंत्रा, २-जननीअधीना, ३-नेमता, ४-प्रेमदुःखिता

(२) दशानुसार—
१-अन्यसुरतिदुःखिता
२-गर्विता (१. प्रेमगर्विता, २. वक्रोक्ति प्रेमगर्विता)
(१ रूपगर्विता, २. वक्रोक्ति रूपगर्विता)
(१. गुनगर्विता, २. वक्रोक्ति गुनगर्विता)
३—मानिनी.

(३) अष्ट नायिकाएँ—
१-स्वाधीनपतिका (मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा) (परकीया) (सामान्या)
२-वासकसज्जा (,, ,, ,,) (,,) (,,)
३-उत्कंठिता (,, ,, ,,) (,,) (,,)
४-अभिसारिका (,, ,, ,,) (कृ०,शु०,दि०)(,,)
५-विप्रलब्धा (,, ,, ,,) (परकीया) (,,)
६-खंडिता (,, ,, ,,) (,,) (,,)
७-कलहांतरिता (,, ,, ,,) (,,) (,,)
८-प्रोषितपतिका (,, ,, ,,) (,,) (,,)

१-गमष्यत्पतिका (मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा) (परकीया) (सामान्या)
२-गच्छत्पतिका (,, ,, ,,) (,,) (,,)
३-आगमष्यत्पतिका (,, ,, ,,) (,,) (,,)
४-आगतपतिका (,, ,, ,,) (,,) (,,)
(संयोग गर्विता)

(४) गुणानुसार—१-उत्तमा, २-मध्यमा, ३-अधमा।

७—दास

["शृंगार निर्णय" (स० १८०७) के अनुसार]

★

(१) आत्म धर्मानुसार—

१—साधारण नायिका

२—स्वकीया १. पतिव्रता, २. उद्दारिज, ३. माधुर्ज

ज्येष्ठा-कनिष्ठा—१. साधारण ज्येष्ठा,
२. दक्षिण की ज्येष्ठा-कनिष्ठा,
३. शठ की ज्येष्ठा,
४. शठ की कनिष्ठा,
५. धृष्ट की ज्येष्ठा,
६. धृष्ट की कनिष्ठा

ऊढ़ा-अनूढ़ा

३—परकीया १-प्रगल्भा, २-धीरा

(१) अनूढा, १. उद्बुद्धा, २. उद्बोधिता
[१. अनुरागिनी, २. प्रेमासक्ता]

(२) ऊढ़ा १. असाध्या, २. दुःखसाध्या, ३. साध्या

१-विदग्धा—१ वचनविदग्धा
२. क्रियाविदग्धा—
गुप्ता (भूत, भविष्य, वर्तमान)

२-लक्षिता (सुरतिलक्षिता, हेतुलक्षिता, धीरा)

३-मुदिता (विदग्धा)

४-अनुशयना १. केलिस्थानविनाशिता,
२. भावीस्थानअभाव,
३. निकेत निःप्राप्य
(विदग्धा)

(२) अवस्थानुसार—

१—मुग्धा

(१) स्वकीया (१ अज्ञातयौवना, २. ज्ञातयौवना)

(२) परकीया (,, ,,)

[१ नवोढ़ा, २. विश्रब्धनवोढ़ा, ३ अविश्रब्ध नं०]

२—मध्या (स्वकीया-परकीया)

३—प्रौढ़ा (स्वकीया-परकीया)

(३) अष्ट नायिकाएँ

संयोग शृंगार-१—स्वाधीनपतिका (स्वकीया, परकीया)
(रूपगर्विता, प्रेमगर्विता, गुनगर्विता)

२—वासकसज्जा (स्वकीया, परकीया) (आगतपतिका)

३—अभिसारिका(.. ..) (शुक्ला, कृष्णा)

वियोग शृंगार-४—उत्कंठिता

५—खंडिता (धीरा, अधीरा, धीराधीरा)
मानिनी (लघु, मध्यम, गुरु मान)

६—कलहांतरिता (लघु, मध्यम, गुरु मान-शांति)

७—विप्रलब्धा (अन्यसंभोगदुःखिता)

८—प्रोषितभर्तृका (१. प्रवत्स्यत्प्रेयसी,
२. प्रोषितपतिका,
३ आगच्छतपतिका
४. आगतपतिका)

(४) उत्तमादि भेद—

(१) उत्तमा

(२) मध्यमा

(३) अधमा

८—पद्माकर

["जगद्विनोद" (सं० १८६७) के अनुसार]

★

(१) कर्मानुसार—

१—स्वकीया १-मुग्धा (१) अज्ञात यौवना

(२) ज्ञात यौवना [१-नवोढ़ा, २-विश्रब्ध न०]

२—मध्या

३—प्रौढ़ा (१) रतिप्रीता (२) आनंद संमोहिता

मुग्धा और प्रौढ़ा के भेद

१. मध्या धीरा, २. मध्या अधीरा, ३. मध्या धीराधीरा

४. प्रौढ़ा धीरा, ५. प्रौढ़ा अधीरा, ६. प्रौढ़ा धीराधीरा

ज्येष्ठा—कनिष्ठा

२—परकीया १. ऊढा, २. अनूढ़ा

१. गुप्ता [भूत सुरतिसंगोपना, वर्तमान सु० सं०, भविष्य सु०]

२. विदग्धा [१. वचन विदग्धा, २. क्रिया विदग्धा]

३ लक्षिता ४. कुलटा ५. मुदिता ६-अनुशयना [प्रथम, द्वि०, तृ०]

३—गणिका

(२) दशानुसार नायिकाएँ—

१-अन्यसुरतिदुःखिता, २-मानिनी, ३-गर्विता [१. प्रेमग० २. रूपग०]

(३) दस प्रकार की नायिकाएँ—

१—प्रोषितपतिका	(मुग्धा, मध्या, प्रौढा)	(परकीया)	(गणिका)
२—खंडिता	(,, ,, ,,)	(,,)	(,,)
३—कलहांतरिता	(,, ,, ,,)	(,,)	(,,)
४—विप्रलब्धा	(,, ,, ,,)	(,,)	(,,)
५—उत्कंठिता	(,, ,, ,,)	(,,)	(,,)
६—वासकसज्जा	(,, ,, ,,)	(,,)	(,,)
७—स्वाधीनपतिका	(,, ,, ,,)	(,,)	(,,)
८—अभिसारिका	(,, ,, ,,)	(दि.कृ.शु.)	(,,)
९—प्रवत्स्यत्प्रेयसी	(,, ,, ,,)	(परकीया)	(,,)
१०—आगतपतिका	(,, ,, ,,)	(,,)	(,,)

(४) गुणानुसार—१. उत्तमा, २. मध्यमा, ३. अधमा।

६—अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

["रस कलस" (सं १९८८) के अनुसार]

★

(१) जाति अनुसार—

१. पद्मिनी, २. चित्रिनी,
३. शंखिनी, ४. हस्तिनी

(२) प्रकृति अनुसार—

१—उत्तमा १. पतिप्रेमिका
२. परिवारप्रेमिका
३. जातिप्रेमिका
४. देशप्रेमिका
५. जन्मभूमि प्रेमिका
६. निजतानुरागिनी
७. लोकप्रेमिका
८. धर्मप्रेमिका

२—मध्यमा (१ व्यंगविदग्धा २. मर्म पीड़िता)

३—अधमा

(३) धर्मानुसार—

१—स्वकीया (१) मुग्धा २-अज्ञात यौवना,
२-ज्ञात यौवना (नवोढा, विश्रब्धनवोढ़ा)
(२) मध्या
(३) प्रौढा १-रतिप्रीता, २-आनंदसंमोहिना

मध्या-प्रौढ़ा के भेद

१-धीरा (मध्या, प्रौढा)
२-धीराधीरा (,, ,,)
३-अधीरा (,, ,,)

स्वभावानुसार—

१. अन्यसुरतिदुःखिता,
२ वक्रोक्तिगर्विता (१. रूपगर्विता, २. प्रेमगर्विता)
३. मानवती

ज्येष्ठा-कनिष्ठा

२—परकीया १-ऊढ़ा [१. उद्बुद्धा, २. उद्बोधिता]

२-अनूढ़ा [१. ,, २. ,,]

(१) गुप्ता (भूत, वर्तमान, भविष्यत्)

(२) विदग्धा [१. वचन वि०, २. क्रिया वि०]

(३) लक्षिता

(४) कुलटा

(५) अनुशयना [१. संकेत विघट्टना,
२. भावी संकेतनष्टा,
३. रमणगमना]

(६) मुदिता

३—सामान्या अथवा गणिका

(४) दस प्रकार की नायिकएँ—

१-प्रोषितपतिका (मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा) (परकीया)
२-खंडिता (,, ,, ,,) (,,)
३-कलहांतरिता (,, ,, ,,) (,,)
४-विप्रलब्धा (,, ,, ,,) (,,)
५-उत्कंठिता (,, ,, ,,) (,,)
६-वासकसज्जा (,, ,, ,,) (,,)
७-स्वाधीनपतिका (,, ,, ,,) (,,)
८-अभिसारिका (,, ,, ,,) (शुक्ला, कृष्णा, दिवा)
९-प्रवत्स्यत्पतिका (,, ,, ,,) (परकीया)
१०-आगतपतिका (,, ,, ,,) (,,)

अनुक्रमणिका

१–प्रथम खंड की पृष्ठ-संख्या सहित व्यक्ति-नामानुक्रमणिका

★

अ

अकबर—५३, ५८, ७०, १०६
अप्पय दीक्षित—६७, ७३,
अभिनवगुप्त—६३
अमरुक—३८, ३६
आनंदवर्धनाचार्य—३८, ६३, ७३
आलम—५६, १५८

उ

उद्भट—६३

क

कन्हैयालाल पोद्दार—१३३
करनेश—५३, ७०
कालिदास—२६, ३८
कुलपति मिश्र—७४, १५८,
कुंतल—६४
कुंभनदास—४६, ६२
कृष्णदास—४६, ६२, १०२
कृपाराम—४२, ५३, ६७, ६१, ६२ ६८, १०६, १३४, १५८, १५६, १६०
केशवदास—५३, ५४, ५५, ६४, ६६, ७१, ७२, ७७, १०७, १०६, ११२, ११३, ११६, १३४, १४७, १५३, १५८, १५६

ख

खुसरो—१७

ग

गदाधर भट्ट—५१
ग्वाल—७५, १२६, १५८, १७८, १८५, १६३, १६६
ग्राउस—३१
गुलाबराय—१३३
गोवर्धनाचार्य—३६, ७६,
गोविंदस्वामी—४६
गंग—५३, ७०,
गंगाप्रसाद—५३, ७०

घ

घनानंद—५१, ५६, ६०, ७५, १५८, १८६, २००, २०४

च

चतुर्भुजदास—४६
चिंतामणि—६, ५३, ७३, ७६, ११२, १५८, १५६
चैतन्य—१२, २६, ३१, ३२, ३५, ४३, ४८, ५१, ६६
चंडीदास—३३, ३५, ४७, ५२
चंद—१७

छ

छत्रशाल—५६
छीतस्वामी—४६

ज

जगन्नाथप्रसाद 'भानु'—१३१, १३३
जगन्नाथ पंडितराज—१२, ६५
जटाशंकर—७३
जयदेव (अलंकारशास्त्री)—६४, ६६, ७३
जयदेव-(कवि) २७, २६, ३२, ३३, ३५, ३६, ४७, ४६, ५२, ६७
जसवंतसिंह—७४
जहाँगीर ५८
जायसी—६६
जीव गोस्वामी—३५, ३६

ठ

ठाकुर—१५८, १८८

त

तानसेन—४२, ५०, ६७,
तुलसीदास—२४, ५१, १०७
तोष—७५, १२०, १५८ २०६

द

दास—६०, ७५, ११७, १२५, १३५, १५३, १५५, १५८, १५६, १६०, १६१, १६२, १६३ १६५, १६८, १७१, १८८
द्विज—१३०
द्विजदेव—१२६, १५८
दुहिण—४
दूलह—७५
देव—६०, ७५, १०६, ११०, ११५, १३५, १४८, १५२, १५५, १५६, १६७, १७४
दंडी—६३ ६६, ७३ ११०

ध

धनजय—६४, ६७, ८५, १५६, १६१

न

नरसीमेहता—५२
नरहरिदास—५०
नवीन—१३०
नागरीदास—५०, ५१,
निंबार्काचार्य—२७, २६, ३०, ३५ ४३, ५१
नेवाज—१५८
नंददास—४६, ६६, ६३, ६४, १०२, १०४, १०८, १५८, १५६
नदराम—१३०, १५८

प

पजनेस—१५८
पद्माकर—४०, ६०, ७५, १२८, १५८ १५६, १६०, १७५, २०३
परमानंददास—४६, ६२
परशुरामजी—५०
प्रतापनारायणसिंह—१३०, १३३
प्रतापसाह—७५, ७६, १२६, १५८

ब

बनी-ठनी—५१
बलभद्र—५३, ७०
बल्लभाचार्य—२६, ४३, ४४, ४६, ४८ ५२, ६२,
बाबूराम विन्थरिया - १३३
बालकृष्ण—७२
बिहारीलाल—४०, ५३, ६०, ६१, ७४, १२८, २०१, १५८
बिहारीलाल भट्ट—१३१, १५८, १६३, १६५
बीरबल—५३

बेनी प्रवीन —७५, १२८, १५८
बेंजू बावरा—४२
बोधा —५६, १५८

भ

भगवत रसिक—५०
भरतमुनि—४, ११, १३, ६२, ६७, ८३, ८५, १००, १५६, १६१ १६२
भवभूति —३८
भानुदत्त—६५, ६६, ८५, ८६, ८८, १००, १०५, १३४, १५६, १६१
भामह—६३
भारवि—३८
भास—२३, ३८
भूषण—५६, ७३, ११२
भोज—१४, ७३

म

मतिराम—६०, ७३ ७४, १०८, ११२, ११३ ११४, १३४, १४३, १५८, १५६, १६०, १६३, १७४, १६५, २००
मध्वाचार्य —२६, ३५, ५१
मधुसूदन सरस्वती—१२
मनोहर—५३, ७०
मम्मट—६४, ७३, ११०
माघ —३८
माधुरीदास—५१
मीराबाई— ५१, ५२, ५६, १४६
मुनिलाल—७०
मुबारक—५३, ७२
मोहनदास—७२
मोहनलाल—५३, ७०

र

रघुनाथ —७५, १२०, १५८
रसखान—२५, ५१, ५६, १५८, १७१
रसलीन —१६, ७५, ११७, १२१, १३५, १४४, १४८, १५४, १५८, १५६, १६०, १६१ १६२, १६३, १६८
रसिकगोविंद—५०
रसिकविहारी — ५०
रहीम—२५, ५३, ७०, १०६, ११७, १५८
राजशेखर — ६४
रामानुजाचार्य—२६, ४४
रामानंद—२६
रुद्रट—६३, ७३
रुय्यक—६४, ७३, ११०
रूपगोस्वामी— १२, ३१, ३५, ३६, ६६
रूपरसिक—५०

ल

लछिराम — १३०, १५८
ललितकिशोरी (चै०)—५१
ललितकिशोरी (नि०)—५०
ललितमाधुरी—५१
ललितमोहिनी—५०
लक्ष्मणसेन—३६
लीलाधर—७२
लीलाशुक—३५, ३६

व

वात्स्यायन—१३७
वामन—६३
व्यासजी—५१, ६७
व्यास मुनि—५, ११, १४, ८४, ८५
विट्ठलनाथ—४३, ४८, ४६,
विट्ठलविपुल—५०
विद्यापति—३३, ३४, ३५, ४७, ४६, ६७
विश्वनाथ—११, ६५, ६७, ७३ ८५, ८६, ८८, ११०, १५३, १५६, १६१
वृंदावनजी—५०

श

शाहजहाँ—५८, ६५
शिवाजी—५६, ११२
शीतलदास—५०
श्रीपति—७५, १२०, १५८
श्रीभट्ट—४३, ५०, ६७
श्रीहर्ष—३८
शूद्रक—३८
शेख—१५८
शेखर—१७६
शंकराचार्य—२६
शंभुनृप—७४, १८६

स

सनातन गोस्वामी—३१, ३५
सरदार—१३०, १५८
सरसदास—५०
सहचरिशरण—५०
सुखदेव मिश्र—७५, १५८
सुरति मिश्र—७५, १२०, १५८
सुंदर—५३, ७२, ११२ १५८,
सूरदास—४२, ४३, ४४, ४८, ५६, ५२, ५६, ६०, ६२, ६२ ६३, ६७, १००, १४६ १५८
सूरदास मनमोहन—५१
सेनापति—५३, ६०, ७२, १५८
सेवक—१३०, १५८, १७८
सोमनाथ—५, १५, १७, ७५, १२१ १५८, १६४

ह

हठी—५१
हनुमान—१८७
हरिऔध (पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय) १३२, १४८, १५८, १६३ १८६, २०१
हरिदास स्वामी—४३, ४४, ५०, ६७
हरिराम—७२
हरिव्यास—५०
हरिश्चंद्र भारतेन्दु—१७७, १८०, २०५
हरिशंकर शर्मा—१३३
हाल—३७, ३६, ७४, ७६
हित हरिवंश—४३, ४४, ४६, ६७

★

२—प्रथम खंड की पृष्ठ-संख्या सहित ग्रंथानुक्रमणिका

*

अ

अग्निपुराण—५, १४, ८४
अध्यात्म रामायण—२४
अनंगरंग—१३८
अमरकोष—६
अलंकारशतक—७२
अलंकार शेखर—७१
अलंकार सर्वस्व—६४
आर्यासप्तशती—३६
आदर्पण—७५, १२१

उ

उज्ज्वल नीलमणि—३६, ६६

क

कर्णाभरण—७०
कविकल्पलतावृत्ति—७१
कविकुलकल्पतरु—७३, ११२
कविकुलकंठाभरण—७५
कवित्तरत्नाकर—७२
काव्यकलाधर—१२०
काव्यनिर्णय—७५
काव्यप्रकाश—१६, ६४, ६७, ७३
काव्यप्रभाकर—१३१, १३३
काव्यमीमांसा—६४, ७१
काव्यविलास—१२६
काव्यविवेक—७३
काव्यरसायन—७५, ११५
काव्यसरोज—१२०
काव्यसिद्धांत—१२०
काव्यादर्श—६६, ७१
काव्यालंकार—६३
कीर्तिपताका—३४
कीर्तिलता—३४
कुमारसंभव—२६
कुवलयानंद—६४, ६६, ७३
कुशलविलास—११५
कृष्णकर्णामृत—३६
कृष्णगीतावली—५१

ग

गाथा सप्तशती—३७, ७४
गीतगोविंद—३३
गोपालतापनी उपनिषद्—२४, २७

च

चंद्रालोक—६४, ६६, ६७, ७३

छ

छंदरत्नावली—७२
छंदविचार—७३, ७५
छंदसार—७४

ज

जगद्विनोद—१२८
जातिविलास—१०८, ११७
जुगलमत—५०,

त

तिलशतक—७२

द

दशमस्कंध—१०४
दशरूपक—६४, ६७, ८५
दूषणविचार—७०

ध

ध्वन्यालोक—३८, ३९, ६३

न

नखशिख—७०
नगरशोभा—१०८, ११७
नवरस—१३२
नवरसतरंग—१२८
नाट्यशास्त्र—४, ६२, ६७, ८४, ११०

प

प्रबोधसुधासागर—१३०
प्रियप्रवास—१३२
प्रेमतरंग—११५
पचसायक—१३८

ब

बरवा नायिकाभेद—७०, ९१, १०६, १०९
ब्रह्मपुराण—२४, २६
ब्रह्मवैवर्त पुराण—२७, २८, ३१
बारहमासा—७२
बिहारी सतसई—४०, ६१, ७४ ७६

भ

भवानीविलास—७५, ११५
भक्तिरसामृतसिंधु—१२, ३६
भक्तिरसायन—१२
भक्तिसूत्र—२४
भागवत—२४, २६, २८, ४६
भावविलास—७५, ११५, ११६
भाषाभूषण—७४
भूपभूषण—७०

म

महाभारत—२४, २६
महावाणी—५०
महेश्वरविलास—१३०

र

रसकलस—१३२, १६३
रसकुसुमाकर—१३१, १३३
रसगगाधर—६५
रसचद्रिका—७२
रसतरंग—१३०
रसतरंगिणी ६५, ६७, ८६
रसप्रबोध—७५, १२१
रसपीयूषनिधि—७, ७५ १२१
रसमंजरी (कन्है० पो०)—१३३
रसमंजरी (नंद०)—९९, ९१, ९२, ९३, १०२, १०४, १०७, १०८, १०९
रसमंजरी (भानु०)—६५, ६७, ८५, ८६, १०५
रसरत्नाकर—१२०
रसरत्नाकर (हरि०)—१३३
रसरहस्य—७४
रसराज—७४, १०८, ११२, ११३
रसरंग—१२९
रसविलास—७५, ११५, ११७
रससरस—१२०
रसार्णव—७५

रसिकप्रिया--७१, १०७, १०६, ११३, ११४, ११६
रावासुवाशतक--५१
रामचंद्रिका--१०६
रामतापनी उपनिषद--२४
रामप्रकाश--७०
रामा--१७
रूपमंजरी--६६, ६३, ६५, १०४, १०६

ल

लघु भागवतामृत--३६
लालितललाम--७४

व

वक्रोक्तिजीवित--६४
वाग्विलास--१३०
वायु पुराण--२४
विरहमंजरी--१०४
विष्णु पुराण--२४, २६
वृत्त विचार--७५
वृहद् भागवतामृत--३५
वैष्णवतोषिणी--३५
व्यंग्यविलास--१३०
व्यंग्यार्थकौमुदी--१२६

श

शिवराजभूषण--७३
श्रुतिभूषण--७०
शृंगारदर्पण--१३०
शृंगारनिर्णय--७५, १२५
शृंगारप्रकाश--६७ ७१
शृंगारबत्तीसी--१२६
शृंगारलता--७५
शृंगारलतिका--१२६
शृंगारलतिका सौरभ--१३१
शृंगारविलासिनी--११५
शृंगारसरोज--१३०
शृंगारसागर--७०
शृंगारसुधाकर--१३०
शृंगारसग्रह--१३०

प

षट् संदर्भ--३६

स

सतसई--७४, ११४
सांख्य दर्शन--२४, २८
साहित्यदर्पण--१६, ६५, ६१, ७१, ७३, ८५ ८६
साहित्यलहरी--६८, ६१, ६२, ६३, १००, १०४, १०७, १०६
साहित्यसारसी--१३०
साहित्यसागर--१३१, १६३
साहित्यसार--७४
साहित्यसिंधु--१३०
साहित्यसुधाकर--१३०
सिंहासनबत्तीसी--७२
सुखसागरतरंग--७५, ११५
सुजानविनोद--११५
सुधानिधि--१२०
सुंदर शृंगार-७१, ११२
सुंदरीसर्वस्व--१३०
सूरसागर--८४ १०३

ह

हरिभक्तिविलास--३५
हरिवंश--२४, २६
हितचौरासी--५०
हिततरंगिनी--७२, ६७, ६१, ६२ ६८, १०४, १०७
हिंदी काव्य में नवरस--१३३

३—द्वितीय खंड की पद्य-संख्या सहित कवि-नामानुक्रमणिका

★

सं० कवि	पद्य-संख्या	योग
१ अज्ञात—	१४, ३४, ४६, ५१, ६३, ७५, ७८, ९१, १११, ११३, १३३, १३९, १५१, १५५, १५७, १५८, १६५, १६६, १९१, १९२, २१०, २२३, २४१, २४२, २४५, २५५, २६२, २९९, ३०४, ३२२, ३२४, ३२७ ३२८, ३२९, ३५२, ३५३, ३६०, ३६३, ३६९, ३७१, ३७९, ३८३, ४०५, ४१८, ४१९, ४२८, ४३०, ४५०, ४७३, ४७७, ४८४, ५०६, ५३७, ५४४, ५६६, ५७१, ५८६, ५९७, ६१४, ६१९, ६५९	६१
२.आलम—	५८८, ६२३	२
३.ईश—	३२५, ...	१
४.कमलापति—३७८,	... ...	१
५.कविराज—	२८०, ...	१
६.कविंद—	७१, १४५, १५०, ३७३, ४२५, ४९४, ५२३ ...	७
(उदयनाथ)	... .	
७.कालिदास—	१२२, १४८	२
८.कुमार—	७६, ...	१
९.कृपाराम—	८२, ८८, ३२७, ३५०, ४५९	५
१०.केशवदास—	१०, ३९, ५४, ६६, १३८, १७७, ६०३, ...	७
११ ग्वाल -	१०१, १६०, १६३, २६८, २७६, ३०१, ३१५, ३१७ ४०८, ४१२, ४२४, ४३८, ५३४, ५४०, ५८४, ६२७,	१६
१२.गुलाब—	७०, ९९, १५४, २६९, ३१९	५
१३.गोकुल—	१४९, ५०४, ५७६, ...	३
१४.गंग—	८५, ...	१
१५.घनश्याम—	३६२, ...	१
१६.घनानंद—	४, ७, २३, २०६, २१६, २२५, २७६, ५४८, ५७९, ५९४, ६०२, ६०३, ६१३, ६१५, ६१८, ६२०, ६२२,	१७
१७.चितामणि—	१३४, १५३, १७९, १८८, २४९, २६५, २८२, ... ३१०, ३९५, ४०२, ४२७, ५८५, ...	१२

सं० कवि	पद्य-संख्या	योग
१८.ठाकुर—	१६६, २१२, २२४, २२७, २३०, २३४, २३६, २४०, २५१, ३१४, ४६७, ६०१, ६०७, ६१२,	१४
१६.तोप—	१२५, ६४२, ...	२
२०.दयानिधि-२२, ६२१, ...		२
२१.दास—	११, ८१. ६०, १३७, १४१, १८७, १६७, १६८, २०३, २६८, ३२०, ३४६, ३६६, ३६८, ४४१, ...	१५
२२.दिनेश— ३६३		१
२३.द्विज—	१०६, ४३१, ४८६, ५४८, ...	४
२४.द्विजदेव- (महा० मानसिंह)	१३, १५, १८, २१, ३३, १००, १४७, १७४, २०४, २०५, २१६, २२६, २३१, २३३, २४३, ३००, ३६१, ४४७, ४४१, ४७१, ४६८, ५६०, ५६२, ५६५, ५६७, ५७५, ५८०, ५८१, ५६२, ५६३, ५६४, ५६६, ६१६, ६३६, ६५५, ...	३५
२५.द्विजराज-१०८, ...		१
२६.देव—	३, १६, २०, २४, २५, २७, २६, ४१, ४२, ४४, ४५, ४६, ५०, ५२, ५४, ५६, ५८, ६१, ८६, ६२. ६६, १२७, १३५, १७०, १७३, २००, २१७, २५०, २५३, २५७, २६६, २७५, ३३३, ३४१, ३४८, ३७०, ३७२, ३७४, ३७५, ३८५, ३८६. ३६०, ३६२. ३६६, ३६७, ४११, ४१३, ४२०, ४२६. ४३५, ४३७, ४६०, ४६२, ४६४, ४६५, ४८१, ४६६. ५१६, ५२०, ५२६, ५२६, ५३८, ५४१, ५४२, ५७०, ५८७, ६२८, ६३२, ६३५, ६३६, ६३७, ६३८, ६५१, ६५३, ...	७४
२७ नरेश— ६००,	... .	१
२८.नाथ— २६,	... .	१
२६.नीलकंठ-७४,	....	१
३०.नेवाज— २३५,	....	१
३१.नंददास- ४४६,	... .	१
३२.नंददास- ४४६, ५४७, (अष्टछाप)	.. ..	२
३३.नंदराम- २४६, २८६, ५५२, ...	.. ...	३

सं० कवि	पद्य-संख्या	योग
३४.पद्माकर–	८, ३०, ३१, ३२, ३६, ६७, ७७, ११४, १२०, १२६, १२६, १४४, १५२, १६१, १६४, १८१, १८६. २०१, २३२, २७१, २७४, २८८, २६०, २६३, ३०२, ३०५, ३१२, ३१३, ३१६, ३३६, ३४६, ३६१, ३६४, ४००. ४४३, ४४५ ४५७, ४६३, ४६८, ४७६, ४८२. ४६६, ५००, ५०२, ५२५. ५३४, ५४३, ५४६, ५५७, ५५६, ५६१, ५८३, ५६१, ६३३, ६४०, ६४५, ६५७,	... ५७
३५.प्रतापसाह-६०,१८०, २७८, २८६, ३३०, ३५१, ३५६,	... ७
३६.पूर्वी— ३५८, ...	१
३७ प्रेम— १४६, ...	१
३८ व्रजचंद– १३०, ३५७, ...	२
३६.व्रह्म— १०६, ...	१
(बीरबल)	
४०.बालम—८०, ...	१
४१ बिहारीलाल३७, ३८, १०२, १३६, १८५, २८३, २६४,३०६,३३२, ३८४. ४१४, ४३६, ४६७, ४७०, ४७४, ५१२, ५१३, ६३४, ६४३, ६६०, ...	२०
४२.बीर— ५८२. ६३१, ...	२
४३.बैनी— ५६, २२२, ...	२
४४.बैनीप्रवीन-६,६२, ६७, १४३, १६५, २६३, २८७, ३१८, ३२३, ३८२, २८८, ४०३, ४३६, ४६६, ५१७, ...	१५
४५.बोधा— २१३, २२१, ...	२
४६.भानु— ५१०, ११६, १३१, २०२, ...	४
जगन्नाथप्रसाद	
४७.भूधर— १६, ३३६, ...	२
४८.भुवनेश– ५७४, ...	१
४६ भौन— १, ...	१
५०.भंजन— २८१, ...	१
५१.मतिराम–५, १२, ३४, ८३, ८६, १०७, ११५, ११७,१२१,१२८, १४०, १५६. १६८, १७२, १७६, १७८, १८६. २६०, २६४. २७२, २७७, २८८, २६६, २६७, ३०३, ३०८, ३२६, ३३१, ३३४, ३८१, ३८६, ४१७, ४२३, ४२६,	

सं०	कवि	पद्य-संख्या	योग
		४४८, ४५३, ४५८ ४७५, ४७८, ४६०, ५०५, ५२१, ५२४, ५२८, ५३०, ५३३, ५३६, ५४६, ६६६, ६३०, ६४६, ६५६, ६५८, ...	५३
५२.	मधुसूदन-	५६६, ...	१
५३.	मनसुख-	६८, ...	१
५४.	ममारख-	४६६, ...	१
५५.	माखन—	१४२, १६२, १८३, ...	३
५६.	मुबारक-	५६८, ६५६, ...	२
५७.	मंडन—	११०, ३२१, ...	२
५८.	रघुनाथ-	१७, ७६, १६७, १८२, १६३, २५७, ३६७, ४०६, ४२२, ४३४, ४८८, ५१४, ५५३ ५५६, ५७७, ५६०,	१६
५६	रत्नाकर- (जगन्नाथदास)	३८०, ...	१
६०.	रसखान-	२०७, २०८, २०६, २१४, २१५, २२०, २३८, २५४, २५६, ६०४, ६०५, ६१७, ...	१२
६१.	रसलीन-	८४, १७१, २७०, २८४, ३४२, ३४३, ३४४, ३४५, ४१५, ५५०, ५५५, ५६३.	१२
६२.	रसिकेश-	२६१, ...	१
६३.	रहीम—	२६१, २६५, ३०७, ३३८, ४१०, ४१६, ४८५, ५१८, ५३६, ५५४	१०
६४.	राम—	२४४, ...	१
६५.	राव—	२७६, ...	१
६६.	लछिराम-	६४, ६५, १६६, २६२, ३४७, ४०६, ४५२, ४५६, ४८६, ४६२, ४६३, ५०७, ५१५, ...	१३
६७.	श्रीपति—	५७८, ...	१
६८.	श्रीधर—	२, ...	१
६६.	सिव—	३६४, ...	१
७०	सिवराम-	२५८, ...	१
७१	सागर—	२११, ...	१
७२.	सुंदर—	६५, ४४२, ...	२
७३.	सेख—	३११, ३७७, ...	२

सं० कवि	पद्य-संख्या	योग
७४.सेखर— (चंद्रशेखर वाज०)	४२१, ४५५, ४८७, ६५०, ६५४, ...	५
७५.सेनापति-	३६६, ५८६, ...	२
७६.सेवक—	६८, ३०६, ४७२, ...	३
७७ सोमनाथ- (शशिनाथ)	४०, ४७, ८७, १०३, २५२, २७३, ३५६ ३८७, ४०१, ४०७, ४३३, ४४०, ४४४, ४८०, ४८३, ४६१, ५०३, ५०६, ५१६, ५२२, ५२७,५३१,६२६,६२६,६४४,६४७,	२६
७८.संभु— (राजा शंभुनाथ)	२८, ७३, १२४, ४६१, ५६४, ...	५
७६.हनुमान-	६३, ६४, १०४, ११२, २३७, ३६५, ५०१, ५२३, ...	८
८० हरिऔध- (अयोध्यासिंह उपाध्याय)	६, ४३, ४८, ५३, ११८, ११६, १२३, १३२, १५६, १६६, १७५, १८४, १६०, १६४, २१८, २४८, २५६, २६७, ३३५, ३४०, ३५४, ४०४, ४३२, ४५४, ४७६, ५०८, ५१०, ५५१, ५६८, ५७३, ६२५, ६५१, ६५२,	३३
८१.हरिकेश-	७२, ...	१
८२.हरिचंद- (भारतेन्दु)	५७, ६६, ८८२, २२६, २३६, ३६८, ४६५, ५४४, ५७२, ६०८, ६०६, ६१०, ६११, ६२४, ...	१४
८३.हरिजन-	५११, ...	१
	योग	६६०

परिशिष्ट

१. रहीम	— ६६१ से ७२१ तक	६१
२. देव	— ७२२ से ७४८ तक	२७
३. देव	— ७४६ से ७७३ तक	२५
४. हरिऔध-	७७४ से ७८१ तक	८
	संपूर्ण योग	७८१

———

अष्टछाप-परिचय

(आलोचना सहित जीवनी और काव्य-संग्रह)

इस प्रशंसनीय पुस्तक में हिंदी के भक्तिकालीन आठ महाकवियों के प्रामाणिक जीवन-वृत्तांत और उनकी रचनाओं का सुसंपादित संकलन दिया गया है। प्रचुर परिश्रम और गंभीर अध्ययन के उपरांत इस विद्वतापूर्ण पुस्तक की रचना हुई है। इसके संबंध में अपनी ओर से कुछ न कह कर प्रतिष्ठित पत्रों की सम्मतियाँ देते हैं—

"इसमें अष्टछाप-कवियों की आलोचना सहित सचित्र जीवनियाँ हैं और काव्य-संग्रह भी। वल्लभ संप्रदाय के आचार्यों की सचित्र-चर्चित चर्चा प्रथम परिच्छेद में है। इसी में शुद्धाद्वैत सिद्धांत और पुष्टिमार्ग का विस्तृत विवेचन भी है। दूसरे परिच्छेद में अष्टछाप के स्थापना-काल, महत्व और क्रम तथा वार्ता-साहित्य पर विस्तारपूर्वक विचार किया गया है। तृतीय परिच्छेद में अष्टछाप के आठ कवियों की आलोचनात्मक जीवनियाँ और चुनी हुई कविताएँ हैं। चतुर्थ में अष्टछाप के गीति-काव्य और संगीत-पद्धति का समीक्षात्मक प्रदर्शन किया गया है। अंत के पंचम परिच्छेद में अष्टछाप का सिंहावलोकन है। सब के अंत में पुस्तक-गत नामों, ग्रंथों, स्थानों और पदों की अक्षरानुक्रमणिका है।

इस प्रकार यह पुस्तक घोर परिश्रम एवं अनवरत अनुसंधान के परिणाम स्वरूप अतीव सुंदर बन पड़ी है।" पुस्तक के प्रत्येक प्रसंग से लेखक की गहरी छानबीन का पता चलता है। इस पुस्तक से साहित्य के एक बहुत बड़े अभाव की पूर्ति हुई है। हम लेखक के इस सत्प्रयास एवं अथक अध्यवसाय का हार्दिक अभिनंदन करते हैं।

लगभग २८० पृष्ठ हैं। मज़बूत जिल्द पर चिकना आवरण है। छपाई सुंदर है। ४) मूल्य में इतनी अच्छी पुस्तक सस्ती ही है।" – "हिमालय" पटना (जनवरी १९४८)

"प्रस्तुत पुस्तक में अष्टछाप के आठों कवियों का जीवन-परिचय, काव्य-रचना की आलोचनात्मक दृष्टि से देने का प्रयत्न किया गया है। लेकिन इससे भी महत्वपूर्ण वह विवेचन है, जिसमें अष्टछाप की दार्शनिक पृष्ठभूमि और वैष्णव संप्रदायों के विभिन्न सिद्धांतों की सुंदर प्रामाणिक चर्चा की गई है। अष्टछाप का काव्य और संगीत तथा सिंहावलोकन भी अत्यंत महत्वपूर्ण परिच्छेद हैं। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि अष्टछाप के कवियों के संबंध में, लेखक ने इस पुस्तक को सर्वांगपूर्ण बनाने का प्रयत्न किया है।" लेखक का अध्ययन भी विशाल है और हमें विश्वास है कि हिंदी साहित्य के विद्यार्थी इसे बहुत उपयोगी ग्रंथ के रूप में पावेंगे।" – "वीर अर्जुन", दिल्ली (२१ फ़रवरी १९५४)

"अष्टछाप विषयक एक सर्वांगीण पुस्तक का अभाव हिंदी साहित्य में अभी तक बना हुआ ही था। प्रस्तुत पुस्तक एक विशेष सीमा तक इस अभाव की पूर्ति करती है। यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि 'अष्टछाप-परिचय' इस विषय के अध्ययन में महत्वपूर्ण पथ-प्रदर्शन करने में समर्थ है।....आशा है हिंदी जगत् में इसे समुचित सम्मान

'अष्टछाप-परिचय' पर प्रतिष्ठित विद्वानों की सम्मतियाँ

अष्टछाप-परिचय परमोत्कृष्ट ग्रंथ है, जिसे मैंने आद्यन्त बहुत ध्यान पूर्वक पढ़ा। अष्टछाप वाले महाकवियों की जीवनियों के विषय में लेखक महोदय ने सामग्री जुटाने में बहुत श्लाघ्य प्रयत्न किया है और तत्सम्बंधी विविध लेखकों, समालोचकों आदि के विचारों पर बहुत श्रेष्ठ सम्मतियाँ दी है। ऐसे विषयों पर मतभेद के लिए बहुत स्थान रहता है, किंतु मीतल जी ने ऐसी योग्यता पूर्वक निर्णय किये हैं, कि मतभेद का बहुत कम अवकाश रह जाता है। मैं मीतल जी को ऐसे श्रेष्ठ ग्रंथ की रचना पर बधाई देता हूँ।

—शुकदेवबिहारी मिश्र

लखनऊ २३-१२-४७ (साहित्य वाचस्पति एवं मिश्रबंधुओं में से एक)

पुस्तक अच्छी लगी। कई ज्ञातव्य बातें प्राप्त हुईं। रचनाओं का संग्रह भी अच्छा है। सम्पूर्णानंद

लखनऊ, १८-१-४८ (शिक्षामंत्री, संयुक्त प्रांतीय सरकार)

आपने अष्टछाप-परिचय द्वारा हिंदी साहित्य के भंडार में एक उपादेय वृद्धि करदी है। मुझे आशा और विश्वास है कि सभी साहित्यकार इसे आदर की दृष्टि से देखेंगे।

— श्रीकृष्णदत्त पालीवाल

लखनऊ, २०-१-४८ (राजस्व एवं सूचना मंत्री, संयुक्त प्रांतीय सरकार)

यह पुरानी हिंदी के साहित्य तथा मध्यकालीन भारत की धार्मिक संस्कृति पर प्रकाश डालने वाली विशेष महत्वपूर्ण पुस्तक है। पुराने हिंदी साहित्य की आलोचना में आपकी यह देन प्रथम श्रेणी की है। सद्भाव, पांडित्य और श्रम से की हुई इस गवेषणा का अपना विशिष्ट स्थान है। इसके लिए मैं न केवल आपको, परंतु हिंदी-प्रेमी समाज को और हिंदी संसार को बधाई देता हूँ।

कलकत्ता, —सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या

ता० २७-१-४८ (अध्यक्ष—तुलनात्मक भाषा विज्ञान विभाग, कलकत्ता विश्वविद्यालय)

श्री मीतल जी की अष्टछाप-परिचय पुस्तक व्रजभाषा के आदिम आठ महाकवियों पर गंभीर कृति है। इसमें कवियों और उनके सरक्षकों की जीवनियों पर अच्छा प्रकाश डालते हुए, उनकी कविताओं का भी सुंदर संग्रह किया गया है। अपने ढंग का यह एक बहुत अच्छा और गंभीर प्रयत्न है। ऐसी अच्छी पुस्तक लिखने के लिए मीतल जी को बधाई!

—राहुल सांकृत्यायन

ता० ३१-१-४८ (अध्यक्ष—हिंदी साहित्य संमेलन)

आपने संग्रह अच्छा किया है और उसके लिये आवश्यक सामग्री का आलोडन भी किया है।...विवाद शून्य सम्यरूप निर्धारिणी आपकी यह पुस्तिका बड़े काम की है। इसके लिए आप बधाई के पात्र हैं। — विश्वनाथ प्रसाद मिश्र

२७-८-२००४ (अध्यक्ष—शोध विभाग, काशी नागरी प्रचारिणी सभा)

अष्टछाप-परिचय खोजपूर्ण प्रशस्त रचना है। हमारे धार्मिक काल के अध्ययन में यह पुस्तक महत्वपूर्ण स्थान ग्रहण करेगी। मेरा अभिनंदन स्वीकार कीजिए।

—रामकुमार वर्मा

प्रयाग, रामनवमी २००५ (सुप्रसिद्ध साहित्यकार एवं अध्यापक अलाहाबाद वि० वि०)

ब्रजभाषा साहित्य का नायिकाभेद

(परिवर्द्धित एवं परिष्कृत द्वितीय संस्करण)

भूमिका लेखक—डा० रामप्रसाद त्रिपाठी, अध्यक्ष-इतिहास विभाग, प्रयाग वि० वि०

प्रतिष्ठित पत्रों एवं विद्वानों की सम्मतियाँ—

"पुस्तक को एक सरसरी दृष्टि से देखने पर भी यह स्पष्ट विदित हो जाता है कि लेखक ने इसके निर्माण में काफी परिश्रम और ब्रजभाषा-साहित्य का विस्तृत अध्ययन किया है।''''समस्त प्राप्त सामग्री और विचारों का समन्वय कर लेखक ने नायिकाभेद के विभिन्न विषयों के संबंध में एक निश्चित और निर्भ्रांत मत स्थिर करने की चेष्टा की है। उदाहरणों के संग्रह में भी उसने कठिन परिश्रम और सुंदर साहित्यिक रुचि का परिचय दिया है। —"सरस्वती", प्रयाग.

विद्वान् लेखक ने रीति-कविता का संक्षिप्त इतिहास और नायिकाभेद पर विस्तृत प्रकाश डाला है। अनेकों आचार्यों ने जो क्रम इस संबंध में उपस्थित किया है, उस पर लेखक ने गंभीरता से अपने विचार व्यक्त किये हैं और अंत में एक वैज्ञानिक क्रम निश्चित करके नायिकाओं के लक्षण और उनके चुटीले उदाहरण उपस्थित किये हैं। यह संतोष की बात है कि उदाहरण अश्लील नहीं हैं और पुस्तक ब्रजभाषा में साहित्य के एक अभाव को पूरा करने में सफल हुई है। —"हिन्दुस्तान", दिल्ली

There is no doubt the author has made a sincere and conscientious effort to give an exhaustive exposition of the subject We are sure the book will prove entertaining to lovers of Hindi poetry and helpful to students interested in its systematic study

"LEADER", *ALLAHABAD*

प्रस्तुत पुस्तक में विद्वान लेखक ने काव्य सौंदर्य की दृष्टि से ब्रजभाषा साहित्य के उन रत्नों का विवेचनात्मक संग्रह किया है, जिनकी समता अन्य भाषाओं के साहित्य में मिलना कठिन है। पुस्तक को लेखक के गंभीर पांडित्य और खोज-पूर्ण दृष्टि ने काफी महत्व-पूर्ण बना दिया है। इस सत् प्रयास के लिये लेखक धन्यवाद के पात्र हैं। —विश्वमित्र क०

इस पुस्तक की सहायता से संस्कृत और हिंदी के विभिन्न आचार्यों के नायिकाभेद संबंधी कार्य का तुलनात्मक अध्ययन कर सकते हैं।'''ब्रजभाषा और उसके साहित्यिक इतिहास तथा रस-सिद्धांत का जो विवेचन किया गया है, वह साहित्य के विद्यार्थियों के लिए भी उपयोगी और ज्ञानवर्धक होगा। —"साहित्य संदेश", आगरा.

आपने पुस्तक बड़े परिश्रम से लिखी है और निस्संदेह इससे साहित्य के विद्यार्थियों का बड़ा उपकार होगा। —अमरनाथ झा

प्रयाग, १९-१२-४४ (वायस चांसलर, इलाहाबाद विश्व-विद्यालय)

निस्संदेह इस पुस्तक को प्रस्तुत करने में आपने श्रम, शोध, निर्णय शक्ति और सहृदयता का पूर्ण उपयोग किया है। —केशवप्रसाद मिश्र

बनारस, २७-१२-४४ (अध्यक्ष-हिंदी विभाग, हिंदू विश्व-विद्यालय)

नायिका-निरूपण पर हिंदी में कोई स्वतंत्र पुस्तक अभी तक नहीं थी। आपने समस्त सामग्री को एकसूत्र में एकत्रित कर विद्यार्थियों तथा अध्यापकों का उपकार किया है। —धीरेन्द्र वर्मा

प्रयाग, २८-११-४४ (अध्यक्ष—हिंदी विभाग, इलाहाबाद विश्व-विद्यालय)

नायिकाभेद विषयक सामग्रियों का जैसा गवेषणापूर्ण सुसंस्कृत संकलन इस ग्रंथ में आपने किया है, वह अवश्य ही अभूतपूर्व है।

—कन्हैलाल पोद्दार

मथुरा, द्वि० चैत्र शु० ११-२००२ (हिंदी काव्यशास्त्र के सर्वमान्य आचार्य)

आपने जिस सहृदयता और मार्मिकता के साथ पुस्तक की रचना की है, उसकी प्रशंसा मैं मुक्त कंठ से करता हूँ। आपका साहित्यिक ज्ञान, भावुकतामयी गवेषणा और पर्यालोचना शक्ति असाधारण है। - हरिऔध

आज़मगढ़, २३-११-४४ (स्वनाम धन्य कवि सम्राट एवं हिंदी साहित्य के प्रकांड विद्वान)

प्राचीन संस्कृत तथा हिंदी वाले कवियों के इस विषय पर जो विचारों का संग्रह आपने लिखा है, वह बहुत मूल्यवान है। आपका परिश्रम श्लाघ्य है।

—शुकदेव बिहारी मिश्र

लखनऊ, २६-१-४५ (साहित्य वाचस्पति, मिश्र बंधुओं में से एक)

इस विषय पर अब तक कोई ऐसी सुंदर पुस्तक प्रकाशित नहीं हुई। आपने इस विषय पर जो सुंदर गवेषणा और विवेचना की है, वह सर्वथा सराहनीय है। इस ग्रंथ से साहित्य के एक विशेष अंग की बहुत-कुछ पूर्ति होगई।

प्रयाग, —रामशंकर शुक्ल. 'रसाल'

१०-१-४६ (अलाहाबाद विश्व-विद्यालय के हिंदी-अध्यापक एवं प्रतिष्ठित विद्वान)

श्री प्रभुदयालजी मीतल ने नायिकाभेद पर ऐसी सर्वांगपूर्ण और उपयोगी पुस्तक लिखी है कि उससे विद्यार्थी ही नहीं साहित्य के विद्वान भी बहुत कुछ सीख सकेंगे।

काशी, २३-६-४६ —राय कृष्णदास.

यह ग्रंथ अपने विषय की अनूठी रचना है। वास्तव में यह रचना मीतलजी की अध्ययनशीलता तथा साहित्य-मर्मज्ञता को पूर्ण रूपेण प्रगट कर रही है और विद्यार्थियों के लिए उपदेश प्रद होते हुए साहित्यिकों के लिए भी संग्रहणीय है।

काशी, जुलाई १९४५ —ब्रजरत्नदास.

इस ग्रंथ के संकलन करने में आपने अच्छा श्रम किया है। उत्तरार्ध में प्रत्येक नायिका के उदाहरण भी देकर आपने विषय को सुबोध बना दिया है।

काशी, ५-११-४४ विश्वनाथप्रसाद मिश्र

आपकी पुस्तक विद्वत्ता के साथ लिखी गई है। यथासमय उसे सम्मेलन परीक्षा के पाठ्यक्रम में रखने का विचार किया जायगा।

प्रयाग, २६-११-४४ —रामकुमार वर्मा

इसमें ऐसी प्रचुर सामग्री है, जो न केवल विद्यार्थियों के लिए ही, वरन् पंडितों के लिए भी अत्यंत उपयोगी है। इससे हिंदी के विद्यार्थी के एक अभाव की पूर्ति होती है।

दिल्ली, ७-१२-४४ —नगेन्द्र

आपने ऐसी पुस्तक की रचना करके हिंदी के रस और अलंकार काल का एक विकसित स्वरूप प्रगट किया है। मेरी राय में हिंदी में यह अपने ढंग का अकेला और सर्वोत्तम ग्रंथ है। —ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल' ('देशदूत'-संपादक), प्रयाग.

मिलने का पता—अग्रवाल प्रेस, मथुरा।